

GOVERNMENT OF INDIA

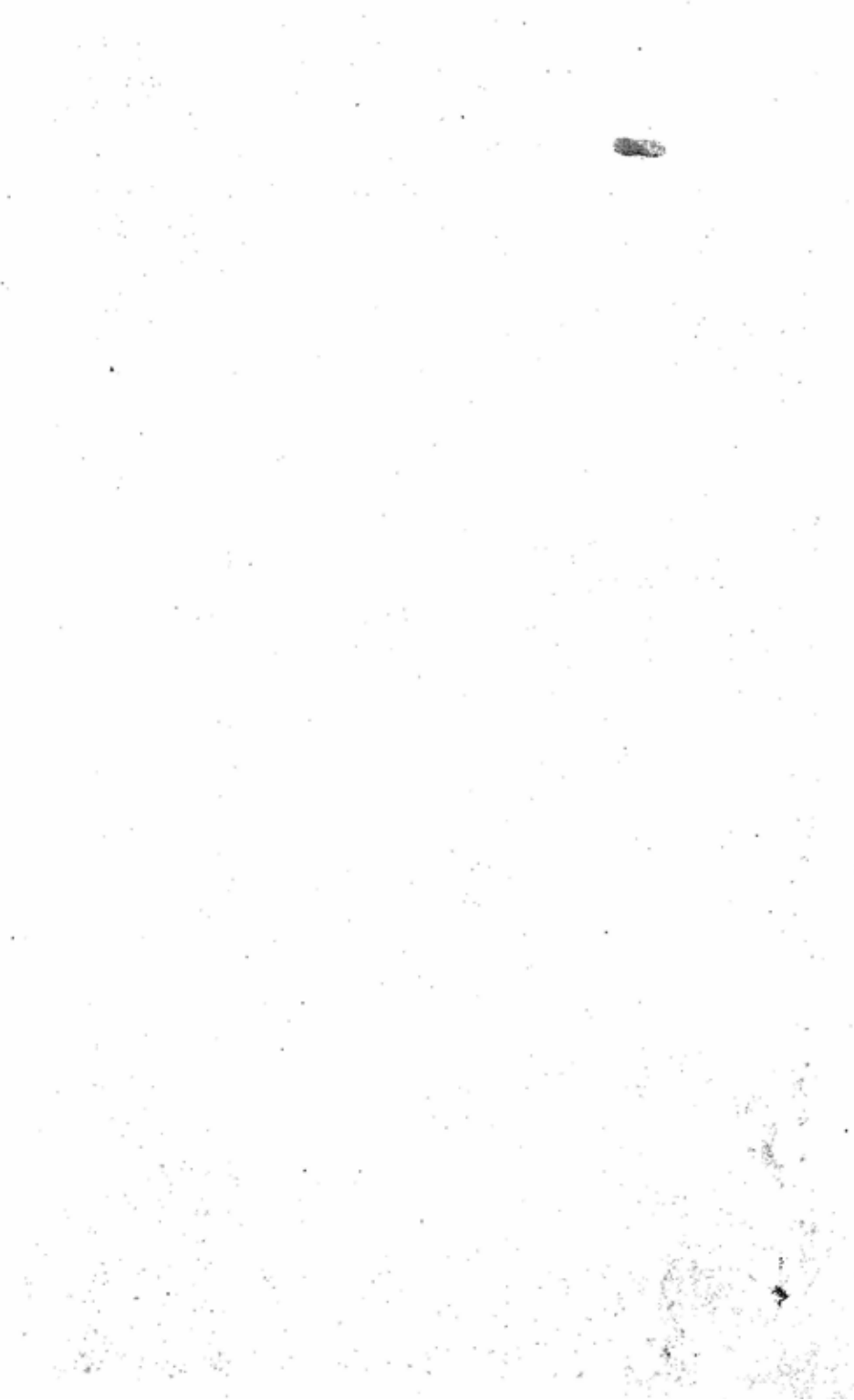
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY

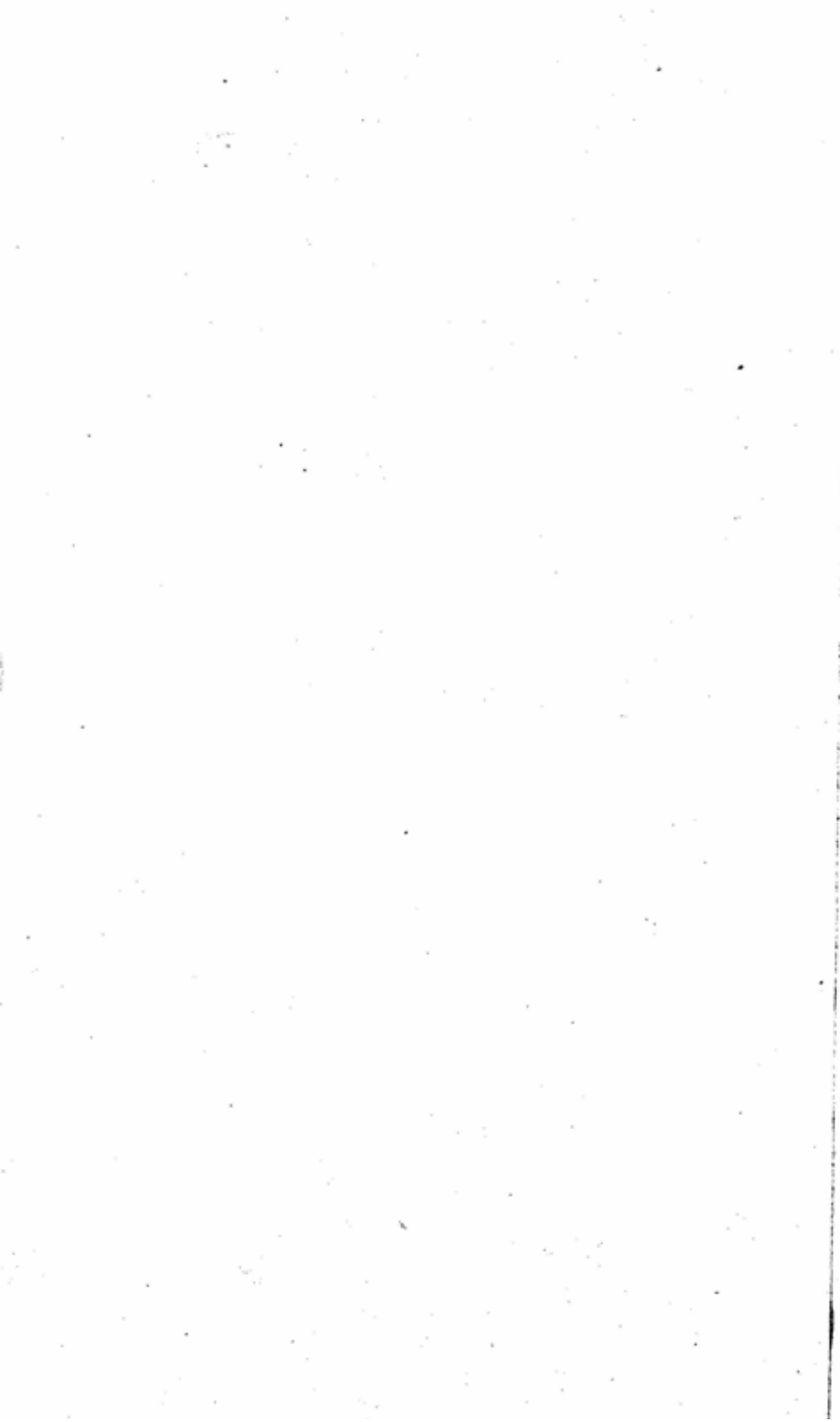
**CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY**

CALL NO.

Sa 2vu / A.L. / Kun

D.G.A. 79.





UN-PUBLISHED UPANISHADS

अप्रकाशिता उपनिषदः

THE UNIVERSITY OF CHICAGO

LIBRARY

1911

UN-PUBLISHED UPANISHADS

EDITED BY

THE PANDITS OF ADYAR LIBRARY

UNDER THE SUPERVISION OF

DR. C. KUNHAN RAJA

HON. DIRECTOR OF ADYAR LIBRARY

8048

Sa.2Vn
A.L./Kun

PUBLISHED FOR THE ADYAR LIBRARY

(THEOSOPHICAL SOCIETY)

1938

Fat. xxvi no 10

T.S.A. A.L.S.

891.20.8
A.L.S. A.
1-2-XXV

CENTRAL BIOLOGICAL
LIBRARY NEW DELHI

8048

Date: 50. 17-12-56.

Author: Sa 2vu/A.L. Kun

अप्रकाशिता उपनिषदः



अडयार्पुस्तकालयस्थपण्डितैः

संपादिताः

डाक्टर-चि-कुअनूराजमहाशयैः प्रत्यवेक्षिताः

~~12716~~
~~12716~~

अडयार्पुस्तकालयायें

प्रकटीकृताश्च

१९३३

1. 1870-1871

1872-1873

1874

1875-1876

1877-1878

1879

1880

ॐ नमो
ब्रह्मादिभ्यो
ब्रह्मविद्यासंप्रदायकर्तृभ्यो
वंशऋषिभ्यो
नमो गुरुभ्यः

DEDICATED TO
Brahma and the Rishis
The Great Teachers
Who handed down Brahmavidya
through generations



PREFACE

THIS volume contains seventy-one Upaniṣads, that are not included in the well-known one hundred and eight Upaniṣads. The Adyar Library has already published all the ninety-eight Minor Upaniṣads with the commentary of Upaniṣad Brahmayogin. It was felt advisable that these works, which have come down under the name of Upaniṣads, should be published in the same series. Manuscripts of many of these Upaniṣads are rare, and very few of them have been printed till now. This edition is based upon the manuscripts that are collected in the Adyar Library. Manuscripts that are collected in the Government Oriental Manuscripts Library, Madras, have also been consulted wherever possible ; I take this opportunity to thank the Curator of that Library for the facilities afforded for such consultation. The manuscripts of the Adyar Library which have been utilised for this edition are described in the Descriptive Catalogue of the Library prepared by Dr. F. O. Schrader. As this edition has no pretence to being a "critical edition," I do not enter into any minute discussion about the manuscripts and other details. I must confess that some of the Upaniṣads that

are included in this edition are so very corrupt in the form in which it is presented that they are quite unintelligible; perhaps some may say that they should not have been printed at all. Since other manuscripts are not available, I thought I may as well include them in this edition in this form, so that scholars may know that there is such an Upaniṣad. In printing the Upaniṣads, the same plan of division has been adopted as in the case of the well-known Minor Upaniṣads, *i.e.*, the division into Yoga, Sāmānyavedānta, Vaiṣṇava, Śaiva and Śākta. It is hoped that this edition, in spite of all its defects, will be of some interest and use for scholars and students of the history of Hindu religion and thought.

ADYAR

C. KUNHAN RAJA,

3rd February, 1933.

Hon. Director.

विषयविभागेनोपनिषदां सङ्ख्या

| | | | | | |
|-----------------|----------------------------|---|---|---|----|
| १. | योग—उपनिषत्सु . | . | . | . | १ |
| २. | सामान्यवेदान्त—उपनिषत्सु . | . | . | . | २१ |
| ३. | वैष्णव—उपनिषत्सु . | . | . | . | १६ |
| ४. | शैव—उपनिषत्सु . | . | . | . | १५ |
| ५. | शाक्त—उपनिषत्सु . | . | . | . | १८ |
| आहत्य विभागाः . | | . | . | . | ५ |
| उपनिषदः . | | . | . | . | ७१ |

संपुटेऽस्मिन्नन्तर्गतानामुपनिषदामकारादिक्रमसूची

संख्या

उपनिषद्नाम

पुटसंख्या

१. योग-उपनिषदः

| | | | | |
|------------------|---|---|---|-----|
| १. योगराजोपनिषत् | . | . | . | १—३ |
|------------------|---|---|---|-----|

२. सामान्यवेदान्त-उपनिषदः

| | | | | |
|--------------------|---|---|---|-------|
| १. अद्वैतोपनिषत् | . | . | . | ४—५ |
| २. आचमनोपनिषत् | . | . | . | ५—६ |
| ३. आत्मपूजोपनिषत् | . | . | . | ६ |
| ४. आर्षेयोपनिषत् | . | . | . | ७—९ |
| ५. इतिहासोपनिषत् | . | . | . | १०—२० |
| ६. चतुर्वेदोपनिषत् | . | . | . | २०—२१ |
| ७. चाक्षुषोपनिषत् | . | . | . | २२—२३ |
| ८. छागलेयोपनिषत् | . | . | . | २३—२५ |
| ९. तुरीयोपनिषत् | . | . | . | २६—२७ |
| १०. द्वयोपनिषत् | . | . | . | २७ |
| ११. निरुक्तोपनिषत् | . | . | . | २८—२९ |
| १२. पिण्डोपनिषत् | . | . | . | २९—३० |

| संख्या | अपनिषद्नाम | पुटसंख्या |
|--------|---------------------------------------|-----------|
| १३. | प्रणवोपनिषत् . . . | ३०—३२ |
| १४. | प्रणवोपनिषत् . . . | ३२—३७ |
| १५. | वाष्कलमन्त्रोपनिषत् . . . | ३७—३९ |
| १६. | वाष्कलमन्त्रोपनिषत् (सवृत्तिका) . . . | ३९—४७ |
| १७. | मठाम्नायोपनिषत् . . . | ४८—४९ |
| १८. | विश्रामोपनिषत् . . . | ५०—५१ |
| १९. | शौनकोपनिषत् . . . | ५१—५४ |
| २०. | सूर्यतापिन्युपनिषत् . . . | ५४—६० |
| २१. | स्वसंवेद्योपनिषत् . . . | ६०—६२ |

३. वैष्णव—उपनिषदः

| | | |
|-----|---|---------|
| १. | ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषत् . . . | ६३—६४ |
| २. | कात्यायनोपनिषत् . . . | ६४—६५ |
| ३. | गोपीचन्दनोपनिषत् . . . | ६५—६९ |
| ४. | तुलस्युपनिषत् . . . | ७०—७२ |
| ५. | नारदोपनिषत् . . . | ७२ |
| ६. | नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत् . . . | ७३—८० |
| ७. | नारायणोत्तरतापिनीयोपनिषत् . . . | ८०—८३ |
| ८. | नृसिंहषट्चक्रोपनिषत् . . . | ८४—८५ |
| ९. | पारमात्मिकोपनिषत् (संव्याख्या) . . . | ८६—२०७ |
| १०. | यज्ञोपवीतोपनिषत् . . . | २०७ |
| ११. | राधोपनिषत् . . . | २०८—२१३ |
| १२. | लाङ्गूलोपनिषत् . . . | २१३—२१६ |
| १३. | श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषत् . . . | २१७—२१८ |

| संख्या | उपनिषद्नाम | पुटसंख्या |
|--------|-----------------------|-----------|
| १४. | सङ्कषणोपनिषत् . . . | २१८—२१९ |
| १५. | सामरहस्योपनिषत् . . . | २१९—२२२ |
| १६. | सुदर्शनोपनिषत् . . . | २२३—२२५ |

४. शैव-उपनिषदः

| | | |
|-----|-----------------------------------|---------|
| १. | नीलरुद्रोपनिषत् (सव्याख्या) . . . | २९६—३०२ |
| २. | पारायणोपनिषत् . . . | ३०२—३०३ |
| ३. | बिल्वोपनिषत् . . . | ३०३—३०६ |
| ४. | मृत्युलाङ्गूलोपनिषत् . . . | ३०७ |
| ५. | रुद्रोपनिषत् . . . | ३०८—३०९ |
| ६. | लिङ्गोपनिषत् . . . | ३०९—३११ |
| ७. | वज्रपञ्चरोपनिषत् . . . | ३११—३१३ |
| ८. | वटुकोपनिषत् . . . | ३१३—३१८ |
| ९. | शिवसङ्कल्पोपनिषत् . . . | ३१८—३१९ |
| १०. | शिवसङ्कल्पोपनिषत् . . . | ३१९—३२३ |
| ११. | शिवोपनिषत् . . . | ३२४—३७८ |
| १२. | सदानन्दोपनिषत् . . . | ३७८—३८० |
| १३. | सिद्धान्तशिखोपनिषत् . . . | ३८०—३८३ |
| १४. | सिद्धान्तसारोपनिषत् . . . | ३८३—३८९ |
| १५. | हेरम्बोपनिषत् . . . | ३९०—३९१ |

५. शाक्त-उपनिषदः

| | | |
|----|----------------------------|---------|
| १. | अष्टा-उपनिषत् . . . | ३९२—३९३ |
| २. | आथर्वणद्वितीयोपनिषत् . . . | ३९३—३९९ |

| संख्यां | उपनिषद्नाम | पुटसंख्या |
|---------|--------------------------------|-----------|
| ३. | कामराजकीलितोद्धारोपनिषत् . . . | ४००—४०१ |
| ४. | कालिकोपनिषत् . . . | ४०१—४०३ |
| ५. | कालीमेधादीक्षितोपनिषत् . . . | ४०४ |
| ६. | गायत्रीरहस्योपनिषत् . . . | ४०५—४०८ |
| ७. | गायत्र्युपनिषत् . . . | ४०९—४१० |
| ८. | गुह्यकाल्युपनिषत् . . . | ४१०—४२० |
| ९. | गुह्यषोढान्यासोपनिषत् . . . | ४२०—४२१ |
| १०. | पीताम्बरोपनिषत् . . . | ४२१—४२२ |
| ११. | राजश्यामलारहस्योपनिषत् . . . | ४२३—४२६ |
| १२. | वनदुर्गोपनिषत् . . . | ४२६—४६७ |
| १३. | श्यामोपनिषत् . . . | ४६७—४६८ |
| १४. | श्रीचक्रोपनिषत् . . . | ४६८—४६९ |
| १५. | श्रीविद्यातारकोपनिषत् . . . | ४६९—४७१ |
| १६. | षोढोपनिषत् . . . | ४७२—४७३ |
| १७. | सुमुख्युपनिषत् . . . | ४७३—४७४ |
| १८. | हंसषोढोपनिषत् . . . | ४७४—४७५ |

| | | |
|----|--------------------|---------|
| १. | ग्रन्थसूची . . . | ४७७—४७८ |
| २. | नामधेयपदसूची . . . | ४७९—४९६ |
| ३. | विशेषपदसूची . . . | ४९७—५१६ |

ॐ

१. योग-उपनिषदः

योगराजोपनिषत्

योगराजं प्रवक्ष्यामि योगिनां योगसिद्धये ।
मन्त्रयोगो लयश्चैव राजयोगो हठस्तथा ॥ १ ॥
योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
आसनं प्राणसंरोधो ध्यानं चैव समाधिकः ॥ २ ॥
एतच्चतुष्टयं विद्धि सर्वयोगेषु सम्मतम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां मन्त्रं जाप्यं विशारदैः ॥ ३ ॥
साध्यते मन्त्रयोगस्तु वत्सराजादिभिर्यथा ।
कृष्णद्वैपायनाद्यैस्तु साधितो लयसंज्ञितः ॥ ४ ॥
नवस्वेव हि चक्रेषु लयं कृत्वा महात्मभिः ।
प्रथमं ब्रह्मचक्रं स्यात् त्रिरावृत्तं भगाकृति ॥ ५ ॥
अपाने मूलकन्दाख्यं कामरूपं च तज्जगुः ।
तदेव वह्निकुण्डं स्यात् तत्त्वकुण्डलिनी तथा ॥ ६ ॥

तां जीवरूपिणीं ध्यायेज्ज्योतिष्ठं मुक्तिहेतवे ।
 स्वाधिष्ठानं द्वितीयं स्याच्चक्रं तन्मध्यगं विदुः ॥ ७ ॥
 पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रवालाङ्कुरसन्निभम् ।
 तत्रोद्रीयाणपीठेषु तं ध्यात्वाकर्षयेज्जगत् ॥ ८ ॥
 तृतीयं नाभिचक्रं स्यात्तन्मध्ये तु जगत् स्थितम् ।
 पञ्चावर्तौ मध्यशक्तिं चिन्तयेद्विद्युदाकृति ॥ ९ ॥
 तां ध्यात्वा सर्वसिद्धीनां भाजनं जायते बुधः ।
 चतुर्थं हृदये चक्रं विज्ञेयं तदधोमुखम् ॥ १० ॥
 ज्योतीरूपं च तन्मध्ये हंसं ध्यायेत् प्रयत्नतः ।
 तं ध्यायतो जगत् सर्वं वश्यं स्यान्नात्र संशयः ॥ ११ ॥
 पञ्चमं कण्ठचक्रं स्यात् तत्र वामे इडा भवेत् ।
 दक्षिणे पिङ्गला ज्ञेया सुषुम्णा मध्यतः स्थिता ॥ १२ ॥
 तत्र ध्यात्वा शुचि ज्योतिः सिद्धीनां भाजनं भवेत् ।
 षष्ठं च तालुकाचक्रं घण्टिकास्थानमुच्यते ॥ १३ ॥
 दशमद्वारमार्गं तद्राजदन्तं च तज्जगुः ।
 तत्र शून्ये लयं कृत्वा मुक्तो भवति निश्चितम् ॥ १४ ॥
 भ्रूचक्रं सप्तमं विद्याद्विन्दुस्थानं च तद्विदुः ।
 भ्रुवोर्मध्ये वर्तुलं च ध्यात्वा ज्योतिः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥
 अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं स्यात् परं निर्वाणसूचकम् ।
 तं ध्यात्वा सूतिकाग्रामं धूमाकारं विमुच्यते ॥ १६ ॥
 तच्च जालन्धरं ज्ञेयं मोक्षदं नीलचेतसम् ।
 नवमं व्योमचक्रं स्यादश्रैः षोडशभिर्युतम् ॥ १७ ॥

संविद्ब्रूयाच्च तन्मध्ये शक्तिरुद्धा स्थिता परा ।
 तल पूर्णो गिरौ पीठे शक्तिं ध्यात्वा विमुच्यते ॥ १८ ॥
 एतेषां नवचक्राणामेकैकं ध्यायतो मुनेः ।
 सिद्धयो मुक्तिसहिताः कस्मथाः स्युर्दिने दिने ॥ १९ ॥
 एको दण्डद्वयं मध्ये पश्यति ज्ञानचक्षुषा ।
 कदम्बगोलकाकारं ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥ २० ॥
 ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन अधःशक्तेर्निकुञ्चनात् ।
 मध्यशक्तिप्रबोधेन जायते परमं सुखं
 जायते परमं सुखम् । इति ॥ २१ ॥

इति योगराजोपनिषत् समाप्ता

२. सामान्यवेदान्त-उपनिषदः

अद्वैतोपनिषत्

ॐ अद्वैतपुरुषस्य न द्वितीयो भेदोऽस्ति । स्थिरजंगममध्ये अद्वैतं ब्रह्म प्रकाशितम् । सर्वलोकमध्ये ब्रह्म द्विधारूपं विचरति । चैतन्यचित्तेजसः अन्तरात्मा । मध्ये कैवल्यात्मा । एकैकं यथा रवितेजः रविर्भवेत् तथा अखण्डितब्रह्म मायाजगत्त्रयं अवस्थात्रयं परमात्मनः एकं भवति । या बुद्धिर्गर्भमध्ये सा बुद्धिर्वाल्यावस्था न भवति । या बुद्धिर्वाल्यावस्था भवति सा बुद्धिर्यौवनावस्था न भवति । या बुद्धिर्यौवनावस्था सा बुद्धिर्यूनावस्था न भवति । जरावस्था कालसंप्रीकामेवधर्मक्रीयते कारणं तत्त्वज्ञानं भवति । ज्ञानप्रबोधो यस्मिन्मध्ये मायामोहं परित्यज्य सर्वकर्मविनिर्मुक्तः स शब्दातीतोऽपि जायते । अथेतोऽपि अद्वैतपुरुषस्य पूर्णं ब्रह्म प्रतिभासितम् । यथा नदी जायते सागर एकोऽपि सागरप्रतिभासितः तथा ब्रह्म सर्वान्तरात्मा मध्ये प्रकाशितम् । नाप्रसं संपुटं सत्त्वरजस्तमोगुणरहितं तत्त्वं चेति । यथा योगी वायुनिरोधनं उक्ताचरणगुरुराछिनोति किल्बिषम् । सर्वदिव्यदेहमध्ये परमात्मा प्रकाशितः विनिर्मुक्तभवसागरः स्वर्गे देवमध्ये उत्तमस्वल्पस्य बुद्धिप्रकाशः अस्मिन्मध्ये मायामोहं परित्यजेत् । प्रकाशमध्ये

माया करोति । तैलमध्ये यथा यथा मक्षिका एकदेहिमध्ये ब्रह्म दशधा रूपं विचरति । चक्षुःप्राणमनोबुद्धिपञ्चेन्द्रियाणि पञ्चतत्त्वानि तथा घटघट-
मध्ये बहुचन्द्रोऽपि दृश्यते प्रकाशितः सर्वलोकमध्ये ब्रह्मणो रूपं विचरति
तथा घटघटमध्ये बहुचन्द्रोऽपि दृश्यते । अद्वैतं कथितं येन पुरुषोऽमूढो
भवति । देवासुरमुनिमनुष्याणां अधः ऊर्ध्वं चतुर्दिशम् । भुवर्णायुदेवादाव्य-
देहितेरसकारो दृश्यते रसकाराकारमध्ये भवति निराकारः अकारउकार-
मध्ये ब्रह्म परिपूर्णं सत्यसत्यं वेदवाक्यं वेदशास्त्रप्रतिभासितं कैवल्यं
द्वैताद्वैतरहितं मनोमय आनन्दमयतत्त्वमयतेजोमयसर्वमयः विष्णुवृक्ष-
फलं उत्पन्नं परमहंसपूर्णोऽपि जायते । ज्ञानं माता विज्ञानं पिता सगुणब्रह्म
निर्गुणब्रह्मार्पितं अष्टमी च निर्गुणावस्था ब्रह्म शरीरज्ञानलहरी ब्रह्मणः ।
ब्रह्मणो यज्ञोपवीतमनिष्टं गंभीरग्रहे क्षेमसर्ववैराग्यप्रभावेन सन्तोषलाभ-
समस्तगुणोऽपि जायते । परमहंसपुरुषस्य द्वितीयं भेदं यथा जलरहिते भिन्नं
प्राणप्रीतेयन् । द्वितीयवस्तुरहितः अखण्डितं वस्तु मध्ये प्रविष्टं अर्धस्थाने
अर्धमृचस्थाने आत्मा दृश्यते आत्मव्यापकं ब्रह्मज्ञानविज्ञानम् ॥

इति अद्वैतोपनिषत् संपूर्णा

आचमनोपनिषत्

ॐ आचमनविधिं व्याख्यास्यामः । जङ्घे पाणिपादौ प्रक्षाल्य
प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा बद्धशिखो यज्ञोपवीती । ब्राह्मणस्य दक्षिणे हस्ते पञ्च
तीर्थानि भवन्ति । अङ्गुल्यग्रे देवतीर्थं कनिष्ठिकामूले आर्षिकं तीर्थं

[अङ्गुष्ठतर्जन्योर्मध्ये] पैतृकं तीर्थं अङ्गुष्ठमूले ब्रह्मतीर्थं मध्ये अग्नितीर्थम् । न तिष्ठन्न हसन् न बुद्बुदैर्न च लोमैः गोकर्णाकृतवत् कृत्वा माषमग्नजलं पिबेत् । तेन त्रिराचामेत् । प्रथमं यः पिबेद्वेदः प्रीणातु । द्वितीयं यः पिबेद्यजुर्वेदः प्रीणातु । तृतीयं यः पिबेत् सामवेदः प्रीणातु । लोमाधरोष्ठमथर्ववेदः प्रीणातु । सुखमग्नितृप्तं सर्वं प्रोक्षति । यः पादौ प्रोक्षति यश्चक्षुषी यश्चन्द्रमादित्यौ यन्नाभिं तेन पृथिवी यस्ततस्तेन विष्णुः । यच्छिरस्तेन रुद्रः । मूर्ध्नि शतकुबेरः । सर्वदेवत्यास्ते प्रीणन्तु । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याचमनोपनिषत् समाप्ता

आत्मपूजोपनिषत्

ॐ तस्य निश्चिन्तनं ध्यानम् । सर्वकर्मनिराकरणमावाहनम् । निश्चलज्ञानमासनम् । समुन्मनीभावः पाद्यम् । सदामनस्कमर्घ्यम् । सदादीप्तिराचमनीयम् । वराकृतप्राप्तिः स्नानम् । सर्वात्मकत्वं दृश्यविलयो गन्धः । दृगविशिष्टात्मानः अक्षताः । चिदादीप्तिः पुष्पम् । सूर्यात्मकत्वं दीपः । परिपूर्णचन्द्रामृतारसैकीकरणं नैवेद्यम् । निश्चलत्वं प्रदक्षिणम् । सोऽहंभावो नमस्कारः । परमेश्वरस्तुतिर्मौनम् । सदासन्तोषो विसर्जनम् । एवं परिपूर्णराजयोगिनः सर्वात्मकपूजोपचारः स्यात् । सर्वात्मकत्वं आत्माधारो भवति । सर्वनिरामयपरिपूर्णोऽहमस्मीति मुमुक्षूणां मोक्षैकसिद्धिर्भवति ॥ इत्युपनिषत् ॥

इत्यात्मपूजोपनिषत् समाप्ता

आर्षेयोपनिषत्

ॐ ऋषयो वै ब्रह्मोद्यमाह्वयितवा ऊचुः परस्परमिवानुब्रुवाणाः । तेषां विश्वामित्तो विजितीयमिव मन्यमान उवाच । यदेतदन्तरे द्यावापृथिवी अनश्नुवदिव सर्वमश्वद्यदिदमाकाशमिवेतश्चेतश्च स्तनयन्ति विद्योतमाना इवावस्फूर्जयमाना इव तद्ब्रह्मेति । तस्योपव्याख्यानम् । यदिदमग्निभिर्ज्वलयन्ति पोप्लययन्त्यद्विरभिषीवयन्ति वद्वीभिर्भिग्भ्रंति वरत्राभिरभिघ्नन्त्ययोधनैर्वि-
ध्यन्ति सूचीभिः निखानयन्ति शंकुभिरभितृन्दन्ति पङ्क्तिशिकाभिरभिलिम्पन्ति मृत्स्त्रया तक्ष्णुवन्ति वासीभिः कृष्णन्ति फलिभिर्नहैव शक्नुवत इति नास्ये-
शीमहि नैनमतीयमहि ॥

तदु ह जमदग्निर्नानुमेने आर्तमिव वा एष तन्मेने यदिदमन्तरेणै-
दुपयन्ति पर्यास इवैष दिवस्पृथिव्योरिति । स होवाच अन्तरिक्षं वा एतद्यदिदमित्येत्योपव्याख्ये इति । महिमानं त्वमुप्येह पश्यामीति यदिद-
मस्मिन्नन्वायत्तमिति । स यदिदमेतस्मिन्नन्वायत्तं वेदाथ तथोपास्तेऽन्वायत्तो
हैवास्मिन् भवति । तदेतदविद्वानेवास्मिन्नन्वायत्तमुपास्ते वीवपद्यत् आर्ति-
मृच्छेत् । तस्मादेवमेवोपासीत ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । तं होवाच ।
यदिदमिति द्यावापृथिव्योरनारंभमिव नोपयन्ति नाभिचक्षते नाश्नुवन्ति ।
तस्योपव्याख्यानम् । यदिदमितश्चेतश्चाण्डकोशा उदयन्ति नापद्यन्त इव न
विखंसन्त इव न स्वलंतीव न पर्यावर्तन्त इव । न ह वा एनत्केचिदु-
पधावन्तो विन्दन्ति नाभिपश्यन्ति । यदिदमेक इदप एवाहुस्तम एके ज्योति-
रेकेऽवकाशमेके परमं व्योमैक आत्मानमेक इति ॥

तदु ह भरद्वाजो नानुमेने । यदिह सर्वे वेत्येत्येति धूदिरे नास्य
तद्रूपं पर्याप्तमिति । स होवाच । आर्तमिवेदं ते विज्ञानमपि स्विदेनद्रोद-

स्योरेव पर्यायेणोपवन्वीमहि यदिदमित्येत्योपव्याख्यास्याम इति । महिमानं त्वेवास्योपासे । यदिदमत्नान्वायत्तमिति । स यदिदमत्नान्वायत्तं वेदाथ तथैवोपास्तेऽत्रैवान्वायत्तो भवति । स य इहान्वायत्तमिदमविद्वानेवैतदुपास्ते पापीयान् भवत्यार्तिमार्च्छत्यवग्नियते यदेवमेतदन्वायत्तमुपास्ते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । स य एतदेनमुपास्ते ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । स होवाच । यदेतस्मिन् मण्डलेऽर्चिर्दीप्यते बंभ्रम्यमाणमिव चाकश्यमाणमिव जाज्वल्यमाणमिव देदीप्यमाणमिव लेलिहानं तदेव मे ब्रह्म । तस्योपव्याख्यानं यदिदमद्वैव पराः परावतोऽभिपद्यन्ते संपन्नमेवैतत् संमितमेव यथोपयातमाल्मैवाभिचक्षत इति । य एतदभिपद्येव गृहीयादथो विस्फुरन्तीव धावन्तीवोत्स्रवन्तीवो-पश्लिष्यन्तीव न हैवाभिपद्यन्ते । तदिदमन्तिके दवीयो नेदीय इव दूरतो न वा अस्य महिमानं कश्चिदेतीति ॥

तदु ह न मेने गौतमो यदिदमार्तमिव स्तिमितमिव पर्यायेण पश्यन्तीवेमं मोघं संविदाना इति । य इमे पुण्ड्राः सुक्ताः कुलुम्भा दरदा वर्बरा इति । न ह वा असंविदाना एव द्रागिवाभि तत्पद्यन्त इति । महिमानं त्वेवास्योपासे । य एतदस्मिन्नन्तरे हिरण्मयः पुरुषो हिरण्यवर्णो हिरण्यश्मश्रुरानखाग्रेभ्यो दीप्यमान इव । स य एवमेनमुपास्तेऽतीव सर्वभूतानि तिष्ठन्ति सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । न ह वा एष परमतीवोदेति । यस्त्वेनं परमतीवोद्यन्तं पश्यन्मुपास्ते पापीयान् भवति वीवपद्यत आर्तिमृच्छति । यस्त्वेनं परमनूद्यन्तं वेदाथ तथोपास्ते परं ज्योतिरूपसंपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । स य एवमेनमुपास्ते ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । तं होवाच । विस्फुरन्तीरेवेमा लेलायन्तीरिव संजिहाना इव नेदीयसितमा इव दवीय

सितमा एव दवीयसितमा इव नेदीयसितमा एवेति । यदपि बहुधाचक्षीरन्न किञ्च प्रतिपद्यत इति तन्मे ब्रह्मेति ॥

तदु ह वसिष्ठो नानुमेने । यदिमा विस्फूर्जयत एवाभिपद्यन्ते वीवयन्ति मिथु चेति विचक्षतेऽकाण्ड इवेमा न ह वै परमित्था कश्चनाश्लोत्य-संविदान इव । अप ये संविद्वते तदेतदन्तर्विचक्षत इति । महिम्नः पश्येमा विजान इति । स य एवमिमा महिम्न एवास्य पश्यन्नुपास्ते महिम्न एवाश्लोति सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । यस्त्विमा अवयतीरेवोपास्ते न परा संपद्यमाना नो एव परेति पापीयान् भवति वीवपद्यते प्रमीयते । अथ य इमाः परा संपद्यमाना एवोपास्ते परैव संपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । महाविज्ञानमिव प्रतिपदेनाध्यवसायमिव यत्नैतदित्येत्येत्यभिपश्यति । अथ नेति नेत्येतदित्येत्येति । स वा अयमात्मा अनन्तोऽजरोऽपारो न वा अरे बाह्यो नान्तरः सर्वविद्भारूपो विधसः प्रसरणोऽन्तर्ज्योतिर्विश्वभुक् सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वमभिक्षिपन्न तमश्लोति कश्चन ॥

परोवरीयांसमभिप्रणुत्यमन्तर्जुषाणं भुवनानि विश्वा ।

यमश्ववन्न कुशिकासो अग्निं वैश्वानरमृतजातं गमध्ययी ॥ १ ॥

भरेभरेषु तमुपह्वयाम प्रसासहिं युध्ममिन्द्रं वरेण्यम् ।

सत्तासा [ह] मवसे जनानां पुरुहूतमृग्मिणं विश्वेवेदसम् ॥ २ ॥

अहिम्नं तमर्णवे शयानं वावृहाणं तवसा परेण ॥ ३ ॥

तदु ह प्रतिपेदिरे । ते वाभिवाद्यैवोपसमीयुः । नमोऽग्नये । नम इन्द्राय । नमः प्रजापतये । नमो ब्रह्मणे । नमो ब्रह्मणे ॥

इत्यार्षेयोपनिषत् समाप्ता

इतिहासोपनिषत्

ॐ वृषादर्विकुलं ह वै शिविकुलं बभूव । तस्यायमितिहासः कुल-
विद्या बभूव । तद्यो ह स्मेममधीते स ह स्मै राजा भवति । स
किञ्चित्प्राप्यान्तर्हितः । सोऽब्रवीत् । यो मामितिहासं ग्राहयेत् । वरमस्मै
दद्यामिति । ततो ब्राह्मणः संयोगं संयुयुजे । तमादित्यात् पुरुषो भास्करवर्णो
निष्क्रम्य स एनं ग्राहयाञ्चकार । तमपृच्छत् । कोऽसीति वा वृषादर्विरिति ।
तस्माद्य इममितिहासमधीते । आदित्यलोके स कामचारो भवति । तस्माद्य
इममितिहासमुपनीतो माणवको गृहीयात् । गृहीत्वाऽथ ब्राह्मणाञ्छावयेत् ।
मेधावी भवेत् । वर्षशतं च जीवेत् । षडङ्गं च वेदमवाप्नुयात् । तस्माद्य
इममितिहासं पठन् पितृभ्य उदकाञ्जलिं दद्यात् । अपूपकूला नद्यः
सर्पिण्यायसकर्दमा उपतिष्ठेरन् । तस्माद्य इममितिहासं पठन् पितृभ्यः श्राद्धं
दद्यात् । तद्यथा स्थूलया गयाश्राद्धं कृतं भवेत् । स्वधा सह पितृणाम् ।
एवमस्य पितृणामनन्ता तृप्तिर्भवति । य एवं वेद । सोऽयमितिहासः
धन्यः पुण्यः पुत्रीयः पशंव्य आयुष्यः स्वर्ग्यः । सार्वकालिकसर्वभय-
प्रमोक्षणः । नाधिभ्यो भयं भवति । न चोरेभ्यः । न रक्षोभ्यः । नाध्वनि
प्रमीयते । नाप्सु प्रमीयते । नाग्नौ प्रमीयते । नाप्सु न शस्त्रेण बध्यते ।
नानपत्यः प्रमीयते । सायं प्रयुञ्जानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातः
प्रयुञ्जानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायंप्रातः प्रयुञ्जानः पापोऽपापो
भवति । पापभाजो हि श्रोतृणामनसूयावतां पापाश्चापक्रामन्ति । एकशतं
चान्ये साधव आगमाः । एतावती परिभाषा । अत ऊर्ध्वं विद्यात् ।

जिह्वा रसं विजानाति हृदयं वेदयत् प्रियम् ।

चक्षुर्दिष्टः साक्षिभागो मनसा साधु पश्यति ॥

मनसा वाचं नयति चक्षुषा मीयते जगत् ।
 भूतस्य कर्णौ श्रोतारावन्नं प्राणेन संमितम् ॥
 अन्नं प्राणो वृषादर्विः पर्जन्यो दत्तवान्महत् ।
 अग्निश्च हव्यवाहनस्तदिदं गाव इद्धविः ॥
 वित्तं बन्धुः प्रजातन्तुः कर्मरूपं बृहत्सखा ।
 प्रज्ञा प्रतिष्ठा तन्तूनामिष्टापूर्तेः परायणम् ॥
 सत्यं वदन्त्यनृतमुद्रहन्ति क्षीरं पिबन्ति मधु ते पिबन्ति ।
 सोमं पिबन्त्यमृतेन सार्धं मृत्योः परस्तादमृता भवन्ति ॥
 ये ब्राह्मणा ब्रह्मचर्यं चरन्त्यथो खल्वाहुर्वेदसंमितोऽयमितिहासः ॥
 धर्मं चरति नाधर्मं सत्यं वदति नानृतम् ।

दीर्घं पश्यति मा ह्रस्वं परं पश्यति माऽपरम् ॥
 ऋचो ह यो वेद स वेद देवान् यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम् ।
 सामानि यो वेद स वेद सर्वं यो मानसं वेद स वेद ब्रह्म ॥

यः क्रौद्धव्येन क्रुद्धस्तिष्ठति सोऽतिवाचं च दीक्षयति । योऽतिवाचं
 नयति स वै सर्वं द्विजः खलु मानसं वेदेति नः श्रुतम् ॥

तपोऽवधिः परमा ब्राह्मणस्य श्रद्धा माता पितरंसत्यमाहुः ।
 योग आत्मा चरणमस्य बन्धुर्दमः प्रतिष्ठा विदुषो न भूमिम् ॥
 दुःखं जन्म जरा दुःखं दुःखं मृत्युः पुनः पुनः ।
 संसारमण्डलं दुःखं पच्यन्ते यत्र जन्तवः ॥
 यो ब्राह्मणः पापकृत् मन्त्रकृच्च स जीवति ।
 ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृच्छश्चत् ब्रह्मलोके महीयते ॥
 तृणानि हीच्छन्ति कुशत्वमेव वृक्षा यूषत्वं पशवश्च गोत्वम् ।
 सर्वाः प्रजा ब्राह्मणत्वं नरेन्द्र न ब्राह्मणत्वात् परमस्ति किञ्चित् ॥

शताहावशतशरः शतशक्रऋजीषिणाम् ।

शतं ब्रह्म तपस्विनां कूपोऽरण्यस्य तिष्ठति ॥

ऋतेनापिहिता गुहा श्रुतेनापिहिता गुहा ।

स्मृतेनापिहिता गुहा शमेनापिहिता गुहा ॥

दमेनापिहिता गुहा सत्येनापिहिता गुहा ।

आत्मनापिहिता गुहा ब्रह्मणापिहिता गुहा ॥

ब्रह्मन्निधिं मनसा वेदयन्तः पश्यन्तो गुह्यमपरं परं च ।

अनध्वगा अध्वसु पारयिष्णवः ब्राह्मणास्तु सदृशाः सूर्येण ॥

यः च्छाद्धानि कुरुतेऽसंगतानि न देवयानेन पथा स याति ।

परिमुक्तं पिप्पलं बन्धनादिव स्वर्गाल्लोकाच्च्यवतेऽश्राद्धमित्रः ॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनः तन्तुर्देवैष्वाहुतः । तमाहुतमशीमहि ।

नावेदविन्मनुतेदं बृहन्तम् । सर्वानुभुमात्मानः संपराये । एष नित्यो महिमा

ब्राह्मणस्य । न कर्मणा वर्धते नो कनीयान् । तस्यैवात्मा पदविचं विदित्वा ।

न कर्मणा लिप्यते पापकेन ॥

अग्निहोत्रं बलीवृद्धाः काले चातिथिरागतः ।

बालाश्च कुलवृद्धाश्च निर्दहन्त्यवमानिताः ॥

संभोजनी नाम पिशाचभिक्षा नैषा पितृन् गच्छति नोत देवान् ।

इहैव सा चरति क्षीणपुण्या शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ॥

शूद्रायां सृजते रेतः श्राद्धं भुक्त्वाऽथ यो द्विजः ।

स शूद्रयोनिः सञ्छिन्नं रेतसा सिञ्चते पितृन् ॥

यः काममोहितः शूद्रायां पुत्रमुत्पाद्यते द्विजः ।

यावदुत्पाद्यते भूमौ तावत्तिष्ठेत् सुदारुणे ॥

अश्रोत्रियं ब्राह्मणं भोजयानस्य षोडश श्राद्धानि पितरो न भुञ्जते ।
 ततो निराशाः पितरो भवन्ति सेन्द्राः स्म देवाः प्रहरन्ति वज्रम् ॥
 यावतः खलु पिण्डान् स प्राश्नन्ति हविषो नृचः ।
 तावतः शूलान् ग्रसति प्राप्य वैवस्वतं यमम् ॥
 छिन्दन्ति दातृहस्तं च जिह्वाग्रमितरस्य च ।
 मन्त्रपूतं तु यच्छ्राद्धममन्ताय प्रयच्छति ॥
 नियुक्तस्तु यतिः श्राद्धं देवे वा मांसमुत्सृजेत् ।
 यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥
 यथेरिणे बीजमुप्तं नरेन्द्र नास्य वप्ता लभते बीजभागम् ।
 एवं श्राद्धमप्रतिष्ठितं विनश्यति ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च सङ्गमं न समाचरेत् ।
 पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते रेतभोजनाः ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च सपङ्क्तिः सहभोजनम् ।
 षण्मासान् पितरोऽश्नन्ति कर्तुरुच्छिष्टभोजनम् ॥
 श्राद्धं भुक्त्वा पुनः श्राद्धं भुञ्जीयाल्लोभमोहितः ।
 नष्टं भवति तच्छ्राद्धं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च भारमुद्रहते द्विजः ।
 पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते भारपीडिताः ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति ।
 पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते पांसुभोजनाः ॥
 अनमिकस्य वेदोऽग्निर्वेदहीनोऽप्यनमिकः ।
 सामिकोऽप्यनधीतः स्यात् स एषोऽनमिकः स्मृतः ॥

स्त्रीशूद्रबालिशादिभ्य उच्छिष्टं न प्रदापयेत् ।
 यदि दद्यात् प्रमादेन न तद्गच्छति तान् पितृन् ॥
 आहिताग्निः सदा पात्रं सदा पात्रं तु वेदवित् ।
 पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥
 पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनसङ्गमम् ।
 दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धमुक्चाष्ट वर्जयेत् ॥
 दन्तधावनताम्बूलं नखकेशनिकृन्तनम् ।
 कर्ता चैव तु पूर्वेषुर्भोक्ता चैव परेऽहनि ॥
 दन्तधावनताम्बूलं क्षौराभ्यङ्गनभोजनम् ।
 रत्यौषधपरान्नं च श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥
 श्राद्धकर्ता परश्राद्धं यस्तु भुञ्जीत लोलुपः ।
 नष्टं भवति तच्छ्राद्धं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
 निमन्त्रितेऽध्वानगते पुनर्भुक्त्वा तु वायसम् ।
 करोति कर्म यत् गृध्रः ग्रामसूकरसङ्गमात् ॥
 प्रतिग्रहेषु दारिद्र्यं दानं निष्फलमेव च ।
 होमे तु कुष्ठरोगी स्यात् स्वाध्यायैर्मृत्युमाप्नुयात् ॥
 यस्यानृचस्तु भुङ्क्ते तस्य विद्धि ब्रह्मैव वित्तं पुरुषस्य केवलम् ।
 धर्मः स्वधायां चरते ददाति च सत्यं रसः स्वादुतमो रसानाम् ।
 सत्यं श्रेष्ठ्यं व्याहृतीनां तथैव प्रज्ञानं सप्तमं जीवनानाम् ॥
 ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खो मन्त्रं विवर्जयेत् ।
 ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥
 यः शतं च सहस्राणां सहस्रं श्राद्ध आचरेत् ।
 एकस्मान्मन्त्रवित् पूतः सर्वमर्हति ब्राह्मणः ॥

ब्राह्मणानां सहस्रेषु भुक्त्वा तु नव सप्त च ।
भवन्ति ज्ञायिके भूत्वा ध्यायिके च न संशयेत् ॥
कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यते ।
कुलं तारयते तेषां दशपूर्वा दशापराम् ॥

ब्राह्मणो द्विपदां वरः । चतुष्पदां गौरुत्तमा । लोहानां काञ्चनं वरम् ।
तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिः । यदापस्त्रोतस्सरण्योरिवाग्निः । एवमात्मात्मनि
जायते ॥

सत्येनैनं मनसा साधु पश्यति सत्येनैनं मनसा वाचं नयति ॥
प्राङ्मुखश्च सुरा हव्यं पितरश्चाप्युदङ्मुखाः ।
प्रतिगृह्णन्ति संवाधमग्निना ब्राह्मणेन च ॥
वेदाध्यायीति यो विप्रः सततं ब्राह्मणः स्थितः ।
साचारः साग्निहोत्री च सोऽग्निर्वै कव्यवाहनः ॥

विकिरं प्रकिरं दद्याद्विकिरं ह वै प्रकिरं भुञ्जीत । तृप्तिरूपाणि
दर्शयन् ॥

परिश्रिते त्वेव दद्याद्ध्लीका हि पितरः स्मृताः ।
ऋग्व्यादाः पितरस्सर्वे तिलज्योतिर्धृतप्रियाः ॥
देशकालपात्रमन्त्राष्टशौचेप्साः कृष्णपक्षक्षयोत्सवाः ॥
उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वमनं मृतकर्पटम् ।
श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ।
त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्सराः ॥
दिवसस्याष्टमे भागे यदा मन्दायते रविः ।
स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारोहणं बुधः ।
 विधिज्ञा विधिमास्थाय रौहिणीं नैव लङ्घयेत् ॥
 रौहिणीं लङ्घयेद्यस्तु ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ।
 आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ॥
 यातुधानाश्च रक्षांसि पिशाचा असुरास्तथा ।
 एते हरन्ति वै श्राद्धं देवं यत्र निवर्तयेत् ॥
 राक्षसं भवति श्राद्धं देवं यत्र निवर्तयेत् ।
 तत्र रक्षांसि पैशाचा न च विद्वेष्टि यो जनः ॥
 पुरो देवाः प्रपद्यन्ते पश्चाद्देवं विसर्जयेत् ।
 पक्षैस्तु कुक्कुटो हन्ति निकर्षेण तु सूकरः ।
 आगतं गतया श्वानं चक्षुषा वृषलीपतिः ॥
 यस्य देशं न जानाति नामगोत्रे त्रिपूरुषम् ।
 कन्यादानं पितृश्राद्धं नमस्कारं च वर्जयेत् ॥
 यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम् ।
 स वै दुर्ब्राह्मणो नाम सर्वकर्मवहिष्कृतः ॥
 अष्टवर्षा भवेत् कन्या नववर्षा तु रोहिणी ।
 दशवर्षा भवेत् गौरी ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥
 पितृगेहेषु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
 सा कन्या वृषली नाम तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥
 वृषलीपतिभुक्तानि श्राद्धानि च हवींषि च ।
 पितरो न प्रतिगृह्णन्ति दाता स्वर्गं न गच्छति ॥
 माहिषीत्युच्यते भार्या भगेनोपार्जितं धनम् ।
 तद्द्रव्यमुपजीवन् यः स वै माहिषिकः स्मृतः ॥

समर्धं धनमुद्धृत्य महार्धं यः प्रयच्छति ।
 स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥
 अग्रे माहिषिकं दृष्ट्वा मध्ये तु वृषलीपतिम् ।
 अन्ते वार्धुषिकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥
 श्वित्री कुष्ठी तथा चैव कुनखी श्यावदन्तकः ।
 रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पंगुः पुनर्भवः ॥
 अवकीर्णी कुण्डगोळावायुधी परदारगः ।
 भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूप्यभिशस्तकः ॥
 मित्रधुक् पिशुनश्चैव विक्रयी वेदनिन्दकः ।
 मातापितृगुरुत्यागी कुण्डाशी वृषळात्मजः ॥
 परपूर्वापरस्तेन शूद्रजः श्राद्धकर्मणि ।
 रजस्त्रीसंगमी चैव परोपद्रवकारिणः ॥
 देवब्राह्मणघाती च तेषां द्रव्यापहारिणः ।
 एते गुणा न वक्तव्याः श्राद्धकर्मबहिष्कृताः ॥
 भ्रातन्वा भोजयेच्छ्राद्धं पुत्रं वाऽपि गुणान्वितम् ।
 आत्मा च वाऽपि भुञ्जीत न विप्रं वेदवर्जितम् ॥
 तेभ्यः श्राद्धं तु दत्तं चेत्तच्छ्राद्धं निष्फलं भवेत् ।
 निराशाः पितरस्तस्य यान्ति देवाः सहर्षिभिः ॥
 मदमोहेन यः शूद्राणां पुत्रमुत्पाद्यते द्विजः ।
 यावत्तिष्ठेत् स वै भूमौ तावत्तिष्ठेत् सुदारुणे ॥
 क्षीरं वा दधि वा तैलं तक्रमाज्यं मधूनि च ।
 एतेषां विक्रयी विप्रो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं तावद्बुद्धीत वाग्यतः ।
 पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥
 हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरो यावदर्पिताः ।
 तृप्तैस्तु पितृभिः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥
 य इमां देवीमिह वेद सर्वं

सर्वेषु भूतेषु प्रतिष्ठितानाम् ।

सती नैनं पश्यन्ति हृदयं न शोकाः

न पुत्रदाराः पशुचोदमाहितम् ॥

अपां रसो मधुनस्सर्पिषश्च क्षीरस्य चान्नस्य च संस्थितस्य ।

एते रसानां सरसेन श्राद्धं प्राप्नुवन्ति वाग्यतानां संयुतानाम् ॥

उदेहि सूर्यं वरं वृणीष्वेति राजोवाच पञ्चेमानि रत्नानि गौर्मेऽजस्रं
 दुहति । हविर्मेऽजस्रं विलहति । त्विषिर्मेऽजस्रं पिनष्टि । रथो मे सर्वान्
 समुद्रान् संयाति । आदित्यवर्णे इमे मणिकुण्डले इति । अथो ह्येवमेवैषामेकं
 वृणीष्वेति । ब्राह्मण उवाच । यावत्संपृच्छसीति भार्यो समपृच्छत् ।
 हविर्गृहाणेति भार्योवाच । पुत्रं समपृच्छत् । रथं गृहाणेति पुत्र उवाच ।
 कन्यां समपृच्छत् । मणिकुण्डले इति कन्योवाच । दासीं समपृच्छत् । दृषदं
 गृहाणेति दास्युवाच । अनुपेत्योवाच हविर्भार्यो रथं पुत्रः कन्या मणिकुण्डले
 दासी दृषदमिच्छति । गामहं शिविसप्तमे इति । सर्वाण्येवमेवैनं ददामीति
 होवाच वृषादर्विस्तदिदमितिहासो ब्रह्मादित्यः पुरोगाय । पुरोगः काश्यपाय ।
 काश्यपो भरद्वाजाय । भरद्वाजः बहुभिः अनेकमहाराजाय । ततः प्रच्य . .
 . . धनपतेर्द्विजः ब्राह्मणकुले जातस्म भवति ॥

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते यस्तु पर्वभिः ।

कन्यागते यदा सूर्यं तिष्ठन्ति पितरो गृहे ॥

दिने दिने गयातुल्यं भरण्यां गयपञ्चके ।
 दशतुल्यं व्यतीपाते पक्षमध्ये तु विंशतिः ॥
 द्वादश्यां शतमित्याहुरमावास्यां सहस्रकम् ।
 आश्वयुक्लृक्पक्षस्य द्वितीयामयुतं फलम् ॥
 अन्नेन वाऽथवा येन शाकमूलफलेन वा ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुर्याच्छ्राद्धं महालयम् ॥
 शून्या प्रेतपुरी तत्र यावद्वृश्चिकदर्शनात् ।
 वृश्चिका दर्शनं यान्ति निराशाः पितरो गताः ॥
 ततः स्वभवनं यान्ति शापं दत्वा सुदारुणम् ।
 अहोवन्नवाच्यमिति केचित् पितरो वदन्ति ॥
 अपुत्राश्चैवापशवो लोके सन्ति च निन्दिताः ।
 रौरवे नरके घोरे यावदाभूतसंघवात् ॥
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
 यजेत वाऽश्वमेधं वा लीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥
 श्वेतः खुरविषाणाभ्यां मुखे पुच्छे च पाण्डुरम् ।
 रोहितो यस्तु वर्णेन स लीलो वृष उच्यते ॥
 गौरीं वा वरयेत् कन्यां चरेद्वा श्रवणे न्ति जपति ॥

अथ संहितायां फलमवाप्नोतीत्याह भगवान् ब्रह्मा । अष्टौ
 ब्राह्मणान् सम्यक् ग्राहयेन्मेधावी भवेत् । वर्षशतं च जीवेत् । षडङ्गं च
 वेदमवाप्नुयात् ॥

वृद्धो वसूनि पुरोवाच पुत्रेभ्यः परमं निधिम् ।
 एतद्धो धनमार्याणां मन्त्राश्चैव व्रतानि च ॥

नमो नमश्च मन्त्राश्च व्रतानि च नमो नमः ।

एतत् सकलं ब्रह्मप्रणवस्तुतिः काण्वशाखे पारयेति ॥

इति इतिहासोपनिषत् संपूर्णा

श्राद्धकाले विशेषेण पितॄणां दत्तमक्षयम् ।

मनोजव आयमानो आया तरत्परम् ॥

दिवं सुपर्णं गत्वा या सोमं व महत् ।

सुपर्णोऽसि गस्त्रमान् दिवं गच्छ सुवः पत ॥

यस्ति लज्ज्योतिस्त्रिंशत् वृषादर्विसुवः पत ॥

चतुर्वेदोपनिषत्

ॐ अथातो महोपनिषदमेव तदाहुः । एको ह वै नारायण आसीत् । न ब्रह्मा न ईशानो नापो नाग्निः न वायुः नेमे द्यावापृथिवी न नक्षत्राणि न सूर्यः । स एकाकी नर एव । तस्य ध्यानान्तस्स्थस्य ललाटात् स्वेदोऽपतत् । ता इमा आपः । ता एते नो हिरण्यमयमन्नम् । तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायत । स ध्यातपूर्वामुखो भूत्वा भूरिति व्याहृतिः गायत्रं छन्द ऋग्वेदः । पश्चिमामुखो भूत्वा भूरिति व्याहृतिस्त्रैष्टुभं छन्दः यजुर्वेदः । उत्तरामुखो भूत्वा भुवरिति व्याहृतिर्जागतं छन्दः सामवेदः । दक्षिणामुखो भूत्वा जनदिति व्याहृतिरानुष्टुभं छन्दोऽथर्ववेदः ॥

सहस्रशीर्षं देवं सहस्राक्षं विश्वसंभवम् ।

विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ॥

विश्वमेवेदं पुरुषं तं विश्वमुपजीवति ।

ऋषिं विश्वेश्वरं देवं समुद्रे तं विश्वरूपिणम् ॥

पद्मकोशप्रतीकाशं लम्बत्याकोशसन्निभम् ।
हृदये चाप्यधोमुखं सतस्यत्यैशीत्कराभिश्च ॥
तस्य मध्ये महानग्निर्विश्वाचिर्विश्वतोमुखः ।
तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता ॥
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।
स ब्रह्मा स ईशानः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ॥

य इमां महोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीते अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति ।
अनुपनीतः उपनीतो भवति । सोऽग्निपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स
सूर्यपूतो भवति । स सोमपूतो भवति । स सत्यपूतो भवति । स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो
भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । तेन सर्वैः क्रतुभिरिष्टं भवति ।
गायत्र्याः षष्टिसहस्राणि जप्तानि भवन्ति । इतिहासपुराणानां सहस्राणि
जप्तानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं भवति । आचक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति ।
आसप्तमात् पुरुषं पुनाति । जाप्येन अमृतत्वं च गच्छति अमृतत्वं च
गच्छति इत्याह भगवान् हिरण्यगर्भः ॥

देवा ह वै स्वर्गं लोकमायंस्ते देवा रुद्रमपृच्छंस्ते देवा ऊर्ध्वबाहवो
रुद्रं स्तुवन्ति । भूस्त्वादिर्मध्यं भुवस्ते स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि
ब्रह्मैकस्त्वं द्विधा त्रिधा शान्तिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं
विश्वमविश्वं कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम् । अपाम सोमममृता
अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवा नमस्याम धूर्तेरमृतं मृतं मर्त्यं च
सोमसूर्यपूर्वजगदधीतं वा यदक्षरं प्राजापत्यं सौम्यं सूक्ष्मं ग्राहं ग्राहेण भावं
भावेन सौम्यं सौम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण ग्रसति तस्मै महाग्रासाय नमः ॥

इति चतुर्वेदोपनिषत् संपूर्णा

चाक्षुषोपनिषत्

ॐ अथातश्चाक्षुषीं पठितसिद्धविद्यां चक्षूरोगहरां व्याख्यास्यामः ।
यच्चक्षूरोगाः सर्वतो नश्यन्ति । चाक्षुषी दीप्तिर्भविष्यतीति । तस्याश्चाक्षुषी-
विद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः । गायत्री छन्दः । सूर्यो देवता । चक्षूरोगनिवृत्तये
जपे विनियोगः । ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव । मां पाहि पाहि ।
त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय । मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय । यथाऽहं
अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम
पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय ।
ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकराया-
मृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः ।
खेचराय नमः । महते नमः । रजसे नमः । तमसे नमः । असतो मा
सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय । उष्णो
भगवान्छुचिरूपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः । य इमां चक्षुष्मतीविद्यां
ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुले अन्धो भवति ।
अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॥

ॐ विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं

हिरण्मयं पुरुषं ज्योतिरूपं तपन्तम् ।

विश्वस्य योनिं प्रतपन्तमुग्रं

पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥

ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिन्यहोवाहिनी स्वाहा । ॐ
वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः । अपध्वान्तमूर्णूहि
पूर्द्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् । पुण्डरीकाक्षाय नमः । पुष्करेक्षणाय

नमः । अमलेक्षणाय नमः । कमलेक्षणाय नमः । विश्वरूपाय नमः ।
महाविष्णवे नमः ॥

इति चाक्षुषोपनिषत् संपूर्णा

[अस्या उपनिषदः “चक्षुरूपनिषत्, चक्षुरोगोपनिषत्, नेत्रोपनिषत्” इति नामान्तराणि वर्तन्ते ।]

छागलेयोपनिषत्

ॐ ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत । तेऽथ कवषमैल्लषं दास्याः पुत्र
इति दीक्षाया आच्छिदन् । ते होचुः । अप वा एतदग्न्यजुषादप सान्न इति ।
स होवाच । भगवन्तो यदिदं सत्रमाध्वै यदृचोऽधीध्वै यद्यजूंषि यत्सामानि
कस्यायं महिमेति । ते होचुर्ब्राह्मणा वाव स्मस्तेषामेवमिति ॥

स होवाच । यदिदमिच्छाचिदिच्छाचिदीक्षध्वै किं तद्येन ब्राह्मण इति ।
ते होचुर्यदिदमृग्यजुषैरेवोपवत्वन्नो जुहुवुर्यद्वैनमुपाग्रासिषुर्यदुपानेषतैतद्ब्राह्मणा
इति । स हाविदूर एव शवशयितमात्रेयमच्छावदमुपदर्शयन्नुवाच । यदिद-
मृग्यजुषैरुपवत्वं जुहोपाग्रासीदथोपानेष नैतदत्यगादिति । किं तदिति होचुः ॥

स होवाच । नैमिषेऽमी शुनकाः सत्रमासत । तेषामात्रेयोऽच्छावदः
सर्वाण्येवावर्तयद्यद्याज्या यदनुवाक्या यत्प्रातरनुवाको यत्प्रउगं यदाज्यं
यन्मरुत्वतीयमित्यथ यन्महावीरसंभरणानि यदग्नेरभिवर्तनानि यद्राजाभि-
क्रयणानि यदभिषाविलाणि यदौपयामानि यदुपमन्त्रणान्यथ यत्त्रिवृत्पञ्चदशः
सप्तदश एकविंश इति । कास्य तदगादिति । तेहामुहन् । अथैते सर्वे
एवोपसमेत्योचुरूप नो नयस्वेम एव त इति । स ह स्मयमान उवाच ।

संपश्यध्वा एव मा प्रमदत । न होत्तमानधम उपनेतेति । ते होचुर्मैव स्मोपनथा गतिस्तु त्वमिदिति ॥

स होवाच । कुरुक्षेत्र एवोपसमेत्य ये बालिशस्तानुपाध्वै । ते व इदं प्रवक्ष्यन्तीति । ते ह तत एवोपसमेत्य कुरुक्षेत्रमुपजग्मुः । ते ह बालिशानेवोपासदन् । तानिम उपसीदत एव विदांचक्रुरिति कामुका इति । ते होचुर्यत्किमिव बालिशानुपासदत महाशाला वै महाश्रोत्रिया वर्षीयांसः सन्तः यन्महाशाला महाश्रोत्रिया वर्षीयांसः कुरुक्षेत्रमध्यासत इति । ते हान्योन्यस्याभिसमीक्षामासुः । ते हापश्यन्न हास्मान्मिथुचिदेवासाववोचद्वालिशानेव चैतान्विचक्षतेति । ते होचुर्नमस्यानतीव वचो रेचयिष्यथ यदन्तर्नोऽसाविह प्राहैयात् । यथैव तु स्मोपसन्ना अथानसूयवो यथोपश्रद्धिन इति ॥

ते होचुः । किं वा अस्मत्प्रतीच्छथेति । ते होचुः । नैमिषेऽमी शुनकाः सत्रमासत । तेषामात्रेयोऽच्छावदः सर्वाण्येवावर्तयत् । यद्याज्या यदनुवाक्या यत्प्रातरनुवाको यत्प्रउगं यदाज्यं यन्मरुत्वतीयमित्यथ यन्महावीरसंभरणानि यदग्नेरभिवर्तनानि यद्राजाभिक्रयणानि यदभिषावित्राणि यदौपयामानि यदुपमन्त्रणान्यथ यत्त्रिवृत्पंचदशः सप्तदश एकविंश इति । कास्य तदगाधदयं शवशयितमशयिष्टेति । ते होचुर्नहासंवत्सरवासिनामनुब्रूयादिति खलु नः पूर्वेऽन्वशिषन् । यत्संवत्सरं वत्स्यथाथ वेदिष्यथेति । ते ह संवत्सरमूषुः ॥

ततो ह बालिशा ऊचुरवात्त वा संवत्सरमिमे ब्राह्मणाः । हन्तैषामनुब्रवामेति । ते ह गृहीत्वैवैवान् पथोऽभिसमीयुः । ते ह संक्रीडत एव कूवरिणो रथकट्यामविन्दन् । ते होचुः संपश्यध्वमिति । किं हीति । कूवरिणमेव सौम्या इति । तथेति । कथमिवेति । यथैवोपसृत्वरो वार्धिस्तिर्यगुल्लन्तीभिरिव वीचिभिः शफाभिरेवोपस्कन्दन्नुत्प्लवेदेवं हैवैषोभिसृत्तराणामेव धुर्याणां चक्रमतामरीणामुत्प्लवतीति । यथैवासौ प्रतिसृत्वरेण

समः समेव क्रीडेदेवं हैष संक्रीडतीति । यथैवासावितश्चेतोऽमुतश्चामुतश्च
संप्रद्रवत इवोपशुष्यत इवोपस्कन्दमभिमृद्वात्यभिपातयेदेवं हैष इतश्चेतश्चा-
मुतश्च संप्रद्रवत इवोपशुष्यत इवोपस्कन्दमभिमृद्वात्यभिपातयति । यथैवासौ
राजानं वा राजपुरुषं वा निलयनं प्रायेदेवं हैवैष यन्ता निलयनं प्रापयतीति ।
ते होचुरपीदं साधीय इति । साधीय इति होचुः । ते ह तस्यैव
पन्थानमनुप्रातिष्ठन्नन्तं ह सायाहन्येवोपसंपादयामासुः ॥

तं यदावसायाश्वांस्तक्षापोह्यापागादथ बालिशा व्यलिष्ट । अहीदृशत् ।
कथमिवेति । ते होचुर्यथैतं काष्ठभारमानद्धमनुपश्यामस्तथैवावशो भूस्थः
स्पन्दते । नेङ्गते न विवर्तते न च वीत इति । ते ह बालिशा ऊचुर्यदयमी-
दृगभूत् किमस्यापागादिति । तक्षैवेति । तथैवैतत् सौम्या इति । आत्मा वा
अस्य प्रचोदयिता करणान्यश्वाः शिरा नद्धयोऽस्थीन्युपग्रहा असृगाञ्जनं कर्म
प्रतोदो वाक्यं काणनं त्वगुपानह इति । स यथा प्रचोदयित्रापोज्झितो
नेङ्गेन्न रुरुवीतैवं हैष प्राज्ञेनात्मनापोज्झितो न ब्रूते न चैत्यपि न श्वसत्यपि
पूयत्यपि श्वान उपधावन्त्यपि काकाः पतन्त्यपि गृध्रा आस्कन्दन्नपि शिवा
जिघत्सन्निति । ते तत एव द्रागिव व्यज्ञासिषुः । ते ह पादयोरेवाभिमर्श्य
बालिशानूचुः । न ह वाव नस्तद्येन निष्कुर्म इममेवेत्यञ्जलिं कृत्वोपास्थिष-
तेत्याह भगवान् छागलेयस्त इमे श्लोकाः —

यथैतत्कूबरस्तक्षणापोज्झितो नेङ्गते मनाक् ।

परित्यक्तोऽयमात्मा नस्तद्वद्देहो विरोचते ॥ १ ॥

यदस्य प्रधयश्चका युगमक्षो वरत्रिका ।

प्रतोदश्चर्मकील ॥ २ ॥

एतावानेवोपलब्धः

तुरीयोपनिषत्

* * * * *

कलातीतश्चेति । तत्र चत्वारः । अकारश्चायुतावयवान्वितः । उकारः शतावयवान्वितः । मकारः सहस्रावयवान्वितः । अर्धमात्रप्रणवोऽनन्तावयवान्वितः । सगुणो विराट्प्रणवः । संहारो निर्गुणप्रणवः । उभयात्मक उत्पत्तिप्रणवः । यथार्थकथनोमित्युच्चार्याभिमानोत्पत्तिप्रणवः । सर्वोपसंहारेण संहारप्रणवः । उभयात्मकत्वात् विराट्प्रणवः । उत्पत्तिप्रणवो दीर्घप्लुत-विराट् । प्लुतप्लुत्युपसंहारः । विराट्प्रणवः षोडशमात्रान्वितः । षट्त्रिंशत्-त्वायुतः । षोडशमात्रात्मकं कथमित्युच्यते । अकारः प्रथमः । द्वितीय उकारः । मकारस्तृतीयः । अर्धमात्रा चतुर्थः । नादः पञ्चमः । बिन्दुः षष्ठः । कला सप्तमः । शक्तिरष्टमी । शान्तिर्नवमी । समाना दशमी । आत्मनैकादश । मनोन्मना द्वादश । वैखरी त्रयोदश । मध्यमा चतुर्दश । पश्यन्ती पञ्चदश । परा षोडश । इति षोडशमात्रात्मकः प्रणवः । षोडश-मात्रा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरुरीयावस्थाभेदैरैकैकमात्राचातुर्विध्यमेत्य । षोडश-मात्राश्चतुष्पष्टिभेदमेत्य । पुनश्चतुष्पष्टिमात्राः प्रकृतिपुरुषद्वैविध्यमापाद्याष्टा-विंशत्युत्तरभेदमात्रास्वरूपमासाद्य सगुणनिर्गुणत्वमेत्य एकोपि ब्रह्म प्रणवः ॥

सर्वाधारः परं ज्योतिरेष सर्वेश्वरो विभुः ।

सर्वदेवमयः सर्वप्रपञ्चाधारगर्भितः ।

सर्वाक्षरमयः कालः सदसद्भक्तिवर्जितः ॥ इति ।

य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इति तुरीयोपनिषत् समाप्ता

द्वयोपनिषत्

ॐ अथातः श्रीमद्द्वयोत्पत्तिः । वाक्यो द्वितीयः । षट्पदान्यष्टादश ।
पञ्चविंशत्यक्षराणि । पञ्चदशाक्षरं पूर्वम् । दशाक्षरं परम् । पूर्वो नारायणः
प्रोक्तोऽनादिसिद्धो मन्त्ररत्नः सदाचार्यमूलः ।

आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः ॥
गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषवित् ।
एवं लक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥
आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचारस्थापनादपि ।
स्वयमाचरते यस्तु तस्मादाचार्य उच्यते ॥
गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥
गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गतिः ।
गुरुरेव परं विद्या गुरुरेव परं धनम् ॥
गुरुरेव परः कामः गुरुरेव परायणः ।
यस्मात्तदुपदेष्टासौ तस्माद्गुरुतरो गुरुः ॥

यस्सकृदुच्चारणः संसारविमोचनो भवति । सर्वपुरुषार्थसिद्धिर्भवति ।
न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तत इति । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इति द्वयोपनिषत् समाप्ता

निरुक्तोपनिषत्

* * * * *

स यद्यनुरुध्यते तद्भवति । यदि धर्मोऽनुरुध्यते तदेवोद्भवति ।
यदि ज्ञानमनुरुध्यते तदमृतो भवति । यदि काममनुरुध्यते संचरतां इमां
योनिं संदध्यात्तदिदमत्र मनः श्लेष्मरेतसः संभवति । श्लेष्मणो रसः ।
रसाच्छोणितम् । शोणितान्मांसम् । मांसान्मेदः । मेदसः स्नावा ।
स्नावोऽस्थीनि । अस्थिभ्यो मज्जा । मज्जातो रेतः । तदिदं योनौ रेतः सिक्तं
पुरुषः संभवति । शुक्रातिरेके पुमान् भवति । शोणितातिरेके स्त्री भवति ।
द्वाभ्यां समेन नपुंसको भवति । शुक्रभिन्नेन यमो भवति । शुक्रशोणित-
संयोगान्मातृपितृसंयोगाच्च कथमिदं शरीरं परं संयम्यते । सौम्यो
भवत्येकरात्रोषितं कललं भवति । पञ्चरात्राद्बुद्धः । सप्तरात्रात् पेशी ।
द्विसप्तरात्रादवुद्धः । पंचविंशतिरात्रस्थितो योनौ धनो भवति । मास-
मात्रात् कठिनो भवति । द्विमासाभ्यन्तरे शिरः संपद्यते । मासत्रयेण
ग्रीवाव्यादेशः । मासचतुष्केण त्वग्व्यादेशः । पञ्चमे मासे नखरोमव्यादेशः ।
षष्ठे मुखनासिकाक्षिश्रोत्रं च संभवति । सप्तमे चलनसमर्थो भवति । अष्टमे
बुद्ध्याध्यवस्यते । नवमे सर्वाङ्गसंपूर्णो भवति ॥

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।

नानायोनिसहस्राणि मया यान्युषितानि वै ॥

आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ।

मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥

अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ।

सांख्यं योगं समभ्यस्ये पुरुषं पञ्चविंशकम् ॥ इति ॥

ततश्च दशमे मासे प्रजायते । जातश्च वायुना स्पृष्टो न स्मरति जन्म मरणम् । अन्ते च शुभाशुभं कर्मैतच्छरीरस्य प्रामाण्यम् ॥

इति निरुक्तोपनिषदि विंशतितमोऽध्यायः

अष्टोत्तरं सन्धिशतमष्टाकपालं शिरः संपद्यते । षोडश वपापलानि । नव स्नायुशतानि । सप्तशतं पुरुषस्य मर्माणि । अर्धचतस्रो रोमाणि कोटयः । हृदयं द्वाष्टकपलानि । द्वादशकपलानि जिह्वा । वृषणो द्वाष्टसुपर्णौ । तत उपस्थ-गुदयोन्येतन्मूलपुरीषं कस्मादाहारापानसिक्तत्वादनुपचति । कर्मणा अन्योन्यं जायत इति । तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च । महत्यज्ञानतमसि मग्नो जरामरणक्षुत्पिपासाशोकक्रोधद्रोहलोभमोहमदभयमत्सरहर्षविषादेर्ष्या-सूयात्मकैर्द्वन्द्वैरभिभूयमानः सोऽस्मादार्जवं जवीभावनान्तं निर्मुच्यते । सोऽस्मा-दान्तं महाभूमिकावत् शरीरान्निमेषमात्रैः प्रक्रम्य प्रकृतिभिरभिपरीत्य तैजसं शरीरं कृत्वा कर्मणानुरूपं फलमनुभूय तस्य संक्षये पुनरिमं लोकं प्रतिपद्यते ॥

इति निरुक्तोपनिषदि एकविंशोऽध्यायः

इति निरुक्तोपनिषत् समाप्ता

पिण्डोपनिषत्

ॐ देवता ऋषयः सर्वे ब्रह्माणमिदमब्रुवन् ।

मृतस्य दीयते पिण्डं कथं गृह्णन्त्यचेतसः ॥

भिन्ने पञ्चात्मके देहे गते पञ्चसु पञ्चधा ।

हंसस्त्यक्त्वा गतो देहं कस्मिन् स्थाने व्यवस्थितः ॥

त्र्यहं वसति तोयेषु त्र्यहं वसति चाग्निषु ।
 त्र्यहमाकाशगो भूत्वा दिनमेकन्तु वायुगः ॥
 प्रथमेन तु पिण्डेन कलानां तस्य सम्भवः ।
 द्वितीयेन तु पिण्डेन मांसत्वक्छोणितोद्भवः ॥
 तृतीयेन तु पिण्डेन मतिस्तस्याभिजायते ।
 चतुर्थेन तु पिण्डेन अस्थि मज्जा प्रजायते ॥
 पञ्चमेन तु पिण्डेन हस्ताङ्गुल्यः शिरो मुखम् ।
 षष्ठेन कृतपिण्डेन हृत्कण्ठं तालु जायते ॥
 सप्तमेन तु पिण्डेन दीर्घमायुः प्रजायते ।
 अष्टमेन तु पिण्डेन वाचं पुप्यति वीर्यवान् ॥
 नवमेन तु पिण्डेन सर्वेन्द्रियसमाहृतिः ।
 दशमेन तु पिण्डेन भावनं प्लावनं तथा ।
 पिण्डे पिण्डे शरीरस्य पिण्डदानेन सम्भवः ॥

इति पिण्डोपनिषत् समाप्ता

प्रणवोपनिषत्

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
 तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥
 पुरस्ताद्ब्रह्मणस्तस्य विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
 रहस्यं ब्रह्मविद्याया धृतार्णि संप्रचक्षते ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
 शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानकालत्रयं तथा ॥
 तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः ।
 तिस्रो मात्रार्धमात्रा च प्रत्यक्षस्य शिवस्य तत् ॥
 ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च ।
 अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥
 यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणामिस्तथैव च ।
 विष्णुश्च भगवान् देव उकारः परिकीर्तितः ॥
 सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च ।
 ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः ॥
 सूर्यमण्डलमाभाति ह्यकारश्चन्द्रमध्यगः ।
 उकारश्चन्द्रसंकाशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः ॥
 मकारश्चाग्निसंकाशो विधूमो विद्युतोपमः ।
 तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याग्नितेजसः ॥
 शिखा च दीपसंकाशा यस्मिन्नु परिवर्तते ।
 अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता ॥
 पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखाभा दृश्यते परा ।
 नासादिसूर्यसंकाशा सूर्यं हित्वा तथापरम् ॥
 द्विसप्ततिसहस्राणि नाडिभिस्त्वा तु मूर्धनि ।
 वरदं सर्वभूतानां सर्वं व्याप्यैव तिष्ठति ॥
 कांस्यधण्टानिनादः स्याद्यदा लिप्यति शान्तये ।
 ओङ्कारस्तु तथा योज्यः श्रुतये सर्वमिच्छति ॥

यस्मिन् स लीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते ।
सोऽमृतत्वाय कल्पते सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ इति ॥

इति प्रणवोपनिषत् समाप्ता

प्रणवोपनिषत्

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे पुष्करे ससृजे । स खलु ब्रह्मा सृष्ट-
श्चिन्तामापेदे । केनाहमेकेनाक्षरेण सर्वाश्च कामान् सर्वाश्च लोकान् सर्वाश्च
देवान् सर्वाश्च वेदान् सर्वाश्च यज्ञान् सर्वाश्च शब्दान् सर्वाश्च व्युष्टीः
सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्यनुभवेयमिति । स ब्रह्मचर्यमचरत् । स
ओमित्येतदक्षरमपश्यत् । विवर्णं चतुर्मात्रं सर्वव्यापि सर्वविभवयातयाम-
ब्रह्म ब्राह्मी व्याहर्ति ब्रह्मदैवतं तथा सर्वाश्च कामान् सर्वाश्च लोकान्
सर्वाश्च देवान् सर्वाश्च वेदान् सर्वाश्च यज्ञान् सर्वाश्च शब्दान् सर्वाश्च
व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्यन्वभवत् । तस्य प्रथमेन
वर्णेनापस्त्रेहश्चान्वभवत् । तस्य द्वितीयेन वर्णेन तेजो ज्योतीष्यन्वभवत् । तस्य
प्रथमया स्वरमात्रया पृथिवीमग्निमोषधिवनस्पतीनृग्वेदं भूरिति व्याहृतिर्गायत्रं
छन्दस्त्रिवृतं स्तोमं प्राचीं दिशं वसन्तमृतुं वाचमध्यात्मं जिह्वां रसमितीन्द्रि-
याण्यन्वभवत् । तस्य द्वितीयया स्वरमात्रयान्तरिक्षं वायुं यजुर्वेदं भुव
इति व्याहृतिं त्रैष्टुभं छन्दः पञ्चदशं स्तोमं प्रतीचीं दिशं ग्रीष्ममृतुं
प्राणमध्यात्मं नासिके गन्धघ्राणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् । तस्य तृतीयया
स्वरमात्रया दिवमादित्यं सामवेदं स्वरितिव्याहृतिं जागतं छन्दः सप्तदशं

स्तोममुदीचीं दिशं वर्षर्तुं ज्योतिरध्यात्मं चक्षुषी दर्शनमितीन्द्रियाण्यन्व-
भवत् । तस्य वकारमात्रया यश्चन्द्रमसमथर्ववेदं नक्षत्राण्योमिति स्वमात्मानं
जनदित्यंगिरसामानुष्टुभं छन्दः एकविंशं स्तोमं दक्षिणां दिशं शरदमृतं
मनोऽध्यात्मं ज्ञानं ज्ञेयमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् । तस्य मकारश्रुत्येति-
हासपुराणं वाकोवाक्यगाथानाराशंसीरुपनिषदोनुशासमानानामिति वृधत्कर-
द्रुहन्महत्तच्छमोमिति व्याहृतीः स्वरशम्यनानातन्त्रीस्वरनृत्यगीतवादित्राण्य-
न्वभवच्चैत्ररथं दैवतं वैद्युतं ज्योतिर्वाहितं छन्दस्तृणवत्त्रयस्त्रिंशस्तोमौ ध्रुवामूर्ध्वा
दिशं हेमन्तशिशिरावृतू श्रोत्रमध्यात्मं शब्दश्रवणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् ।
सैषैकाक्षर ऋगब्रह्मणस्तपसोऽग्रे प्रादुर्बभूव । ब्रह्म वेदस्यार्थवर्णं शुक्रमत एव
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुः । स तु खलु मन्त्राणां तपसा शुश्रूषानध्यायाध्ययनेन
यदूनं च वरिष्ठं च यातयामं च करोति । तथाप्यथर्वणं तेजसा
प्रत्याप्याययेन्मन्त्राश्च मामभिमुखीभवेयुर्गर्भा इव मातरमभिजिघांसुः परस्ता-
दोङ्कारप्रयुक्तयैतयैव तदृचा प्रत्याप्याययेदेष यज्ञस्य पुरस्ताद्युज्यत एषा
पश्चात् सर्वत एतया यज्ञस्तपते तदप्येतदृचोक्तं—“या पुरस्ताद्युजत
ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्निति” । तदेतदक्षरं ब्राह्मणो यं काममिच्छेत्
त्रिरात्रोपोषितः प्राङ्मुखो वाग्यतो बहिष्पुपविश्य सहस्रं ऋच आवर्तयेत्
सिध्यन्त्यस्यार्थाः सर्वकर्माणि चेति ब्राह्मणम् ॥

वसोर्द्वाराणामिन्द्रनगरं तदसुराः पर्यवारयन्त । ते देवा भीता
आसन् । क इमानसुरान् हनिष्यतीति । तमोङ्कारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं
ददृशुस्ते तमब्रुवन् । भवता मुख्येनेमानसुरान् जयेमेति । स होवाच किं
मे प्रतीवाहो भविष्यतीति । वरं वृणीष्वेति । वृण इति । स वरमवृणीत ।
“न मामनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुरब्रह्म तत्स्यात्” इति ।
तथेति ते देवा देवयजनस्योत्तरार्धेऽसुरैः संयत्ता आसंस्तानोङ्कारेणाग्नीध्रीया

देवा असुरान् पराभावयन्त । तद्यत्पराभावयन्त तस्मादोङ्कारः पूर्वमुच्चार्यते । यो ह वा एतमोङ्कारं न वेदावश्यः स्यादित्यथ य एवं वेद ब्रह्मवशः स्यादिति तस्मादोङ्कार ऋग्भवति यजुषि यजुः साम्नि साम सूत्रे सूत्रं ब्राह्मणे ब्राह्मणं श्लोके श्लोकः प्रणवे प्रणव इति ब्राह्मणम् ॥

ओंकारं पृच्छामः को धातुः किं प्रातिपदिकं किं नामाख्यातं किं लिङ्गं किं च वचनं का विभक्तिः कः प्रत्ययः कः स्वरः उपसर्गो निपातः किं वै . व्याकरणं को विकारः को विकारी कतिमालः कतिवर्णः कत्यक्षरः कतिपदः कः संयोगः किं स्थानानुप्रदानकरणं शिक्षकाः किमुच्चारयन्ति किं छन्दः को वर्ण इति पूर्वं प्रश्नाः । अथोत्तरे मन्त्राः । कल्पो ब्राह्मणं ऋग् यजुः साम । कस्माद्ब्रह्मवादिन ओङ्कारमादितः कुर्वन्ति । किं दैवतं किं ज्योतिषं किं निरुक्तं किं स्थानं का प्रकृतिः किमध्यात्ममिति षट्त्रिंशत्प्रश्नाः पूर्वोत्तराणां तयो वर्गा द्वादश एकाशतैरोङ्कारं व्याख्यास्यामः ॥

इन्द्रः प्रजापतिमपृच्छत् भगवन्नभ्यस्तूय पृच्छामीति । पृच्छ वत्सेत्यब्रवीत् । किमयमोङ्कारः कस्य पुलः किं चैतच्छन्दः किं चैतद्वर्णः किं चैतद्ब्रह्मा ब्रह्म संपद्यते । तस्माद्वैतमोङ्कारं पूर्वमालोभस्वरितोदात्त एकाक्षर ओङ्कार ऋग्वेदे त्रैस्वर्योदात्त एकाक्षर ओङ्कारो यजुर्वेदे दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षर ओङ्कारः सामवेदे ह्रस्वोदात्त एकाक्षरः उकारोऽथर्ववेदेऽनुदात्तोदात्तद्विपद अ उ इत्यर्धचतस्रो माला मकारे व्यञ्जनमित्याहुः । या सा प्रथमा माला ब्रह्मदैवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्ब्राह्मं पदम् । या सा द्वितीया माला विष्णुदैवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम् । या सा तृतीया माला ईशानदैवत्या कपिला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेदैशानं पदम् । या सार्धचतुर्थी माला

सर्वदैवत्या व्यक्तीभूता खं विचरति शुद्धस्फटिकसन्निभा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत् पदमनामकम् । ओङ्कारस्योत्पत्तिं विप्रो यो न जानाति तत्पुनरुपनयनं तस्माद्ब्राह्मणवचनमादर्तव्यम् । यथा लातव्यो गोत्रो ब्राह्मणः । पुलो गायत्रं छन्दः शुक्लो वर्णः । पुंसो वत्सो रुद्रो देवता । ओङ्कारो वेदानां उत्तरोपनिषदं व्याख्यास्यामः । को धातुरित्याप्तेर्धातुरवतिमप्येके । रूपसामान्याद्यर्थसामान्यान्यन्यदीयस्तस्मादापेरोङ्कारः सर्वमाप्नोतीत्यर्थः । कृदन्तमर्थवत्प्रातिपदिकमदर्शनं प्रत्ययस्य नाम संपद्यते । निपातेषु चैनं वैयाकरणा उक्षत्तं समामनन्ति । तदव्ययीभूतमन्वर्थवाची शब्दो न व्येति कदाचनेति ।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

को विकारी च्यवते प्रकारणमाप्नोतिराकारपकारौ विकार्यौ आदितः ओकारो विक्रियते । द्वितीयो मकार एवं द्विवर्ण एकाक्षर ओमित्योङ्कारो निर्वृत्तः । कतिमात्र इत्यादेस्तिप्तो मात्राः अभ्याधाने हि भ्रुवते । मकारश्चतुर्थी किं स्थानमित्युभावोष्ठौ स्थानमाधानकरणी च द्विःस्थानं सन्ध्यक्षरमवर्णलेशः कण्ठ्यो यथोक्तशेषः पूर्वो विवृत्तकरणस्थितश्च द्वितीयः स्पृष्टकरणस्थितश्च । नायं योगे विद्युत आख्यातोपसर्गानुदात्तः स्वरितलिङ्गविभक्तिवचनानि च संचिह्नन्नाध्यायिन आचार्याः पूर्वं बभूवुः । श्रवणादेवं प्रतिपद्यन्ते । न कारणं प्रयच्छन्त्यथापरपक्षीयाणां कविः पञ्चाल-चण्डः परिपृच्छको बभूवांबुः पृथगुद्गीथदोषान् भवन्तो ब्रुवन्त्विति । तद्वाच्युपलक्षयेत् वर्णाक्षरपदाङ्कशो विभक्त्यामृषिनिषेवितामिति वाचं स्तुवन्ति । तस्मात् कारणं ब्रूमो वर्णानामयमिदं भविष्यतीति षडङ्ग-विदस्तत्तथाधीमहि । किं छन्द इति । गायत्रं हि छन्दो गायत्री वै

देवानामेकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता । द्वौ द्वादशकौ वर्गावेतद्वै व्याकरणं धात्वर्थवचनं शैक्षं छन्दो वचनं चाथोत्तरौ द्वौ द्वादशकौ वर्गौ वेदरहसिकी (?) व्याख्याता मन्त्रकल्पो ब्राह्मणमृग्यजुःसामाथर्वाण्येषा व्याहृतिश्चतुर्णां वेदानामानुपूर्व्येण । ॐ भूर्भुवस्सुवरिति व्याहृतयः ॥

असमीक्ष्य प्रवर्हितानि श्रूयन्ते द्वापरादावृषीणामेकदेशो दोषयतीह चिन्तामापेदे । त्रिभिः सोमः पातव्यः समाप्तमिव भवति । तस्मादृग्यजुस्सामान्यपक्रान्तेतेजास्यासंस्तत्र महर्षयः परिदेवयाञ्चक्रिरे । महच्छोकभयं प्राप्ताः स्मो न चैतत्सर्वैः समभिहितं ते वयं भगवन्तमेवोपधावाम । सर्वेषामेव शर्म भवानिति । ते तथेत्युक्त्वा तूष्णीमतिष्ठन्वानुपसन्नेभ्य इत्युपोपसीदामेति नीचैर्बभूवुः । स एभ्य उपनीय प्रोवाच । मामिकामेव व्याहृतिमादितः कृणुध्वमित्येवं मामका अधीयन्ते । नर्ते भृग्वङ्गिरोविद्भ्यः सोमः पातव्य ऋत्विजः पराभवन्ति । यजमानो रजसापध्वस्यति श्रुतिश्चापध्वस्तापतिष्ठ-तीत्येवमेवोत्तरोत्तराद्योगाल्लोकं तोकं प्रशाध्वमित्येवं प्रतापो न पराभविष्य-तीति । तथाह भगवन्निति प्रतिपेदिरे आप्याययंस्ते तथा वीतशोकभया बभूवुः । तस्माद्ब्रह्मवादिन ओङ्कारमादितः कुर्वन्ति ॥

किं दैवतमित्यूचामग्निदैवतं तदेव ज्योतिर्गायत्रं छन्दः पृथिवी स्थानं “अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।” इत्येवमादिं कृत्वा ऋग्वेदमधीयते । यजुषां वायुदैवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दोऽन्तरिक्षं स्थानं “इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थोपायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे” इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । साम्नामादित्यो दैवतं तदेव ज्योतिर्जागतं छन्दो द्यौः स्थानं “अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ।” इत्येवमादिं कृत्वा सामवेदमधीयते । अथर्वणां चन्द्रमा दैवतं तदेव ज्योतिः सर्वाणि छन्दांस्यापः स्थानं “शन्नो

देवीरभिष्टये” इत्येवमार्दि कृत्वा अथर्ववेदमधीयते । अद्भ्यः स्थावरजङ्गमो
भूतग्रामः संभवति । तस्मात् सर्वमापोमयं भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोमयं अन्तरैते
त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिता इत्यविति प्रकृतिरपामोङ्कारेण चैतस्माद्व्यासः ॥

इति प्रणवोपनिषत् समाप्ता

बाष्कलमन्त्रोपनिषत्

मेधातिथिं काण्वमिन्द्रो जहार द्या मेघभूयोपगतो विदानः ।
तमन्य इत्तमनं परिप्राट् पद एनं नियुयुजे परस्मिन् ॥ १ ॥
को ह स्मैष भवसि व्यवायो नावायो म इह शश्वदस्ति ।
सुशेवमिच्छंक्रमसि प्रपश्यन्नित्था न कश्चोरणमाचक्षे ॥ २ ॥
नेमामस्पृक्षदिदुदस्यमानः को अद्धामूमभिचङ्कमीति ।
तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमो न त्वाश्ववद्ब्रह्म रिषा मयस्वि ॥
इन्द्रो नृचक्षा वृषभस्तुराषाट् प्रसासहिस्तपसा मा विचक्षे ।
स इद्देवो ऋतमन्वयन्तं प्रभीमकर्मा तवसोऽपविद्धात् ॥ ४ ॥
कुहेव मावशमितो नयातै कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा ।
कुहाचिदेष स्वपिता पिता नो यो न वेद न हृतं हरन्तम् ॥ ५ ॥
प्रत्यङ्ङवाङ्प्राङ्धितरौ च नेह नाहमेनाननुपतस्थिरद्धा ।
न मामिमे नूनमित्था पथो विदुर्ये मा न यन्ति मिथु चाकशानाः ॥
परः स्मियानो अविवरस्य शूकं किं सीमिच्छरणं मन्यमानः ।
न ह त्वाहमप्रणीय स्वविष्टामित्था जहामि शपमानमिन्नु ॥ ७ ॥
अहमस्मि जरितृणामु दावा अहमाशिरमहमिदं दधग्वान् ।
अहं विश्वा भुवना विचक्षन्नहं देवानामासन्नवोऽदः ॥ ८ ॥

मम प्रतिष्ठा भुव आण्डकोशा वि चैमि सं च हि नु यो विरशी ।

अहं न्वहिं पर्वते शिश्रियाणमुग्रो न्वहं तवसावस्युरद्धा ॥ ९ ॥

प्रवङ्क्षणा अभिदं पर्वतानां यत्सीमिन्द्रो अकरोदनीकैः ।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् को अश्ववदभिमातिं विजघ्नुषः ॥

को मे अवो दाशुषो विष्वगूतीरित्था ददश्रे भुवनाधि विश्वा ।

रूपं रूपं जनुषा बोभवीमि मायाभिरेको अभिचाकशानः ॥ ११ ॥

विश्वं विचक्षे यमयन्नभीको नेशे मे कश्च महिमानमन्यः ।

अहं द्यावापृथिवी आततानो विभर्मि धर्ममवसे जनानाम् ॥ १२ ॥

अहमु ह प्रवर्ति यज्ञियामियां

अहं वेद भुवनस्य नाभिम् ।

आपिः पिता सूरहमस्य विष्वङ्

अहं दिव्या आन्तरिक्ष्यास्तुका वहम् ॥ १३ ॥

अहं वेदानामुत यज्ञानामहं छन्दसामविदं रयीणाम् ।

अहं पचामि सरसः परस्य यदिदेतीव सरिरस्य मध्ये ॥ १४ ॥

अहमिन्नु परमो जातवेदा यमध्वर्युरभिलोकं पृणैधीत् ।

यमन्वाह नभसो न पक्षी काष्ठा भिन्दन् गोभिरितोऽमुतश्च ॥ १५ ॥

अहमु यन्नपतता रथेन द्विषडारेण प्रधिनैकचक्रः ।

अहमिन्नु दिद्युतानो दिवे दिवे तन्वं पुपुष्यान्मृतं वहामि ॥ १६ ॥

अहं दिशः प्रदिश आदिशश्च विष्वक् पुनानः पर्येमि लोकम् ।

अहं विश्वा ओषधीर्गर्भ आधां याभिरिदं धिन्युर्दाशुषः प्रजाः ॥

अहं चरामि भुवनस्य मध्ये पुनरुच्चावचं व्यश्नुवानः ।

यो मा वेद निहितं गुहा चित् स इदित्था बोभवीदाशयध्वै ॥ १८ ॥

अहं पञ्चधा दशधा चैकधा च सहस्रधा नैकधा चासमत्र ।
 मया ततमितीदमश्नुते तदन्यथासद्यदि मे असद्विदुः ॥ १९ ॥
 न मामश्नोति जरिता न कश्चन न मामश्नोति परि गोभिराभिः ।
 न मेऽनाश्वानुत दाश्वानजग्रभीत् सर्व इन्मामुपयन्ति विश्वतः ॥
 क शरारुः क सृमरः क नूरुणः सर्वमिदं त्वत्त्वदितो बहामि ।
 यन्मदिमे विभ्यति तन्म एकं ते मे अक्षन्नहमु ताननुक्षम् ॥ २१ ॥
 यत्तप्यथा बहुधा मे पुरा चित्तन्नु भुवेऽहमुरणो बोभुवे ।
 ऋतस्य पन्थामसि हि प्रपन्नोऽयसे स मे सत्यमिदेकमेहि ॥ २२ ॥
 अहं ज्योतिरहमृतं विनद्धिरहं जातं जनि जनिष्यमाणम् ।
 अहं त्वमहमहं त्वमिन्नु त्वमहं चक्ष्व विचिकित्सीर्म ऋज्वा ॥ २३ ॥
 विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपो रुद्रः प्रणीती तमनः प्रजापतिः ।
 हंसो विशोको अजरः पुराण ऋतीयमानो अहमस्मि नाम ॥ २४ ॥
 अहमस्मि जरिता सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठी नृचक्षाः ।
 अहं विष्वङ्ङहमस्मि प्रसत्वानहमेकोऽस्मि यदिदं नु किं च ॥

इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् समाप्ता

बाष्कलमन्त्रोपनिषत्

(सवृत्तिका)

मेधातिथिं काण्वभिन्द्रो जहार इत्याद्या बाष्कलानां मन्त्रोपनिषत् ।
 तस्याश्चेयमल्पाक्षरा वृत्तिरारभ्यते । मेधातिथिनामानमृषिं कण्वस्य पुत्रं

सामवेदब्राह्मणप्रसिद्धमिन्द्रः जहार । द्या मेषभूयोपगतो विदानः । मेषभूयं मेषभावम् । भुवः क्यप् । उपगतः प्राप्तः । सामवेदब्राह्मणप्रसिद्धाख्यायिकः । द्याः स्वर्गलोकान् प्रतीति विवक्षितं जहार हृतवान् । विदानः ज्ञानी ॥ तमन्य इत्तमनं परिप्राद् । तं इन्द्रं अन्यः मेधातिथिः इदिति निरर्थको निपातः । तमनं हरणेन ग्लानिपदम् । परिपृच्छतीति परिप्राद् । मेधातिथिः पद एनं नियुयुजे परस्मिन् ॥ १ ॥ परस्मिन् पदे ज्ञेये तत्स्वरूपे पदार्थे नियुयुजे नियुक्तवान् । विलक्षणमेधीभूतेन्द्रकर्तृकविलक्षणक्रियादर्शनात् आपाततो विलक्षणः परो देवः कश्चिन्न तु मेष इति तात्त्विकतत्स्वरूपज्ञानाय वक्ष्यमाणप्रश्नेन परं पदं ज्ञेयं स्वस्वरूपं कथयेति प्रश्नेन नियोजितवानित्यर्थः । प्रश्नमेवाह श्रुतिः । को ह स्मैष भवसि व्यवायः । ह इति पूर्ववृत्तावद्योतको निपातः । स्मेति निरर्थकम् । एष प्रत्यक्षः । व्यवायो ज्ञेयः । व्यवपूर्व-स्यैतेर्धञि रूपम् । कच्चित् ज्ञातुं योग्यस्त्वमसि । नावायो म इह शश्वदस्ति । मे मम शश्वदिति ध्रुवार्थं आवायो ज्ञानं नास्ति कस्त्वमिति । दृश्यमाने मेषस्वरूपे कथमेवं संशय इति चेत् । तत्राह । सुशेवमिच्चंक्रमसि । शोभनमेव चंक्रमणं करोषि । प्रपश्यन् इत्था न कश्चोरणमाचचक्षे ॥ २ ॥ इत्था न । इत्थमिव । नकार इवार्थः । को वा इत्थं क्रममाणं प्रपश्यन् उरणं मेषं आचचक्षे । उक्तवान् । दृष्टवान् वा । इत्थं क्रममाण उरणो न केनचिद्दृष्ट इति भावः क्रमेण वैलक्षण्यमेवाह । नेमामस्पृक्षदिदुदस्यमानः । इमां पृथिवीं उदस्यमानः । इत् एवार्थः । कूर्दन्नेव न अस्पृक्षत् न स्पृशतीति लकारव्यत्ययः । नैतावता वैलक्षण्यमत आह । को अद्धामूमभिचङ्क्रमीति । अद्धा साक्षात् । अनेनैव शरीरेण । अमूं द्याम् । कः अभिचङ्क्रमीति अभिक्रामति । प्रश्नमुपसंहरति । तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमः । तत् तस्मात् शाधि । इदित्यनर्थकम् । शिक्षय यस्त्वं सर्ववित्तमः सर्वज्ञतमः

असि तत्स्वरूपं कथयेति भावः । अकथनेऽनिष्टं संभाव्यते । तन्मा भवत्वित्याह । न त्वाश्ववद्ब्रह्म रिषा मयस्वि ॥ ३ ॥ मयस्वि तेजस्वि ब्रह्म ब्राह्मणं रिषा क्रोधेन त्वा त्वां न अश्ववत् न अशोति न व्याप्नोत् । अस्मदीय-क्रोधव्यापारविषयो मा भूदित्यभिप्रायः । कुतस्तैवैवं बलमत आह । इन्द्रो नृचक्षा वृषभस्तुराषाद् । इन्द्रः परमेश्वरः नृचक्षा सर्वजगत्कर्मसाक्षी वृषभः कामप्रदस्तुराषाद् तुरः परबलं सहते अभिभवतीति सहेः छन्दसीति ण्विः । प्रसासहिस्तपसा मा विचक्षे । प्रसासहिः प्रसहनशीलः । तपसा उपलक्षणे तृतीया । मा मां विचक्षे पश्यति । अतः सत्यमकथयत ईश्वराद्भयमप्याह । स इद्वेवो ऋतमन्वयन्तम् । इत् एवार्थे । स इत् स एव देवः ऋतं सत्यं अनु लक्षीकृत्य अयन्तं अगच्छन्तं सत्येन पथा अगच्छन्तं सत्यमब्रुवाणमिति यावत् । प्रभीमकर्मा तवसोऽपविद्धात् ॥ ४ ॥ अपविद्धात् क्षितात् तवसो वज्रात् प्रभीं प्रकृष्टं भयं मा अकः कार्षीत् । प्रष्टव्यमाह । कुहेव मावशमितो नयातै । कुहेव कुत्रेव मा मां अवशं इतः अस्मात् स्थानात् नयातै नेष्यसि । किं च । कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा । स्पष्टम् । ईदृक्कष्टे कायवाङ्मनोनिर्निषेवितमीश्वरं स्मरति । कुहाचिदेष स्वपिता पिता नः । एष मानसप्रत्यक्षो नः पिता ईश्वरः कुहाचित् कुत्र स्वपिता स्वपिति । यो न वेद न हृतं हरन्तम् ॥ ५ ॥ यः हृतं मां न वेद न वा हरन्तं वेदेत्यन्वयः । किं च — इतरेऽप्याजन्मनिषेविता देवा न मत्सहाया इत्याह । प्रत्यङ्ङ्वाङ्प्राङ्दितरौ च नेह । पञ्चसु दिक्षु तत्र तत्र वर्तमानाः प्राणपञ्चकाधिष्ठातारो देवा लक्ष्यन्ते । इतरौ चेत्यन्तेषु । सर्वत्र सप्तम्यर्थो बोध्यः । वर्तमाना इति च शेषः । तेऽत्र देवा अपि किं नेह सन्ति । पक्षान्तरमाह । नाहमेनाननुपतस्थिरद्धा । एनान् देवान् । अद्धा सत्येन । अहं नोपतस्थिः नोपस्थाता इति न । अपि तु उपस्थातैव । किं च । न मामिमे नूनमित्या

पथो विदुः । नूनं निश्चितोऽयमर्थः । इमे देवाः मां इत्था इत्थंभूतं न विदुः । ये मा न यन्ति मिथु चाकशानाः ॥ ६ ॥ ये पथो मार्गात् मा मां न नयन्ति । कीदृशः मिथु मिथः चाकशानाः भासमानाः । अतः परमिन्द्रस्य मेषवेषधारिणः प्रतिवचनमुपक्रमते । परः स्मियानो अविवरस्य शूकम् । परः इन्द्रः स्मियानः हसन् अस्य मेधातिथेः शूकं शङ्कां अविवः विवृतवान् । किं सीमिच्छरणं मन्यमानः । सीमिति निरर्थको निपातः । इत् प्रश्ने । किं शरणं रक्षकं मन्यमानः असीति शेषः । इत्थंभूतस्त्वं किं शरणं मन्यस इत्यर्थः । पुनरिन्द्र आह—न ह त्वाहमप्रणीय स्वविष्टामित्था जहामि शपमानमिन्नु ॥ ७ ॥ हेत्यैतिद्व्यर्थः । त्वा त्वां स्वविष्टां स्वस्थानं अप्रणीय अप्रापय्य इत्था इत्थंभूतं अज्ञानपङ्कनिमग्नं न जहामि शपमानमिन्नु शपमानमपि । तथा च त्वामज्ञानपङ्कादुद्धृत्य स्वस्थानमात्म-स्वरूपं यावन्न प्रापयामि तावन्न त्वां मुञ्चामीति फलितोऽर्थः । तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमः इत्यस्योत्तरमाह । अहमस्मि जरितृणामु दावा । अहं उ इति निश्चये । जरितृणां यजमानानां “जरिता वै यजमानः” इति श्रुतेः । दावा दाता फलस्येति शेषः । अस्मि भवामि । यागादिफल-प्रदोऽहमेव । अहमाशिरम् । सोमसंस्कारकं पयः तदप्यहमेव । अहमिदं दधग्वान् । इदं हविः दधग्वान् दाहकः । एतस्य हविषो दाहकश्चाहमेवेत्यर्थः । किं च । अहं विश्वा भुवना विचक्षन्नहं देवानामासन्नवोऽदः ॥ ८ ॥ विश्वा भुवनानि विश्वेषां भुवनानां विचक्षन् साक्षी सन्नहं देवानां आसन् आस्ये अवः अन्नाद्यं अदः ददामि । कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा इत्यस्योत्तरमाह । मम प्रतिष्ठा भुव आण्डकोशाः । भुव उत्पादकस्य मम आण्डकोशाः ब्रह्माण्डानि प्रतिष्ठा “तत्सृष्ट्वा” इति श्रुतेः । वि चैमि सं च हि नु यो विरश्पी । योऽहं व्येमि वियुक्तो भवामि समेमि सङ्गतश्च भवामि

संसारेऽस्मिन् विरक्षी विविधं रपति शब्दं करोतीति विरक्षी रपधातोः
 शिनिन् । शब्दवान् वेदप्रवक्तेति यावत् । अहं न्वहिं पर्वते शिश्रियाणम् । नु
 इति निश्चये । अहमेव नान्यः । अहिं वृत्रासुरं पर्वते शिश्रियाणं पर्वताश्रितं
 अहनम् । उग्रो न्वहं तवसावस्युरद्धा ॥ ९ ॥ उग्रः क्रूरकर्मा नु निश्चितं
 अहमेव । तवसा वज्रेण अद्धा निश्चितम् । अवस्युः अन्नेच्छुः । ऐश्वर्येच्छुरिति
 यावत् । सोऽप्यहमेव । प्रवङ्क्षणानभिदं पर्वतानाम् । प्रवङ्क्षणान् पक्षान्
 पर्वतानां अभिदं भेदितवानस्मि । यत्सीमिन्द्रो अकरोदनीकैः । यत्
 पुरुषसाध्यं कर्मेन्द्रः अनीकैः अकरोत्तत् अहमेवाकरवमिति वाक्यशेषः ।
 सीमिति निरर्थको निपातः । को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् । अद्धा सत्यं
 मम स्वरूपमिति शेषः । को वेद कः वेत्ता । को वा प्रवक्ता । को अश्वव-
 दभिमार्तिं विजघ्नुषः ॥ १० ॥ किं च अभिमार्तिं अरिसैन्यं विजघ्नुषः
 हतवतो मम मामित्यर्थः । कः अश्ववत् कः अश्वोत् । मयि व्यापकतां कर्तुं
 न कोऽपि समर्थ इत्यर्थः । को मे अवो दाशुषो विष्वगूतीरित्था ददश्रे
 भुवनाधि विश्वा । अवोऽन्नं दाशुषो दत्तवतः मे ऊतीः शक्तीः विश्वा
 भुवनान्यधि । अधिरीश्वर इति कर्मप्रवचनीयता । सर्वेषु भुवनेषु कः ददश्रे
 कः ददर्श । किं च । रूपंरूपं जनुषा बोभवीमि । जनुषा शरीरग्रहणेन
 रूपंरूपं अनेकरूपः बोभवीमि भवामि शुद्धस्य तव कथं शरीरग्रहणमत
 आह । मायाभिरेको अभिचाकशानः ॥ ११ ॥ अनेकाभिर्विचित्रशक्ति-
 भिरमायाभिः एकोऽपि अभितः चाकशानः भासमानः मायाप्रतिबिम्बित इति
 यावत् । किं च । विश्वं विचक्षे यमयन्नभीकः । अभीको निर्भयः विश्वं
 यमयन् । अन्तर्यामिस्वरूपेण अधितिष्ठन् । विचक्षे पश्यामि । किं च ।
 नेशे मे कश्च महिमानमन्यः । महिमानं प्राप्तुमिति शेषः । स्पष्टम् । किं
 च । अहं द्यावापृथिवी आततानो विभर्मि धर्ममवसे जनानाम् ॥ १२ ॥

द्यावापृथिवी आततानस्तन्वन्नहं जनानां अवसे जनानां अबितुं धर्मं महावीरं
यज्ञशिरो बिभर्मि । इदमुपलक्षणम् । कर्ममार्गप्रवर्तनेनापि लोकरक्षक इति
फलितोऽर्थः । “आहुत्याप्यायते सोमः” इत्यादिस्मृतेः । अहमु ह प्रवर्ति
यज्ञियामियाम् । अहं उ ह यज्ञियां प्रवर्ति यज्ञसंबन्धिनं काममहमियाम् ।
कर्मफलप्रदोऽप्यहमेवेति भावः । अहं वेद भुवनस्य नाभिम् । त्रैलोक्य-
वर्तिपदार्थमात्रं नाभिपदेनोपलक्ष्यते । आपिः पिता सूरहमस्य विष्वङ् ।
आपिः पितामहः पिता जनकः सूर्माता अहमेव अस्य विश्वस्य । किं च ।
अहं दिव्या आन्तरिक्ष्यास्तुका वहं ॥ १३ ॥ दिव्या आन्तरिक्ष्याश्च तुकाः
विन्दून् अहं वहं वहामि । लकारव्यत्ययः अडागमाभावश्च छान्दसः ।
वृष्टिकर्ताप्यहमेवेत्यर्थः । अहं वेदानामुत यज्ञानामहं छन्दसामविदं रयीणाम् ।
सर्वत्र कर्मणि षष्ठी अविदं वेद्मि । अहं पचामि सरसः परस्य यदिदेतीव
सरिरस्य मध्ये ॥ १४ ॥ परस्य सरसः समुद्रस्य मध्ये यत् इत् उदर्थे ।
उदेतीव । उदयं बडवानलस्वरूपेण उदयं प्राप्नोतीति यावत् । तत्
बडवानलस्वरूपं तेजः अहमेव सन् सरिरस्य सलिलस्य कर्मणि षष्ठी सलिल-
महमेव पचामि । अहमिन्नु परमो जातवेदा यमध्वर्युरभिलोकम्पृणैधीत् ।
अहमिन्नु परमः पवित्रतमो जातवेदा अग्निः यं जातवेदसं अध्वर्युः अभिलोकं-
पृणा लोकम्पृणामिष्टकामभि लक्ष्मीकृत्य अध्वर्युः ऐधीत् समिद्धं चकार ।
यमन्वाह नभसो न पक्षी काष्ठा भिन्दन् गोभिरितोऽमुतश्च ॥ १५ ॥
यमध्वर्युमनु लक्ष्मीकृत्य नभसो न पक्षी नभसः पक्षीव नकार इवार्थे
गोभिर्वग्भिः । इतः अमुतश्च काष्ठाः दिशं भिन्दन् अन्वाह शंसति ।
होतेति शेषः । अहमु यन्नपतता रथेन द्विषडारेण प्रधिनैकचक्रः । अहं उ ।
द्विषडारेण द्वादशारेण द्वादशमासात्मकेन संवत्सररूपेण अन्तरिक्षेऽपि अपतता
रथेन प्रधिना चक्रधारया उपलक्षितेन यन् गच्छन् यः सोऽहमेवेत्यन्वयः ।

कीदृशोऽहं एकचक्रः । न खल्वन्योऽहमिव एकेन चक्रेण याति । एवं
सूर्यरूपेण प्रस्तूय चन्द्ररूपेण स्तौति । अहमिन्नु दिद्युतानो दिवेदिवे तन्वं
पुपुष्यान्मृतं वहामि ॥ १६ ॥ अहमेव दिवेदिवे प्रतिदिनं तन्वं शरीरं
पुपुष्यान् पोषयन् अमृतं वहामि प्रापयामि प्रजाभ्य इति शेषः । कीदृशः
दिद्युतानः प्रकाशमानः । अथ वायुरूपेण स्तौति । अहं दिशः प्रदिश
आदिशश्च विष्वक् पुनानः पर्येमि लोकम् । स्पष्टम् । अथ पृथिवीरूपेण
स्तौति । अहं विश्वा ओषधीर्गर्भ आधां याभिरिदं धिन्युर्दाशुषः
प्रजाः ॥ १७ ॥ विश्वाः सर्वा ओषधीः अन्नानि । आधां दधे ।
दाशुषः यजमानस्य प्रजा याभिरौषधीभिः इदं विश्वं धिन्युः प्रीणयन्ति ।
अथ सकलजीवरूपतामाह । अहं चरामि भुवनस्य मध्ये पुनरुच्चावचं
व्यश्नुवानः । उच्चावचं ऊर्ध्वमधश्च । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तजीवरूपोऽहमेवेति
भावः । यो मा वेद निहितं गुहा चित्स इदित्था बोभवीदाशयधै ॥ १८ ॥
यो मा मां गुहा गुहायामन्तःकरणे निहितं हृत्कमलान्तर्वर्तिनमेतदुक्तरूपाभेदेन
वेद उपास्ते स इत्था इत्थं आशयधै आशयितुं आशयं कर्तुं बोभवीति
भवति । इत्थमाशयो ब्रह्मज्ञानी मत्तुल्यो भवतीति यावत् । चिदिति
निरर्थकम् । अहं पञ्चधा दशधा चैकधा च सहस्रधा नैकधा चासमग्र ।
अत्र विश्वस्मिन् । शेषं स्पष्टम् । मया ततमितीदमश्नुते तदन्यथासद्यदि
मे असद्विदुः ॥ १९ ॥ मया ततमिदं विश्वमिति । (अमुं अमुं प्रकारं)
अश्नुते प्राप्नोति । तत् तदेतत् मदुक्तम् । अन्यथा असत् अन्यथा
स्यात् । यदि एवं केऽपि ब्रूयुरिति शेषः । तर्हि ते असद्विदुः । स्पष्टम् ।
न मामश्नोति जरिता कश्चन न माश्नोति परिगोभिराभिः । कश्चित् जरिता
यजमानः मां न अश्नोति न प्राप्नोति । “ न कर्मणा न प्रजया
धनेन ” इति श्रुतेः । आभिर्गोभिर्वाग्भिः वेदैरिति यावत् । न मां परि

अश्नोति परिप्राप्नोति । परीति सामस्त्यार्थम् । तथा च “नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः” इति श्रुतिसमानार्थमेतत् । न मेऽनाश्वानुत दाश्वानजग्र-
भीत् सर्व इन्माप्नुयन्ति विश्वतः ॥ २० ॥ मे मां कर्मणि षष्ठी ।
अनाश्वान् अनशनव्रती न अजग्रभीत् । न गृह्णाति । दाश्वान् दाता ।
दानानाशकयोरपि “यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन” इति श्रुत्या लोकप्राप्ति-
हेतुत्वस्यैवोक्तेः । न चाहमेकस्मिन्नेव लोके नियतः । अतो ज्ञानिनः सर्व एव
इदेवार्थं मां विश्वतः विश्वस्मिन्नुपयन्ति उपगच्छन्ति । क शरारुः क
सृमरः क नूरुणः सर्वमिदं त्वत्त्वदितो वहामि । शरारुः व्याघ्रादिः सृमरः
वृकश्च केति कचित् प्रत्येकं उरणः मेषः सर्वमिदं त्वत् त्वत् त्वच्छब्दः
अन्यपर्यायः । अन्यदन्यच्च इतः अनया दिशा अनेन सृष्टिप्रकारेण तसिलः
सर्वविभक्तिकत्वोक्तेः । वहामि । सर्वमपीति भावः । अतश्च पुनरप्याह ।
यन्मादिमे विभ्यति तन्म एकम् । यत् मत् मत्तः इमे व्याघ्रादयो विभ्यति
भयं प्राप्नुवन्ति । व्याघ्रादिभ्यो भूयांसो विभ्यति । व्याघ्रादयोऽपि बहुभ्यो
विभ्यति । यस्माच्च व्याघ्रादयो विभ्यति सोऽहमेव । तदेतदाह । तन्म एकं
तत्सर्वमपि मे मम एकमेव । एवमैक्ये स्वस्य तदपेक्षया विशेषमाह । मे ते
अक्षन्नहमु ताननुक्षम् ॥ २१ ॥ ते मे मां न अक्षन् न भक्षयन्ति ।
अदेर्घस्युपधालोपः । उ इति अनर्थकम् । अहमु तान् अनुक्षं भक्षयामि ।
अडागमाभावः छान्दसः । यत्तप्यथा बहुधा मे पुरा चित् । यत् बहुधा मे
मदर्थं पुरा पूर्वं तप्यथाः तप्तवानसि । चिदित्यनर्थकम् । तन्नु भुवेऽहं
उरणो वोभुवे । तत् तस्मादेव हेतोः नु निश्चयेन । भुवे भवाय सत्तायै
ज्ञानेन तवैव सत्त्वस्वरूपावाप्तय इति यावत् । उरणो मेषः । वोभुवे
अभवम् । अतः परमुपसंहरन्नाह । ऋतस्य पन्थामसि हि प्रपन्नोऽयसे स मे
सत्यमिदेकमेहि ॥ २२ ॥ अयसे प्राप्तये ब्रह्मण इति शेषः । ऋतस्य

सत्यस्य पन्थां पन्थानं प्रपन्नोऽसि । स त्वं मे मम एकं सत्यमित् सत्यमेव ।
न त्वन्यत् किमपि सांसारिकं ऐहिकं प्राप्नुहि । पुनः शुद्धं स्वस्वरूपमाह ।
अहं ज्योतिरहममृतं विनद्धिः । नद्धिः बन्धनम् । तद्रहितम् । स्पष्टम् ।
स्वविवर्तत्वेन विश्वस्य स्वाभेदमाह । अहं जातं जनि जनिष्यमाणम् । जनि
जायमानम् । स्पष्टम् । मेधातिथेः स्वाभेदमुपदर्शयन्नाह । अहं त्वमहमहं
त्वमिन्नु त्वमहं चक्ष्व । अहं त्वमेव । अहं दृश्यमानश्चेत् प्रतिबिम्बवत्
त्वम् । तर्हि कदाचित् मम मिथ्याभूतत्वं प्रतिबिम्बवत् स्यादत आह ।
अहं चाहमेव । न प्रतिबिम्बवन्मिथ्याभूत इत्यर्थः । तर्हि तवैव
प्रतिबिम्बवन्मिथ्याभूतत्वं कदाचित् स्यादत आह । त्वमिन्नु त्वमहं
चक्ष्व । त्वमपि त्वमेव अहं चेति चक्ष्व जानीहि । विचिकित्सीर्म
ऋज्वा ॥ २३ ॥ ऋज्वा ऋजुः साम्प्रतं न तथाऽपक्वकषायोऽब्रह्मज्ञश्चेति
मा विचिकित्सीः मा संशयं कार्षीः । कुतः सन्देहे सन् । मा इत्यत्र
ऋत्यक इति ह्रस्वः । विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपो रुद्रः प्रणीती तमनः
प्रजापतिः । विधरणः जगद्धारकत्वात् । प्रणीती जगत्प्रणेतृत्वात् अन्तर्यामिस्व-
रूपेणेति भावः । तमनः शमनः । यमस्वरूपत्वात् । स्पष्टम् । हंसो
विशोको अजरः पुराणो ऋतीयमानो अहमस्मि नाम ॥ २४ ॥ हंसो
विवेचकत्वसामान्यात् ऋतीयमानत्वं सर्वत्र घृणावत्त्वेन निर्लेपत्वम् । ऋतिः
सौत्रो घृणार्थः प्रसिद्धः । ऋच्छतेरियतेर्वा ल्युट् । अहमस्मि दरिता
सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठी नृचक्षाः । जरिता यजमान इति व्याख्यातं
प्राक् । पर्यारणः व्यापकः । नृचक्षाः साक्षी । अहं विष्वङ्महमस्मि
प्रसत्वानहमेको अस्मि यदिदं नु किञ्च ॥ २५ ॥ विष्वङ् व्यापकत्वात्
प्रसत्वान् साक्षी । स्पष्टम् । इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् ।

इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् सञ्ज्ञिका समाप्ता

मठाम्नायोपनिषत्

ॐ ऊर्ध्वाम्नायगुरूपदेशमुवनाकारसिंहासनसिद्धाचारवन्दितं समस्त-
वेदवेदान्तसारनिर्माणं परात्परं निरञ्जनज्ञानार्थषट्चक्रजाग्रतीमयं परावाचा
परात्परं सर्वसाक्षिधृतं चिन्मयं ज्योतिर्लिङ्गं निराकारं गळितं पूर्णप्रभाशोभितं
शान्तं चन्द्रोदयनिभं भज मनस्तच्छ्रीगुरुचैतन्यं प्रणमामि ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ॐ प्रथमे पश्चिमांस्नायः शारदामठः कीटवारिसंप्रदायः
तीर्थाश्रमपदं द्वारकाक्षेत्रं सिद्धेश्वरो देवः भद्रकाळी देवी ब्रह्मस्वरूपाचार्यः
गङ्गागोमतीतीर्थं स्वरूपब्रह्मचारी सामवेदप्रपठनं “तत्त्वमसि” इत्यादिवाक्य-
विचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थं आत्मोद्धारार्थं साक्षात्कारार्थं
संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ द्वितीये पूर्वांस्नायः गोवर्धनमठः भोगवारिसंप्रदायः बनारण्ये
पुरुषोत्तमं क्षेत्रं जगन्नाथः विमला देवी भद्रपद्मपादाचार्यः महोदधितीर्थं
प्रकाशब्रह्मचारी ऋग्वेदप्रपठनं तमेवैक्यं जानथ “प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म”
इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थं आत्मोद्धारार्थं
साक्षात्कारार्थं संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ तृतीये उत्तरांस्नायः ज्योतिर्मठः आनन्दवारिसंप्रदायः गिरिपर्वत-
सागरपदानि बदरिकाश्रमक्षेत्रं नारायणो देवता पूर्णगिरी देवी त्रोटकाचार्यः
अलकनन्दातीर्थं आनन्दब्रह्मचारी अथर्वणवेदप्रपठनं तमेवैक्यं जानथ “अयमात्मा
ब्रह्म” इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थं
आत्मोद्धारार्थं साक्षात्कारार्थं संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ चतुर्थे दक्षिणाम्नायः शृङ्गेरीमठः भूरिवारिसंप्रदायः सर-
स्वतीभारतीपुरी चेतिपदानि रामेश्वरक्षेत्रं आदिवराहो देवता कामाक्षी
देवी शृङ्गी ऋषिः पृथ्वीधराचार्यः तुङ्गभद्रातीर्थं चैतन्यब्रह्मचारी यजुर्वेद-
प्रपठनं तमेवैक्यं जानथ “अहं ब्रह्मास्मि” इत्यादिवाक्यविचारः
नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे
संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ पञ्चमे ऊर्ध्वाम्नायः सुमेरुमठः काशीसंप्रदायः जनकयाज्ञव-
ल्क्यादिशुकवामदेवादिजीवन्मुक्ताः एतत्सनकसनन्दनकपिलनारदादिब्रह्मनिष्ठाः
नित्यब्रह्मचारी कैलासक्षेत्रं मानससरोवरं तीर्थं निरञ्जनो देवता माया देवी
ईश्वराचार्यः अनन्तब्रह्मचारी शुकदेववामदेवादिजीवन्मुक्तानां सुसंवेदप्रपठनं
परोरजसेसावदौ “संज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवे-
केनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं
करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ षष्ठे आत्मान्नायः परमात्मा मठः सत्यसुसंप्रदायः नाभिकुण्ड-
लिक्षेत्रं त्रिकुटी तीर्थं हंसो देवी परमहंसो देवता अजपासोहंमहामन्त्रः ब्रह्म-
विष्णुमहेश्वराद्याः जीवब्रह्मचारी हंसविद उपास्तिः उपाधिभेदसंन्यासार्थं
ज्ञानसंन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ सप्तमे जम्बूद्वीपः सम्यग्ज्ञानं शिखा न सूत्रं वेद्यवेदकः
श्रद्धा नदी विमलातीर्थं आत्मलिङ्गशान्त्यर्थं विचारः नित्यानित्यविवेकेन
आत्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये ।
ॐ नमो नारायणायेति ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता मठाम्नायोपनिषत् समाप्ता

विश्रामोपनिषत्

ॐ पूर्वदले श्वेतवर्णे यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा धैर्यमुदारं च धर्मकीर्तिमतिर्भवेत् ॥
 अग्निदले रक्तवर्णे यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा क्रोधश्च कामश्च मन्दं बुद्धिर्मतिर्भवेत् ॥
 कृष्णवर्णे दक्षिणदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 निद्रालस्यभयं देवि मत्सरे च मतिर्भवेत् ॥
 नैऋतदले नीलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा क्रोधश्च कामश्च मनोभिन्नमतिर्भवेत् ॥
 पश्चिमदले कपिलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा हास्यविनोदौ च उत्साहे च मतिर्भवेत् ॥
 श्यामवर्णे वायुदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा चिन्तोच्चाटनं च वैराग्ये च मतिर्भवेत् ॥
 पीतवर्णोत्तरदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा शृंगारभोगौ च कल्पनायां मतिर्भवेत् ॥
 गौरवर्णेशानदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा कृमात्मानं धर्मकीर्तिमतिर्भवेत् ॥
 सन्धौ सन्धौ मिश्रितानां यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा देहो गृहं राज्यं निर्दोषा च मतिर्भवेत् ॥
 श्यामवर्णे मध्यदले यदा विश्राम्यते मनः ।
 तदा सर्वगुणं ज्ञानं चैतन्यं च मतिर्भवेत् ॥

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

ये पठन्ति सदा भक्त्या सायुज्यपदमाप्नुयुः ॥

इति विश्वामोपनिषत् संपूर्णा

शौनकोपनिषत्

ॐ देवासुराः संयत्ता आसन् । तेषामिन्द्रो न प्रत्यपद्यत । ते ह वसूनेव प्रातस्सवनेषु पुरोधाय व्यजिगीषन्त । ते ह नुत्रेषु नाराशंसेषु ऋषीणां यज्ञवास्त्वभ्यायन् हनिष्याम वा एतद्वो यदेवान्न पराभावयिष्येति । ते ह विभ्यत एव स्तोकानुदकल्पयन् विजेष्यध्वे वावैतानन्विति । ते ह तत एवार्तिमाच्छंस्तानन्वितरान् पराभावयन् । ततो हेन्द्रोऽपश्यत् । स ह गायत्रीमेव प्रतिसंदिदेश । सा होवाच । विभेमि वा एतदेतेभ्यो यथैत-
त्परावृतन्निति । स प्रणवमेवास्याः पुरोगमकरोदेष वाव ते गोप्यायेति । सा होवाच । यदेष पुरोगाः उदेष मे भागधेयी स्यादिति । स होवाच । न ह वावैष त्वद्भागधेयी भवति । महान्वा अस्य महिमा न ह वा महीयांसो भागकृत्सिमप्याभजन्तीति । विश्वमिन्द्रु समन्वाल्भध्वमिति । सेनान्यास्तु प्रथमजानाप्याययिष्यसीत्योमिति होवाच । स होवाच यत्प्रथमं नाभ्यकीर्तयो नामग्राहमथ नानुवत्स्य इति । नामग्राहमेतेन सर्वमभिपद्यन्ते । सर्वं वा एष सर्वमश्नोतीति । अक्षरं वा एषः । तस्मादोमित्यनुजानन्ति । ओ-
मिति प्रतिपद्यन्त ओमित्यभ्याददत्त ओमित्यभिनिधापयन्ति । तदेतदक्षरं जैत्रमभित्वरं सर्वाणि भूतान्यभ्यात्तं यदनेकमेकं नानावर्णं नानारूपं नानाशब्दं नानागन्धं नानारसं नानास्पर्शमिति । अथो खल्वाहुरिन्द्रो वा

चैतदक्षरम् । सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्येतदक्षरमन्वायत्तानि सर्वे वेदाः सर्वे यज्ञा इत्यथ खल्विन्द्रमन्वायत्तमिति ॥

स मंद्रेणैवान्वाभक्तो विदिद्युतेऽञ्जसैव भ्रातृव्यानपहनानीति । तस्मान्मन्द्रं प्रातःसवनमभवद्यद्वायत्रं तद्वायत्री तद्वायत्रं यद्वसवः तद्वसव्यम् । स ह प्रणव उवाच । यदहं सर्वं भवानि यद्वायत्री वै पुरोगाः तर्त्कि मे स्यादिति । गायत्रमन्वेव गायत्रीमन्वेव त्वा सर्वरूपमिमं कृत्वा हिंकुर्वन्ति । स हापश्यन्नैतदञ्जसैव सर्वा रूपाण्येवमभिचक्षीरन्निति । स हान्तत एवात्मानमुपसंहृत्य तावदेवाग्राहयत् । स विशृङ्ग एवाभवत् । तस्माद्विशृङ्गमेवैतदिहानुद्रवन्ति । तदाहुर्यद्वा एतस्य वीर्यं यच्छुक्रं यज्ज्योतिर्यदमृतं यदजर्यं तदवरमिति । तस्मात्तत एवातो ज्योतिरमृतमजर्यं प्रतिपद्यन्ते । ततो हासुराः पराभवन् । स एष इन्द्रः सर्वं यद्वायत्री उद्गीथो वसवः प्रातस्सवनमिति । तदाहुः । सर्वं वा एतदिन्द्रो यज्जगद्यथैवेति ॥

ततो हासुराः पुनरेवोदयन्ति । ते ह माध्यंदिनस्यैव सवनस्य पवमानेषु यज्ञवास्त्वभ्यायन् । तेषां जरितारो बिभ्यत एव वसतीवरीरूपाकल्पयन् । ते ह तामिरेव जिघांसन् । तेषामिन्द्रो रुद्रानेव सेनान्योऽकः । ते हाक्षीयन्त । स ह त्रिष्टुभमेव प्रतिसंददत् । साब्रवीत् । बिभेमि वा एतदेतेभ्यो यथौजीयांसो बलीयांस इमे पराभवन्निति । स ह प्रणवमेवोवाच पुरोगायमेवारभस्वेति । सोऽब्रवीत् । किं मेऽतः स्यादिति । यदहं स त्वं ममैव रूपेण न्यूंखयिष्यन्ति त्वामिति । स हापश्यत् । सर्व एव न्यूंखयन्तो मामभिचक्षीरन्निति । स ह सर्वमेवात्मानमुपसंहृत्य शृंग एवागूहयत् । स ह विशृङ्ग एवाभवत् । तस्मादिदथैव न्यूंखयन्ति । ततो हासुराः पराभावयन् । तस्माद्रुद्रानेव माध्यंदिनं सवनं त्रैष्टुभं चेति ॥

ते हासुराः पुनरेवोदपतिप्यन्त । ते ह तृतीयस्येह सवनस्य पवमानेषु यज्ञवास्त्वभ्यायन् । तेषामिमे विभ्यत एवांशूनुपाकल्पयन् । ते ह तैरेव देवानपाजिघांसन् । तेषामिन्द्रो जगतीमेव प्रतिसंदिदेश । साब्रवीत् विभेमि वा एतदेतेभ्यो यथौजीयांसो बलीयांस इमे परावृतन्निति । तस्या इन्द्रः प्रणवमेव पुरोगामकरोत् । स होवाच । किं मेऽतः स्यादिति । स होवाचेन्द्रो यत्त्वामुद्गीथेनोपावनेष्यन्ते तेनैव ते कल्पयिष्यन्तीति । सेनान्यो हि तर्ह्यादित्यानकल्पयन् तस्माज्जागतं तृतीयसवनमादित्यानाम् । स हापश्यदादित्यो वा उद्गीथोऽसौ खल्वादित्यो ब्रह्म । न ह वा एनं मिथु चिदेमीति । स ह स्वेनैव रूपेणादित्यानगच्छत् । स ह तेनैव वज्रेणासुरान् पराभावयन् । तद्यत् स्वेनैव रूपेणाविस्तरामगच्छत्तत्प्रतिष्ठामविन्दत् । प्रतिष्ठा ह वा एषा यत्प्रणवः । सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्रणव एव प्रतितिष्ठन्ति । तस्य ह वा एषा प्रतिष्ठा यत्रासावात्मानमुपसंहृत्याजूगुपत् । तस्मात्तदेवोपन्वीतेति तदेवोपासीत । तदेतद्वचाभ्युक्तम्—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादाः

द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य ।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति

महो देवो मर्त्याँः आविवेश ॥ इति ॥

यदिमास्तिस्रोथासाविति चत्वारीति । यदिमे द्वे एवाक्षरे त्रिभिरुपन्वन्ति तत्त्रय इति । यत्प्रत्यक्षं तद्वे इति । यदुद्गीथं सप्तभिरभिप्रपद्यन्ते तत्सप्तेति । अथो खल्वाहुः । सप्तभिरेनं स्वारयन्तीति । यदीमान् त्रीनभिधत्ते तत्त्रिधेति । यदिन्द्र एवोद्गीथस्तद्वृषभ इति । तदेतद्वचाभ्युक्तम्—

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानम् ।

यद्वावयन्ति तद्रोरवीति ॥

यदेष सर्वाणि भूतान्यनुप्रविष्टस्तन्मर्त्याः आविवेशेति । तस्मादो-
मित्येकाक्षरमुद्गीथमुपासीतेत्याह भगवान् शौनकः शौनक इति ॥

इति शौनकोपनिषत् समाप्ता

सूर्यतापिन्युपनिषत्

प्रथमः पटलः

ॐ अथ भगवन्तं कमलासनं चतुर्मुखं पितरं ब्रह्माणं सनत्कुमार
उपससार । प्रणनामाहं भो इति । अधीहि भो इति पप्रच्छ । को मनुः ।
दिव्यं किं ध्येयम् । यज्जपात्सर्वेनोनिवृत्तिः । यद्व्यानात्सारूप्यसिद्धिः तद्वीतु
भगवान् लोकानुग्रहायेति । तच्छ्रुत्वा पितामह आह — शृणोतु भवानेकमनाः
सर्वदा यमामनन्ति यन्नमस्यन्ति देवाः स ब्रह्मा स शिवः स हरिस्सेन्द्रः
सोऽक्षरः परमः स्वराद् स सूर्यो भगवान् सहस्रांशुः तं सूर्यं भगवन्तं
सर्वस्वरूपिणं निगमा बहुधा वर्णयन्ति । कश्यपः पश्यको भवति । यत्सर्वं
परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात् । कश्यपादुदिताः सूर्याः पापान्निर्घ्नन्ति सर्वदा ।
रोदस्योरन्तर्देशेषु । अपैतं मृत्युं जयति । य एवं वेद । योऽसौ तपन्नृदेति ।
असौ योऽस्तमेति । असौ योऽपक्षीयति । एष हि देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः
पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः । स विजायमानः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्मुखास्तिष्ठति विश्वतोमुखः । असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपा अदृशन्नदृशन्नदुदहार्यः । उतैनं विश्वा भूतानि स दृष्टो
मृडयाति नः । ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये

अहः । सामवेदेनास्तमये महीयते । वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः । ऋग्न्यो
जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः ॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः ।

त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः ॥ इति ।

योगेन ऊर्ध्वमन्थिनः सूर्यं भगवन्तमुपासते । धनधान्यबहुरत्नवन्तो निर्व्याधिवन्त
आयुष्यवन्त आरोग्यवन्तो रथिवन्तो धनवन्तो बलवन्तो बहुपुत्रवन्त इति ।
यः श्रीकामः शान्तिकामः तुष्टिकामः पुष्टिकामो मेधाकामः प्रज्ञाकाम
आयुष्काम आरोग्यकामोऽन्नाद्यकामो भास्करं भगवन्तमुपासीत । सयोनिः
सरूपतां सलोकतां गत्वा स्तुत्वा महानन्दमुदकमुपस्पृश्यापोऽवगाह्य वाग्यतः
नित्यकर्म कृत्वा शुचौ देशेऽप्यासीनो दर्भान् धारयमाणः प्राङ्मुख उपविश्य
प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य त्रिवेदमयं त्रिमूर्तिं त्रिगुणं चतुष्पदं पञ्च-
रूपं षडर्णवेद्यं सप्ताश्वमष्टशापेति (?) मुदयाद्रिसमारूढमुदयन्तं पद्मकरं पद्मासनं
पद्मनयनं पद्मवान्धवं दिव्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनं सर्वाभरणभूषितं
सर्ववेदसं सर्वदेवाधिदैवतं सर्वदेवनमस्यन्तं काश्यपं भास्करं ध्यात्वा प्रस्कण्वः
कण्वपुत्रो मुचिरस्य छन्दोऽनुष्टुब्भास्करो द्वादशात्मको दैवतमुदात्तस्वरो ज्ञानं
नेत्रं सूर्यस्तत्त्वं प्रथमं बीजं द्वितीयं शक्तिस्तृतीयं कीलकमथापि श्रीबीजं शक्तिः
सूर्य इति कीलकम् । अथ पादाद्यैरर्धचैः ऋग्भिस्तृचेन द्वादशभिर्नामभिः
मित्ररविसूर्यभानुखगपूषहिरण्यगर्भमरीच्यादित्यसवित्रर्कभास्कराख्यैः षड्वीजैः
संपुटिताः । स्तस्य सिध्यन्ति । गच्छेदन्ते परं पदम् ॥

प्रोक्तमादित्यमाहात्म्यं यन्मां त्वमनुपृच्छसि ।

प्रत्यक्षदैवतं भानुः परोक्षं सर्वदेवताः ॥

तद्व्यानं पूजनं कार्यं श्रेयस्कामैर्जितेन्द्रियैः ।

जितेन्द्रियाय शान्ताय मन्त्रं देयमिदं महत् ॥

न देयं चञ्चलाक्षाय नाभक्ताय कदाचन ।
 हसन्ति लोकायतिका हसन्ति कुटिला जनाः ॥
 तस्माद्गोप्यं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ।
 रोगी रोगात् प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥
 तथा प्रत्यर्थिकृत्याभिर्मन्त्रयन्त्रादिकिल्बिषैः ।
 किं पुत्र बहुनोक्तेन सत्यं सत्येन मे शपे ॥ इति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये प्रथमः पटलः

द्वितीयः पटलः

सनत्कुमारो भगवन्तं पितरं प्रणिपत्य पप्रच्छ ॥
 कथं ध्यानं कथं न्यासः कथं पूजाविधानकम् ।
 अर्घ्यदानं कथं कार्यं ब्रवीतु भगवानिदम् ॥ इति ॥

ततो भगवान् पितामह आह—

यतवाक्कायमनसः सूर्यभक्तो ब्रह्मचारी व्रतधरः ष
 समुदायगुरुं कृधि । उद्यन्नद्यमिनो भज । पिता पुत्रेभ्यो यथा । दीर्घायुत्वस्य
 हेशिषे । तस्य नो देहि सूर्य । इति द्व्यर्चं महामन्त्रं जप्त्वा प्रत्यर्थिनो जयति ।
 उद्यन्नद्यमित्र महः । आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य । हरि-
 माणं च नाशय । शुकेषु मे हरिमाणम् । रोपणाकासु दध्मसि । अथो
 हारिद्रवेषु मे । हरिमाणं निदध्मसि । उदगादयमादित्यः । विश्वेन सहसा
 सह । द्विषन्तं मम रन्धयन् । मो अहं द्विषतो रथम् । उद्यन्नद्येत्ययं तृचो
 रोगघ्नः उपनिषदंत्यार्धर्चशो द्विषं (?) ना (?) यो नः शपादशपत् । यश्च नः

शपतः शपात् । उषाश्च तस्मै निमृक् च । सर्वं पापं समूहताम् । इत्येकचो
रोगघ्नः प्रत्यर्थिहारी ॥

आकाशो वह्निना युक्तो दीर्घाद्यश्च सविन्दुकः ।
आद्योऽयमर्णकोपिष्ठो द्वितीयेन द्वितीयकः ॥
तृतीयेन तृतीयः स्यात् द्वादशेन तृतीयकः ।
भूतेन पञ्चमः प्रोक्तः षष्ठः षोडशतः स्वरात् ॥
षडचोऽयं महामन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
एतन्मन्त्रं मयोदिष्टं गुह्याद्गुह्यतमं महत् ॥
एतज्जप्त्वा महामन्त्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
पूजयित्वा विवस्वन्तमर्घ्यदानं समाचरेत् ।
एवं यः कुरुते पूजां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

सर्वामश्नुत इति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये द्वितीयः पटलः

तृतीयः पटलः

अथ सौरमनूनि प्रवक्ष्यामि निगमोदितानि । घृणिरिति द्वे अक्षरे ।
सूर्य इति त्रीणि । आदित्य इति त्रीणि । एतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं
श्रियाभिषिक्तम् । य एवं वेद । श्रिया हैवाऽभिषिच्यते । सह वा एतस्य
स्वधा न यजुषा न साम्नामथोऽस्ति । यस्सावित्रं वेद । अहो नाहाश्चथ्यः ।
सावित्रं विदाञ्चकार । तं ह वागदृश्यमानाभ्युवाच । सर्वं वत गौतमो वद ।
यस्सावित्रं वेदेति । स होवाच । सैषा वागसीति । अयमहं सावित्रः ।
देवानामुत्तमो लोकः । गुह्यं महो विभ्रदिति । एतावदिह गौतमः यज्ञोपवीतं

कृत्वाऽधो निषपात । नमो नम इति । स होवाच । मा भैषीर्गौतम
जितो वै ते लोक इति । तस्माद्ये केच सावित्रं विदुः । सर्वे ते जितलोकाः ।
उद्यन्नद्य मित्र महः । सपत्नान्मे अनीनशः । दिवैनान्विद्युता जहि । निम्नो-
चन्नधरान् कृधि । न्यासोपयोगस्तथैवार्घ्यदाने च पादन्यास आद्योऽर्घ्यचन्यासो
द्वितीयरुज्ञस (?) स्तृतीयस्तृचन्यासश्च बीजन्यासो हंसन्यास इति बहुधा
वर्णयन्ति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये तृतीयः पटलः ।

चतुर्थः पटलः

अथ पूजाविधानं वक्ष्ये—यन्त्रस्य पूर्वद्वारे द्वारश्रियै क्षेत्रपालाय
मायायै नम इति दक्षिणतो द्वारश्रियै गणेशाय मायायै प्रत्यक्तो दुर्गायै मा-
यायै उदक्तो महालक्ष्म्यै मायायै नमः । पूर्वपत्रे सूर्यायाम्नेयपत्रे रवये दक्षिणे
विवस्वते नैर्ऋतौ खगाय पश्चिमे वरुणाय वायव्ये मित्राय सौम्ये आदित्याय
ईशान्ये नमो महसे भास्कराय नम इत्यथाष्टदळपूजादित्यसवितृ-
सूर्यखगपूषगभस्तिमार्ताण्डजगच्चक्षुभिरष्टभिर्जातैरथ पीठपूजाधारशक्तिमूल-
प्रकृतिकूर्मानन्तवराहपृथिवीसुवर्णमण्डपरत्नसिंहासनैर्ङ्गिनैः धर्मज्ञानवैराग्यैश्च-
र्यैर्नर्जपूवैश्च ङ्गिनैर्ऋग्वेदादिभिश्चतुर्भिः कृतादिभिश्चतुर्भिर्मन्दारादिभिः पञ्चभिः
पीठकल्पमूलकन्दनाळपद्मपत्रकेसरकर्णिकासूर्यमण्डलसोमवह्निब्रह्मविष्णुरुद्रसत्त्व-
रजस्तमआत्मान्तरात्मा परमात्मभूः पुरुषभुवः पुरुषसुवः पुरुषभूर्भुवस्सुवः
पुरुषाद्यैर्ङ्गिनैस्तृचेन सर्वोपचारोपयोगस्तेन सर्वाघौघनिवृत्तिः सिद्धयतीति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये चतुर्थः पटलः

पञ्चमः पटलः

अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि देवतासु प्रसाधनम् ।

यन्त्रं विना देवता च न प्रसीदति सर्वदा ॥

वृत्तमादौ विलिख्य साष्टपत्रं ततस्त्रिकोणं वृत्तं षडश्रं वृत्तयुगळं
साधुकोणं समालिखेदिति । तत्रैता देवता आवाह्य द्वादशावरणानि कुर्यात्तत्र
देवतामार्ताण्डादिभान्वादित्यहंससूर्यदिवाकरतपनभास्करा ङिन्ताः प्रथमावरणे
मित्राद्रयो द्वादशमन्त्राद्याः द्वितीये सूर्योदये नवखेटस्तृतीये धाता ध्रुव-
सोमानिलानलप्रत्यूषप्रभासश्चतुर्थे वीरभद्रगिरिशशंकरैकपादहिर्बुध्न्यादीनाः
भुवनाधिपतिविशांपतिपशुपतिस्थाणुभवाः पञ्चमे धात्र्यर्मांशुमध्यमणि-
भवेन्द्रविवस्वत्यूषगभस्तिमार्ताण्डजगच्चक्षुषः षष्ठे अरुणसूर्यवेदाङ्गभान्विन्द्र-
रविगभस्तिरयमसुवर्णरेतोदिवाकरमित्रविष्णुमाघादिद्वादशमासाधिपतयः सप्तमे
असिताङ्गो रुरुश्चन्द्रक्रोधोन्मत्तकपालिभीषणसंहाराः अष्टमे ब्राह्मचादयः
सप्तमातरो नवमे इन्द्रादयोऽष्टौ दशमे मेषादयो द्वादशैकादशे वज्रशक्ति-
खङ्गपाशाङ्कुशगदात्रिशूलचन्द्रमुसलपद्मानि द्वादशे मध्ये भास्करं ध्यायेदुप-
चारान् समर्प्यार्घ्याणि दद्यात् भगवान् सुप्रीतो भवेत् ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये पञ्चमः पटलः

षष्ठः पटलः

अथ यन्त्रे बीजोद्धारं प्रवक्ष्यामि देवतासन्निधये वृत्तभानुमती-
द्व्यर्चमुद्धरेत्कमलाष्टपर्णेषु दण्ड एषः पिङ्गाक्षप्रचण्डक्षेत्रपालगणपतिदुर्गाल-
क्ष्म्यो ङेन्ता अष्टौ स्याद्वर्ण (?) बीजकाद्याः षट्कोणेषु तारया हंसस्सोहमिति

चतुराशासु मायामङ्कुशं च माख (?) प्वष्टसु तत्तदाद्यर्णमध्ये तृतीय-
नामादिकमिति देशिकोक्त्या सर्वं विज्ञाय साधकः सिद्धयति ॥

गुरुभक्ताय शान्ताय प्रदेयं नियतात्मने ।
न च शुश्रूषवे वाच्यं हैतुकाय कदाचन ॥
देशिकोक्तविधानेन यन्त्रे देवं प्रपूजयेत् ।
अर्घ्यदानं ततः कुर्याद्भानुरर्घ्यप्रियः सदा ॥
देशिकोक्तेन मन्त्रेण तृचेन च यथाविधि ।
साधकः साधयेत् सर्वमिह लोके परत्र च ॥
किं पुत्र बहुनोक्तेन सत्यं सत्येन मे शपे ।
प्रत्यक्षदैवतं सूर्यः परोक्षं सर्वदेवताः ॥
सूर्यस्योपासनं कार्यं गच्छेत् सूर्यस्य सप्तदम् ।
गच्छेत् सूर्यस्य सप्तदं गच्छेत् सूर्यस्य सप्तदमिति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये षष्ठः पटलः

सूर्यतापिन्युपनिषत् समाप्ता

स्वसंवेद्योपनिषत्

ॐ सर्वेषां प्राणिवुद्बुदानां निरंजनाव्यक्तामृतनिधौ विलयविलासः
स्थितिर्विजृम्भते । तेषामेव पुनर्भवनं नो इहास्ति । स यथा मृत्पिण्डे घटानां
तन्तौ पटानां तथैवेति भवति । वस्तुतो नोपादानमत एव नोपादेयमत एव
न निमित्तमत एव न विद्या न पुराणं नो वेदा नेतिहासा इति न जगदिति
न ब्रह्मा नो विष्णुः नाथ रुद्रो नेश्वरो न बिन्दुः नो कलेति अग्रे

मध्येऽवसाने सर्वं यथावस्थितं यथावस्थितज्ञानं तेषां नो भवत्यागमपुराणेति-
हासधर्मशास्त्रेषु धृताभिमानास्ते । यत्तानि तु मुग्धतरमुनिशब्दवाच्यैः जीवबुद्बुदैः
रचितानीति भवन्ति । तत्र प्रामाण्यं तादृशानामेव । ते त्वज्ञानेनावृताः स-
यत्नेन गर्भास्तदप्येष श्लोको भवति । तदत्र श्लोको भवति ॥

इह तेनाप्यज्ञानेन नो किञ्चित् । अथ यथावस्थितज्ञानेन किञ्चित्
नेति यदस्ति तदस्ति यन्नास्ति नास्ति तत् । कालकर्मात्मकमिदं स्वभावात्मकं
चेति । न सुकृतं नो दुष्कृतम् । अत एव सुमेरुदातारो गोदातारो वा
गोमैः ब्राह्मणमैः सुरापानैः पश्यतोहरैः परोक्षहरैर्वा गुरुपापनिष्ठैः सर्वपापनिष्ठैः
समानास्त एते । तैश्च न गौः न ब्राह्मणः न सुरा न पश्यतोहरः न
परोक्षहरः न गुरुपापानि न लघुपापानि मत एव तन्निष्ठाः मत एव न
निर्वाणं नो निरय इति तदप्येष श्लोको भवति ॥

तत्त्वज्ञानं गुहायां निविष्टमज्ञानिकृतमार्गं सुष्ठु वदन्ति । ते
तत्र साभिमाना वर्तन्ते । पुष्पितवचनेन मोहितास्ते भवन्ति । स
यथातुरा भिषग्ग्रहणकाले बाला अपथ्याहितगुडादिना जनन्या वञ्चिता
इति नानादेवता गुरुकर्मतीर्थनिष्ठाश्च ते भवन्ति । केचिद्वयं वैदिका
इति वदन्ति । नान्येऽस्मभ्यम् । केचिद्वयं सर्वशास्त्रज्ञा इति । केचिद्वयं
देवानुग्रहवन्तः । केचिद्वयं स्वप्ने उपास्यदेवताभाषिणः । केचिद्वयं देवा इति ।
केचिद्वयं श्रीमद्रमारमणनलिनभृङ्गा इति । केचित्तु नृत्यन्तु । केचित्तु मूर्खा
वयं परमभक्ता इति वदन्तो रुदन्ति पतन्ति च । ये केचनैते ते सर्वेऽप्य-
ज्ञानिनः । ये तु ज्ञानिनो भवन्ति ये तत्त्वज्ञानिनश्च तैस्तेषां को विशेषः ।
मत एव केषाञ्चित्कैश्चिद्भेदः । मत एव यत्र विरिञ्चिविष्णुरुद्रा ईश्वरश्च
गच्छन्ति तत्रैव श्वानो गर्दभाः मार्जाराः कृमयश्च मत एव न श्वानगर्दभौ न
मार्जारः न कृमिः नोत्तमाः न मध्यमाः न जघन्याः । तदप्येष श्लोको भवति ॥

न तच्छब्दः न किंशब्दः न सर्वे शब्दाः न माता नो पिता न बन्धुः न भार्या न पुत्रो न मित्रं नो सर्वे तथापि साधकैरात्मस्वरूपं वेदितुमिच्छद्भिर्जीवन्मुमुक्षुभिः सन्तः सेव्याः । भार्या पुत्रो गृहं धनं सर्वं तेभ्यो देयम् । कर्माद्वैतं न कार्यं भावाद्वैतं तु कार्यम् । निश्चयेन सर्वाद्वैतं कर्तव्यम् । गुरौ द्वैतमवश्यं कार्यम् । यतो न तस्मादन्यत् । येन सर्वमिदं प्रकाशितम् । कोऽन्यः तस्मात्परः । स जीवन्मुक्तो भवति स जीवन्मुक्तो भवति । य एवं वेद । य एवं वेद ॥

इति स्वसंवेद्योपनिषत् संपूर्णा

३. वैष्णव-उपनिषदः

ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषत्

अथ श्रीवराहरूपिणं भगवन्तं प्रणम्य सनत्कुमारः पप्रच्छ । अधीहि भगवन् ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिम् । किं द्रव्यं किं स्थानं का रेखा को मन्त्रः कः कर्ता किं फलमिति च । श्रीवराह उवाच । क्षीरान्धितः श्वेतद्वीपे क्षीरखण्डान् वैनतेय आनीय सटाभिः द्विदलनश्वेतमृत्तिकाखण्डमुक्तिसाधिका भवन्ति । विष्णुपत्नीं महीं देवीमिति श्वेतमृत्तिकां नमस्कृत्य, ओमिति हस्तेनोद्धृत्य ।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरा ।

शिरसा धारिता देवि रक्षस्व मां पदे पदे ॥

इत्येताभिः प्रार्थयेत् । इमं मे गङ्गेति जलमादाय, गन्धद्वारेति निक्षिप्य, विष्णोर्नुकमिति मर्दयेत् । तन्मध्ये नृसिंहबीजं विलिख्य, “अतो देवा अवन्तु नः” इति विष्णुगायत्र्या त्रिवारमभिमन्त्र्य “नारायणाय विद्महे वसुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।” इत्येकवारम् ॥

श्वेतमृदेवि पापघ्ने विष्णुदेहसमुद्भवे ।

चक्राङ्किते नमस्तेऽस्तु धारणान्मुक्तिदा भव ॥

श्रीचूर्णं श्रीकरं दिव्यं श्रियश्चाङ्गे समुद्भवम् ।

पुण्ड्रं च यस्य मध्ये तु धार्यं मोक्षार्थिभिः स्मृतम् ॥

तिस्रो रेखाः प्रकुर्वीत व्रतमेतत्तु वैष्णवम् ॥

यस्त्वेवं विजानीयात् स नारायणसायुज्यमवाप्नोति । न च पुनः कुत्र कुत्र धार्यम् । मत्पादाकृतयश्च ऊर्ध्वपुण्ड्रा नासादयः स्मृताः रेखाद्वादशकस्थाने । प्रथमं तु ललाटके द्वितीयं तु नाभौ तृतीयं वक्षसि चतुर्थं कण्ठे पञ्चमं नाभिदक्षिणे षष्ठं दक्षिणबाहौ सप्तमं तदूर्ध्वस्कन्धे अष्टमं नाभ्युत्तरे नवमं वामबाहौ दशमं तदूर्ध्वस्कन्धे एकादशं पृष्ठोर्ध्वतः द्वादशं कण्ठपृष्ठे मोक्षं देहि शिरसि । नारायणे मय्यचला भक्तिस्तु वर्धते । संज्ञेन फलं लब्ध्वा तद्विष्णोः परमं पदमवाप्नोति । केशवादिद्वादशनामभिः ब्रह्मचारी गृहस्थो यतिश्च सर्वेभ्यो दुःखेभ्यो मुक्तो भवति । सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । सर्वैर्देवैः ज्ञातो भवति । अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति । अनुपनीतोऽप्युपनीतो भवति । आचक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति । न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते । इत्याह भगवान् बराहरूपी । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इत्यूर्ध्वपुण्ड्रोपनिषत् समाप्ता

कात्यायनोपनिषत्

अथ प्रणिपत्य कात्यायनो ब्रह्माणमन्वयुङ्क्त । अधीहि भगवः किं पवित्राणां पवित्रम् । केन वा कर्मणा सफलानि । किं दुष्करं तपो मर्त्यानाम् । केन सुकरेणामृतत्वमेति । स होवाच । साधु ते सुयोगः शृणु ।

भो पवित्रं सुलभं सुकरम् । यद्विष्णुक्षेत्रम् । तत्र मृत्स्नां श्वेतां “उद्धृतासि”
इत्युद्धरेत् । अमृतमेव श्वेतमृत्स्ना भवति । तां शुद्धजलेन प्रणवेन घर्षयेत् ।
देवपितृकर्माण्यारभमाणस्तथा नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं विभृत्यान्मन्त्रैः केशवादीनाम् ।
तद्रहितं कर्म निष्फलं रक्षांसि गृहीयुः । तदेवमभ्युक्तं भवति । नासादि-
केशान्तमूर्ध्वपुण्ड्रं विष्णोः स्थितस्य चरणद्वयाकृति । एकाङ्गुलं पादतरो-
रस्य मूलम् । तदुत्पन्ने द्वे शाखे । तदेव च मध्याकारोऽङ्गुलादन्यूनः ।
स श्रीः प्रतिष्ठायै । श्रीर्हरिद्रा । यतो हरिं द्रावयति तच्छ्रीचूर्णं श्रियावधृतं
आदित्यवर्णं श्रीफले धारयेत् । तज्जलेन श्रीबीजेन संमृज्य तत्सूक्ष्मरेखां
धारयेत् । स श्रीमान् भवति । ते द्वे शाखे हंसवर्णे गायत्रीत्रिष्टुप्छन्दसी
आत्मपरमात्मदैवत्ये दर्शपूर्णमासिके इष्टापूर्तक्रिये भुक्तिमुक्तिफले । सा
रेखा श्रीवर्णा । गायत्री छन्दः । आनन्दक्रियामृतत्वफला । अयमूर्ध्वपुण्ड्र-
विधिः । एवं विदित्वा यो धारयति स सर्वकर्माहो भवति । कायिकात्पूतो
भवति । स विष्णुसायुज्यमवाप्नोति स विष्णुसायुज्यमवाप्नोति । य एवं
वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति कात्यायनोपनिषत् समाप्ता

गोपीचन्दनोपनिषत्

ॐ नमस्कृत्य भगवन्तं नारदः सर्वेश्वरं वासुदेवं पप्रच्छ । श्रीभगवन्
ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिं द्रव्यमन्त्रस्थलादिसहितं मे ब्रूहीति । तं होवाच भगवान्
वासुदेवो वैकुण्ठस्थानोद्भवं मम प्रीतिकरं मद्भक्तैर्ब्रह्मादिभिर्धारितं विष्णुचन्दनं
वैकुण्ठस्थानादाहृत्य द्वारकायां मया प्रतिष्ठितं चन्दनं कुङ्कुमादिसहितं

विष्णुचन्दनं ममाङ्गे प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनात् गोपीचन्दनमाख्यातं मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थान्तःस्थितं चक्रसमायुक्तं पीतवर्णं मुक्तिसाधनं भवति ॥ अथ गोपीचन्दनं नमस्कृत्योद्धृत्य,

गोपीचन्दन पापघ्न विष्णुदेहसमुद्भव ।

चक्राङ्कित नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव ॥

इति प्रार्थनम् । “इममे गङ्गे” इति जलमादाय, “विष्णोर्नुकं” इति मर्दयेत् । “अतो देवा अवन्तु नः” इत्येताभिर्ऋग्भिर्विष्णुगायत्र्या त्रिवारमभिमन्त्र्य,

शंखचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत ।

गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागतम् ॥

इति मां ध्यात्वा, गृहस्थो ललाटादिस्थलेष्वनामिकाङ्गुल्या विष्णुगायत्र्या केशवादिद्वादशनामभिर्वा धारयेत् । ब्रह्मचारी वानप्रस्थो ललाटकण्ठहृदयबाहुमूलेषु वैष्णवगायत्र्या कृष्णादिपञ्चनामभिर्वा धारयेत् । यतिस्तर्जन्या शिरोललाटकण्ठहृदयेषु प्रणवेन धारयेत् । ब्रह्मादयस्त्रयो मूर्तयस्तिष्ठो व्याहृतयस्त्रीणि छन्दांसि त्रयो लोकाः त्रयो वेदास्त्रयः स्वराः त्रयोऽग्नयो ज्योतिष्मन्तस्त्रयः कालास्तिष्ठोऽवस्थास्त्रय आत्मानः पुण्ड्रास्त्रयः ऊर्ध्वाः अकारोकारमकाराः एते सर्वे प्रणवमयोर्ध्वपुण्ड्रतयात्मकास्तदेतदोमित्येकधा समभवन् । परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत् । तत्र दीपप्रकाशं स्वमात्मानं परं ब्रह्मैवाहमस्मीति भावयन् योगी मत्सायुज्यमवाप्नोति ॥

अथान्यो हृदयस्योर्ध्वं पुण्ड्रं मध्ये बहुहृदयकमलमध्ये वा स्वमात्मानं भावयेत् ॥

तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता ।

गोपी का । का नाम संरक्षणी । कुतः संरक्षणी । लोकस्य नरकात् मृत्योर्महाभयाच्च संरक्षणी । चन्दनं तुष्टिकरणम् । किं तुष्टिकरणम् । ब्रह्मानन्दकारणम् । य एवं विद्वानेतदाख्यापयेत् । य एतच्च धारयेद्गोपी-चन्दनमृत्तिकानिरुक्त्यानि (?) धारणमात्रेण च ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयत इति ॥

गोप्यो नाम विष्णुपत्न्यस्तासां चन्दनं आह्लादनम् । कश्चाह्लाद एष ब्रह्मानन्दरूपः । काश्च विष्णुपत्न्यो गोप्यो नाम जगत्सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः प्रकृतिमहदहमाद्या महामायाः । कश्च विष्णुः परं ब्रह्मैव विष्णुः । कश्चाह्लादो गीपीचन्दनसंसक्तमानुषाणां पापसंहरणाच्छुद्धान्तःकरणानां ब्रह्म-ज्ञानप्राप्तिश्च य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

गोपीत्यग्र उच्यताम् । चन्दनं तु ततः पश्चात् । गोपीत्यक्षरद्वयम् । चन्दनं त्र्यक्षरम् । तस्मादक्षरपञ्चकम् । य एवं विद्वान् गोपीचन्दनं धारयेदक्षयं पदमाप्नोति । पञ्चत्वं न स पश्यति । ततोऽमृतत्वमश्नुत इति । अथ मायाशबलितब्रह्मासीत्ततश्च महदाद्या ब्रह्मणो महामायासंमीलनात् पञ्चभूतेषु गन्धवती पृथिव्यासीत् । पृथिव्याश्च वैभवाणवमेदाः पीतवर्णा मृदो जायन्ते । लोकानुग्रहार्थं मायासहितं ब्रह्म संभोगवशादस्य चन्दनस्य वैभवं य एवं विद्वान् यतिहस्ते दद्यादनुग्रहार्थं मायापलवः सर्वमायुरेति ॥ ततः प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं यच्च एतद्रहस्यं सायंप्रातर्ध्यायेदहोरात्रकृतं पापं नाशयति मृतो मोक्षमश्नुते मृतो मोक्षमश्नुत इति ॥

गोपीचन्दनपङ्केन ललाटं यस्तु लेपयेत् ।

एकदण्डी त्रिदण्डी वा स वै मोक्षं समश्नुते ॥ १ ॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो यं यं पश्यति चक्षुषा ।

तं तं पूतं विजानीयाद्राजभिः सत्कृतो भवेत् ॥ २ ॥

ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च गोघ्नश्च गुरुतल्पगः ।
 तेषां पापानि नश्यन्ति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ३ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो म्रियते यत्र कुत्रचित् ।
 अभिव्याप्यायतो भूत्वा देवेन्द्रपदमश्नुते ॥ ४ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गं पुरुषं य उपासते ।
 एवं ब्रह्मादयो देवाः सन्मुखास्तमुपासते ॥ ५ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः पुरुषो येन पूज्यते ।
 विष्णुपूजितभूतित्वाद्विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥
 सदाचारः शुभाकल्पो मिताहारो जितेन्द्रियः ।
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः साक्षाद्विष्णुमयो भवेत् ॥ ७ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो व्रतं यस्तु समाचरेत् ।
 ततः कोटिगुणं पुण्यमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ८ ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गैर्जपदानादिकं कृतम् ।
 न्यूनं संपूर्णतां याति विधानेन विशेषतः ॥ ९ ॥
 गोपीचन्दनमायुष्यं बलारोग्यविवर्धनम् ।
 कामदं मोक्षदं चैव इत्येवं मुनयोऽब्रुवन् ॥ १० ॥
 अग्निष्टोमसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
 तेषां पुण्यमवाप्नोति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ११ ॥
 गोपीचन्दनदानस्य चाश्वमेधसमं फलम् ।
 न गङ्गया समं तीर्थं न शुद्धिर्गोपिचन्दनात् ॥ १२ ॥
 बहुनात्र किमुक्तेन गोपीचन्दनमण्डनम् ।
 न तत्तुल्यं भवेल्लोके नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥
 चन्दनं वापि गोपीनां केलिकुङ्कुमसम्भवम् ।
 मण्डनात् पावनं नृणां भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १४ ॥

कृष्णगोपीरतोद्भूतं पापघ्नं गोपिचन्दनम् ।
 तत्प्रदानात्सर्ववेदचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ १५ ॥
 तिलमात्रप्रदानेन काञ्चनाद्रिसमं फलम् ।
 कुङ्कुमं कृष्णगोपीनां जलक्रीडासु संभृतम् ॥ १६ ॥
 गोपीचन्दनमित्युक्तं द्वारवत्यां सुरेश्वरैः ।
 कृष्णगोपीजलक्रीडाकुङ्कुमं चन्दनैर्युतम् ॥ १७ ॥
 तिलमात्रं प्रदायेदं पुनात्यादशमं कुलम् ।
 गोपीचन्दनखण्डं तु चक्राकारं सुलक्षणम् ।
 विष्णुरूपमिदं पुण्यं पावनं पीतवर्णकम् ॥ १८ ॥

आपो ह वाग्रे आसन् । तत्र प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाश्राम्यतेदं सृजेयमिति ।
 स तपोऽतप्यत । तत ओङ्कारमपश्यत्ततो व्याहृतीस्ततो गायत्री गायत्र्या
 वेदास्तैरिदमसृजत् । धूममार्गविसृतं हि वेदार्थमभिसन्धाय चतुर्दश लोकान-
 सृजत् । तत उपनिषदः श्रुतयः आविर्बभूवुः । अर्चिमार्गविसृतं वेदार्थमभिसन्धाय
 सर्वान् वेदान् सरहस्योपनिषदङ्गान् ब्रह्मलोके स्थापयामास । स एताश्चो-
 पनिषद्वैवस्वतेन्तरे सगुणं ब्रह्म विधिनानन्दैकरूपं पुरुषोत्तमरूपेण मथुरायां
 वसुदेवसद्मन्याविर्भविष्यति । तत्रभवत्यः सर्वलोकैः कृष्णसौन्दर्यं क्रीडाभो-
 गागोपिकास्वरूपैः परब्रह्मानन्दैकरूपं कृष्णं भजिष्यथ । तत्र श्लोकौ —

इति ब्रह्मवरं लब्ध्वा श्रुतयो ब्रह्मलोकगाः ।
 कृष्णमाराधयामासुर्गोकुले धर्मसंकुले ॥
 श्रीकृष्णाख्यपरं ब्रह्म गोपिकाः श्रुतयोऽभवन् ।
 एतत्संभोगसंभृतं चन्दनं गोपिचन्दनम् । इति ॥

इत्यथर्ववेदोक्तगोपीचन्दनोपनिषत् समाप्ता

तुलस्युपनिषत्

अथ तुलस्युपनिषदं व्याख्यास्यामः । नारद ऋषिः । अथर्वाङ्गि-
रश्छन्दः । अमृता तुलसी देवता । सुधा बीजम् । वसुधा शक्तिः । नारायणः
कीलकम् । श्यामां श्यामवपुर्धरां ऋक्स्वरूपां यजुर्मनां [?] ब्रह्माथर्वप्राणां
कल्पहस्तां पुराणपठितां अमृतोद्भवां अमृतरसमञ्जरीं अनन्तां अनन्तरसभोगदां
वैष्णवीं विष्णुवल्लभां मृत्युजन्मनिवर्हणीं दर्शनात्पापनाशिनीं स्पर्शनात्पावनीं
अभिवन्दनाद्रोगनाशिनीं सेवनान्मृत्युनाशिनीं वैकुण्ठार्चनाद्विपद्घन्त्रीं भक्षणात्
व्युनप्रदां प्रादक्षिण्याद्धारिद्रचनाशिनीं मूलमृल्लेपनान्महापापभञ्जिनीं घ्राण-
तर्पणादन्तर्मलनाशिनीं य एवं वेद स वैष्णवो भवति । वृथा न छिन्द्यात् ।
दृष्ट्वा प्रदक्षिणं कुर्यात् । यां न स्पृशेत् । पर्वणि न विचिन्वेत् । यदि
विचिन्वति स विष्णुहा भवति । श्रीतुलस्यै स्वाहा । विष्णुप्रियायै स्वाहा ।
अमृतायै स्वाहा । श्रीतुलस्यै विद्महे विष्णुप्रियायै धीमहि । तन्नो अमृता
प्रचोदयात् ॥

अमृतेऽमृतरूपासि अमृतत्वप्रदायिनि ।
त्वं मामुद्धर संसारात् क्षीरसागरकन्यके ॥
श्रीसखि त्वं सदानन्दे मुकुन्दस्य सदा प्रिये ।
वरदाभयहस्ताभ्यां मां विलोकय दुर्लभे ॥
अवृक्षवृक्षरूपासि वृक्षत्वं मे विनाशय ।
तुलस्यतुलरूपासि तुलाकोटिनिभेऽजरे ॥
अतुले त्वतुलायां हि हरिरिकोऽस्ति नान्यथा ।
त्वमेव जगतां धात्री त्वमेव विष्णुवल्लभा ॥

त्वमेव सुरसंसेव्या त्वमेव मोक्षदायिनी ।
 त्वच्छायायां वसेलक्ष्मीस्त्वन्मूले विष्णुरव्ययः ॥
 समन्ताद्देवताः सर्वाः सिद्धचारणपन्नगाः ।
 यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये ब्रह्मदेवताः ॥
 यदग्रे वेदशास्त्राणि तुलसीं तां नमाम्यहम् ।
 तुलसि श्रीसखि शुभे पापहारिणि पुण्यदे ॥
 नमस्ते नारदनुते नारायणमनःप्रिये ।
 ब्रह्मानन्दाश्रुसंजाते बृन्दावननिवासिनि ॥
 सर्वावयवसंपूर्णे अमृतोपनिषद्रसे ।
 त्वं मामुद्धर कल्याणि महापापाब्धिदुस्तरात् ॥
 सर्वेषामपि पापानां प्रायश्चित्तं त्वमेव हि ।
 देवानां च ऋषीणां च पितॄणां त्वं सदा प्रिये ॥
 विना श्रीतुलसीं विप्रा येऽपि श्राद्धं प्रकुर्वते ।
 वृथा भवति तच्छ्राद्धं पितॄणां नोपगच्छति ॥
 तुलसीपत्रमुत्सृज्य यदि पूजां करोति वै ।
 आसुरी सा भवेत् पूजा विष्णुप्रीतिकरी न च ॥
 यज्ञं दानं जपं तीर्थं श्राद्धं वै देवतार्चनम् ।
 तर्पणं मार्जनं चान्यन्न कुर्यात्तुलसीं विना ॥
 तुलसीदारुमणिभिः जपः सर्वार्थसाधकः ।
 एवं न वेद यः कश्चित् स विप्रः श्वपचाधमः ॥

इत्याह भगवान् ब्रह्माणं नारायणः, ब्रह्मा नारदसनकादिभ्यः, सनका-
 दयो वेदव्यासाय, वेदव्यासः शुकाय, शुको वामदेवाय, वामदेवो मुनिभ्यः,
 मुनयो मनुभ्यः प्रोचुः । य एवं वेद स स्त्रीहत्यायाः प्रमुच्यते । स वीरह-

त्यायाः प्रमुच्यते । स ब्रह्महत्यायाः प्रमुच्यते । स महाभयात् प्रमुच्यते ।
स महादुःखात् प्रमुच्यते । देहान्ते वैकुण्ठमवाप्नोति वैकुण्ठमवाप्नोति ।
इत्युपनिषत् ॥

इति तुलस्युपनिषत् समाप्ता

नारदोपनिषत्

अथ प्रणिपत्य नारदो ब्रह्माणं प्रायुङ्क्त । अधीहि भगवन्मे किं
पवित्राणां पवित्रं केन सुकरेणामृतत्वमेति । स होवाच साधुत्वे नियोगं
सुलभं पवित्रं सुलभं सुकरं तद्विष्णुक्षेत्रं तत्र मृदं श्वेतं “उद्धृतासि” इत्युद्धरेत् ।
अमृतमेव श्वेतमृद्ववति । मूलमन्तद्वयं च “विष्णोर्नुकम्,” “गन्धद्वाराम्”
इत्येताभिरभिमन्त्रयेत् । देवपितृकर्माण्यारभमाणस्त्रयी नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं च
कुर्यान्मन्त्रैः केशवादीनाम् । तत्कर्म सफलं च भवति । न रक्षांसि गृहीयुः ।
तदेवमभ्युक्तं भवति । नासादिकेशान्तमूर्ध्वपुण्ड्रं विष्णोः स्थितस्य चरण-
द्वयाकृति । आयतमेकाङ्गुलं पादतरोरस्य मूलम् । तदुत्पन्ने द्वे रेखे । तथैव च
धृतं विष्णुना वा “आदित्यवर्णे तपसः” इति हरिद्रां श्रीफले धारयेत् ।
तज्जलेन श्रीबीजेन संमृज्य तत्सूक्ष्मरेखां धारयेत् । ते द्वे शाखे हंसवर्णे
गायत्रीत्रिष्टुब्दैवत्ये आत्मपरमात्मदैवत्ये लक्ष्मीनारायणदैवत्ये दर्शपूर्णमासेष्टके
इष्टापूर्तक्रिये

मातृकायामेतावदेवोपलब्धम्

नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत्

प्रथमः खण्डः

अथ ब्रह्माणं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छ । कीदृशं नारायणाष्टाक्षरं भवतीति व्याचष्टे । अथ यो वै नारायणः स भगवान् परब्रह्मण आनन्दो भवति । ज्ञात्वा जीवन्मुक्तो भवति । सच्चिदानन्दस्वरूपपरवस्तु भवति । अष्टाक्षरं अष्टमूर्तिं भवति । प्रथमरूपः पृथिवीरूपो भवति । द्वितीयमापो भवति । तृतीयस्तेजो भवति । चतुर्थो वायुर्भवति । पञ्चम आकाशो भवति । षष्ठश्चन्द्रमा भवति । सप्तमः सूर्यो भवति । अष्टमो यजमानः ॥

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमाः ।

सूर्यः पुमांस्तथाचेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः ॥

अकारोकारमकारनादबिन्दुकलानुसन्धानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति । अकारः सद्योजातो भवति । उकारो वामदेवः । अधोरो मकारो भवति । तत्पुरुषो नादः । बिन्दुरीशानः । कला व्यापको भवति । अनुसन्धानो नित्यः । ध्यानस्वरूपं ब्रह्म । सर्वव्यापकोऽष्टाक्षरः ॥

नारायणः परं ब्रह्म ज्ञानं नारायणः परः ।

नारायणं महापुरुषं विश्वमात्मानमव्ययम् ॥

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं स्थितो नारायणः परः ।

सहस्रशीर्षं देवमक्षरं परमं पदम् ॥

नारायणं शिवं शान्तं सर्ववेदान्तगोचरम् ।

सृष्टिः स्थितिश्च संहारतिरोधानानुसंमतम् ।

पञ्चकृत्यस्य कर्तारं नारायणमनामयम् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये प्रथमः खण्डः

द्वितीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणाष्टाक्षरमन्त्रं व्याचष्टे ।
 श्रीमन्नारायणस्य दशमन्त्राः कथ्यन्ते । ॐ नमो नारायणाय इत्यष्टाक्षरो
 मन्त्रः । स एव मन्तराजो भवति । एतन्नारायणस्य तारकं भवति ।
 तदेवोपासितव्यं भवति । इत्युवाच भगवान्नारायणशब्दपरब्रह्मश्रीमहामाया-
 प्रकृतिसर्वमेकजननीलक्ष्मीर्भवति । देवानां देवलक्ष्मीर्भवति । सिद्धानां
 सिद्धलक्ष्मीर्भवति । मुमुक्षूणां मोक्षलक्ष्मीर्भवति । योगिनां योगलक्ष्मीर्भवति ।
 मुनीनां विवेकबुद्धिर्भवति । राज्ञां राज्यलक्ष्मीर्भवति । सृष्टिरूपा सरस्वती
 भवति । स्थितिरूपा महालक्ष्मीर्भवति । संहाररूपा रुद्राणी भवति ।
 तिरोधानकरी पार्वती भवति । अनुग्रहरूपा उमा भवति । पञ्चकृत्यरूपा
 परमेश्वरी भवति । श्रीमहालक्ष्म्यै नम इति सप्ताक्षरो मन्त्रः ॥

सर्वेषामेव भूतानां महासौभाग्यदायिनी ।
 महालक्ष्मीर्महादेवी सर्वलोकैकमोहिनी ॥
 साम्राज्यदायिनी नित्यं सर्ववेदस्वरूपिणी ।
 महाविद्या जगन्माता मुनीनां मोक्षदायिनी ।
 ज्ञानिनां ज्ञानदा सत्यं दानवानां विनाशिनी ॥

इति महालक्ष्मीर्मूलप्रकृतिर्भवति । नारायणः स भगवान् परब्रह्मस्व-
 रूपी सर्ववेदान्तगोचरः नित्यशुद्धबुद्धपरब्रह्मानन्दमयो भवति । तस्माल्लक्ष्मी-
 नारायण इति स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये द्वितीयः खण्डः

तृतीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणमन्त्रः कीदृशो भवति । “ ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ” इति गायत्री भवति । “ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाशसुरे । ”, “ अतो देवा भवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्तधामभिः ” इति मन्त्रद्वयेन नारायणप्रतिपादितं भवति । “ स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ” । नारायणायेति पञ्चाक्षरं भवति । ॐ नमो विष्णवे इति षडक्षरं विज्ञातम् । नमो नारायणायेति सप्ताक्षरं भवति । ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति द्वादशं परिकीर्तितम् । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं नमो नारायणाय स्वाहा । यस्य कस्यापि न देयम् ।

पुत्रो देयः शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी ।

न वदेद्यस्य कस्यापि किं तु शिष्याय तां वदेत् ॥

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं नमो भगवते लक्ष्मीनारायणाय विष्णवे वासुदेवाय स्वाहा ॥

श्रीमहाविष्णवे तुभ्यं नमो नारायणाय च ।

गोविन्दाय च रुद्राय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥

नारायण महाविष्णो श्रीधरानन्त केशव ।

वासुदेव जगन्नाथ हृषीकेश नमो नमः ॥

इत्यनुष्टुबद्धयं मन्त्रं व्याख्यातम् । अथ मालामन्त्रं व्याख्यास्यामः ।
स होवाच भगवान् ब्रह्मा य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये तृतीयः खण्डः

चतुर्थः खण्डः

स होवाच भगवान् पितामहः गायत्रीं व्याचष्टे । गोविन्दाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो नारायणः प्रचोदयात् । कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि । तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् । महादेव्यै च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् । “ विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ”, “ त्रिदेवः पृथिवीमेष एताम् । विचक्रमे शतर्चसं महित्वा । प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् । त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम । ”

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकृत ।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ॥

“ प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु । अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा । ”, “ य ईं शृणोत्यलकं शृणोति । न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् । ” अक्षन्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनो जीवेष्वसमा बभूवुः । तस्माल्लक्ष्मीनारायणं सर्वबीजं सर्वभूताधिवासं यो वेत्ति स विद्वान् भवति । उपासकानां मोक्षप्राप्तिर्भवति । स जीवन्मुक्तो भवति । स होवाच भगवान् उपासनविधिं व्याचष्टे । ब्रह्मा ऋषिर्भवति । गायत्री छन्द उच्यते । श्रीमन्नारायणपरमात्मा देवता । प्रणवं बीजम् । नमः शक्तिरुच्यते । कीलकं नारायणेति ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगोऽथ भावना ।

महोल्काय वीरोल्काय वृद्धोल्काय पृथूल्काय विद्युल्काय ज्वलदुल्काय च षडङ्गकल्पिताः नमःस्वाहावषड्वौषट्पदान्ता अङ्गन्यासा भवन्ति ।

नीलजीमूतसंकाशं पीतकौशेयवाससम् ।

किरीटकुण्डलधरं कौस्तुभोद्भासितोरसम् ॥

शङ्खचक्रगदाखङ्गधारिणं वनमालिनम् ।
 वामभागे महालक्ष्म्यालिङ्गितार्धशरीरिणम् ॥
 सनकादिभिः संसेव्यं स्तूयमानं महर्षिभिः ।
 ब्रह्मादिभिः सदा ध्येयं ध्यात्वा नारायणं विभुम् ॥
 कर्मणा मनसा वाचा संस्मरेत् प्रजपेत् सुधीः ।
 अयुतं जपमात्रेण सर्वज्ञानप्रदो भवेत् ॥
 लक्षमात्रं तु प्रजपेत् स्वस्वरूपं भवेन्मनुः ।
 अत ऊर्ध्वं सदा ध्यायेत् साक्षान्नारायणो हरिः ॥
 स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये चतुर्थः खण्डः

पञ्चमः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा दशकळात्मकोऽवतारः कथ्यते ॥

जरा पालिनिका शान्तिरीश्वरी रतिकामिका ।

वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा दशकला हरेः ॥

नारायणादवतारा मन्त्ररूपा जायन्ते । ॐ नमो नारायणाय
 स्वाहा । एवं दशाक्षरो महामन्त्रो भवति । तत्र प्रथमो मत्स्यावतारः ।
 द्वितीयः कूर्मः । तृतीयो वराहः । चतुर्थो नरसिंहः । पञ्चमो वामनः ।
 षष्ठो जमदग्निः । सप्तमो रामचन्द्रः । अष्टमः कृष्णः परमात्मा । नवमो
 बुद्धावतारः । दशमः कल्किर्जनार्दनः । ॐ मत्स्यावताराय नमः । श्रीं
 कूर्मावताराय नमः । ह्रीं वराहावताराय नमः । हुं नृसिंहावताराय नमः ।

सौः वामनावताराय नमः । ऐं परशुरामावताराय नमः । ग्लौं रामचन्द्राय नमः । क्लीं कृष्णाय नमः । ॐ बुद्धावताराय नमः । सः कल्क्यवताराय नमः इति । प्रजापतिः प्रजायते । तस्मान्नारायणः प्रजायते । ब्रह्मा जायते । ब्रह्मणः सकाशात् पञ्चमहाभूतानि तन्मात्राणि जायन्ते । ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रियाणि मनोबुद्धिचित्ताहंकारा जायन्ते । प्रकृतिर्जायते । चतुर्विंशति-तत्त्वात्मको नारायणः । पञ्चविंशतितत्त्वात्मकः पुरुषत्वं परब्रह्म भवेत् । शिवश्च नारायणः । शक्रश्च नारायणः । दिशश्च नारायणः । ऊर्ध्वश्च नारायणः । अन्तश्च नारायणः । नारायणः सर्वं खल्विदं ब्रह्म । तस्मान्नारायणादण्डजस्वेदजोद्विज्जजरायुजमनसिजादयः सर्वे महाभूताः प्रजायन्ते ॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बर्ही प्रजां जनयन्तीं सरूपाम् ।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

अण्डजाः सर्वस्वरूपा जायन्ते । स्वेदजाः किमिकीटादयः । उद्विज्जास्तरुगुल्मलतादयः । जरायुजा नरपशुमृगादयो जायन्ते । मनसिजा नारदादयः सर्वे ऋषयः । नारायणः स्थावरजङ्गमात्मको भवति । अष्टवसवो नारायणः । एकादशरुद्रा नारायणः । नारायणात् द्वादशादित्याः । सर्वे देवा ऋषयो मुनयः सिद्धगन्धर्वयक्षरक्षः पिशाचाः सर्वे नारायणः । नारायण एवेदं सर्वम् । लक्ष्मीर्मूलप्रकृतिरिति विज्ञायते । वस्त्वेकं परब्रह्म नारायणः सनातनः ॥

साक्षान्नारायणो देवः परब्रह्माभिधीयते ।

सच्चिदानन्दात्मकाः स्युर्विष्णौ नित्ये प्रकल्पिताः ।

नानाविधानि रूपाणि हाटके कटकादिवत् ॥

“ चत्वारि वाक्परिमिता पदानि । तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति । तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति । ”
परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपा सरस्वतीति चतुर्विधा वाचो वदन्ति । वैखरी
सर्वविद्यासु प्रशस्ता ॥

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।

पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्व मन्त्रशास्त्रकम् ।

विद्याश्चाष्टादश प्रोक्ता नारायणनिवेशिताः ॥

तस्य निश्चसितमेव ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वाङ्गिरश्चेति ।
सर्ववेदवेदान्तानां नारायणपरब्रह्मण्येव तात्पर्यम् । स होवाच भगवान् य
एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये पञ्चमः खण्डः

षष्ठः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणयन्त्रमन्त्रावरणपूजामाचचक्षे ।
त्रिकोणं प्रथमं भवति । द्वितीयं षट्कोणं भवति । वृत्तमष्टदलं तृतीयम् ।
चतुर्थं द्वादशदलम् । पञ्चमं षोडशदलम् । चतुर्विंशतिः षष्ठम् । द्वात्रिंशतिः
सप्तमम् । अष्टमं भूपुरम् । एवं यन्त्रं समाल्लिखेत् । मध्ये लक्ष्मीनारायणं
विक्षेपशक्त्यावरणं शक्तिप्रभाशक्तित्रिकोणदेवताः षट्कोणं वृद्धोल्कादयः
पूज्याः । सर्वज्ञानित्वतृप्त्यनादिबोधस्वतन्त्रनित्यमल्लुप्तानन्तं षट्कोणशक्तयः ।
सनकसनन्दनसनत्सुजातसनत्कुमारसनातननारदतुम्बुरुसमन्तादयोऽष्टदलाः ।

वसिष्ठबालखिल्यविश्वामित्रकश्यपात्रिभरद्वाजाङ्गीरसजामदग्निगौतमागस्त्यजा -
 बालिकपिला द्वादशदलाः । मत्स्यकूर्मवराहनारसिंहवामनरामरामकृष्णबुद्ध-
 कल्किंसद्योजातवामदेवा अघोरतत्पुरुषेशानपरमेश्वराः षोडशदलाः । शंखचक्र-
 गदापद्मखड्गश्रीवत्सकौस्तुभवनमालादिकिरीटकुण्डलकेयूरहाराङ्गदशाङ्गिशर -
 नन्दकपद्मवेणुबर्हिपिच्छशेषानन्तगरुडविष्वक्सेनब्रह्माणश्चतुर्विंशतिदलाः केश-
 वादिचतुर्विंशत्यनुक्रमम् । हरिश्रीकृष्णमुकुन्दकुमुदाक्षपुण्डरीकाक्षधामकशङ्ख-
 वर्णसर्वनेत्रसुमुखसुप्रतीका द्वात्रिंशदलाः । ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्प-
 दन्तसार्वभौमसुप्रतीकाक्षाश्चतुरश्रदेवताः । ॐ नमो नारायणायाष्टाक्षरसंज्ञा-
 वरणदेवतापूजा कर्तव्या । स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथवर्णरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये षष्ठः खण्डः

इति नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत् समाप्ता

नारायणोत्तरतापिनीयोपनिषत्

प्रथमः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् सच्चिदानन्दस्वरूपो
 भवति ।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।

तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥
वासनाद्वासुदेवस्य वासितं हि जगत्त्रयम् ।
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

भूश्च नारायणः । भुवश्च नारायणः । सुवश्च नारायणः । महश्च
नारायणः । जनश्च नारायणः । तपश्च नारायणः । सत्यं च नारायणः ।
नारायणः परं ब्रह्म । नारायण एवेदं सर्वम् । नारायणान्न किञ्चिदस्ति ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । तस्माद्वा
एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः ।
अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः ।
नारायणः सर्वपुरुष एवेदं परब्रह्म । नारायणः सर्वभूतान्तर्याम्यात्मा । आत्मेदं
सर्वं नारायणः । नारायणः स्वयं ज्योतिः । तस्मात्प्रकाशात्मा ॥

नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ।
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ॥
पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तः सनातनः ।
तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषाभावेन तण्डुलः ॥
परब्रह्म स्वयं चात्मा साक्षान्नारायणः स्मृतः ।
नारायणमनादिं च योगनिद्रापरायणम् ॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीषु सर्वकालव्यवस्थितम् ।
नारायणं महात्मानं महाध्यानपरायणम् ।
सर्ववेदान्तसंलक्ष्यं तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥

स होवाच भगवान् नारायण एवेदं सर्वं प्रतिष्ठितं य एवं वेद ।
इत्युपनिषत् ॥

इत्याद्यर्चणहस्त्ये नारायणोत्तरतापिनीये प्रथमः खण्डः

द्वितीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणः परवस्तु भवतीति विज्ञायते ।

सच्चिदानन्दरूपाय ज्ञानायामिततेजसे ।

परब्रह्मस्वरूपाय नारायण नमोऽस्तु ते ॥

नित्यंशुद्धाय बुद्धाय नित्यायाद्वैतरूपिणे ।

आनन्दायात्स्वरूपाय नारायण नमोऽस्तु ते ॥

ओं नमो भगवते श्रीमन्नारायणाय महाविष्णवे अमितबलपराक्रमाय
शङ्खचक्रगदाधराय लक्ष्मीसमेताय गरुडवाहनाय दशावताराय सर्वदुष्टदै-
त्यदानवसंहरणाय शिष्टप्रतिपालकाय परब्रह्मरूपाय महात्मने परमपुरुषाय
पुण्डरीकाक्षाय पुराणपुरुषाय शुद्धबुद्धाय सच्चिदानन्दस्वरूपाय महात्मने
वृणिः सूर्य आदित्य ॐ नमो नारायणाय सहस्रार हुं फट् स्वाहा ॥

नारायणाय शान्ताय शाश्वताय मुरारये ।

यज्ञेश्वराय यज्ञाय शरण्याय नमो नमः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा सर्वं विश्वमिदं नारायणः य एवं
वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये द्वितीयः खण्डः

तृतीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणः परब्रह्मेति य एवं वेद ।
नारायणात्मा वेदं सर्वं निर्विकारं निरञ्जनवस्तु प्रतिपाद्यते । स नारायणो
विराट्पुरुषो भवति । देवानां वासवो भवति । इन्द्रियाणां मनो भवति ।

सर्वेषां वस्तूनां मुख्यवस्तु भवति । ॐ नमो नारायणादन्यो मन्त्रः
नारायणादन्योपास्तिर्नास्ति । नान्यन्नारायणादुपासितव्यम् । सर्वं नारायण
एव भवतीति विज्ञायते । योऽधीते नित्यं सर्वान् कामानवाप्नोति । स
ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति । सुरापानात् पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात् पूतो
भवति । गुरुतर्लपगमनात् पूतो भवति । अगम्यागमनात् पूतो भवति ।
अभक्ष्यभक्षात् पूतो भवति । स उपपातकमहापातकेभ्यः पूतो भवति ।
सर्ववेदमधीयानो भवति । सर्वक्रतुफलं प्राप्नोति । सर्वकर्मकर्ता भवति ।
चतुःसमुद्रपर्यन्तभूदानफलं प्राप्नोति । द्विजोत्तमो भवति । चतुर्वर्गफलं
प्राप्नोति । ब्रह्मचारी ज्ञानवान् भवति । गृही पुत्रपौत्रमहैश्वर्यवान् भवति ।
सख्यासी मोक्षवान् भवति ॥

पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

नारायणप्रसादेन वैकुण्ठपदमश्नुते ॥

इति स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजोत्तमैः ।

तावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न संशयः ॥

नारायण हरे कृष्ण वासुदेव जगद्गुरो ।

मुकुन्दाच्युत देवेश महाविष्णो नमोऽस्तु ते ॥

भूतानि तत्त्वसंज्ञानि कूटस्थोऽक्षरसंज्ञितः ।

उत्तमश्चापि पुरुषो नारायण इतीर्यते ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये तृतीयः खण्डः

इति नारायणोत्तरतापिनीयोपनिषत् समाप्ता

नृसिंहषट्चक्रोपनिषत्

ॐ देवा ह वै सत्यं लोकमायंस्तं प्रजापतिमपृच्छन्नारसिंहचक्रज्ञो ब्रूहीति । तान्प्रजापतिर्नारसिंहचक्रमवोचत् । षडै नारसिंहानि चक्राणि भवन्ति । यत् प्रथमं तच्चतुररं यद्वितीयं तच्चतुररं यत्तृतीयं तदष्टारं यच्चतुर्थं तत्पञ्चारं यत्पञ्चमं तत्पञ्चारं यत् षष्ठं तदष्टारं तदेतानि षडेव नारसिंहानि चक्राणि भवन्ति ॥

अथ कानि नामानि भवन्ति । यत् प्रथमं तदाचक्रं यद्वितीयं तत्सुचक्रं यत्तृतीयं तन्महाचक्रं यच्चतुर्थं तत्सकललोकरक्षणचक्रं यत्पञ्चमं तद्द्यूतचक्रं यद्वै षष्ठं तदसुरान्तकचक्रं तदेतानि षडेव नारसिंहचक्रनामानि भवन्ति ॥

अथ कानि त्रीणि वलयानि भवन्ति । यत्प्रथमं तदान्तरवलयं भवति । यद्वितीयं तन्मध्यमं वलयं भवति । यत् तृतीयं तद्बाह्यं वलयं भवति । तदेतानि त्रीण्येव वलयानि भवन्ति । यदा तद्वैतद्वीजं यन्मध्यमं तां नारसिंहगायत्रीं यद्बाह्यं तन्मन्त्रः ॥

अथ किमान्तरं वलयम् । षडान्तराणि वलयानि भवन्ति । यन्नारसिंहं तत्प्रथमस्य यन्माहात्म्यं तद्वितीयस्य यत्सारस्वतं तत्तृतीयस्य यस्य यत्कामं देवं तच्चतुर्थस्य यत् प्रणवं तत्पञ्चमस्य यत्क्रोधदैवतं तत् षष्ठस्य । तदेतानि षण्णां नारसिंहचक्राणां षडान्तराणि वलयानि भवन्ति ॥

अथ किं मध्यमं वलयम् । षडै मध्यमानि वलयानि भवन्ति । यन्नारसिंहाय तत्प्रथमस्य यद्विद्महे तद्वितीयस्य यद्वज्रनखाय तत्तृतीयस्य यद्धीमहि तच्चतुर्थस्य यत्तन्नस्तत्पञ्चमस्य यत्सिंहः प्रचोदयादिति तत् षष्ठस्य । तदेतानि षण्णां नारसिंहचक्राणां षण्मध्यमानि वलयानि भवन्ति ॥

अथ किं बाह्यं वलयम् । षडै बाह्यानि वलयानि भवन्ति । यदाचक्रं यदात्मा तत्प्रथमस्य यत्सुचक्रं यत्प्रियात्मा तद्वितीयस्य यन्महाचक्रं यज्ज्योतिरात्मा तत्तृतीयस्य यत्सकललोकरक्षणचक्रं यन्मायात्मा तच्चतुर्थस्य यदाचक्रं यद्योगात्मा तत्पञ्चमस्य यदसुरान्तकचक्रं यत्सत्यात्मा तत् षष्ठ्यस्य । तदेतानि षण्णां नारसिंहचक्राणां षट् बाह्यानि वलयानि भवन्ति ॥

कैतानि न्यस्यानि । यत्प्रथमं तद्धृदये यद्वितीयं तच्छिरसि यत्तृतीयं तच्छिखायां यच्चतुर्थं तत्सर्वेष्वङ्गेषु यत्पञ्चमं तत्सर्वेषु [?] यत् षष्ठं तत्सर्वेषु देशेषु । य एतानि नारसिंहानि चक्राण्येतेष्वङ्गेषु विभृयात् तस्यानुष्टुप् सिध्यति । तं भगवान् नृसिंहः प्रसीदति । तस्य कैवल्यं सिध्यति । तस्य सर्वे लोकाः सिध्यन्ति । तस्य सर्वे जनाः सिध्यन्ति । तस्मादेतानि षण्णां नारसिंहचक्राण्यङ्गेषु न्यस्यानि भवन्ति । पवित्रं च एतत्तस्य न्यसनम् । न्यसनान्नृसिंहानन्दी भवति । कर्मण्यो भवति । ब्रह्मण्यो भवति । अन्यसनान्न नृसिंहानन्दी भवति । न कर्मण्यो भवति । तस्मादेतत्पवित्रं तस्य न्यसनम् ॥

यो वा एतं नारसिंहं चक्रमधीते स सर्वेषु वेदेष्वधीतो भवति । स सर्वेषु यज्ञेषु याजको भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वेषु मन्त्रेषु सिद्धो भवति । स सर्वत्र शुद्धो भवति । स सर्वरक्षो भवति । भूतपिशाचशाकिनीप्रेतवंताकनाशको भवति । स निर्भयो भवति । तदेतन्नाश्रद्धानाय प्रब्रूयात्तदेतन्नाश्रद्धानाय प्रब्रूयादिति ॥

इत्याथर्वणीये नृसिंहषट्चक्रोपनिषत् समाप्ता

पारमात्मिकोपनिषत्

सव्याख्या

ओं विष्णुस्सर्वेषामधिपतिः परमः पुराणः परो लोका-
नामजितो जितात्मन् भवते भवाय स्वाहा ॥ १ ॥

यः सर्वलोकैरपि वन्दनीयः स्मृतिं शुभां यच्छति यो नराणाम् ।

तस्मै नमो यः कुलदैवतं नरः स राघवो मे हृदि सन्निधत्ताम् ॥

श्रीलक्ष्मीवल्लभाद्यां तां विखनोमुनिमध्यमाम् ।

अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

श्रीविष्णुमानसाज्जातो विष्णुवागमविशारदः ।

तं वन्दे सूत्रकर्तारं वैष्णवं विखनोमुनिम् ॥

व्याप्नोतीति विष्णुः सर्वव्यापक इत्यर्थः ॥

यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ इति श्रुतेः ।

विश्वव्यापनशीलत्वाद्विष्णुरित्युच्यते बुधैः ॥ इति ॥

नन्वादौ तावत् परंब्रह्मपरंज्योतिःपरंतत्त्वपरमात्मादिशब्दा विद्यन्ते ।

चत्वारः पारमात्मिकं भवति ।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् ।

अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

इति वचनात् त्रयाणां पारमात्मिकत्वमिति चेदुच्यते ॥

अष्टाक्षरश्च यो मन्त्रो द्वादशाक्षर एव च ।

षडक्षरश्च यो मन्त्रो विष्णोरमिततेजसः ॥

एते मन्त्राः प्रधानास्तु वैदिकाः प्रणवैर्युताः ।

प्रणवेन विहीनास्तु तान्त्रिका एव कीर्तिताः ॥

इति भगवन्मन्त्रेष्वव्यापकमन्त्रापेक्षया व्यापकमन्त्राः प्रधानाः । व्यापकमन्त्रेषु च अष्टाक्षरषडक्षरौ । अष्टाक्षरेण प्रतिपाद्यो नारायणः । षडक्षरेण प्रतिपाद्यो विष्णुः । प्रधानभूतनारायणविष्णुशब्दाभ्यां वासु-
देवादिशब्दैश्च उत्तरत्र प्रतिपाद्यैः परंब्रह्मपरंज्योतिःपरंतत्त्वपरमात्मादिशब्दैः
पर्यायवाचकैश्च क्रियाकाण्डत्वाद्दुःखित एव विष्णुशब्दप्रयोगः ॥

किञ्च—“विष्णोरंशस्तु पुरुषः” इति दैविकव्यूहभूतस्य पुरुषस्य
मानुषव्यूहभूतस्य वासुदेवस्य मूलभूतत्वाद्विष्णुशब्दग्रहणम् । यद्वा—सर्वमन्त्रा
अपि परंब्रह्मपरंज्योतिःपरंतत्त्वपरमात्मादिशब्दप्रयोगात् अद्वारकत्वेन सद्धार-
कत्वेन भगवल्लीलाप्रतिपादकत्वात् भगवत्प्रादुर्भावाविर्भावलीलाप्रतिपाद-
कत्वाद्वा सर्वेषामधिपतिः सर्वेषां ब्रह्मरुद्रादीनां नित्यमुक्ता
सर्वशब्दस्य सङ्कोचाभावात् चेतनाचेतनवर्गाणामण्डाद्बहिर्भूता-
नामप्यधिपतिनि . . . “पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम्” इति श्रुतेः ॥

श्वेताश्वतरे—

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।

ब्रह्मादिदेवसङ्घेषु स एव पुरुषोत्तमः ।

स्त्रीप्रायमितरत् सर्वं जगद्ब्रह्मपुरस्सरम् ॥ इति ।

परमः परि . . मास्मेति परमः समाभ्यधिकरहितः । यद्वा उत्कृष्टः
पुराणः अनादिः परो लोकानाम् ।

एकतो वा जगत्सर्वमेकतो वा जनार्दनः ।

सारतो जगत्तः कृत्स्यादतिरिक्तो जनार्दनः ॥ इति ॥

अजितः जेतुमशक्यः ब्रह्मरुद्रादिभिर्देवदानवयक्षराक्षसादिभिः रहितः
इत्यर्थः ।

यद्वा—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
इति श्रुतेरवाङ्मनसो गोचरत्वात् योगिभिरप्यजितः ॥
नारसिंहपुराणे—

हिरण्यकशिपोस्त्रस्तान् सेन्द्रान् देवान् बृहस्पतिः ।
क्षीरोदस्यान्तरं गत्वा स्तूयतां तत्र केशवः ।
युष्माभिः संस्तुतो विष्णुः प्रसन्नो भवति क्षणात् ॥
इत्यारभ्य हिरण्यवधानन्तरम् ।

तस्य कोपाभिभूतस्य नृसिंहस्य जगत्पतेः ।
दृष्ट्वा भयानकं रूपं तत्रसुर्देवदानवाः ॥
इत्यारभ्य शरभनिर्माणादिकं प्रतिपाद्यते । ततस्तस्य भवानीश . . .
ण्डस्थानमयाचत ।

पृष्ठभागे चतुर्वक्त्रं तस्य रुद्रो न्यवेशयत् ।
सोमसूर्यौ नयनयोर्मारुतं पक्षयोर्द्वयोः ॥
पादेषु भूचरान् सर्वान् शिवस्तस्य न्यवेशयत् ।
एवं निर्माय शरभं भवः प्रमथनायकः ॥
ससर्ज नरसिंहं तं समुद्दिश्य भयानकम् ।
ततः क्षणेन शरभो नादपूरितदिङ्मुखः ॥
अभ्याशमगमद्विष्णोः निनदन्भैरवस्वनम् ।
तमभ्याशगतं दृष्ट्वा नृसिंहः शरभं रुषा ।
जघान निशितैरुग्रैस्तीक्ष्णैर्नखवरायुधैः ॥

निहते शरमे तस्मिन् रौद्रे मधुनिघातिना ।

तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं देवा देवर्षयस्तथा ॥ इति ॥

भवाय रुद्राय अजितः जितार्तभक्तैः जितात्मन्,

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः ॥

इति वचनात् ,

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।

इति भगवद्वचनाच्च ।

यद्वा—परशुराममन्तरत्वात् रामभद्रेण जितात्मन् । यद्वा—
स्वभक्तस्य भीष्मस्य प्रतिज्ञापरिपालनार्थं जगद्रक्षणार्थं च भवाय उत्पन्नाय
भवते तुभ्यं स्वाहा ।

स्वाहास्वधावषड्वौषण्णमःपर्यायवाचकाः ।

भारते —

ओमिति ब्रह्मणो योनिर्नमःस्वाहास्वधावषट् ।

यस्यैतानि प्रयुज्यन्ते यथाशक्ति कृतान्यपि ॥

न तस्य त्रिषु लोकेषु परं लोकेषु संविदुः ।

इति वेदा वदन्ति स्म वृद्धाश्च परमर्षयः ॥

स्वधा नम इति . . . वषट्कारोति च [?] ।

नमःशब्दप्रधानाद्वा स्वाहाशब्द इवेति तु ॥

स्वाहाशब्दे नमःशब्दः प्रतिपादितः । अनेन प्रपत्तिः प्रतिपादिता ॥

लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया ।

रक्षकः सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते ॥

लक्ष्मीं महीं च शेषं हि विभूतिमुभयात्मिकाम् ॥

“अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी”,

लक्ष्मीविशिष्ट एवैकः प्रपत्तव्य इहोदितः ॥ इति ॥

लक्ष्मीविशिष्ट एव प्रपत्तव्य इत्यभिप्रायेणादौ विष्णुशब्दः । एतत्सर्व-
मेकादशानुवाके विस्तरेणोच्यते ॥ १ ॥

सुसूक्ष्मः सार्वः सर्वेषामन्तरात्मा तस्थुः तस्थुषां जङ्गमो
जङ्गमानां विभुर्विभूणां विभवोद्भवाय स्वाहा ॥ २ ॥

अजडं स्वात्मसंबोधि नित्यं सर्वावगाहि यत् ।

ज्ञानं नाम गुणं प्राहुः प्रथमं गुणचिन्तकाः ॥

स्वरूपं ब्रह्मणस्तच्च गुणश्च परिगीयते ।

जगत्प्रकृतिभावो यः सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥

श्रमहानिस्तु या तस्य सततं कुर्वतो जगत् ।

बलं नाम गुणस्तस्य कथितो गुणचिन्तकैः ॥

कर्तृत्वं नाम यत्तस्य स्वातन्त्र्यं परिवर्हितम् ।

ऐश्वर्यं नाम तत्प्रोक्तं गुणतत्त्वार्थचिन्तकैः ॥

तस्यापादानभावेऽपि विकारविरहे हि यः ।

वीर्यं नाम गुणस्यायमच्युतस्यापराह्वयः ।

सहकार्यमपेक्ष्यं यत् तत्तैजसमुदाहृतम् ॥ इति ॥

ज्ञानादिषाड्गुण्यसंपूर्णं नानाव्यूहैकहेतुकं लक्ष्मीलक्षणसंयुक्तम् ।

“ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ” इति श्रुतेः । निरुपाधिकसत्तायोगत्वं सत्यत्वं नित्या-
सङ्कुचितज्ञानैकाकारत्वं ज्ञानत्वं कालतो वस्तुतो देशतश्चापरिच्छिन्नत्व-
मनन्तत्वमिति ब्रह्मस्वरूपशोधकवाक्यप्रतिपन्नसत्त्वादिविशिष्टम् ।

श्रीविष्णुपुराणे—

संभर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः ।

नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने ॥

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।

स च सर्वेषु भूतेषु वकारार्थस्तथा मुने ॥

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।

भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥

एवमेव महाभाग मैत्रेय भगवानिति ।

परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यथा ।

शब्दोऽयं सोपचारेण ह्यन्यत्र ह्युपचारतः ॥ इति ॥

भगवच्छब्दशब्दितमित्यादिगुणविशिष्टं परं ब्रह्म विष्णुरेवेति
विज्ञाप [नेन] सुसूक्ष्म इत्युक्तम् ।

श्रीवैखानसे तर्ककाण्डे ब्रह्मचिन्ताध्यायेऽभिहितम्—

आपः पृथिव्या सूक्ष्मास्तु तेभ्यस्तेजस्ततोऽनिलः ।

तस्मादाकाशमेतस्मात्तन्मात्राणि मनीषिणः ॥

तेभ्यः सूक्ष्मो ह्यहङ्कारस्त्रिधाभूय व्यवस्थितः ।

तस्मान्महान् त्रिधा भूतो बुद्धिलक्षणलक्षितः ॥

तस्मात्तु मूलप्रकृतिरव्यूढगुणबृंहिता ।

ततो व्यष्टिसमष्ट्याख्यो जीवः सूक्ष्मतरः स्मृतः ॥

ततो व्योमपदं विष्णोः स्थानमानन्दपूरितम् ।

तस्मात्तत्पञ्चशक्तिस्थं पञ्चोपनिषदात्मकम् ॥

पञ्चमूर्तिविभेदेन विभिन्नं विश्वतोमुखम् ।

आभूतसंग्रहस्थानं स्वरूपं चिद्धनं परम् ॥

विष्णोरकुण्ठवीर्यस्य नानाव्यूहैकहेतुकृत् ।
 ततः षड्गुणसंपूर्णं लक्ष्मीलक्षणसंयुतम् ॥
 सत्यं ज्ञानमनन्ताख्यं भगवच्छब्दशब्दितम् ।
 सूक्ष्मात्सूक्ष्ममिति ख्यातं स्वरूपं रूपवर्जितम् ॥
 जातिक्रियादिरहितं सरूपं गुणसङ्गतम् ।
 सूक्ष्मात्सूक्ष्ममवाप्नोति परंब्रह्मेदमव्ययम् ॥ इति ॥

सार्वः “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” इत्यादिश्रुतिसिद्धम् ।

आत्मा बुद्धौ धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि ॥ इति ॥

सर्वेषामन्तरात्मा ब्रह्मरुद्रादीनामन्तरात्मा । “अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा” इति श्रुतेः, “यस्त्वात्मा शरीरं यस्य पृथिवी शरीरम्” इत्यादिश्रुतेश्च । **तस्थुः तस्थुषां** स्थावराणां मध्ये अतिशयेन तथा परभूतः “मेरुः शिखरिणामहम्” इति भगवद्वचनात् । **जङ्गमो जङ्गमानां** जङ्गमेष्वप्यतिशयं जङ्गमभूतः । यद्वा शक्तिप्रदः । **विभुर्विभूणां** आकाशादीनामपि । तथा **विभवोद्भवाय** एवं तस्य परमात्मन उद्भवः प्रादुर्भावः अवतारादिषु—

यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः ।

अपश्यन्तः परं भावं नमस्तस्मै परात्मने ॥ इति ॥

एवमवतारादिषु प्रादुर्भावः—

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।

आत्ममायां विनेशस्य परस्य स्रष्टुरात्मनः ॥

रामायणे—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य बधार्थिभिः ॥

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥ इति ॥

तस्मै दिशं प्रतिपाद्य ज्योतिर्मयानि सर्वाण्यपि पारमात्मिकान्येवेति
प्रतिपादयति ॥ २ ॥

ज्योतिर्वा पारमात्मिकं सार्वं विश्वं भवं भवाय प्राभूतं
प्राहिण्वन् परम्पराय सुकृतं कृताय तस्मै पराय ईशिषे स्वाहा ॥३॥

सूर्यचन्द्राम्रयादिषु स्थितं ज्योतिः पारमात्मिकम् ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ इति ॥

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुना

सर्वाणि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ।

नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं

यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्यः ॥ इति ॥

नक्षत्राणि च विश्वलोकं साव विश्वं सर्वलोकसंज्योतिः । पार-
मात्मिकं “अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते”, “विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः
पृष्ठेष्वनुत्तमेषु” इत्यादिश्रुतिसिद्धम् । “एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे”, ।

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

इति श्रुतिषु श्रूयमाणत्वात् । विश्वाधिपस्य रुद्रस्य जननं
कथमुपपद्यत इति शङ्कायां तद्वा श्रुत्यर्थं भवशब्दः भवाय रुद्राय प्राभूतं प्रभूतं
बहुविधमित्यर्थः । परं भवमुत्पत्तिं प्राहिण्वन् प्रायच्छन् । “नारायणाद्भुद्रो
जायते” इत्यादिश्रुतिभ्यः “ललाटात्क्रोधजो रुद्रो जायते” इत्यादि ।

ब्रह्मणो वै ललाटाच्च ततो देवस्य वै द्विज ।

क्रोधाविष्टस्य संजज्ञे रुद्रः संहारकारकः ॥ इति ॥

“अष्टौ वसव एकादश रुद्राः”, “सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्राः”
इति श्रुत्यन्तरेषु श्रूयमाणत्वात् पारमात्मिकोपनिषदि च प्राभूतं प्राहिण्व-
नित्युक्तम् । अनेनैकत्वनिवृत्तिः । अस्य मन्त्रस्य परम्पराय इत्यारभ्य
ईशो यस्मादित्यत्रान्वयः । सुकृतं कृताय तस्मै पराय ईशिषे ॥ ३ ॥

ईशो यस्माद्विततं वितत्य कं धृतं कामहुतो जुहोति
ककुदं ककुच्छित्वा भूयः पराय स्वाहा ॥ ४ ॥

ईशः रुद्रः यस्मात् सागराणामुज्जीवनकारणात् विततं विस्तृतं
धृतं शिरसा धृतं कं गङ्गाजलं वितत्य भूमौ विस्तार्य सुकृताय कृतवते
वरमनं विश्वं भवं भवाय प्राभूतं प्राहिण्वन् परम्पराय सुकृतं कृताय तस्मै
पराय परं कामहुतः कामदाहको रुद्रः ककुदं श्रेष्ठः दक्षः ककुच्छित्वा
जुहोति अग्नौ प्रक्षिप्तवान् । भूयः पुनरपि पराय विभक्तिव्यत्ययः
ब्रह्मणः शिरश्चित्वा प्रक्षिप्तवान् । एवंभूताय रुद्राय सुकृतं कृताय ईशिषे
समर्थाय तुभ्यं इत्यर्थः ।

अयमेवार्थो मात्स्ये—

ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेन च ।

वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण छिन्नं तस्य शिरो मया ॥

ब्रह्मा—

यस्मादनपराद्धस्य शिरश्छिन्नं त्वया मम ।

तस्माच्छापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि ॥

ब्रह्महत्याकुलो भूत्वा चरन् तीर्थानि भूतले ।

ततोऽहं गतवान्देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥

तत्र नारायणः श्रीमान् मया भिक्षां प्रयाचितः ।

ततस्तेन स्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदारितम् ॥

स्रवतो महती धारा तस्य रक्तस्य निःसृता ।
विष्णुप्रसादात्सुश्रोणि कपालं तत्सहस्रधा ।
स्फुटितं बहुधा जातं स्वमलब्धं धनं यथा ॥

विष्णुधर्मे—

अच्युतानन्तगोविन्दमन्त्रमानुष्टुभं परम् ।
ॐ नमःसंपुटीकृत्य जपन् विषधरो हरः ॥
यन्नजीर्णं च गरलं कण्ठे स्तब्धं कपालिनः ।
अन्तरात्मधृतस्तस्य हृदये गरुडध्वजः ॥ इति ॥
मैत्रलोके भक्ष्यमाणे तथा मातृगणेन वै ।
नृसिंहमूर्तिर्देवेशं प्रदद्याद्भगवान् शिवः ॥ इति ॥

वराहे—

प्रागितिहासेऽगस्त्यं प्रति रुद्रः—ब्रह्माणं च पुरा सृष्टः पुण्डरीकाक्षः
रुद्रेण दृष्टः । कस्त्वमिति प्रोक्तः सृज इति प्रजाः ।

अविज्ञातासमर्थोऽहं निमग्नः सलिले द्विजः ।

इत्यारभ्य जलमध्ये कालमेघसङ्काशः पुण्डरीकाक्षः रुद्रेण दृष्टः
कस्त्वमिति पृष्टस्य वचनम्—

अहं नारायणो देवो जलशायी सनातनः ।
दिव्यं चक्षुर्भवतु ते तेन व . . यन्नतः ॥
एवमुक्तस्तदा तेन यावत्तस्याप्यहं तनुः ।
तावदङ्गुष्ठमात्रं तु ज्वलद्भास्करतेजसम् ॥
तमेवाहं प्रपश्यामि तस्य नामौ तु पङ्कजम् ।
ब्रह्माणं तत्र प्रपश्यामि ह्यात्मानं च तदङ्गतः ॥

इत्यारभ्य रुद्रेणानन्तरं [?] विष्णुः—

सर्वज्ञस्त्वं न सन्देहो ज्ञानराशिः सनातनः ।
 देवानां च परः पूज्यः सर्वदा त्वं भविष्यसि ॥
 एवमुक्तः पुनर्वाक्यमुवाचोमापतिस्तथा ।
 अन्यद्देहि वरं देव प्रसिद्धं सर्वजन्तुषु ॥
 मर्त्यो भूत्वा भवानेव मामाराधय केशव ।
 मां वहस्व च देवेशं वरं मत्तो गृहाण च ।
 येनाहं सर्वदेवानां पूज्यात्पूज्यतरोऽभवम् ॥

विष्णुः—

देवकार्यावतारेषु मानुषत्वमुपागतः ।
 त्वामेवाराधयिष्यामि त्वं च मे वरदो भव ॥
 यत्त्वयोक्तं वहस्वेति देवदेव उमापते ।
 सोऽहं नमामि देव त्वां मेघो भूत्वा शतं समाः ॥
 एवमेव हरिर्देवः सर्वेशः सर्वभावनः ।
 वरदोऽभूत्ततो मह्यं तेनाहं दैवतैर्नतः ॥ इत्यादि ॥

पुराणसङ्ग्रहे—

अङ्गुष्ठाग्रविनिर्भिण्णादण्डकोशात्सवज्जलम् ।
 विष्णोरादाय चार्ध्यं वै ददौ तस्मै चतुर्मुखः ॥
 तत्पादशौचविमलं तोयमासीत्सरिद्वरा ।
 पुण्या त्रिपथगङ्गा यां दधार शिरसा स्वयम् ॥

ईश्वरसंहितायाम्—

पुरा त्रिभुवनाक्रान्तं हरिणा बलिबन्धने ।
 मम लोके पदं प्राप्तं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः ॥

पाद्यं दत्तं मया पुत्र कमण्डलुजलेन वै ।
 कमण्डलुजलं स्वल्पं कृतमन्तर्गतं हि तत् ॥
 धर्मं समीपतो दृष्ट्वा . . चोक्तं जलं भव ।
 द्रवीभूतस्तथा धर्मो हरिभक्त्या महामुने ॥
 गृहीत्वा धर्मपानीयं पादं नाथस्य तुष्टये ।
 क्षालितं परया भक्त्या पाद्यार्घ्यादिभिरर्चितः ॥
 तदम्बु पतितं दृष्ट्वा दधार शिरसा हरः ।
 पावनार्थं जटामध्ये योग्योऽस्मीत्यवधारणात् ।
 वर्षायुतानथ बहून् न मुमोच तथा हरः ॥

श्रुतिरपि—“ ये मरुतामर्चयन्ति रुद्रं यत्तेजनी चारुदन्तं पदं
 यद्विष्णोरुपमं निधाय तेन पासि गुह्यं गोनाम् ” इतीयं श्रुतिः त्रिविक्रमावतार-
 मुद्दिश्य गङ्गाविषयत्वेन श्रूयत इति केचिद्वदन्ति । ब्रह्मरुद्रादीनामपि
 वरप्रदानादिषु समर्थतेत्यर्थः ॥ ४ ॥

रायामीशो रहितो भरन्त्यै रां रां वहन्त्याहितः रायां
 पतिं रां रां धरते धरित्र्यै रां वहतोद्वहाय स्वाहा ॥ ५ ॥

रायां “ रै ऐश्वर्ये ” इति धातुसिद्धैश्वर्यवाचकरैशब्दाभिहि-
 तानामैश्वर्याणां ईशः तद्गोर्गार्हः परमतमः प्रभुः रहितः ताभिरैश्वर्यैर्वि-
 हीनः चतुर्दशाब्दप्रमाणवनवासहेतुकपितृवाक्यपरिपालनद्वारा समस्तैश्वर्यरहित
 इत्यर्थः । रां सकलप्राणिपोषकां रां भूमिं प्रति वहन्त्या आत्मसौशील्यानुकूल-
 प्रभुसेवां वाञ्छन्त्या अतिभक्तिभरसहितभरतोपयुजा सकलप्रजया भरन्त्यै
 सकलप्राणिसंरक्षणमाप प्रक्रियायै रां आहितः भूमिं प्रति तत्प्राप्तिं प्रति
 यः वनवासात्पुरमागच्छेति महाभक्तिपुरस्कृतप्रयत्नेन प्रार्थितः यः रायां पतिं

प्रसिद्धक्षत्रियधर्मरूपाणामैश्वर्याणां पतिं अत्र विभक्तिव्यत्ययश्छान्दसः ।
 “बहुलं छन्दसि” इत्यत्र बहुलग्रहणादतः पतिः प्रतिष्ठापक इत्यर्थः । यः
 रां स्वीयपठनश्रवणधारणानुष्ठानैः परिपावयित्रीं सकललोकान् रां रावयति
 समस्तदुरितातिगा ऋग्यजुस्सामात्मिका श्रुतिः तां धरते तत्प्रतिपाद्यत्वेन
 प्रतिष्ठां धत्ते । प्रतिपाद्यमाहात्म्य इत्यर्थः । यः पुनरपि चतुर्दशाब्दसङ्कल्पित-
 वनवासप्रतिज्ञानिवृत्त्यनन्तरं धरिष्यै श्रीमदयोध्याभूमिप्राप्त्यै हेतुभूतां रां
 सकललोकपावनहेतुभूतश्रीरामायणकथारूपिणीं कीर्तिसम्पत्तिं वहतः वहते ।
 अत्रापि विभक्तिव्यत्ययश्छान्दसः । उद्ब्रूयाय अवतारविशेषेऽपि परमपावन-
 शक्तिवहाय श्रीरामस्वरूपाय परमात्मने स्वाहा नम इति सूत्रार्थः ॥ ५ ॥

यो ब्रह्मशब्दः प्रणवः प्रधानः शब्दः शब्दान्तरात्मनित्यो
 वियन्तः यत्तः प्रतरन् प्रकामं प्राजापत्यं प्रतरन् प्रकुर्वन् भूयो
 भूत्यै अचरं चराय स्वाहा ॥ ६ ॥

उत्तरप्रतिपाद्यमानायाः न्यासविद्यायाः प्रधानभूतप्रणवस्वरूपप्रति-
 पादनमुखेन न्यासविद्याफलं च प्रतिपादयति—यो ब्रह्मशब्द इत्यादिना ।
 यो ब्रह्मशब्दवाच्यप्रणवः । “ओमिति ब्रह्म” इति श्रुतिः । तस्य प्रधानोऽयं
 शब्दः शब्दान्तरात्मशब्दबुद्धिकर्मणां त्रिष्वक्षणावस्थायित्वात् शब्दनाशेऽपि
 परमात्मनो नाशाभावात् नित्य इत्युक्तम् ।

कठवल्लिकोपनिषदि—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

एतद्वचेवाक्षरं ब्रह्म ह्येतदेवाक्षरं परम् ।

एतद्वचेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
 एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ इति ॥
 विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
 सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
 अकारेणोच्यते विष्णुः सर्वलोकेश्वरो हरिः ।
 उद्धृता विष्णुना लक्ष्मीरुकारेण तथोच्यते ।
 मकारस्तु तयोर्दास इति प्रणवलक्षणम् ॥

सर्वशेषिस्तवाहमिति प्रपत्तिप्रतिपाद्यद्वारा प्रपन्नस्य प्राप्यं प्रतिपादयति—
 वियत्त इत्यादिना । वियत्तः आकाशात्परं प्रतरन् स्वर्गादिकमतिक्रम्य प्रकामं
 अत्यन्तं प्राजापत्यं प्रजापतिलोकं प्रतरन् प्रकुर्वन् प्रकर्षेण ब्रह्मलोकमपि तरणं
 कुर्वन् भूयो भूत्यै नित्यैश्वर्याय अणिमाद्यष्टैश्वर्यानपेक्षया नित्यत्वात् “अपहत-
 पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघ्रित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः”
 इति गुणाष्टकाविर्भावायार्चिरादिमार्गेण गत्वा सायुज्यं प्रतिपन्नायेति प्रपन्नास्ते
 तपस्विनः भक्तास्तपस्विनः ।

किंकरा मम ते नित्यं भवन्ति निरुपद्रवाः ॥
 लोकेषु विष्णोर्निवसन्ति केचित्समीपमृच्छन्ति च केचिदन्ये ।
 अन्ये तु रूपं सदृशं भजन्ते सायुज्यमन्ये स तु मोक्ष उक्तः ॥
 सायुज्यमुभयोरत्र भोक्तव्यस्याविशिष्टता ।
 सार्ष्टिता तत्र भोगस्य तारतम्यविहीनता ।
 सामरस्यं हि सायुज्यं वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥
 ऐहलौकिकमैश्वर्यं स्वर्गाद्यं पारलौकिकम् ।
 कैवल्यं भगवन्तं च मन्त्रोऽयं साधयिष्यति ॥

वसिष्ठकराळजनकसंवादे—

परेण परधर्मे च भवत्येष समेत्य वै ।
 विशुद्धधर्मा शुद्धेन बुधेन च सुबुद्धिमान् ॥
 विमुक्तधर्मा मुक्तेन समेत्य भरतर्षभ ।
 वियोगधर्मणा चैवावियोगात्मा भवत्यपि ॥
 विमोक्षणाविमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत् ।
 शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमिति . . . त्वमान् ॥
 विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना ।
 केवलात्मा तथा वैषः केवलेन समेत्य वै ॥
 स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमुपाश्नुते ।
 एतावदेतत्कथितं मया ते तथ्यं महाराज यथार्थतत्त्वम् ।
 अमत्सरस्त्वं प्रतिगृह्य चार्धं सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम् ॥ इति ॥

अष्टैश्वर्य्य मानसोल्लासे—

अत्यन्तमणुषु प्राणिष्वात्मत्वेन प्रवेशनम् ।
 अणिमासंज्ञमैश्वर्य्य व्याप्तस्य परमात्मनः ॥
 ब्रह्माण्डादिशिवान्तायाः षट्त्रिंशत्तत्त्वसंहतेः ।
 भवाश्च व्याप्यवृत्तित्वमैश्वर्य्य महिमाह्वयम् ॥
 परमाणुसमाङ्गस्य समुद्धरणकर्मणि ।
 गौरवे मेरुतुल्यत्वं गरिमाणं विदुर्बुधाः ॥
 महामेरुसमाङ्गस्य समुद्धरणकर्मणि ।
 अत्यल्पत्वमतुल्यत्वं लघिमेति प्रकीर्त्यते ॥
 पाताळवासिनः पुंसो ब्रह्मलोकावलम्बनम् ।
 प्राप्तिनामकमैश्वर्य्य सुष्ठुहाष्ट्र्यौपयोगिनाम् [?] ॥

आकाशगमनादीनामन्यासां सिद्धिसम्पदाम् ।
 स्वेच्छामात्रेण संसिद्धिः प्राकाम्यमभिधीयते ॥
 स्वशरीरप्रकाशेन सर्वार्थानां प्रकाशनम् ।
 प्राकाम्यमिदमैश्वर्यमिति केचित्प्रचक्षते ॥
 स्वेच्छामात्रेण लोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकर्तृता ।
 सूर्यादिना वियोक्तृत्वमीशित्वमभिधीयते ॥
 सलोकपालाः सर्वेऽपि लोकाश्चेद्वशवर्तिनः ।
 तदैश्वर्यं वशित्वाख्यं सुलभं शिवयोगिनाम् ॥ इति ॥

चराय संसरते प्रत्यगात्मने अचरन्नाशरहितमैश्वर्यं कुर्वन् । यद्वा
 अचरन्नाशरहितमैश्वर्यं कुर्वन् चराय सृष्टिस्थितिसंहारादिगतिं कुर्वते
 तुभ्यमित्यर्थः ॥

विष्णुपुराणे—

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां ब्राह्मं सन्न्यासिनां स्मृतम् ।
 एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनो हि ते ।
 तेषां तत्परमस्थानं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥ इति ॥

प्रधानशब्द इत्यनेन त्रिमात्रशब्दः । एवं श्रूयते उपनिषदि—“ यः
 पुनरेतत्त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये
 सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः
 स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम् ” इति । प्रणवशब्दार्थः अथर्वशिरसि—
 “ अरसादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गि-
 रसश्च यज्ञब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणवयति । तस्मादुच्यते प्रणवः ” इति । न्यास-
 विद्यास्वरूपमुत्तरत्र प्रतिपाद्यते ॥ ६ ॥

यो वा त्रिमूर्तिः परमः परश्च

त्रिगुणं जुषाणः सकलं विधत्ते ।

त्रिधा त्रिधा वा विदधे समस्तं

त्रिधा त्रिरूपं सकलं धराय स्वाहा ॥ ७ ॥

त्रिविक्रमस्यायं मन्त्रः । यः परमात्मा विष्णुः त्रिमूर्तिः
ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

विष्णुपुराणे—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ इति ॥

यद्वा—त्रिविक्रमत्वात्पदविक्षेपभेदेन त्रिमूर्तिः “इदं विष्णुर्विचक्रमे
त्रेधा निदधे पदम्” इति श्रुतिः । परमः त्रिविक्रमावतारापेक्षया ब्रह्मरुद्रादिषु
समाभ्यधिकाभावात् परमशब्दः । परश्च अवतारत्वेऽपि उत्कृष्टः । त्रिगुणं
जुषाणः “जुषी प्रीतिसेवनयोः” इति त्रिगुणेषु सात्विकराजसतामसेषु
प्रीतिं कुर्वन् । यद्वा—सेवमानः सकलं चिदचिदात्मकं प्रपञ्चं विधत्ते ।
“व्यस्कन्नाद्रोदसी विष्णुरेते दाधार पृथिवीमभितो मयूखैः” इति विष्णुरेव
ब्रह्मशब्दवाच्य इति ज्ञापयितुं ब्रह्माभ्यधितिष्ठतु भुवनानि धारयन्निति ।
“नमो विष्णवे बृहते करोमि ।”

बृहत्वात् बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्मेति प्रकीर्तितम् ॥ इति ॥

यद्वा—विधत्ते जगत्सृष्ट्यादिश्चरभेदेन त्रिधा त्रिधा वा विदधे
समस्तं ह्रस्वदीर्घसमरूपेण गार्हपत्यान्वाहार्याहवनीय इति त्रिधाग्निरूपेण
उत्तममध्यमाधमस्वर्गनरकमोक्षइत्यादि समस्तं त्रिधा त्रिधा विदधे चकार
त्रिरूपं स्त्रीपुल्लपुंसकादि त्रिधा भूत्वा त्रिविक्रमरूपी भूत्वा निवहं
स्वस्वकीयसहितैर्देवमनुष्यादिभिरावृतं विधत्ते धृतवान् तस्मै ॥ ७ ॥

यद्वा कृतममृतञ्चराणां यत्सर्वनिष्ठमजरं समस्तं यत्पश्यमान-
मात्माभिजुषाणमन्तस्सुषुप्त्यानभिगम्यमानाय स्वाहा ॥ ८ ॥

त्रिविक्रमावतारे प्रत्यक्षे कृतस्य परमात्मानपरं रूपं स्वप्नेऽपि
देवैर्द्रष्टुमशक्यमित्याह—यच्चेति । कृतं त्रिविक्रमरूपेण कृतं सर्वनिष्ठमन्तर्व्या-
प्तमजरमपहतपाप्मत्वादियुतं समस्तं बहिश्च व्याप्तम् । यद्वा परिदृश्यमानं
सर्वमात्माभिजुषाणम् ।

आत्मा बुद्धौ धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि । इति ॥

जीवात्मना सेवमानमेवंविधरूपमन्तर्हृदये सुषुप्त्या स्वप्नेनापि अमृतं च-
राणां अमृतं चरन्तीति अमृतंचरा देवाः । तेषामपि अनभिगम्यमानाय
ध्यातुमशक्याय । यद्वा—चराणां देवादीनाममृतं कृतं समुद्रमथनादिकं
कृतम् । यद्रूपं तत्पश्यमान चेदपि सुषुप्त्या स्वप्नेनापि प्राप्तुमशक्यमिति
तस्मै ॥ ८ ॥

कः कोशमङ्गे कुशलं विधाय साकृतं कृण्वतेऽग्र इदं
सुकान्तं ककुद्धते ते कामचरं चराय स्वाहा ॥ ९ ॥

कः कोशं ब्रह्माण्डकोशमङ्गे स्वाङ्गे कुशलं क्षेमसहितं विधाय
साकृतं आकृतिसहितं कृण्वते तत्र ब्रह्माणं कुर्वते अग्रे सृष्ट्यादौ ककुद्धते
श्रेष्ठचराय ब्रह्मणे सुकान्तं मनोहरं कामचरं अण्डकोशं विधाय तत्र साकृतं
आकृतिसहितब्रह्माणं कृण्वते तुभ्यम् । अन्यत्रोपनिषदि—“अथ पुनरेव
नारायणः सोऽन्यं कामो मनसाध्यायत । तस्य ध्यानान्तस्थस्य
ललाटात् स्वेदोपहताः प्रपत आपस्तासु तेजो हिरण्यमण्डलस्तत्र ब्रह्मा
चतुर्मुखोऽजायत” इति ॥ ९ ॥

यं यज्ञैर्मुनयो जुषन्ति यं देवाः परमं पवित्रं भविष्य-
न्त्यार्तिषु प्रणताः प्रधानाः यं सूरयो जपन्तो योगिनः सूक्ष्मैः
सुप्रदर्शनैः पश्यन्तीश्वराय स्वाहा ॥ १० ॥

यं परमात्मानं महाविष्णुं यज्ञैः “यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु”
इति समाराधनैः पाकयज्ञहविर्यज्ञसोमयज्ञैः ।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ इति ॥

“यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति” इति श्रुतेः ।
द्रव्ययज्ञादिभिर्मुनयः वैखानसाः ।

वैखानसैर्मुनिगणैः नित्यमाराधितोऽमलैः ।

वैखानसैर्मुनिश्रेष्ठैः पूजिताय वेङ्कटेशाय नमः ॥

इति पद्मवचनाचर्चनम् । अत्र प्रतिपादिता मुनय आपस्तम्बादयः ।
किंनरः स्वरिति चेत् ।

गारुडे—

पुरा चतुर्मुखादेशाच्चत्वारो मुनयोऽमलाः ।

प्रणीय वैष्णवं शास्त्रं भूमावभ्यर्च्य यं नृपः ॥

मरीचिर्मन्दरे विष्णुमर्चयामास केशवम् ।

आदेशाद्ब्राह्मणो विष्णुं श्रीनिवासे त्रिरर्चयेत् ॥

काश्यपो विष्ण्वधिष्ठाने शुभक्षेत्रे भृगुर्मुनिः ।

नन्दायां दक्षिणे सीम्नि श्रमात्तरे [?] सखा ।

तच्छुद्धौ शुचिषं नाम भृगुणा स्थापितो हरिः ॥ इति ।

ब्रह्मकैवर्ते पुष्करतीर्थवैभववर्णने—“निम्नगानां यथा गङ्गा”
इत्यारभ्य,

यथा मुनीनां विखना आदिभूत उदाहृतः ॥ इति श्रुतिः ॥

धेनुर्वहाणामदितिस्सुराणां ब्रह्मा ऋभूणां विखना मुनीनाम् ॥ इति ॥

एवं श्रुतिस्मृतिपुराणादिमुख्यत्वेन वैखानसानामेव मुनिशब्दवाच्यत्व-
प्रतिपादनात् यज्ञैर्मुनयो जुषन्ति इत्युक्तत्वात् । आपस्तम्बादीनामद्वार-
भगवद्भजनविधिप्रतिपादनाभावात् । पञ्चपूजाप्रतिपादकस्य यमित्यत्र एकवच-
नास्वारस्याभावाच्च । वैखानसाः मुनयः जुषन्ति । यज्ञैः प्रीणयन्ति सेवां
कुर्वन्तीति वा । यज्ञशब्द आराधनपरः यं महाविष्णुं प्रधानदेवाः ब्रह्मरुद्रादयः ।

न यस्य रूपं न बलप्रभावो न च स्वभावः परमस्य पुंसः ।

विज्ञायते सर्वपितामहाद्यैस्तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥ इति ॥

रूपबलप्रभावातिशयेन चिन्त्यत्वात् परमं इत्युक्तम् । पवित्रं उपनिषदि
“स एष सर्वभूतान्तरात्मापहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः” इति ।

अशुद्धा ब्रह्मरुद्राद्या जीवा विष्णोर्विभूतयः ।

तान्वै कुदृष्टसाम्यत्व परत्वादप्युपासते ॥ इति ॥

अतएव पवित्रमित्युक्तम् । यद्वा स्वभक्तान् वज्रादपि त्रायत इति
पवित्रशब्दप्रयोगः ।

दन्ता गजानां कुलिशाग्रविष्णुराशीर्णयत्तेन जलं ममैतत् ।

महद्विपत्तित्वविनाशनो यो जनार्दनानुस्करणानुभावः ॥ इति ॥

अमृतापहरणे गरुडेन्द्रयोर्युद्धे च द्रष्टव्यम् । अत एव आर्तिषु प्रणता
भविष्यन्ति ।

श्रीमद्रामायणे बालकाण्डे—

राक्षसो रावणो मूर्खो वीर्योत्सेकेन बाधते । इत्यादि ।

वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिस्सह ।

सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ॥

त्वं गतिः परमो देवः सर्वेषां नः परन्तपः ।
 वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ॥
 एवमुक्तः सुरगणैः विष्णुस्त्रिदशपुङ्गवः ।
 पितामहपुरोगांश्च सर्वलोकनमस्कृतः ॥
 अब्रवीत् त्रिदशान् सर्वान् समेतान् धर्मसंहितान् ।
 भयं त्यजत भद्रं वो वधार्थं युधि रावणम् ॥
 सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ।
 हत्वा क्रूरं दुरात्मानं देवर्षीणां भयावहम् ॥ इत्यादि ॥

भागवते—

पुरासुराय गिरिशो वरं दत्वाप सङ्कटम् ।

। इत्यारभ्य अन्ते तु सङ्कटं लेभे नर चितः शिव इत्युक्तम् [?] बाणासुर-
 युद्धे च द्रष्टव्यम् ।

प्रसादयामास भवो देवं नारायणं प्रभुम् ।

शरणं च जगामाद्यं वरेण्यं वरदं हरिम् ॥ इति ॥

अनेन ब्रह्मरुद्रादीनामुपास्यराहित्यं तत्प्रयुक्तव्रतानामप्युपादेयराहित्यं
 च दर्शितम् । प्रधानधर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थेषु स्वाभिमतार्थप्रधान-
 मार्तिषु स्वाभिमतार्थालाभे नाशे च प्रणता भविष्यन्ति ।

गीतायाम्—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् । इति ॥

यं परमात्मानं यं मन्त्रमिति काकाक्षिन्यायेनोभयत्रान्वयः । यं
मन्त्रराजमष्टाक्षरं यं विष्णुषडक्षरं मन्त्रं जपन्तः ।

पराशरः—

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत ।
यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयेत् ॥
अपरैरश्रुतं किञ्चिद्य उपांशुजपः स्मृतः ।
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ॥
मन्त्रार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥
अष्टाक्षरश्च यो मन्त्रो द्वादशाक्षर एव च ।
षडक्षरश्च यो मन्त्रो विष्णोरमिततेजसः ॥
एते मन्त्राः प्रधानाः स्युर्वैदिकाः प्रणवैर्युताः ।
प्रणवेन विहीनस्तु तान्तिका एव कीर्तिताः ॥ इति ॥

सूरयो नित्यसूरयः अनन्तगरूढादयः पश्यन्ति । “तद्विष्णोः परमं
पदं सदा पश्यन्ति सूरयः” इति श्रुतिः । यद्वा ब्रह्मविदः पश्यन्ति योगिनः
यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरित्यष्टाङ्गयोगिनः ध्यानेन
पश्यन्ति ।

यद्वा—

योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतिभक्तिषु ।

इति भगवत एवोपायोपेयत्वम् । अनेन सिद्धरूपा प्रपत्तिः साध्यरूपा
प्रतिपाद्यते ।

समर्थपुरुषार्थानां साधकस्य दयानिधेः ।
 प्रमतः पूर्वसिद्धत्वात्सिद्धोपायविदो विदुः ॥
 भक्तिप्रपत्तिप्रमुखैस्तद्वशीकारकारणम् ।
 तत्तद्वलानि साध्यत्वात्साध्योपायं विदुर्बुधाः ॥ इति ॥
 ईदृशः परमात्मा यः प्रत्यगात्मा तथेदृशः ।
 तत्सम्बन्धानमिति [?] योगः प्रकीर्तितः ॥

यद्वा—

योगःसन्नहनोपायध्यानसङ्गतिभक्तिषु ॥ इति ॥
 स्वामिन् स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।
 स्वदत्तस्वधया स्वार्थं स्वस्मिन्नचस्यति मां स्वयम् ॥ इति ॥

सर्वदानुसन्धानम्—

स्वोजीवनेच्छा यदि ते स्वदत्तायां स्पृहा यदि ।

आत्मनिक्षेपणं दास्यं हरेः स्वाम्यं सदा स्मरेत् ॥ इति ॥

कर्मयोगिनस्तं सुप्रदर्शनैः उद्दिष्टादिकालव्यतिरिक्तकालेषु भगव-
 दाराधनादिकं कुर्वन्ति । भगवद्भक्ताः कैङ्कर्यपराः परात्मयोगिन इत्युच्यन्ते ।
 एतेषां भगवद्विश्लेषमसहमानानाम् ।

न प्रदोषे हरिं पश्येत् ।

यदि पश्येत्प्रमादेन द्वादशाब्देन नश्यति ॥

इति हरिदर्शननिषेधे नास्त्येव स्मृतिः—

अर्चकान् परिचारांश्च वैष्णवान् ज्ञानिनो यतीन् ।

दासीदासादिकांश्चैव ॥

तापत्रयानलोज्ज्वालामालिते देहमन्दिरे ।

विष्णुभक्तिरसैः शान्तिं जानन् कः कालमीक्षते ॥

कालोऽस्ति यज्ञे कालोऽस्ति दाने कालोऽस्ति वै जपे ।

सर्वेशदर्शने कालो वक्ष्यमाणस्तदञ्चितः ॥ इति ॥

मौनं वाचोनिवृत्तिः स्यान्नात्र भाषणसंस्कृतम् ।

नान्यदेवेरणं विष्णोः सदा ध्यायेच्च कीर्तयेत् ॥

सुप्रदर्शनैरित्युक्तं सुप्रदर्शनैः पश्यन्ति । अत्र प्रणता इत्यनेन
परमात्मनो नारायणस्य पादारविन्दे न्यस्तभरा उच्यन्ते । परमात्मनि
नारायणे सर्वभारसमर्पणात् ।

संज्ञातनैरपेक्षं तु नम इत्युच्यते बुधैः ।

भरन्यासबलादेव स्वयत्नविनिवृत्तये ।

अत्रोपायान्तरस्थाने रक्षको विनिवेशते ॥ इति ॥

प्रकर्षेण नताः प्रणताः । नमःशब्दस्य स्थूलसूक्ष्मपरमो जन इति
अहिर्बुध्न्येन व्याख्यातम् ।

प्रेक्षावतः प्रवृत्तिर्या प्रह्वभावात्मिका स्वतः ।

उत्कृष्टः परमुद्दिश्य तन्ममः परिगीयते ॥

लोके चेतनवर्गस्तु द्विधैव परिगीयते ।

ज्यायांश्चैव तथाज्यायान् नैवाख्या विद्यते परा ॥

कालतो गुणतश्चैव प्रकर्षो यत्र तिष्ठति ।

शब्दस्यौन्मुख्यया वृत्त्या ज्यायानित्यवलम्ब्यते ॥

अतश्चेतनवर्गस्तु स्मृतः प्रत्यवरो बुधैः ।

तज्ज्यायांश्च तयोर्योगः शेषशेषितयेष्यते ॥

अज्यायांसः परे सर्वे ज्यायानेको मतः परः ।

नन्तनन्तृस्वभावेन तेषां तेन समन्वयः ॥

नन्तव्यः परमः शेषी शेषा नन्तार ईरिताः ।
 नन्तुनन्तव्यभावोऽयं न प्रयोजनपूर्वकः ॥
 निश्चयो हि स्वभावोऽयं नन्तुनन्तव्यतात्मकः ।
 उपाधिरहितो नायं येन भावेन चेतनाः ॥
 नमनं जायते तस्मै तद्वा नमनमुच्यते ।
 भगवान् नः परो नित्यमहं प्रत्यवरः सदा ॥
 इति भावो नमः प्रोक्तो नमसः कारणं हि सः ।
 नमयत्यपि वा देवं प्रह्वभावयति ध्रुवम् ।
 अतो वा नम उद्दिष्टं यत्तन्नामयति स्वयम् ॥
 वाचा नम इति प्रोच्य मनसा वपुषा च यत् ।
 तन्नमः पूर्वमुद्दिष्टमतोऽन्यन्यूनमुच्यते ॥
 इयं करणपूर्तिः स्यादङ्गपूर्तिमिमां शृणु ।
 शाश्वती मम संसिद्धिरियं प्रह्वो भवामि यत् ॥
 पुरुषं परमुद्दिश्य न मे सिद्धिरतोऽन्यथा ।
 इत्यङ्गमुदितं श्रेष्ठं फलेच्छा तद्विरोधिनी ॥
 अनादिवासनारोहादनैश्वर्यत्वभावजात् ।
 मलावकुण्ठितत्वाच्च दृक्क्रियाविहतिर्हि या ॥
 तत्कार्पण्यं तदुद्धोदो द्वितीयं ह्यङ्गमीदृशम् ।
 स्वस्वातन्त्र्यावबोधस्थं तद्विरोध उदीर्यते ॥
 परत्वे सति देवोऽयं भूतानामनुकम्पया ।
 अनुग्रहैकधीर्नित्यमित्येतद्भक्तवत्सलः ॥

उपेक्षको यथा कर्मफलदायीति या मतिः ।
 विश्वासात्मतया यत्तो त्वदीयं वा तु वै सदा ॥
 एवंभूतोऽप्यशक्तः सन् नस्त्राता भवितुं क्षमः ।
 इति बुद्ध्वा स्वदेवस्य गोप्तृशक्तिनिरूपणम् ॥
 चतुर्थमङ्गमुद्दिष्टममुष्या व्याहतिः पुनः ।
 उदासीनो गुणाभावादित्युत्प्रेक्षा निमित्तजा ॥
 स्वस्वस्वामिनिवृत्तिर्या प्रातिकूल्यविवर्जनम् ।
 तदङ्गं पञ्चमं प्रोक्तमाज्ञाख्याख्यातवर्जनम् ॥
 अशास्त्रीयोपवासे तु तद्व्याख्यात उदीर्यते ।
 चराचराणि भूतानि सर्वाणि भगवद्वपुः ॥
 अतस्तदानुकूल्यं मे कार्यमित्येव निश्चयः ।
 षष्ठमङ्गं समुद्दिष्टं तद्विघाते निराकृतिः ॥
 पूर्णमङ्गैरुपाङ्गैश्च नमनं ते प्रकीर्तितम् ।
 स्थूलो यो नमनस्यार्थः सूक्ष्ममन्यं निशामय ॥
 चेतनस्थं यदा मन्त्रं स्वस्मिन् स्वीये च वस्तुनि ।
 नम इत्यक्षरद्वन्द्वं तद्धाम ह्यन्यवाचकम् ॥
 अनादिवासनारूढमिथ्याज्ञाननिबन्धनात् ।
 आत्मात्मीयपरार्चस्ता यास्वतन्त्रस्वतामिति [?] ।
 मेन एवं समीचीना बुद्ध्या साऽत्र निवार्यते ॥
 नाहं मम स्वतन्त्रोऽहं नास्तितस्स्वार्थ उच्यते ।
 न मे देहादिकं वस्तु स शेषः परमात्मनः ॥
 इति बुद्ध्वा निवर्तन्ते तानि सेयं मनीषिका ।
 अनादिवासनाजातैर्बोधैस्तैर्विकल्पितैः ॥

रुषितं यद्दृढं चित्तं स्वातन्त्र्यं सत्त्वधीमयम् ।
 चित्तद्वैष्णवसार्वभौम्यप्रतिबोधसमुत्थया ॥
 नम इत्यनया वाचा मन्त्रात्स्वस्मादपोह्यते ।
 इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परमं स्वं निशामय ॥
 पन्था नकार उद्दिष्टो मः प्रधान उदीर्यते ।
 विसर्गः परमेशस्तु तत्रार्थोऽयं निरूप्यते ॥
 अनादिपरमेशस्तु शक्तिमान् पुरुषोत्तमः ।
 स्वप्राप्तये प्रधानोऽयं पन्था नमननामवान् ॥
 इति ते त्रिविधः प्रोक्तो नमःशब्दार्थतां प्रति ।
 निवेदयेत् स्वमात्मानं विष्णोरमिततेजसि ॥
 तदात्मना मनःशान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ।
 शरीरपातकाले च सार्थस्वानुग्रहं स्वयम् ॥
 परिपाकं प्रपन्नानां प्रयच्छति यथातथम् ।
 अङ्गोलतैलसिक्तानां बीजानामचिराद्यथा ।
 विपाकः फलपर्यन्तस्तथात्रेति निदर्शितः ॥ १० ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः

द्वितीयोऽनुवाकः

यो वा गविष्टः परमः प्रधानः पदं वा यस्य सत्त्वमासीत्
 यस्योपरि त्वं मुनयो न पश्यन्ति तस्मै मुख्याय विष्णवे स्वाहा ॥ १ ॥

यो वा गविष्ठ इत्यादि पञ्चमन्त्राननुक्रमात् पञ्चोपनिषन्मन्त्रे यः परमात्मा गविष्ठः भूमिस्थः अवकाशप्रदः । यद्वा चराचरात्मकेषु लोकेषु आकाशरूपेण स्थितः । परमः व्याप्त्या परमः प्रधानः पञ्चभूतेषु प्रधानः कारणभूतः । पदं वा यस्य सत्त्वमासीत् यस्याकाशस्य पदमुत्पत्तिस्थानं त्वमेवासीत् । आसीदिति छान्दसः । यस्य परमात्मनस्तव उपरि त्वं मुनयो न पश्यन्ति । मननशीलो मुनिः नारायणपारायणो निर्द्वन्द्वो मुनिरिति वा मुख्याय तस्मै विष्णवे तुभ्यम् ॥ १ ॥

यो वा वायुर्द्विगुणोऽन्तरात्मा सर्वेषामन्तश्चरतीह विष्णोः
स त्वं देवान् मनुष्यान् मृतान् परिसंजीवसे स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा वायुः महाभूतचतुर्थः । द्विगुणः शब्दस्पर्शवान् इति । द्वौ वायोरिति अन्तरात्मा व्याप्तः । सर्वेषामन्तश्चरतीह प्रकृतिमण्डले विष्णोः स वायुः त्वं देवान् मनुष्यान् मृतान् परिसंजीवसे देवान् वर्धयसि मृतान् मनुष्यान् सान्दीपनीपुत्रब्राह्मणपुत्रादीन् सञ्जीवसे तुभ्यम् ॥ २ ॥

त्वमग्ने त्रिगुणो वरिष्ठः परं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वेषां त्वं
पालनाय हुतममृतं वहिष्यसे स्वाहा ॥ ३ ॥

हे अग्ने त्वं त्रिगुणो गन्धरसविहीनास्त्रयोमेरिति वरिष्ठः श्रेष्ठः परं ब्रह्म परं ज्योतिः “अग्निः सर्वा देवताः” इति श्रुतिः । सर्वदेवात्मकत्वात्परं-ब्रह्मशब्दप्रयोगः । प्रलयकालापेक्षया उत्कृष्टज्योतिः । सर्वेषां देवमनुष्यादीनां त्वं पालनाय रक्षणाय हुतममृतं वहिष्यसे । अमृतरूपेण सर्वेषां प्रापयिष्यसि । त्वया हुतममृतरूपेण कलाद्वारेण प्रापयिष्यसि । श्रीवैखानससूत्रे “यथावास्य सुषुम्ना ज्योतिष्मती प्राणाहुती रेतोधाः” इत्येता आहुतीर्गृहीत्वा “रश्मयश्च-तस्रः पृथनौ सन्दधीरन् सह वा शुद्धा अमृतावहाचीनुहि दिव्यालोकपावनीत्ये-

ताभिश्चन्द्रमसमाप्याययत्यसौ नु राजा सोम आप्यायितो मूलगामीव
पायान्नस्यमृतोद्गारिसुरप्रिया ” इत्येताभिरमृतेन तां देवतां तर्पयति ।
मनुष्याणां त्वधिकं पाकभेदेन प्रापयसि । त्वं समर्थः । एवंरूपायामिस्वरूपिण
इत्यर्थः ॥ ३ ॥

त्वं जीवस्त्वमापस्सर्वेषां जनिता त्वमाहरः त्वं विष्णो
श्रमापनुदाय चतुर्गुणाय स्वाहा ॥ ४ ॥

हे विष्णो जीवकारणभूता आपस्त्वं छान्दोग्ये ईरितम् “पञ्चम्या-
माहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति” इति ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ इति ॥

सर्वेषां जनिता उत्तरोत्तरं कारणत्वेन जनिता । त्वमाहरः त्वमाहर
छान्दसत्वात् त्वमाहर इति । सर्वेषां श्रमापनुदः सर्वेषां स्नानपानादिना
श्रमशान्तिप्रदः । यद्वा रामकृष्णाद्यवतारादिषु काळिन्ध्यादिरूपेण श्रम-
शान्तिप्रदः ।

संभक्षयित्वा भूतानि जगत्येकार्णवीकृते ।

नागपर्यङ्कशयने शेतेऽसौ परमेश्वरः ॥ इति ॥

चतुर्गुणाय गन्धविहीनाश्चत्वारोऽपां गुणा इति तस्मै ॥ ४ ॥

भूमेर्वितन्वन् प्रतरन्प्रकामः पोष्यमानः पञ्चभिः स्वगुणैः
प्रसन्नैस्सर्वाणि मां धारयिष्यसि स्वाहा ॥ ५ ॥

हे परमात्मन् प्रकामः ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।

कामभूतः भूमेः पञ्चभिः स्वगुणैः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा इति पञ्चेन्द्रियविषयभूतैर्गुणैः सर्वान् वितन्वन् विस्तारयन् विषयप्रवणान् कुर्वन् पोष्यमानः पवित्रभूतः प्रतरन् तदाक्रम्य स्थितस्सन् ,

गीतायाम्—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरिभिस्सर्वमिदं जगत् ।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ इति ॥

स्वतेजसाऽप्याधीतैः प्रसन्नैर्गुणैरिमान् लोकान् धारयिष्यसि ।
“व्यस्कन्नाद्रोदसी विष्णुरेते दाधार पृथिवीमभितो मयूखैः” इति श्रुतेः ।
भूम्या ऐन्द्रियविषयशक्तप्रदायेत्यर्थः ॥ ५ ॥

मनस्त्वं भूत्वा मनःप्रदोऽग्रे त्वत्तो भूतं सम्भावयिष्यसि
सर्वेषां कायानामर्हमर्हते स्वाहा ॥ ६ ॥

हे परमात्मन् त्वं अग्रे सृष्ट्यादौ मनो भूत्वा त्वत्तः त्वत्सकाशादुद्भूत-
मनोभिमानिदेवतां संभावयिष्यसि सङ्कल्पयिष्यसि । सर्वेषां देवमनुष्यादीनां
कायानां शरीराणां यथार्हं मनःप्रदः ।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । इति श्रुतेः ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ इति ॥

मनोरूपेण भवितुं अर्हते समर्थायेत्यर्थः ॥ ६ ॥

त्वं बुद्धिर्भूतानामन्तरात्मा पुण्यवतां पुण्येषु सज्जमानः त्वं
बुद्ध्वा विचिन्वमानः पुण्यरूपाय स्वाहा ॥ ७ ॥

हे परमात्मन् त्वं बुद्धिः बुद्धिरूपः । भूतानां पञ्चभूतानां अन्तरात्मा
तत्तदभिमानिदेवतानामन्तरात्मा । पुण्यवतां पुण्येषु सज्जमानः निविष्टः ।

त्वं बुद्ध्या विचिन्वमानः “बुद्धिस्तात्कालिकी मता” इति । तथा बुद्ध्या विचिन्वमानः पुण्यरूपाय “सत्यं तपो दमः शमो दानं धर्मः प्रजननमग्नयोऽग्नि-
होत्रं यजमानः संन्यासः” इति ते पुण्यशब्दवाच्याः । “यद्वचोमनः स्थानं
गळान्तरं बुद्धेर्वचनमहंकारस्य हृदयचित्तस्य नाभिरिति बुद्ध्या विचिन्वमानः”
इत्युक्तत्वात् । अभ्यासरूपमात्रेण वा विचिन्वमानः तस्मै ॥ ७ ॥

यः सूक्ष्मान् सञ्चरमाणान् भावाभावान् भव्याभव्यान्
कुर्वन्नात्मीयममितो धुनोति धुरं वहिष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

यः परमात्मा सूक्ष्मान् भूतसूक्ष्मान् सञ्चरमाणान् विरजापर्यन्तं
सञ्चरमाणान् भावाभावान् सूक्ष्मरूपत्वात् भावरूपान् सुखदुःखानुभवा-
भावात् अभावरूपान् भव्यान् “अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको
विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः” इति गुणाष्टकाविर्भावाय
भव्यान् अमानवकरस्पर्शात्पूर्वं गुणाष्टकाविर्भावाभावात् अभव्यान्
कुर्वन्नात्मीयं ब्रह्मालङ्कारादिनालङ्कृत्य मुक्तं परमात्मसम्बन्धं कुर्वन् अमितः
अमानवः सुकृतदुष्कृते धुनोति ।

कौषीतकिब्राह्मणे—

“तमेतं देवयजनं पन्थानमासाद्यामिलोकमागच्छति । स वायुलोकं
स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकम् ।
तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्यारो हृदो मुहूर्तोऽन्वेष्टिहा विरजा नदील्यो
वृक्षः सालज्जं संस्थानं अपराजितमायतनं इन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ विभुप्रमितं
विचक्षणसन्ध्यमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी
पुष्पाण्यादायावयतौ वै च जगन्यम्बा चाम्बावयवाश्चाप्सरसोऽम्बया नद्यः ।
तमित्थंविधा गच्छति । तं ब्रह्माहाभिधावत मम यशसा विरजां वा
पालयन्नर्दी प्रापं न वा अयं जिगीष्यतीति ॥

तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति । शतं मालाहस्ताः शत-
माञ्जनहस्ताः शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फणहस्तास्तं ब्रह्मा-
लङ्कारेणालङ्कुर्वन्ति । स ब्रह्मालङ्कारेणालङ्कृतो ब्रह्मविद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति ।
स आगच्छत्यारं हृदं तं मनसात्येति । तमृत्वा संप्रतिविदो मज्जन्ति । स
आगच्छति । मुहूर्तान्विहेष्टिहास्तेऽस्मादपद्रवन्ति । स आगच्छति विरजां नदीं
तां मनसैवात्येति । तत्सुकृतदुष्कृते धूनुते । तस्य प्रिया ज्ञातयस्सुकृतमुपयन्त्य-
प्रिया दुष्कृतम् । तद्यथा रथेन धावयन् रथचक्रे पर्यवेक्षत एवमहोरात्रे
पर्यवेक्षते । एवं सुकृतदुष्कृते धूनुते सर्वाणि च द्वन्द्वानि । स एष विसुकृतो
विदुष्कृतो ब्रह्मविद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति ॥

स आगच्छतीत्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति । स आगच्छति
सालज्जं संस्थानं तं ब्रह्म स प्रविशति । स आगच्छत्यपराजितमायतनं तं
ब्रह्मतेजः प्रविशति । स आगच्छतीन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ तावस्मा-
दपद्रवतः । स आगच्छति विभुप्रमितं तं ब्रह्मयशः प्रविशति । स आगच्छति
विचक्षणामासन्दीं बृहद्रथन्तरे सामनी पूर्वौ पादौ ध्यैत नौधसे चापरौ पादौ
वैरूपवैराजे शाकरैवते तिरश्ची सा प्रज्ञा प्रज्ञया हि विपश्यति । स
आगच्छत्यमितौजसं पर्यङ्कं तं स प्राणः । तस्य भूतं च भविष्यच्च पूर्वौ पादौ
श्रीश्चेरा चापरौ बृहद्रथन्तरे अनूच्ये भद्रयज्ञायज्ञीये शीर्षण्यमृचश्च सामानि
च प्राचीनागानं यजूंषि तिरश्चीनानि सोमांशव उपस्तरणमुद्गीथ उपश्रीः
श्रीरुपवर्हणम् । तस्मिन् ब्रह्मास्ते । तमित्यंविद्यादेनैवाग्र आरोहति । तं ब्रह्माह
कोऽसीति । तं प्रतिब्रूयात् ऋतुरस्यार्तवोऽस्याकाशाद्योनेस्संभूतो हाव ।
एतत् संवत्सरस्य तेजोभूतस्य भूतस्य त्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहमस्मीति ।
तमाह कोऽहमस्मीति ॥

सत्यमिति ब्रूयात् । किं तत्सत्यमिति । यदन्यद्देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सद् यद्देवाश्च प्राणाश्च तद्यत्तदेतया वाचाभिव्याहियते सत्यमिति । एतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसीत्येवैनं तदाह ।

तदेतच्छ्लोकेनाप्युक्तम्—

यजूदरः सामशिरा असावृड्मूर्तिरव्ययः ।

स ब्रह्मेति हि विज्ञेय ऋषिर्ब्रह्ममयो महान् ॥ इति ॥

तमाह केन पौसानि नामान्याप्नोतीति । प्राणेनेति ब्रूयात् । केन स्त्रीनामानीति । वाचेति । केन नपुंसकनामानीति । मनसेति । केन गन्धानिति । घ्राणेनेति ब्रूयात् । केन रूपाणीति । चक्षुषेति । केन शब्दानिति । श्रोत्रेणेति । केनान्नरसानिति । जिह्वेति । केन कर्माणीति । हस्ताभ्यामिति । केन सुखदुःखे इति । शरीरेणेति । केनानन्दं रतिं प्रजातिमिति । उपस्थेनेति । केनेत्या इति । पादाभ्यामिति । केन धियो विज्ञातव्यं कामानिति । प्रज्ञयेति प्रब्रूयात् । तमाहापैव खलु मे ह्यसावयं ते लोक इति । सा या ब्रह्मणि चिति या व्यष्टिस्तां चितिं जयति तां व्यष्टिं व्यश्नुते य एवं वेद य एवं वेद ॥

धुरं वहिष्यसे पारमात्मिकोपनिषन्मन्त्राध्येता वैष्णवो मन्त्रार्थवित्पर-
मैकान्ती च तस्य धुरं वहिष्यसे ॥

शरणं त्वां प्रपन्ना ये ध्यानयोगविवर्जिताः ।

तेऽपि मृत्युमतिक्रम्य यान्ति तद्वैष्णवं पदम् ॥

“ब्रह्मविदामोति परम्” इति श्रुतेश्च ।

मत्पदद्वन्द्वमेकं ये प्रपद्यन्ते परायणम् ।

उद्धरिष्याम्यहं देवि तस्मात् संसारसागरात् ॥ इति ॥ ८ ॥

यस्या दौ भयाद्भगवानुत्तस्ते स्वयं सूर्यस्य त्वं कालं
बहमानः यस्मात्तेज आत्मीयं कृत्वा सर्वानस्मान् पालयिष्यसि
स्वाहा ॥ ९ ॥

यस्य सृष्टिस्थितिसंहारादिकं परमात्मनो नारायणस्य नियमनाति-
क्रमभयात् भगवान्—

उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

उत्पत्त्यादिकं परमात्माधीनमिति यो वेत्ति स भगवान् षाड्गुण्य-
चित्पूर्वं “भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्नि-
श्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति ।” कथमुपेति । सत्यं कालं बहमानः ।
“कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः । अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च
कल्पन्ताम् ।” इति । अहोरात्रादिकालं यथाप्रकारं देवमनुष्यादिषु प्रापय . . . नं
देहाद्यैः प्रतिदिनं युद्धसामर्थ्यसंभवकारणात् । आत्मीयं तेजः पराभवाभिभव-
सामर्थ्यं तेज इति प्रणवादिकं तेजः सर्वानस्मान् सूर्यरूपेण पालयिष्यसि ।

षड्विंशब्राह्मणे—

“देवाश्च वा असुराश्च लोकेष्वंसन्ततेऽसुरा आदित्यमभिद्रवन्
स आदित्यो . . भित् . . मरूपेण तिष्ठत्यप्रजापतिमुपायावत् । तस्य प्रजा-
पतिरेतत् भेषजमश्नत् ऋतं च सत्यं च ब्रह्म चोद्धारं च त्रिपदां च गायत्रीं
ब्रा . . . मपश्यत् ” इत्यादि ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

मन्देहा राक्षसा घोराः सूर्यमिच्छन्ति घातिषुम् ।

प्रजापतिकृतः शापस्तेषां मैत्रेय रक्षसाम् ॥

अक्षयत्वं शरीराणां मरणं च दिनेदिने ।

ततः सूर्यस्य तैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम् ॥

इत्यादि ।

वैष्णव कारं तस्य तत्प्रेरकं परम् ।

तेन तत्प्रेरितं ज्योतिरोङ्कारेणाथ दीप्तिमान् ॥

दहत्यशेषरक्षांसि मन्देहाख्यानि यानि वै ।

ततः प्रयाति . . ब्राह्मणैरभिरक्षितः ॥

बालखिल्यादिभिश्चैव प्रभुर्वैखानसैरपि ।

महात्मभिर्महात्मा वै जगतः पालनाद्यतः ॥

इति भगवदाज्ञा यात् जगत्पालनादिकं करोति
जगत्पालनादिशक्तिप्रदाय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यं त्वं पालनायाभिभूतं देवास्सर्वे विचरन्ति ते देवास्त्व-

मेव सर्वे माया मायैषते स्वाहा ॥ १० ॥

हे परमात्मन् पुत्रेण सह बाणासुरपरिपालनार्थमागतं सर्वं त्वयाभि-
भूतं अभिभवं प्राप्तं रुद्रं सर्वदेवाः ब्रह्मादयः प्रमुखं श्रुत्वा अध्याहारः पश्येति
जीवभूतेन नरसिंहे कोपशान्त्यर्थं विचरन्ति शरभ विनागतिं कुर्वन्ति
ये च सर्वे रुद्रदेवाः [?] ब्रह्मादयः विचरन्ति स्वरक्षकत्वेन गतिं कुर्वन्ति
देवास्त्वमेव सर्वे

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोशंसंभवम् इति ॥

त्वद्विभूतिभूताश्चेच्छरभनिर्माणादिगतं कथं कुर्वन्तीति चेत् तत्राह
माया मायैषते पूषा ते माया आश्चर्यकारिणी विद्या सैव माया ।
अन्येषां माया का माया ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

इति भगवद्वचनात् । शरभरूपेण गतानां ब्रह्मरुद्रादीनामपि नृसिंह-
रूपिणा संहारादिकं नारसिंहपुराणादिष्ववगम्यते सप्तत्रिंशोऽध्याये—

हिरण्यकशिपोस्त्रस्तान् सेन्द्रान् देवान् बृहस्पतिः ।

क्षीरोदस्यान्तरं गत्वा स्तूयतां तत्र केशवः ।

युष्माभिः संस्तुतो विष्णुः प्रसन्नो भवति क्षणात् ॥

इत्यारभ्य —

युष्मदागमनं सर्वं जानाम्यसुरसूदनाः ।

हिरण्यकविनाशार्थं स्तुतोऽहं शङ्करेण च ॥

इत्यारभ्य हिरण्यवधानन्तरम्—

तस्य कोपाभिभूतस्य नृसिंहस्य जगत्पतेः ।

दृष्ट्वा भयानकं रूपं तत्रसुर्देवदानवाः ॥

इत्यादिस्तोत्रानन्तरं ब्रह्मसमीपगमनादिकं प्रतिपाद्य—

तस्मिन् भगवति क्रुद्धे नरसिंहे महात्मनि ।

प्रवेपते जगदिदं देवेशे कुपिते भृशम् ॥

त्वत्तो हि नान्यच्छरणं देवानामिह विद्यते ।

नरसिंहसमुद्भूतं भयं नाशय नो हरे ॥

इत्यारभ्य अनन्तरं रुद्रवचनम्—

हतो हिरण्यकशिपुर्यो स दैत्यो महाबलः ।

को नः शमयिता तस्य . . . हरिमेधसः ॥

त्वं मे जनयिता तात स ते जनयिता हरिः ।

तस्य देवस्य कः शक्तो विष्णोर्वै निग्रहे भवेत् ॥

यद्भयात्पवते वायुः सूर्यस्तपति यद्भयात् ।
 यद्भयाद्धरणी धत्ते निग्रहे तस्य कः प्रभुः ॥
 तथाप्युपायं पश्यामः परमेण समाधिना ।
 कृते यस्मिन् भवेच्छ्रेयस्तूष्णीभावो न रोचते ॥
 अश्वानां माहिषः शत्रुर्वारणानां मृगाधिपः ।
 वानराणां तथा मेषः पक्षिणां गरुडः स्मृतः ॥
 मूषकानां तु मार्जालो मृगाणां श्वा प्रकीर्तितः ।
 वायसानां दिवाभीतः सिंहानां शरभस्तथा ॥
 ततः समे भजिष्यामः शरभं भयशान्तये ।
 शरभोऽधिष्ठितोऽस्माभिः नृसिंहं शमयिष्यति ॥
 इत्येवमुक्तो भगवान् ससर्ज शरभं तथा ।
 यस्य सन्दर्शनादेव त्रस्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥
 ततस्तस्य भवानीशस्तुण्डस्थानमरोचत ।
 पृष्ठभागे चतुर्वक्त्रस्तस्य रुद्रो न्यवेशयत् ॥
 सोमसूर्यौ नयनयोर्मरुतः पक्षयोर्द्वयोः ।
 पादेषु भूधरान् सर्वान् शिवस्तस्य न्यवेशयत् ॥
 एवं निर्माय शरभं भवः प्रमथनायकः ।
 ससर्ज नरसिंहं तं समुद्दिश्य भयानकम् ॥
 ततः क्षणेन शरभो नादपूरितदिङ्मुखः ।
 अभ्याशमगमद्विष्णोर्विनदन् भैरवस्वरम् ॥
 तमभ्याशगतं दृष्ट्वा नृसिंहः शरभं रुषा ।
 जघान निशितैरुग्रैर्दंष्ट्रानखवरायुधैः ॥

निहते शरमे तस्मिन् रौद्रे मधुनिघातिना ।
तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं देवा देवर्ष्यस्तथा ॥ इति ॥

गारुडे—

हन्तुमभ्यागतं रौद्रं शरभं नरकेसरी ।
नखैर्विदारयामास हिरण्यकशिपुं यथा ॥
निकृत्तवाहूरुशिरा वज्रकल्पमुखैर्नखैः ।
मेरुपृष्ठे नृसिंहेन सहस्रार्कसमं च तत् ॥

पाद्मे—

तौ युध्यमानौ तु चिरं वेगेन बलवत्तरौ ।
विनाशं जग्मतुर्देवौ नृसिंहशरभाविति ॥
ततः क्रुद्धो महाकायो नृसिंहेऽभिमुखस्वनः ।
सहस्रशिरसं नेत्रैस्तस्य गात्रं न्यकर्तयत् ॥
पतितं भीममत्युग्रं विबुधा द्रष्टुमागताः ।
ऋषयो देवगन्धर्वा यत्र शेते हरो हतः ॥
तं दृष्ट्वा परमं जग्मुर्विस्मयं ते दिवौकसः ।
प्रशशंसुस्तदा कर्म नरसिंहस्य चाद्भुतम् ॥ इति ॥ १० ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः

तृतीयोऽनुवाकः

यस्त्वं भूत्वा पर्जन्यो बिभेति रन्ध्रे प्रजाभिराकृष्य-
माणः सत्यं कालं व्रतेन पालयन् षादयिष्यसे स्वाहा ॥ १ ॥

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।

इति यज्ञोद्भवो भूत्वा यः पर्जन्यः सत्यं कालं पालयन् रन्ध्रे भगवदा-
ज्ञाभङ्गे विभेति सः । त्वं रन्ध्रे अनावृष्ट्यादौ व्रतेन कारिकेष्ट्यादिना
प्रजाभिराकृष्यमाणः वर्षप्रदानादिना ह्लादयिष्यसे तुभ्यम् ॥ १ ॥

कामो भूत्वा प्रजानामन्तरास्थितस्सर्वान् लोकान् ह्लादयन्
जीवमानः सन्दर्पणाय हरये पराय स्वाहा ॥ २ ॥

हे परमात्मन् कामो भूत्वा प्रजानामन्तरास्थितः । अनङ्गत्वात्तत्र
स्थितस्सन् सर्वान् लोकान् जनान् ह्लादयन् जीवमानः अभिलषितवस्तु-
लाभादिमुखेन सन्तोषयन् सन्दर्पणाय गर्वरूपाय हरये हरयित्रे ननु कामदाह-
कत्वादुद्रस्य सर्वहन्तृत्वमुपपद्यत इति चेत् तदसत् ।

ब्रह्माणमिन्द्रमग्निं च यमं वरुणमेव च ।

निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्वरिरिहोच्यते ॥

स शुक्लाज्जायते कामो मज्जायाः क्रोध एव च ।

अस्थिभ्यो जायते लोभो मेदसश्च मदस्तथा ॥

मांसात् प्रजायते मोहोऽसृग्भ्यः क्रोधः प्रजायते ।

त्वचश्चैवापि धर्मस्तु क्रमाज्जातस्ततो दश ॥ इति ॥

भगवतोऽपि शुक्लादुत्पत्त्यादिकं श्रूयत इति चेत् ॥ २ ॥

अङ्गादङ्गादनुप्राविशत्सर्वान् लोकान् संरक्षणाय यो वा
वसन् देवो मातरिश्वा स योऽस्माकं भूत्यै भूतये स्वाहा ॥ ३ ॥

यः परमात्मा मातरिश्वा वाय्वन्तर्यामी देवः क्रीडाकामः
अङ्गादङ्गादनुप्राविशत् त्वदङ्गात्पुत्रस्याङ्गं जीवेन सह दीपात् दीपमिव
जननात्प्राविशत् “अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे” इति श्रुतेः ।

भारते —

वायुः प्रवेशनं चक्रे सङ्गतः परमात्मना । इति ।

स देवः सर्वान् लोकान् जनान् प्रति संरक्षणाय निवसन्
योऽस्माकं मातरिश्चनः अन्तर्यामिणः अस्माकं भूत्यै भूतये निरवधि-
कैश्वर्याय ॥ ३ ॥

यो मोहयन् भूतानां सर्गादिरक्षणाय यः सङ्कोचः
सङ्कोचनाय भवते स्वाहा ॥ ४ ॥

यः परमात्मा सर्गादिरक्षणाय सृष्टिस्थितिसंहारार्थं भूतानां इन्द्रियाणि
मोहयेत् । “मुह वैचित्र्ये ” इति यः अन्तर्यामी सन् सङ्कोचः । “ अणोरणी-
यान् ” इत्यादि सङ्कोचनाय भवते तस्मै ॥ ४ ॥

यो वा दशात्मा उपरि स्पृशन्वा देवानां जेनातिषामुत्तरः
जेनातिज्योतिषे स्वाहा ॥ ५ ॥

यः परमात्मा मत्स्यादिदशावताररूपी द्वादशात्मापि केषांचित् वा
आदित्यमण्डलवर्ती उपरि स्पृशन् सर्वेषामुपरि स्थित्वा स्वकिरणैर्मेध्या-
मेध्यादिकं स्पृशन् देवानां मध्ये ज्योतीरूपः जेनातिषां चन्द्रा-
ग्न्यादिज्योतिषां उत्तरः स्वयं वा स्पृशन् तैरभेद्यैरस्पृष्टः जेनातिज्योतिषे
ज्योतिषां जेनातिर्भवति तस्मै ॥ ५ ॥

यो ब्रह्मा ब्रह्मविदामात्मा स्यादात्मचक्षुषां भूतिर्भूतिमतां
सुकृतं कृताय स्वाहा ॥ ६ ॥

यः परमात्मा ब्रह्मविदां ब्रह्मा छान्दसत्वात् दीर्घः परंब्रह्म । आत्मा
स्यादात्मचक्षुषां अन्तः प्रविश्य नियन्ता य आत्मा । परमात्मत्वेन पश्यतां

परमात्मा । भूतिर्भूतिमतां ऐश्वर्यवतामैश्वर्यरूपः सुकृतं कृताय कृतवते तस्मै ॥ ६ ॥

सारस्वतो वा एष देवो न हि पारमात्मिकः ह्योऽभयो
वा सर्वं सन्धुषे स्वाहा ॥ ७ ॥

हयग्रीवमन्त्रः—एष देवो लीलाविभूतो हयग्रीवरूपेण स्थितः अयं केवलहयो न भवति । किन्तु अभयप्रदः भयरहितः सारस्वतः अखिल-विद्याधारस्वरूपी पारमात्मिकः परमात्मा जगत् सर्वं सन्धुषे कृपाकटाक्षेण प्रेक्षयसि तुभ्यम् ॥ ७ ॥

यो वा परं ज्योतिः परं सन्दधानः परमात्मा पुरुषं
संजनयिष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

यः परं ज्योतिः परमात्मा यं निर्हेतुककृपाकटाक्षेण रक्षितुमिच्छति तं पुरुषं परं सन्दधानः उत्कृष्टगुणं सन्दधानं संजनयति संजनयिष्यसे तुभ्यं व्यत्ययः । यद्वा रामकृष्णाद्यवतारादिषु वसुदेवदशरथादिषु परं सन्दधानः पुरुषं प्रति सम्यक् जनिष्यसे “जनी प्रादुर्भावे” इति प्रादुर्भावं प्रजननं कुर्वते ।

न तस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।

आत्ममायां विनेशस्य परमा सृष्टिरात्मना ॥ इति ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ इति ॥

जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः ।

सात्त्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः ॥

पश्यत्येनं जायमानं ब्रह्मा रुद्रोऽथवा पुनः

रजसा तमसा चास्य मानसं समभिष्टुतम् ॥ इति ॥

अनेन निर्हेतुत्वं प्रतिपादितम् । अधिकारिविशेषेण निर्हेतुकं
सहेतुकं च ॥ ८ ॥

यो दोषश्चतुरश्चतुर्थश्चतुरः पदार्थान् सर्वं लोकस्य सन्द-
धानस्ते सन्ते सत्त्वमादधानाय स्वाहा ॥ ९ ॥

यो दोषः यस्य परमात्मनो बाहुषु चतुर्थः । वरप्रदानहस्तः चतुरः
वरप्रदानेन चतुरः समर्थः चतुरः पदार्थान् धर्मार्थकाममोक्षाख्यान् सर्वं
लोकस्य सर्वजनानां सन्दधानः प्रयच्छमानः सन्ते सत्सु सत्त्वमादधानाय
“एको बहूनां यो विधाति कामान्” इति श्रुतिः । ते इदम् ॥ ९ ॥

यस्यैता ब्रह्ममूर्तयो बृहद्ब्रह्माणं ब्रह्म आदधानः यं ब्रह्म
ब्रह्मगुप्तये परम्पराय स्वाहा ॥ १० ॥

यस्य परंब्रह्मणः एताः अव्यया ब्रह्ममूर्तयः दत्तोऽयं चतुर्मुखब्रह्म-
गुप्तये वेदगुप्तये परम्पराय सृजति तस्मै ।

श्वेताश्वतरे—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥
इति ॥ १० ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः

चतुर्थोऽनुवाकः

वाको वा अनुवाको वाकं वाकं संजुषमाणः देवस्य स्वं
स्वगुप्तये स्वयं जेनातिषे ज्योतिषे स्वाहा ॥ १ ॥

वाकः अनुवाक एव यद्वा वाकं वाकं प्रत्यनुवाकं प्रतिवाक्यं
वा संजुषमाणः अस्य मन्त्रस्याध्येतरि प्रियमाणः ॥

वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजोत्तमैः ।

यावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न संशयः ।

तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥

इति स्वनामत्वाच्च “ स ह वा एतस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतद्यद्वेदः ”

इत्यादिश्रुतेर्निश्वासरूपत्वाच्च वाकं संजुषमाण इत्युक्तम् । देवः “ दिवु क्रीडा-
विजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ” इति । स देवः स्वं
स्वतेजोरूपं स्वगुप्तये स्वकृतलोकमर्यादरक्षणार्थं त्रयोमयं सूर्यं जेनातिषे
कल्पयति । “ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ” इति श्रुतिः ।
“ आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति तत्र ता ऋचस्तद्वचा मण्डलं स ऋचां
लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिर्दीप्यते तानि सामानि स साम्नां
लोकोऽथ य एष एतस्मिन्मण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजूंषि स यजुषा
मण्डलं स यजुषां लोकः सैषा त्रय्येव विद्या तपति ” इत्यादिस्वयं
ज्योतिषे अनश्वरज्योतिषे तुभ्यम् ॥ १ ॥

द्वावेतौ पक्षी अचरं चरन्तौ नाधुरं व्यधुनीते यश्चैकं भुनक्ति
भोक्त्रे स्वाहा ॥ २ ॥

शरीरस्य तौ एतौ द्वौ जीवात्मपरमात्मानौ पक्षी पक्षिप्रायौ अचरं प्रकृतिं चरन्तौ शरीरे स्थितौ । यद्वा “ चर गतिभक्षणयोः ” इति प्रयोज्य-प्रयोजकभावेन प्रकृतिं भक्षयन्तौ ।

यद्वा कर्मफलमुपनिषदन्तरे—

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके

गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति

पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ इति ॥

नाधुरं व्यधुनीते तत्र परमां धुरं भारं धुनित इति न धुनित एव । श्रुत्यन्तरे—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

यश्चैकं भुनक्ति यः परमात्मा एकजीवात्मानं चकारात्प्रकृतिं च भुनक्ति संहरति ।

श्रुतिः—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।

मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ इति ॥

हरेरेव सर्वसंहारकरत्वं श्रूयते “ हरिः हरन्तमनुयन्ति देवाः । विश्वस्येशानं वृषभं मतीनाम् ” इति । ईशानशब्दश्रवणाद्बुद्ध एवेति चेत् सत्यम् । “ विश्वस्येशानम् ”, “ पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम् ”, “ अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी ” इत्यादिश्रुतिषु लक्ष्मीनारयणयोर्जगदीश्वरत्वश्रवणात्केवलेशानशब्दश्रवणाभावात् । “ ईशानः सर्वविद्यानाम् ” इति विद्यामात्रेशानत्वस्य श्रवणात् ।

ब्रह्मा शम्भुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः ।
 एवमाद्यास्तथा चान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा ॥
 जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ।
 वितेजसश्च ते सर्वे पञ्चत्वमुपयान्ति च ॥ इति ॥

अत एव सर्वसंहारकत्वं श्रीमन्नारायणस्य सर्वसंहारकस्य ॥ २ ॥

यो वा आयुः परमात्मा न मीढुषः पारम्पर्यात्परं परायणः
 पराय लोकानां परमादधानः परम्पराय स्वाहा ॥ ३ ॥

यः परमात्मा नारायणः मीढुषो रुद्रस्य “नमो रुद्राय मीढुषे” इति
 परमायुः आपन्निवारकत्वात् परममृत्युत्वाच्च । आरण्यके — “किं तद्विष्णोर्बल-
 माहुः” इत्यारभ्य बलादिकमुत्पाद्य “पृच्छामि त्वा परं मृत्युम्” इति प्रश्नस्य
 प्रतिवचनम् । “अमुमाहुः परं मृत्युम् । पवमानं तु मध्यमम् । अग्निरेवावमो
 मृत्युः । चन्द्रमाश्चतुरुच्यते ॥” इति भगवत्येव परं मृत्युत्वं प्रतिपादितम् ।
 परमात्मानमन्तर्यामिणम् । विभक्तिव्यत्ययः । परमात्मा पारम्पर्यात्परम्पराय
 लोकानां परमुत्कृष्टपरः भिन्नपरः शत्रुश्च परमादधानः उत्कृष्टत्वं प्रथमानः
 अत एव परायणः परमगतिभूतः मोक्षोपायभूत इत्यर्थः । यद्वा चतुर्विध-
 पुरुषार्थानां गतिभूतः । पराय उत्कृष्टगतिभूताय ।

ननु,

यो ब्रह्मा ब्रह्मण उज्जहार प्राणेश्वरः कृत्तिवासाः पिनाकी ।
 ईशानो देवः स न आयुर्दधातु तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन ॥

इत्यायुषो निमित्ते कथं रुद्रप्रार्थना प्रतिपाद्यत इति चेत्सत्यम् ।

भारते—

ततस्ते च सुरास्सर्वे ब्रह्मा ते च महर्षयः ।
वेददृष्टेन विधिना वैष्णवं क्रतुमारभन् ॥
तस्मिन् सत्रे तदा ब्रह्मा स्वयं भागमकल्पयत् ।
देवा महर्षयश्चैव सर्वे भागानकल्पयन् ॥
ते कार्तियुगधर्माणो भागाः परमसत्कृताः ।
प्रापुरादित्यवर्णान्तिं पुरुषं तमसः परम् ॥

श्रीभगवान्—

येन यः कल्पितो भागः स तथा समुपागतः ।
यतोऽहं प्रविशाम्यद्य फलमावृत्तिलक्षणम् ॥
यज्ञैर्ये वापि यक्ष्यन्ति सर्वलोकेषु वै सुराः ।
कल्पयिष्यन्ति वै भागांस्ते नरा वेदकल्पितान् ॥
यो मे यथा कल्पितवान् भागमस्मिन् महाकृतौ ।
स तथा यज्ञभागाहो वेदसूत्रे मया कृते ॥ इति ॥

अतो ब्रह्मरुद्रादीनां तत्तत्कर्मसु पूजार्हत्वं भगवतो नारायणस्य
वरप्रदानलब्धम् । यद्वा संहारकत्वेन भगवता सृष्टत्वात् तत्पूजेति इदं प्रपन्नविषयं
न भवति । भगवन्मन्त्रस्य मृत्युञ्जयत्वम् । “एते सहस्रमयुतं पाशा मृत्यो
मर्त्याय हन्तवे । तान् यज्ञस्य मायया सर्वानवयजामहे ।” अस्यार्थः—हे
मृत्यो मर्त्याय हन्तवे वर्तसे व्रतसहस्रमयुतमेते पाशाः तान्पाशान् यज्ञस्य
मायया “यज्ञो वै विष्णुः” इति श्रुतेः ।

उपनिषदन्तरे—

यज्ञाख्यः परमात्मा य उच्यते तस्य होतृभिः ।
उपनीतं ततोऽस्यैतत्तस्माद्यज्ञोपवीतकम् ॥ इति ॥

विष्णोर्मायया आश्चर्यकारिण्या वैष्णव्या विद्यया मन्त्रेण सर्वान्
तान् पाशानवयजामहे अधस्तात्कुर्मः ।

यदन्तस्तमशेषेण वाङ्मयं देववैदिकम् ।

तस्मै व्यापकमुख्याय मन्त्राय महते नमः ॥

ननु “हरिः हरन्तमनुयन्ति देवाः । विश्वस्येशानं वृषभं मतीनाम् ।
ब्रह्म सरूपमनु मेदमागात् ।” इत्यादिषु हरिं नृसिंहं हरन्तं शरभरूपेण ईशानं
रुद्रं देवा अनुयान्ति गतिं कुर्वन्ति । अतः सर्वसंहारकारको रुद्र एवेति
चेत् तदसत् ।

पूर्वापरपरामृष्टशब्दानां कुरुते मतिम् । इति ।

पूर्वानुवाके—“भर्ता सन्निभ्रयमाणो विभर्ति । एको देवो बहुधा
निविष्टः ।” इत्यारभ्य “तमेव मृत्युममृतं तमाहुः । तं भर्तारं तमु
गोप्तारमाहुः” इत्यादिषु भर्तृशब्देन “व्यष्टभ्राद्रोदसी विष्णवेते । दाधर्थ
पृथिवीमभितो मयूखैः” इति स्वकान्त्यैवावतीर्य तेन रूपेण जगद्धरणम् “किं
तद्विष्णोर्बलमाहुः । का दीप्तिः किं परायणम् । एको यद्धारयद्देवः । रेजती
रोदसी उभे । वाताद्विष्णोर्बलमाहुः ।” इत्यारभ्य । “पृच्छामि त्वा परं
मृत्युम् । अवमं मध्यमं चतुम् । लोकं च पुण्यपापानाम् । एतत्पृच्छामि संप्रति ।
अमुमाहुः परं मृत्युम् । पवमानं तु मध्यमम् । अग्निरेवावमो मृत्युः ।
चन्द्रमाश्चतुरुच्यते ॥” इति परमात्मनो विष्णोरेव परं मृत्युत्वं प्रतिपादितम् ।
देवशब्दः सामान्यवाचीति एको देव इत्युक्तम् । “एको देवो नारायणः”,
“अपहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः”, “रुद्रास्तु बहवः”,
“सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्राः”, “तमेव मृत्युम्”, “परं मृत्यो अनु
परेहि पन्थाम् ।” इति ।

नृसिंहतापनीयोपनिषदि—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ इति ॥

तत्रैव—“ अथ कस्मादुच्यत उग्रमिति । स होवाच प्रजापतिः—

यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि
उद्गृह्णाति अजस्रं सृजति विसृजति वासयति उदग्राह्यत उद्गृह्यते ।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहल्नुमुग्रम् ।

मृडा जरित्रे सिंह स्तवानो अन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः ॥

तस्मादुच्यत उग्रमिति ॥ ”

“ अथ कस्मादुच्यते वीरमिति । यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान्
सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि विरमति विरामयत्यजस्रं सृजति
विसृजति वासयति । यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ।
तस्मादुच्यते वीरमिति ॥ ”

“ अथ कस्मादुच्यते महाविष्णुमिति । यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान्
लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि व्याप्नोति व्यापयति
स्नेहो यथा पल्लपिण्डं शान्तमूलमोतं प्रोतमनुव्याप्तं व्यतिषिक्तो व्याप्यते
व्यापयते ।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति

य आविवेश भुवनानि विश्वा ।

प्रजापतिः प्रजया संविदानः

त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥

तस्मादुच्यते महाविष्णुमिति ॥ ”

“अथ कस्मादुच्यते ज्वलन्तमिति । यस्मात् स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि स्वतेजसा ज्वलति ज्वालयति ज्वाल्यते ज्वालयते । सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन् दीप्यमानः ज्वलन् ज्वलिता तपन् वितपन् संतपन् रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः । तस्मादुच्यते ज्वलन्तमिति ॥”

“अथ कस्मादुच्यते सर्वतोमुखमिति । यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि स्वयमनिन्द्रियोऽपि सर्वतः पश्यति सर्वतः शृणोति सर्वतो गच्छति सर्वत आदत्ते सर्वगः सर्वगतस्तिष्ठति ।

एकः पुरस्ताद्य इदं बभूव यतो बभूव भुवनस्य गोपाः ।

यमप्येति भुवनं सांपराये नमामि तमहं सर्वतोमुखमिति ।

तस्मादुच्यते सर्वतोमुखमिति ॥”

“अथ कस्मादुच्यते नृसिंहमिति । यस्मात्सर्वेषां भूतानां ना वीर्यतमः श्रेष्ठतमश्च सिंहो वीर्यतमः श्रेष्ठतमश्च तस्मान्नृसिंह आसीत् परमेश्वरो वा जगद्धितमेतद्रूपं यदक्षरं भवति ।

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

तस्मादुच्यते नृसिंहमिति ॥”

“अथ कस्मादुच्यते भीषणमिति । यस्माद्भीषणं यस्य रूपं दृष्ट्वा सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि भीत्या पलायन्ते स्वयं यतः कुतश्च न बिभेति ।

भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ।

भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥

तस्मादुच्यते भीषणमिति ॥ ”

“ अथ कस्मादुच्यते भद्रमिति । यस्मात् स्वयं भद्रो भूत्वा सर्वदा भद्रं ददाति । रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिः व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

तस्मादुच्यते भद्रमिति ॥ ”

“ अथ कस्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति । यस्मात् स्वमहिम्ना स्वभक्तानां स्मृत एव मृत्युमपमृत्युं च मारयति ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

तस्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति ॥ ”

“ अथ कस्मादुच्यते नमामीति । यस्माद्यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च ।

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥

तस्मादुच्यते नमामीति ॥ ”

“ अथ कस्मादुच्यते अहमिति ।

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाभिः ।

यो मा ददाति स इ देवमावाः अहमन्नमन्नमदन्तमग्नि ।

अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां सुवर्णज्योतीः ॥

य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥ ” उपनिषत्सु नृसिंहस्य प्रभावा एवं श्रूयन्ते ।

पुराणेषु च—

ब्रह्मरुद्रेन्द्रवह्नीन्दुदिवाकरमनुग्रहाः ।

तच्छक्त्याऽधिष्ठितास्सन्तो मोदन्ते दिवि देवताः ॥

जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ।

वितेजसश्च ते सर्वे पञ्चतामुपयान्ति च ॥ इति ॥

भारते—

सत्त्वमादाय सर्वेषां तेजसोऽथ दिवौकसाम् ।

तेजसाऽप्यधिको भूत्वा भूयोऽप्यतिबलोऽभवत् ॥

ततः प्रभृति देवानां देवदेवो भवोद्भवः ।

पतिश्च सर्वभूतानां पशूनां चामवत्तदा ॥

भासयामास तान् सत्त्वान् देवदेवो महाद्युतिः ।

अर्थमादाय सर्वेषां तेजसा प्रज्वलन्निति ॥

ततोऽभिषिषिचुः सर्वे सुरा रुद्रा मुरारिहम् ।

महादेव इति ह्यासीद्देवदेवो महेश्वरः ॥

अत एव महादेवादिशब्दवाच्यत्वं रुद्रस्य वरप्रदानलब्धं अत एव तमेव मृत्युमित्युक्तम् । अत्र परंब्रह्मण एवामृतशब्दवाच्यत्वं न तु रुद्रस्य । आरण्यके—“नैव देवो न मर्त्यः । न राजा वरुणो विभुः । नाग्निर्नेन्द्रो न पवमानः । मातृक्कच्चन विद्यते । दिव्यस्यैका धनुरालिः पृथिव्यामपरा श्रिता । तस्येन्द्रो वग्निरूपेण । धनुर्ज्यामच्छिनत्स्वयम् । तदिन्द्रधनुरित्यज्यम् । अत्रवर्णेषु चक्षते । एतदेव शंयोर्बार्हस्पत्यस्य । एतद्रुद्रस्य धनुः । रुद्रस्य त्वेव धनुरालिः । शिर उत्पिपेष । स प्रवर्ग्योऽभवत् । तस्माद्यस्स प्रवर्गेण यज्ञेन यजते । रुद्रस्य स शिरः प्रतिदधाति । नैनं रुद्र आरुको भवति” ॥ इति ॥

त्रिपुरसंहारकस्य रुद्रस्य पशुपतित्वादिप्रार्थना श्रूयते यजुषि—

“तेषामसुराणां तिस्रः पुर आसन्नयस्मय्यवमाथ रजताथ हरिणी
ता देवा जेतुं नाशकृनुवन् ता उपसदैवाजिगीषन् तस्मादाहुयश्चैवं वेद यश्च
नोपसदा वै महापुरं जयन्तीति त इषु५ समस्कुर्वताग्निमीक५ सोम५ शल्यं
विष्णुं तेजनं तेऽब्रुवन् क इमामसिष्यतीति रुद्र इत्यब्रुवन् रुद्रो वै क्रूरः
सोऽस्यत्विति सोऽब्रवीद्वरं वृणा अहमेव पशूनामधिपतिरसानीति तस्माद्रुद्रः
पशूनामधिपतिः” इत्यादि ॥

श्वेताश्वतरे—

तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ।
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् ॥
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ॥
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ॥
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।
न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥

इत्यादि ।

तं विश्वरूपमित्यारभ्य प्रतिपादितानि विशेषणानि रुद्रपराणीति
चेत् तदसत् ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

सहस्रशीर्षं देवं विश्वाक्षं विश्वशंसुवम् ॥

विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं पदम् ।

विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ॥

विश्वमेवेदं सर्वं तद्विश्वमुपजीवति ।

पतिं विश्वस्यात्मे श्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् ॥ इत्यादि ॥

मुण्डकोपनिषदि—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषि चन्द्रसूर्यौ

दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।

वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य

पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ इत्यादि ॥

दिवौकसामर्धतेजसाप्याये तस्य अखिलदेवतावरप्रदानेन पशुपति-
त्वादिकं प्राप्तस्य पशुपतेः सर्वसंहारकत्वं नोपपद्यते ।

किञ्च—

नमाम्यहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

इत्याद्युपनिषद्वाक्येषु भगवन्महिमा प्रतिपाद्यते ।

व्यक्तं हि भगवान् देवः साक्षान्नारायणः स्वयम् ।

अष्टाक्षरस्वरूपेण मुखेषु परिवर्तते ॥

इति भगवन्मन्त्राः केवलमृत्युञ्जया न भवन्ति । किन्तु चतुर्वर्गफलप्रदा
वा ॥ ३ ॥

तेजसां तेजस्तेज आदधानः सत्त्वस्तेजस्तेजसां
तेजस्तेजसे स्वाहा ॥ ४ ॥

यः परमात्मा तेजसां तेजस्तेज आदधानः नक्षत्राग्निचन्द्रसूर्याणा-
मुत्तरोत्तरं तेजः प्रयच्छमानः सत्त्वस्तेजस्तेजसां सूर्यादीनां तेजोयुक्तानां
यदा कदाचित् तेजोदर्शनाभावात् ।

कठवल्लीषु—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनु भाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ इति ॥

सूर्याद्यपेक्षयाऽधिकतेजोरूपत्वश्रवणात् नाशरहितत्वाच्च सत्त्वस्तेजसा-
मित्युक्तम् । तेजस्विषु स्थितानां तेजसां तेषां तेजसामपि तेजसे पराभि-
भवनसामर्थ्यं तेज इति तस्मै ॥ ४ ॥

सह संपायास्त्वमाशिषमाशिभूताभूतमाशिषमाशिराशी -
राशिरनुभूमिः स्वाहा ॥ ५ ॥

चेतनाचेतनेषु सर्वत्रान्तर्यामित्वेन वसन् वैषम्यनैर्धृण्याभावात्
शत्रुमित्रोदासीनानां सहासमत्वे समत्वायाः पासि त्वं आशिषमाशिभूताभूतं
आशिभूतं अभूतं च आशिषमाशिः आशीराशिः आशिषां राशिः
अनुभूमिः उत्पत्तिस्थानम् । तुभ्यमित्यर्थः ॥ ५ ॥

यो ह संयोगो ध्यानं जुषमाणः सन्धुः सन्धुक्षणानां
संयोगः सन्दधानः पुण्यः पुण्यानां पुण्याय स्वाहा ॥ ६ ॥

जीवात्मपरमात्मनोर्यो वा संयोगः उपायत्वेन च ध्यानं संयोगः ।
उपायत्वेनोपेयत्वेन च प्रीतिपूर्वकं जुषमाणः सेवमानः सन्धुक्षणानां
कृपाकटाक्षेण प्रोक्षणाप्रोक्षणानां विषयभूतः सन्धुः सम्यक् प्रोक्षित इत्यर्थः ।

संयोगः सन्दधानः एवंभूतः संयोगः सन्दधानः । पुण्यानां पुण्यशरीराणां
एष एव साधु कर्मकरायते । यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निषति एष एव साधुकर्म
कारयति यमरो निनीषतीति ।

श्रीगीतायाम्—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

यद्वा पुण्यानां पुण्य इतरेषां मध्यस्थः तेन विना तृणाग्रमपि न
चलतीति । पुण्याय पुण्यस्वरूपिणे तुभ्यम् ॥ ६ ॥

सहस्रं वा यस्य वै वितानमादधानः सहस्रं वा आशिषः

सहस्रं यस्य वै सासिकाः सहस्रं सहस्राय स्वाहा ॥ ७ ॥

मुक्तानामैश्वर्यं प्रतिपादयति । यस्य मुक्तस्य परमपदं गच्छतः
सहस्रं वा यस्य वै वितानं मण्डपादूर्ध्वाच्छादनादि आदधानः । स्वयमेवा-
तपमप्रयच्छमानः । सहस्रं वा आशिषः सक्चन्दनादयः । सासिकाः
आसनादिभिः सहिताः । सहस्रं यस्य वै सासिकाः आसने सह रन्तुं
योग्याः स्त्रियः । सहस्रं सहस्राय । “सहस्रशीर्षा पुरुषः” इत्यादिश्रुति-
सिद्धाय तुभ्यम् । “तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति शतं मालाहस्ताः”
इत्यादि ॥ ७ ॥

स्वातीका गुप्तयो गुप्तिः सत्त्वं सत्त्वानां (सत्यं सत्यानां)

सात्त्वंपदं तत्सत्त्वं सत्त्वमासीत् सात्त्वं सात्त्वं वै सत्त्वमादधानाय
स्वाहा ॥ ८ ॥

स्वातीका गुप्तयः स्वर . . शं परमात्मानं नारायणमतिक्रम्य
देवतान्तरमन्त्रान्तरसाधनान्तरप्रयोजनान्तरादीनामकिञ्चित्करत्वात् तेषां गोप्तृ-

त्वशक्त्यभावात् गोप्तृत्वेन वरणं गुप्तयः । यद्वा स्वान्तर्यामिणः परमात्मन
एव गोप्तृत्वादयः ।

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥

आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः ।

अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम् ।

तदेकोपायता याच्ञा प्रपत्तिः शरणागतिः ॥ इति ॥

गुप्तिः रक्षणं सत्त्वं यथार्थं सत्त्वानां सत्त्वभूतहितमिति भूतहित-
युक्तानां सात्त्वंपदं सत्त्वपदप्रदं तत्सत्त्वं तत्सात्त्विकपदं नान्यदिति ।

यत्पदं सात्वतामिष्यं विष्णुलोके महीयते ।

“देवैः सुकृतकर्मभिस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव” इति
ऋग्वेदब्राह्मणे । यद्वा परमात्मनो गुप्तयः गोप्तृत्वादिकमेव धर्मोत्तरापेक्षया सत्यं
यथार्थमिति ये गृह्णन्ति तेषां सत्यानां सत्यत्वेन गृहीतानां सात्त्वंपदं
परमपदं सत्त्वमासीत् । सात्त्विकमेवासीत् । सात्त्वं वै सत्त्वमेव सात्त्वं
सात्वतशब्दवाच्यम् । “नामैकदेशे नामग्रहणम्” भीमो भीमसेन इतिवत् ।

नित्यनैमित्तिकाजस्त्रा याज्ञीयाः परमाः क्रियाः ।

सर्वं सात्वतमास्थाय विधिश्चक्रे समाहितः ॥ इति ॥

सत्त्वप्रधानत्वात् सात्वतशब्दप्रयोगः । भारतोक्तसात्वतशब्दवाच्यं पञ्चरात्रं
न भवति सात्त्विकनामत्वेन प्रणीतत्वात् ।

अथांशोः सात्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् ।

महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः ॥

स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः ।

शास्त्रं प्रवर्तयामास कुण्डगोळादिभिः श्रुतम् ॥

तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतं नाम शोभनम् ।

प्रवर्तते महाशास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम् ॥ इति ॥

साङ्ख्यपुराणे—

श्रुतिश्रष्टः श्रुतिप्रोक्तप्रायश्चित्ते भयं गतः ।

क्रमेण श्रुतिविध्यर्थं मनुष्यस्तन्त्रमाश्रयेत् ॥

धर्मशास्त्रपुराणे च प्रोक्तं हि मरणान्तिकम् ।

प्रायश्चित्तं मनुष्याणां पापिष्ठानां सुदारुणम् ॥

भयं प्रबलचित्तानां मरणे जायते भृशम् ।

तेषामेवाभिरक्षार्थं खल्वहं तन्त्रमुक्तवान् ॥

पाञ्चरात्रं भागवतं तन्त्रं सात्वतनामकम् ।

वेदाग्रहं समुद्दिश्य कमलापतिरुक्तवान् ॥ इति ॥

भागवते—

त्रिवक्त्राया उपश्लोकः पुत्रः कृष्णमनुव्रतः ।

शिष्यः साक्षान्नारदस्य ददौ चित्तमखण्डितम् ॥

तेनोक्तं सात्वतं तन्त्रं यज्ज्ञात्वा मुक्तिभाग्भवेत् ।

यत्र स्त्रीशूद्रदासानां संस्कारो वैष्णवः स्मृतः ॥

इति परमात्मपरत्वात् पारमात्मिकं सात्वतशब्दवाच्यं स्वातन्त्र्येण देवतान्तर-
मन्त्रान्तरादिप्रतिपादनाभावात् वैदिकत्वेन प्रसिद्धं श्रीमद्वैखानसं सात्विक-
मेव । सत्त्वमादधानाय सात्त्विकगुणं प्रयच्छमानाय तुभ्यम् ॥ ८ ॥

सत्त्वं वा उद्रेकमासीद्यत्सत्त्वमुभयोरनुगोप्ता तत्सत्यं सत्यं-

पदाय सत्याय स्वाहा ॥ ९ ॥

सत्त्वं वा सात्त्विकमेव यत्तस्य परमात्मनः उद्रेकमासीत् प्रचुरमासीत् ।

यत्सत्त्वं सात्त्विकप्रधानं ब्रह्म उभयोरपि ऐहिकामुष्मिकयोः अनुगोप्ता

साकल्येन गोप्ता । यद्वा स्थावरजङ्गमात्मकयोः । यद्वा मृते जन्मनो रक्षतः
तत्सत्यं सत्यंपदाय ततः ब्रह्मपदाय परमपदाय सत्यं परमपदप्राप्तये
सत्यमित्यर्थः । “ नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ” इति श्रुतेः । सत्याय
यथार्थभूताय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

सत्यो जेनातिः सत्यान्तरात्मा सत्योद्योगः सत्यः सत्कर्मा
सत्यं सत्यं वितानमासीत्सत्यं सत्याय स्वाहा ॥ १० ॥

विनाशरहितत्वात् सत्यो जेनातिः । यद्वा भूतहितत्वात् सर्वेषां
हितरूपः । जेनातिः दीप्तिः । सत्यान्तरात्मा सत्यस्वभावः । सत्योद्योगः
सत्यसङ्कल्पः । सत्यः नित्यः । सत्कर्मा शोभनकर्मा । ननु यदि परमात्मा
विष्णुः सत्कर्मा तर्हि भृगुपत्न्यादिस्त्रीवधादिकमेव नोपपद्यत इति चेत्सत्यम् ।

उत्तरश्रीरामायणे—

शृणु राजन् यथावृत्तं पुरा देवासुरा युधि ।
दैत्यासुरैर्भज्यमाना भृगुपत्नीं समाश्रिताः ॥
यदा दत्ताभयास्तत्र न्यवसन्निर्भयास्तदा ।
तथा परिगृहीतांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धः सुरोत्तमः ॥
चक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत् ।
ततस्तान्निहतान् दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्भवः ॥
शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णुं परबलार्दनम् ।
यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः ॥
तस्मात्त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन ।
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम् ।
ततः प्रतिहरः शापस्तमृषिं पुनरागमत् ॥

इत्यादिसृष्टिस्थितिसंहारकर्तृत्वात् दुष्टनिग्रहकर्तृत्वाच्च ॥

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामागमो वशी ।

मोदते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ इति ॥

लीलाविभूतिकत्वात् सर्वात्मकत्वात् निरङ्कुशे स्वतन्त्रत्वाच्च न दोषः ।

अत एव सत्कर्मा सत्यं सत्यं वितानमासीत् सत्यं यथार्थभूतहितं सत्याय यथार्थभूताय तुभ्यम् ॥ १० ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

पञ्चमोऽनुवाकः

सत्यः सत्यं पुण्यमासीत्पुण्यो वा दैविकं सत्यं सत्त्वमार्थं
सत्यं सत्त्वं सत्यथाय स्वाहा ॥ १ ॥

सत्यः चिदचिदात्मकः परमात्मा सत्यं पुण्यमासीत् । सत्यशब्देन मोक्षोपायभूतज्ञानरूपः । पुण्यशब्देन इष्टापूर्तादयः स्वयमेवासीत् । पुण्यो वा दैविकं “तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके” इति श्रुतेः । भगवत्प्रीत्यर्थं कृतं पुण्यदैविकं कालान्तरेऽपवर्गप्रदम् । सत्यं सत्त्वमार्थं मोक्षोपायभूतज्ञानरूपं शुभाश्रय-संशीलनमननमिति मननविषयत्वादार्थमित्युक्तम् । तत्परं ब्रह्म “नारायणपरं ब्रह्म” इति श्रुतेः । श्रीमन्नारायण एव सत्यं सत्त्वं सत्यथाय सन्मार्गभूतः सत्त्वशब्दवाच्यः परमात्मा अर्चिरादिमार्गभूत इत्यर्थः । “ये चत्वारः पथयो देवयानाः” इति देवयानमार्गाश्चतुर्विधाः ।

स्वामिन् स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।

स्वदत्तस्वधियं स्वार्थं स्वस्मिन्नचस्यति मां स्वयम् ॥

इति न्यासविधानां विविधानामर्चिरादिमार्गाः प्रतिपाद्यन्ते । “अर्चि-
षोऽहरह आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्गेति मासांस्तान्मासेभ्यः
संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः
स एनान् ब्रह्म गमयति ” इत्यादि ।

ये तु दग्धेन्धना लोके पुण्यपापविवर्जिताः ।
तेषां वै क्षेममध्वानं गच्छतां द्विजसत्तमः ॥
सर्वलोकतमोहन्ता आदित्यश्चरमुच्यते ।
ज्वालामालिमहातेजा येनेदं धार्यते जगत् ॥
आदित्यदग्धसर्वाङ्गा अदृश्याः केचन कश्चित् ।
परमाण्वात्मभूताश्च तं देशं प्रविशन्त्युत ॥
तस्मादपि विनिर्मुक्ता अनिरुद्धं तथा स्थिताः ।
मनोभूतास्ततो भूयः प्रद्युम्नं प्रविशन्त्युत ॥
प्रद्युम्नाच्च विनिर्मुक्ता जिह्वासङ्कर्षणं ततः ।
प्रविशन्तीति प्रबला सङ्ख्यायोनांश्च तैस्सह ॥
ततस्त्रैगुण्यहीनास्ते परमात्मानमोजसा ।
सर्वावासं वासुदेवं क्षेत्रज्ञं विद्धि तत्त्वतः ॥
समाहितमनस्कास्तु नियताः संयतेन्द्रियाः ।
एकान्तभावा हि गताः वासुदेवं व्रजन्ति ते ॥
श्वेतद्वीपमितः प्राप्य विश्वरूपधरं हरिम् ।
ततोऽनिरुद्धमासाद्य श्रीमन् क्षीरोदधौ हरिम् ॥

ततः प्रद्युम्नमासाद्य देवं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
 ततः सङ्कर्षणं दिव्यं भगवन्तं सनातनम् ॥
 अयमप्यपरो मार्गः सदा ब्रह्महितैषिणाम् ।
 परमैकान्तिसिद्धानां पञ्चकालरतात्मनाम् ॥
 तेभ्यो विशिष्टाज्जानामि गतिमेकान्तिनां नृणाम् ।
 उत्क्रामन्ति च मार्गस्थाः शीतभूतो निरामयः ॥
 देवयानः परं पन्था योगिनां क्लेशसङ्क्षये ।
 अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद्यः स्थितो हृदि ॥
 सितासिताः कृष्णनिलाः [?] कपिलाः पीतलोहिताः ।
 ऊर्ध्वमेते स्थितास्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् ॥
 ब्रह्मलोकमतिक्रम्य [नूनं] याति परां गतिम् ।
 यदस्यां न द्रव्यमस्ति ह्यूर्ध्वमेतद्व्यवस्थितम् ॥
 तेन देवशरीराणि सधामानि प्रपद्यते ।
 एकैकरूपाश्चाधस्ताच्छर्म येऽस्यामृतप्रभाः ।
 इह कर्मप्रभोगाय तैस्सन्नरतिरेव सः ॥ इति ॥

“अग्नयो वै त्रयी विद्या देवयानः पन्था गार्हपत्य ऋक् पृथिवी
 रथन्तरमन्वाहार्यपचनं यजुरन्तरिक्षं वामदेव्यमाहवनीयस्साम सुवर्गो लोको
 बृहत्तस्मादग्नीन् परमं वदन्ति” इति श्रुतिः । अथाऽयं देहजं जन्म कृत्वा
 भार्यामयपाशबन्धनो भगवन्मायया कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यहिंसादीनि
 कार्याणि कृत्वा तद्द्वारेण निष्क्रम्य पुनः पापीयसीं योनिं प्राप्य पुनर्जायते ।
 स्वर्गनरकफलेषु प्रवर्तते । तस्माद्भगवन्मायया मोहितत्वात् भगवन्तं समाश्रित्य
 भक्त्या नारायणमुपासीत । उपासनात्सोऽपि भक्तवत्सलत्वात् भक्तानुकम्पया
 स्वमायया विमोचयति । तत आत्मा सम्यक् ज्ञानं प्रविशति । पश्चादाश्रम-

धर्मसंयुक्तो भगवत्समाश्रयणं करोति । तत्समाश्रयणेन संसारार्णवनिमग्नो जीवात्मा परमात्मानं नारायणं पश्यति । सोऽप्यपुनरावृत्तिकं दिव्यलोकं प्रापयति । पश्चात्कृतकृत्यो भवति । संसारवनवासनामोक्षो मुक्तिः मोक्षविशेषः । चतुर्विधपदावाप्तिः सालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्य इति । आमोदप्राप्तिः सालोक्यम् । प्रमोदप्राप्तिः सामीप्यम् । वैकुण्ठप्राप्तिः सायुज्यमिति । तच्च नित्यानन्दामृतरसपानवत्सर्वदा तृप्तिकरं परमात्मनो नित्यनिषेवणं परंज्योतिः-प्रवेशनम् । “तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः” इति श्रुतिः । तस्मात् भगवतो नान्यथाप्राप्तिरिति विज्ञायते इति । मोक्षोपि तारतम्यताश्रवणात् ब्रह्मविदां भगवदाराधकानामग्निहोत्रिणामर्चिरादिना ब्रह्मप्राप्तिः “अर्चिरादिना तत्प्रथितेः” इति वेदान्तसूत्रे उक्तत्वात् । भक्त्या भगवन्तं नारायणमर्चयेत् “तद्विष्णोः परमं पदम्” सम्यक् भवतीति विज्ञायत इति । अर्चिरादिमार्गाप्रतिपादनाच्च । न्यासविद्यानिष्ठानामर्चिरादिना परमपदप्राप्तिः । साङ्ख्यानां योगनिष्ठानामामोदप्राप्तिः । एकान्तिनां प्रमोदप्राप्तिः । परमैकान्तिसिद्धानां पञ्चकालरतात्मनां श्वेतद्वीपादिना ब्रह्मप्राप्तिः । मोदप्राप्तिः केवलस्यामोद एव । तत्रापि स्वानुभव एव ।

छान्दोग्ये—“यथाक्रतुरस्मिन् लोके पुरुषा भवन्ति । तथेतः प्रेत्य ते भवन्ति” इति श्रुतेः । तं यथायथोपासते तथैव भवन्तीति ॥ १ ॥

सत्यो ज्योतिः सत्त्वं प्राणाः सत्त्वाधाराः सत्त्वं संयानाः
सत्यः सत्त्वं प्रकाशं ज्योतिषे स्वाहा ॥ २ ॥

हे परमात्मन् सत्यो ज्योतिर्ज्योतिष्मत् षड्भावविकाररहितत्वात् अनेकरूपरहित इत्यर्थः । सत्त्वं प्राणाः “नव वै पुरुषे प्राणाः” इति भगवदभिमानदेवतान्तर वागाद्यभिमानिदेवतान्तर्यामिसत्त्वाधाराः

वागादयः सत्त्वाधाराः आधारभूता इत्यर्थः । सत्त्वं संयानाः सत्यः सत्य-
भूतहितः सत्त्वं “सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्” इति । ज्ञानरूपं ज्योतिः-
प्रकाशं ज्योतिषे तस्मै ज्योतिषे तुभ्यम् ॥ २ ॥

कामीमुमामीशिषमीशिषाणां तत्सत्यं सत्यरूपं सत्यं
सत्याय सन्दधानाय स्वाहा ॥ ३ ॥

कामीमुमां ब्रह्मणो मा ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।

अहं तवाङ्गसम्भूतस्तस्मात्केशवनामवान् ॥ इति ॥

कां सरस्वतीं ईं लक्ष्मीं उमां पार्वतीं ईशिषं सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं
ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ।

तत्तद्रूपे पालयन्तमाशिषस्त्यमीशिषम् ॥

रुद्रस्यापि पालकं ईशिषाणां तत्सत्यं सत्यरूपं “तमीश्वराणां परमं
महेश्वरम्” इति श्रुतेः । तत्परममहेश्वरत्वं यथार्थसत्यरूपं यथार्थसत्यं सत्याय
चिदचिदात्मकप्रपञ्चाय सत्यं हितं सन्दधानाय प्रयच्छमानाय तुभ्यम् ॥ ३ ॥

अरिणिर्वा आरन्द आवारन्द आरन्दोऽयमानन्दते मारन्द-
मीशिषे स्वाहा ॥ ४ ॥

अयं परमात्मा अरं वेगः येषामस्तीति अरिणिः वेगवत्सु मुख्यः
वेगवानेव । आरन्दः आसमन्तादरं वेगं ददाति आरन्दः आवारन्दः अवगत
वेगमान्धं ददातीति आवारन्दः । “आर पीडायाम्” इति पीडाप्रदः ।

यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम् ।

बन्धून् वा नाशयिष्यामि व्याधीनुत्पादयाम्यहम् ॥ इति ॥

अयं परमात्मा मारं कामं ददातीति मारन्दः कामप्रदः । आनन्दते
एवमाकारेण क्रीडते—

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामगमो वशी ।

मोदते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥

इति तुभ्यम् ॥ ४ ॥

यत्सत्यं वा विष्णुरुद्योगः सूर्यो गौर्वा विष्णुर्विशत् विश्वं
विश्वं सन्दधानः तद्विश्वं विष्णवे विश्वरूपाय स्वाहा ॥ ५ ॥

यत्सत्यं स हरिर्देव इति जीवजातमित्यर्थः । विष्णुः व्याप्तिमान्
उद्योगः सर्वोपायभूत इत्यर्थः । सूर्यो गौर्वा सूर्यं किरणं च विष्णुर्विशत्
विश्वं विश्वं सन्दधानः प्रविश्य चिदचिदात्मकं जगत् वसन्ते ग्रीष्मके
रश्मिशतैस्सन्तपतन् त्रिभिः—

तदा शरदि वर्षासु वर्षत्येष चतुःशतैः ।

हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजति त्रिभिः ॥ इति ॥

भारते—

उदितो वर्धमानाभिरा मध्याह्नं तपन् रविः ।

ततः परं हसन्तीभिर्गोभिरस्तं निगच्छति ॥ इति ॥

“तदेवानुप्राविशत्” इत्यादिश्रुतेः । प्रविश्य विश्वं जीवं विश्वं लोकं
सन्दधानः धारयन् तद्विश्वं जीवात्मानं विष्णवे सर्वभूतात्मकाय ददामीति
आत्मसमर्पणमुच्यते ॥

नीचीभावेन संयोज्य ह्यात्मनो यत्समर्पणम् ।

विष्ण्वादिषु चतुर्धा तु तत्प्रदानप्रदर्शिनी ॥

नीचीभूतोऽप्यसावात्मा यतत्त्यंशतयेष्यते ।

तत्तस्मादित्यपेक्षायां विष्णवे स इतीर्यते ॥ इति ॥

आत्मसमर्पणप्रतिपादनाद्यासविद्या ।

हविर्गृहीत्वा स्वात्मानं वसुरण्वेति मन्त्रतः ।

जुहुयात्प्रणवेनाग्नावच्युताख्ये सनातने ॥

योगरत्ने—

पयोभक्षा वायुभक्षाः शीणपर्णाशिनो वा समलोष्टकाञ्चना वाग्यताः प्राणायामाद्यासननिरताः सर्वतोऽरता बहिष्कृतसर्वकामाः परमशान्ताः परमात्मनि गोविन्दे सदा निहितमानसाः वसुरण्वमन्त्रमुच्चारयन्त आत्मानं तेजोमये परमात्माग्नौ दहन्ति तेऽपि मुक्ता भवन्ति । एष जीवात्मपरमात्मनोर्ज्ञान-गो मोक्षयुक्त इति विजानीयात् । एतज्ज्ञानमात्रादेवाचिरान्मोक्षः सिध्यतीति जानीयादिति । प्रसङ्गाद्वसुरण्वमन्त्रस्यार्थ उच्यते । हे प्रत्यगात्मन् वसुर्वसुस्सर्वेषां सवितासि सर्वेषां धनमिवासीति । वसुरण्वशब्दे च सर्वैः कीर्तनीय-श्चासि । विभूरसि सङ्कल्पमात्रेण विविधं भावयितासि । प्राणे त्वमसि सन्धाता प्राणे वसन् सर्वस्यानुसन्धाता चासि ब्रह्मन् तृचोत्तरस्त्वमसि विश्वं त्वमेवासि विश्वस्रष्टा चासि । तेजोदास्त्वमस्यग्नेः तेजसि भास्कराग्नेये प्रकाशोष्णस्वरूपिणीति पराभवसामर्थ्यम् । तेजसो वा वचोदास्त्वमसि सूर्यस्य वचोदा अस्त्विति दीप्तिप्रदः द्युम्नोदास्त्वमसि चन्द्रमसः द्युम्नशब्दो दीप्ति-विशेषपरः उपयामगृहीतोऽसि हविषोः स्कन्दने हेतुभूत उपभृदादिरूप उपयामः तत्र प्रकृतिपुरुषज्ञानमुपयामः तेन गृहीतोऽसि ब्रह्मणे त्वामहस ओमित्यात्मानं युञ्जीत ॥

अकारेणोच्यते विष्णुः सर्वलोकेश्वरो हरिः ।

उद्धृता विष्णुना लक्ष्मीरुकारेण तथोच्यते ।

मकारस्तु तयोर्दास इति प्रणवलक्षणम् ॥

अकारवाच्याय सर्वकारणभूताय सर्वरक्षकाय सर्वशेषिणे श्रियः पतय
एवाहमनन्य इत्याह—निरुपाधिकशेषभूतस्तच्चरणारविन्दयोरैकात्मीयभरस्त-
स्यात्मा नारायणायैव सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचितसर्वकैङ्कर्याणि स्युरिति
कारणभूताय विष्णवे तुभ्यम् ॥ ५ ॥

तद्भूर्भूस्थं भूस्थो वा विश्वरूपस्तद्भूः प्राणः सङ्ख्यातः
भूरासीद्भूरसि भुवोऽसि सुवरसि भूर्भूतये स्वाहा ॥ ६ ॥

तद्भूः आकाशः भूस्थं जलं भूस्थः अग्निः विश्वरूपः नानारूपः
पञ्चसङ्ख्यात्वेन विद्यमानः प्राणः तद्भूश्रुतिः । “तस्माद्वा एतस्मादात्मन
आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी ।
पृथिव्या ओषधयः” इत्यादि भूरासीत् । भूमेरपि भूमिः आधारभूते-
त्यर्थः । भूरसि भुवोऽसि सुवरसि भूरादिलोकरूपोऽसि भूः भूतये
भूरादिलोकानामैश्वर्यभूतोऽसि तुभ्यम् ॥ ६ ॥

आपो वा अपोऽन्तरात्मा यो वेदो वेदानामाधारः
वेदान्तरात्मा सरसो रससङ्ख्यातो रसं रसमासीद्रसाय
स्वाहा ॥ ७ ॥

यः परमात्मा सर्वकारणभूता आपः सृष्ट्यर्थमित्यर्थः । अण्डस्यापि
कारणभूता इत्यभिप्रायेण पृथक्त्वेनोपादानम् । ततो “येन जीवान्व्यचसर्ज
भूम्याम्” इति श्रुतिः ।

अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमपासृजत् ।

तदण्डमभवद्द्वैवं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ इति ॥

अपोऽन्तरात्मा योऽप्सु तिष्ठन्निति । यः परमात्मा वेदः वेदरूपः
वेदानामाधारः “तस्य ह वा एतस्य महतो भूतस्य निश्चसितमेतद्यद्वेदः”

इत्यादि । वेदान्तरात्मा तदन्तर्यामी सरसः अन्तर्बहिश्च सारवान्
रससङ्ख्यातः समग्रषाड्गुण्यपरिपूर्णः । यद्वा—

शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः ।

बीभत्सरोद्रशान्ताश्च रसाश्च नव कीर्तिताः ॥ इति ॥

यद्वा — लवणाम्लकटुतिक्तकषायाः । रसं रसमासीत् रसानां रस
आसीत् । रसाय रसरूपाय तुभ्यम् ॥ ७ ॥

त्रयी वा कामं त्रयीमयं त्रिगुणं त्रेतात्मकं त्रयी वा जेनातिः
त्रिगुणं त्रिगुणात्मकं तस्मै त्रेताग्रये त्रिगुणाय स्वाहा ॥ ८ ॥

त्रयी वा कामं इत्यनेनैव वेदवाक्यव्यतिरिक्तभाषान्तरव्यावृत्तिः ।
शान्तिपर्वणि—

ओङ्कारमुद्गिरन्नेतां सावित्रीं च तदन्वयात् ।

शेषेभ्यश्चैव वक्तेभ्यश्चतुर्वेदगतं वसु ॥ इति ॥

त्रयीमयं वेदस्वरूपं वेदेषु प्राचुर्येण प्रतिपाद्यं वेदभेदादुच्च-
नीचादिस्वरभेदेन त्रिगुणं त्रेतात्मकं गार्हपत्यान्वाहार्यपचनाहवनीयभेदेन
त्रेतात्मकम् । यद्वा गार्हपत्यादीनां प्राणभूतत्वात् त्रेतात्मकमित्युक्तम् । त्रयी
वा जेनातिः वेदरूपजेनातिः त्रिगुणं नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन त्रिगुणम् ।
यद्वा—सात्त्विकराजसतामसभेदेन त्रिगुणम् । त्रिगुणात्मकं आधारभूतमेवं-
भूताय तस्मै त्रेताग्रये त्रिगुणाय गुणत्रयसहिताय तुभ्यम् ॥ ८ ॥

द्वौ वा मुख्यौ मुख्याधारौ ससुखौ सानन्दौ सस्मेरौ
स्मेरायितौ सानन्दमानन्दते स्वाहा ॥ ९ ॥

द्वौ ब्रह्मरुद्रौ । यद्वा प्रतिपुरुषौ मुख्यौ मुख्याधारौ अस्वतन्त्रौ
परमात्माधारौ । “ अन्तरस्मिन्निमे लोकाः ” इति । ससुखौ सुखसहितौ

सानन्दौ हितरूपं सुखं अहितं दुःखं सस्मेरौ स्मेरयुतौ हाससहितौ स्मेरायितौ,

एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ स्मृतौ ।

तथा दर्शितपन्थानौ सृष्टिसंहारकारकौ ॥

ब्रह्मरुद्रेन्द्रवह्नीन्दुदिवाकरमनुग्रहाः ।

तच्छक्त्याधिष्ठितास्सन्तो मोदन्ते दिवि देवताः ॥ इति ॥

सानन्दं आनन्दसहितं आनन्दते ।

इष्टे वस्तुनि दृष्टे च प्रियमेवावभासते ।

तद्वस्तुलाभान्मोदः स्यात्प्रमोदस्तस्य भोगतः ।

एते स्म जठरानन्दात् स्वदन्ते जलधेरिव ॥ इति ॥

“सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति । युवा स्यात्साधुयुवा-
ध्यायकः । आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः । तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा
स्यात् । स एको मानुष आनन्दः” इत्यारभ्य “स एको ब्रह्मण आनन्दः”
इत्यन्तं मानुषमनुष्यगन्धर्वदेवगन्धर्वाणां पितृणामाजानजानां कर्मदेवानामिन्द्रस्य
बृहस्पतेः प्रजापतेर्ब्रह्मण इति मानुषानन्दमुपक्रम्य ब्रह्मानन्दपर्यन्तमुक्त्वा
ब्रह्मानन्दस्यापरिमितत्वात् आनन्दो ब्रह्मेति सदतिशयानन्दस्वरूपत्वाच्च
ब्रह्मणः “यतो वाचो विवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह” इत्युक्तम् । एवं-
भूताय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

**स एकैकः साधारः साधिष्ठानो नाधिष्ठानः कं कं कस्मै
पदे पदे पातः पादाय पादिते स्वाहा ॥ १० ॥**

स परमात्मा एकैकः अनेन “सदेव सोम्येदमग्र आसीत्”, “एक-
मेवाद्वितीयम्” इति श्रुतेः । सृष्टेः प्राक् निमित्तोपादानकारणान्तररहिते

साधारः हृदयकमलाद्याधारः । साधिष्ठानः “तद्विष्णोः परमं पदम्” इति श्रुतेः परमपदाद्यधिष्ठानसहितः । नाधिष्ठानः अवान्तरकत्वेनाधिष्ठानभूतो न भवति । यद्वा—धारकान्तररहितः एवंभूतस्य परमात्मनः पादाय पातः प्रणतिः कं कं पुरुषमपि पदे पदे परमात्मना संपादिते ।

आमोदश्च प्रमोदश्च संमोदस्तदनन्तरम् ।

वैकुण्ठमिति विज्ञेयास्तेऽन्योन्यमुपरि स्थिताः ॥

अतः परं चतुर्थः स्याल्लोकः परमभास्वरः ।

वासुदेवस्य सुमहत्तद्दीप्तमजरावृतम् ॥

द्वादशावरणोपेतं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ।

सर्वतेजोमयं भास्वदनिर्देश्यं सुरैरपि ॥

आनन्दं नाम तं लोकं परमानन्दमद्भुतम् ।

यस्मिन् कस्मिन् कुले जाता यत्र कुत्र निवासिनः ।

वासुदेवरता नित्यं यमलोकं न यान्ति ते ॥ इति ॥

पदे पदे आमोदादिपदे पदान्तरे वा तापयतीति शेषः ।
नित्यमुक्तबन्धैश्च क्रीडते तुभ्यम् ॥ १० ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ।

षष्ठोऽनुवाकः

स्वयमादिः सर्वान्तरात्मा देवस्य स्वयं क्रीडात्मकमवासृजत्
यः स्वयं लोकमवधारमवधारयन् स्वाहा ॥ १ ॥

अतः परं परब्रह्मणो नारायणस्य परत्वान्तर्यामित्वादिप्रतिपादनमुखेन अर्चावतारादिकं प्रतिपादयति—स्वयमादिः इत्यादिना । स्वयमित्यनेन “सदेव सोम्येदमग्र आसीत्”, “एकमेवाद्वितीयम्” इति श्रुतेरभिन्न-निमित्तोपादानकारणभूतं “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इत्यादिभिः सत्यत्व-ज्ञानत्वानन्तत्वविशिष्टं “आनन्दो ब्रह्म” इति निरतिशयानन्दस्वरूपं “नारायणपरं ब्रह्म” इत्यादिभिः परंब्रह्मपरंतत्त्वपरं ज्योतिःपरमात्मादिशब्द-वाच्यं नारायणमेवाह—स्वयमिति ॥

नारस्त्विति सर्वपुंसां समूहः परिकीर्तितः ।

गतिरालम्बनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥ इति ॥

अखिलजगत्कारणभूतो नारायण एवादिरित्युच्यते । यद्वा—
आदिशब्देन परत्वम् ।

परत्वं नाम—

वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्धं जगत्पतिः ।

आस्ते विष्णुरचिन्त्यात्मा भक्तैर्भागवतैः सह ॥

परे लोके—

अतःपरं चतुर्थः स्यादित्यादि ॥

श्रिया सार्धम्—

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ।

यथा सद्भगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥

जगत्पतिः —

पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् ।

एक एव जगत्स्वामी शक्तिमानच्युतः प्रभुः ॥

तदंशाच्छक्तिमन्तोऽन्ये ब्रह्मेशानादयोऽमराः ।

ब्रह्मादिदेवसङ्घेषु स एव पुरुषोत्तमः ॥

स्त्रीप्रायमितरत्सर्वं जगद्ब्रह्मपुरस्सरम् ।

विश्वव्यापकशीलत्वाद्विष्णुरित्यभिधीयते ॥

अचिन्त्यात्मा—

न यम्य रूपं न बलप्रभावो न च स्वभावः परमस्य पुंसः ।

विज्ञायते शर्वपितामहाद्यैस्तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥

भक्तैः—

भक्तैस्तद्भक्तवात्सल्यं तत्पूजास्वनुरञ्जनम् ।

तत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥

तदनुस्मरणं नित्यं तदन्यस्य च वर्जनम् ।

नित्यं तदेकशेषत्वं यद्भुक्तेनोपजीवति ॥ इति ॥

भागवतैः—

उत्पत्तिश्च विनाशश्च भूतानामागतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

पञ्चशक्तिमयो विष्णुर्वासुदेवः सनातनः ।

लोकस्थितिमिमां दीर्घां विशालामतिदुस्तराम् ।

पश्यन्नास्ते हृषीकेशः परमे व्योम्नि भास्वति ॥

एवं परत्वमुपपादितम् । सर्वान्तरात्मा इत्यनेन “अन्तः प्रविष्टः
शास्ता जनानां सर्वात्मा”, “यस्यात्मा शरीरं यस्य पृथिवी शरीरम्”
इत्याद्यन्तर्यामित्वं स्वयमादिः इत्युक्तत्वात् । दैविकमानुषभेदेन व्यूहो
द्विविधः ।

कथं त्वमर्चनीयोऽसि मूर्तयः कीदृशास्तु ते ।
वैखानसाः कथं वा स्युः कथं वा पाञ्चरात्रिकाः ॥

श्रीभगवान्—

शृणु पाण्डव तत्सर्वमर्चनाश्रममात्मनः ।
स्थण्डिले पद्मकं कृत्वा साष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥
अष्टाक्षरविधानेन अथवा द्वादशाक्षरैः ।
वैदिकैरथवा मन्त्रैर्मनुनोक्तेन वा पुनः ॥
स्थितं मामन्तरे तस्मिन्नर्चयित्वा समाहितः ।
पुरुषं च ततस्सत्यमच्युतं च युधिष्ठिर ॥
अनिरुद्धं च मां प्राहुर्वैखानसविदो जनाः ।
अन्ये त्वेवं विजानन्ति मां राजन् पाञ्चरात्रिकाः ॥
वासुदेवं च राजेन्द्र सङ्कर्षणमथापि च ।
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च चतुर्भूतिं प्रचक्षते ॥
एताश्चान्याश्च राजेन्द्र संज्ञामेदेन मूर्तयः ।
विद्धि मेऽर्चान्तराण्येव मामेवं चार्चयेद्बुधः ॥ इति ॥

वैभवं त्ववताराणाम्—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः ।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्कीति ते दश ॥ इति ॥
देवशब्दप्रयोगसामर्थ्यात् व्यूहविभवे अभिप्रेते स्वयं इत्यनेन
“पञ्चधा पञ्चात्मा” इत्यादिश्रुत्यर्थोऽत्रानुसन्धेयः । पञ्चधेत्यनेन परव्यूह-
विभवान्तर्याम्यर्चावतार इति पञ्चधा प्रतिपादितासु,

व्याप्तिः कान्तिः प्रवेशोऽर्चा तत्क्रियासु निबन्धनाः ।

परत्वेऽप्यधिकं विष्णोर्देवस्य परमात्मनः ॥

मुक्तोऽपि भोगभोग्यत्वात्परव्यूहात्मनो हरेः ।

तत्कालसन्निकृष्टे च लक्ष्यत्वाद्विभवात्मनः ॥

विशुद्धैर्यागसंसिद्धैश्चिन्त्यत्त्वादनन्तरात्मनः ।

अर्चात्मन्येव सर्वेषामधिकारो निरङ्कुशः ॥

अर्चावतारविषये ममाप्युद्देशतस्तथा ।

उक्ता गुणा न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ॥

एवं पञ्चप्रकारोऽहमात्मनां पततामधः ।

पूर्वस्मादपि पूर्वस्माज्जायांश्चैवोत्तरोत्तरः ।

सौलभ्यतो जगत्स्वामी सुलभो ह्युत्तरोत्तरः ॥ इति ॥

परत्वादौ सौलभ्याभावात् सर्वसुलभत्वादर्चावतारः ।

शिलादारु च ताम्रं च रजतं काञ्चनं मणिः ।

उक्तानि कौतुकार्थं तु षड् द्रव्याणि मनीषिभिः ॥ इति ॥

शैलजादिरूपेण विग्रहपरिग्रहादिकं भगवतः प्रतिपादयति इयं
श्रुतिः—क्रीडात्मकमवासृजत् इति ॥

नृसिंहतापनीयोपनिषदि—

अथ कस्मादुच्यते वीरमिति यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान्
सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि विरमति विरामयत्यजस्रं सृजति
विमृजति वासयति यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः
तस्मादुच्यते वीरमिति ॥ इत्यादि ॥ यतः भक्तसंरक्षणादिहेतुत्वेन वीरः—

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।

मम वर्तमानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।

संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

इत्यादिभगवद्वचनानुरोधेन नित्यविभूतौ पादप्रक्षाळनादिकर्मकरणे योग्यताभावात्, विभूतौ पादप्रक्षाळनाचमनस्नानादिकर्मकरणायोग्यतात्वमिच्छन् सुदक्षां सुतरां स्वापकादीनां यथायोग्यं कामितफलप्रदानसमर्थः “युक्तग्रावा जायते देवकामः” देवतात्वमिच्छन् श्रीवैखानसादिशास्त्रोक्तशैलादिप्रतिमारूपे जायते । ग्रावाग्रहणं सुवर्णरजतादीनामप्युपलक्षणम् ।

किञ्च—

पिशङ्गरूपस्सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।

पिशङ्गरूपः सुवर्णवर्णः सुभरः सुखेन भर्तुं शक्यः वयोधाः वयसा गरुडेन ध्रियत इति वयोधाः वीरशब्देन पूर्वोक्तमन्त्रप्रतिपाद्य एवात्रापि प्रतिपाद्यते पिशङ्गरूप इत्यादि गुणशिष्टत्वेनोक्तत्वात् सालग्रामपरत्वेन वा ग्रावापरत्वेन वा वक्तुमयुक्तमित्यवगम्यते ।

भारते—

सुरूपां प्रतिमां विष्णोः प्रसन्नवदनेक्षणाम् ।

कृत्वात्मनः प्रीतिकरीं सुवर्णरजतादिभिः ॥

तामर्चयेत्तां प्रणमेत्तां जपेत्तां विचिन्तयेत् ।

विशत्यपास्तदोषस्तु तामेव ब्रह्मरूपिणीम् ॥

ग्रन्थान्तरे—

द्वीपवर्षविभागेषु तीर्थेष्वायतनेषु च ।

मानुषाश्चात्मना चाहं ग्रामेग्रामे गृहेगृहे ॥

पुंसिपुंसि संभवानि दारुलोहशिलामयः ।

अहं पञ्चोपनिषदः परव्यूहादिषु स्थितः ॥

आविर्भावेषु सर्वेषु स्वसङ्कल्पशरीरवान् ।

आवेशांशावतारेषु पाञ्चभौतिकविग्रहः ॥

दारुलोहशिलामृत्स्नाशरीरोर्चात्मकः स्मृतः ।
 चेतनाचेतनैर्देही परमात्मा भवाम्यहम् ॥
 अर्चात्मनावतीर्णं मां जानन्तो हि विमोहिताः ।
 कृत्वा दारुशिलाबुद्धिं गच्छन्ति नरकायुतम् ॥
 स्वयम्भूनां विमानानामभितो योजनद्वयम् ।
 क्षेत्रे पापहरं प्रोक्तं मृतानामपवर्गदम् ॥
 योजनं दिव्यदेशानां सिद्धानामर्थमेव च ।
 मनुष्याणां विमानानामभितः क्रोशमुत्तमम् ।
 गृहमात्रं प्रशस्तं वा गृहार्चा यत्र विद्यते ॥ इति ॥

पुरुषसंहितायां नारदं प्रति सनत्कुमारः—

पुरा नारायणो देवः कृपया परयान्वितः ।
 देवतिर्यङ्मनुष्यादीन् वीक्ष्य संसारमध्यगान् ॥
 एवं सञ्चिन्तयामास संस्मरन् वैभवं स्वकम् ।
 स्वतःप्रमाणवाक्यैश्च दुर्विज्ञानं वदन्ति माम् ॥
 अणोरणीयान्महतो महीयान्निर्गुणो गुणी ।
 दिग्देशकालावस्थाद्यैरसौ चाभेद्यवैभवः ॥
 प्रधीक्ष्यविहीनश्च सत्यकामो निरञ्जनः ।
 विनेन्द्रियेण सर्वज्ञो विना पादेन सर्वगः ॥
 अनासोऽनुभवन् गन्धं स्पृशन् सर्वमपाणिकः ।
 शृण्वन् श्रुतिं विना शब्दमजिह्वोऽपि लिहन् रसम् ॥
 साधनेन विना सर्वं साध्यं साधयतेऽन्वहम् ।
 तस्मात्सर्वप्रमाणेन सुदुर्ज्ञानतरो ब्रह्म ॥

मज्ज्ञानाभावगे मोक्षो न सिद्ध्यति कदाचन ।
 तस्मात्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यन्ते च सुदुस्तरे ॥
 उद्धरेयमिमान् सर्वान् यातनाशतसंकुलान् ।
 इति सञ्चिन्त्य भगवान् स्वच्छन्दोपात्तविग्रहः ॥
 हित्वौपनिषदं वेषं प्रमाणानामगोचरम् ।
 सर्वेषां हर्षदं भक्त्या दृष्टमात्रेण मुक्तिदम् ॥
 सर्वकल्याणसंपूर्णं गुणराशिसमाश्रयम् ।
 सहस्रमुखदृक्पादमाददे रूपमद्भुतम् ॥ इति ॥
 अतः स्वयं च भगवान् क्रीडात्मकमवासृजत् ।
 अवतारस्य सत्यत्वमजिहासन् स्वभावतः ॥
 शुद्धसत्त्वमयत्वं च स्वेच्छामात्रेण दासता ।
 धर्मज्ञोऽसौ समूहश्च साधुसंरक्षणार्थता ।
 इति जन्मरहस्यं यो वेत्ति नास्य पुनर्भवः ॥ इति ॥

पादो—

उद्धृतायां स मेदिन्यां पूर्णं तद्भूतमोन्तरे ।
 जलं तत्कृतमर्यादं व्यवच्छिन्नमभूत्तव ॥
 संस्थाप्य पृथिवीमित्थं तदुर्व्याधारसिद्धये ।
 दिग्गजानहिराजं च कमठं च न्यवेशयत् ॥
 तेषामपि च सर्वेषामाधारत्वेन सादरम् ।
 अव्यक्तरूपां स्वां शक्तिं युयुजे च दयापरः ॥ इति ॥

यः परमात्मा स्वयं लोकं भूरादिसर्वलोकान् अवधारं

अधस्ताद्धृतम् ।

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।

पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥

इति शेषदिग्गजादिभिर्धृतं दिग्गजादीनामाधारत्वेन अधस्तात्
धारयन् कूर्मरूपेणेत्यर्थः ॥ १ ॥

यः स्वयं सृष्टमात्मना गुप्तमनुसंदितानमचरं चरन्तं स्वयं
क्रीडं क्रीडयन् क्रीडान्तरमनुप्राविशत् स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा स्वयं सृष्टं स्वेन सृष्टं आत्मना स्वेनैव गुप्तं
रक्षितं अनुसन्दितानं साकल्येन जीवस्य चात्मनः फलितं अचरं स्वातन्त्र्येण
गतिरहितं चरन्तं जीवं यद्वा स्थावरजङ्गमात्मकं तं प्रत्यात्मानं

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामागमो वशी ।

मोदते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ इति ॥

स्वतन्त्रत्वात्प्रतिमाप्रायेण क्रीडं क्रीडयन् अन्योन्यं क्रीडयन् स्वयं
क्रीडान्तरं वारोहादिरुक्तं अनु साकल्येन प्राविशत् । यद्वा कूर्मविषयत्वेन
स्वसृष्टमन्दरपर्वतं समुद्रमथनेन मन्थरस्योपरि चरन्तं गतिं कुर्वन्तं स्वयं
क्रीडयन् तथारणेन क्रीडयन् क्रीडान्तरममृतप्रदानार्थं स्त्रीवेषधारणादिकं
साकल्येन प्राविशत् ।

देवतिर्यङ्मनुष्याख्यचेष्टामत्ति स्वलीलया ।

जगतामुपकाराय मनःकर्मनिमित्तजः ॥

समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशाद्धृतभूतसर्गः ।

इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः सनाथिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥

इति तस्मै ॥ २ ॥

स्वौजसा सर्वमादधाति यः पापीयांसमनुपदमार्हिसत् सुपुण्यं
पुण्यात्मकं पुण्यं वितानं दाधार देवाय स्वाहा ॥ ३ ॥

यः परमात्मा स्वौजसा परबलाहरणशक्त्या सर्वं जगत् आदधाति
स्थापयति यः परमात्मा बलभद्ररूपी पापीयांसं प्रलम्बासुरं अनुपदं लीलाकाले
गृहीत्वा गच्छन्तं पदमनुसृत्य अहिंसत् हिंसितवान् ।

श्रीवैखानसे—

योगनिद्रे ममादेशात् पातालतलसंश्रयान् ।
एकैकशश्च षड्गर्भान् देवकीजठरे नय ॥
हतेषु तेषु कंसेन शेषाख्यांशस्ततो मम ।
अंशांशेनोदरात्तस्याः सप्तमः स भविष्यति ॥
गोकुले वसुदेवस्य तथान्या रोहिणी तथा ।
तस्य संभूतिसमये स विनेयस्त्वयोदरम् ॥ इति ।

सुपुण्यं सुतरां पुण्यस्वरूपं पुण्यात्मकं पुण्यशब्दवाच्यानामन्तर्या-
मिणं पुण्यं वितानं वितानरूपत्वेन दाधार शेषरूपेण कृष्णं दाधार
सङ्कर्षणमूर्तिस्त्वेन क्रीडमानस्तस्मै । यद्वा पापीयांसं सर्वयज्ञविनाशकं
हिरण्याक्षपदमनुसृत्य अहिंसत् हिंसितवान् सुपुण्यं पुण्यात्मकं यज्ञं “यज्ञो
वै विष्णुः” इति पुण्यं वितानं दाधार त्रयीसंवरणं यत इति वेदमूलत्वात्
आच्छादकं दाधार स्थापितवान् ।

भृगुः—

हिरण्याक्षोऽपि दैत्येन्द्रो बलवान् बलिनां वरः ।
परेण गर्वाद्बुद्धिर्यज्ञविद्वेषकोऽभवत् ॥
तद्यथाकृतवान्निष्णुर्नरसूकरमूर्तिमान् ।
हत्वा स दैत्यं सबलं पश्चाद्यज्ञोनुवर्तयन् ॥

यज्ञवराहरूपिणौ इत्यर्थः ।

किञ्च—

आद्ये कलियुगे प्राप्ते सोमकेन हृता त्रयी ।

इत्यारभ्य ।

अथ मत्स्याकृतिः श्रीशः प्रविश्याम्बुधिमध्यगम् ।

निर्मथ्य सोमकं वेदानदात् कञ्जनयोनये ॥

तादृशं पुण्डरीकाक्षं स्तोत्रैः सन्तोष्य पद्मभूः ।

उवाच वचनं प्रेम्णा दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥

तान्त्रिकेण पुरा प्रोक्तं मार्गेण भवदर्चनम् ।

न प्रसिद्धयति चास्माकं मनः कमललोचन ॥

वैदिकेन त्वदर्चो वै यथापूर्वं वदाच्युत ।

इत्युक्तो भगवान् देवः शास्त्रं श्रुतिपथागतम् ॥

सहस्रकोटिभिः श्लोकैः सङ्ख्यातं बहुविस्तरम् ।

सूत्रे मूलमनाद्यन्तं कल्पे कल्पे समाश्रितम् ॥

उवाच जगतां प्रीत्यै यज्ञानां पूरणाय च ।

मूलं सर्वागमानां च पुराणानां तथैव च ॥

स्मृतीनां सर्वसूत्राणां प्रत्यङ्गोपाङ्गशोभनम् ।

श्रुत्युक्तं तदिदं शास्त्रं वैखानसमहार्णवम् ॥

इत्युक्त्वा भगवानाद्यस्तत्रैवान्तरधीयत ।

ततः परं चतुर्वक्त्रो जटाकाषायदण्डभृत् ॥

नैमिशारण्यमासाद्य मुनिवृन्दनिषेवितम् ।

तपस्तप्त्वा चिरं कालं ध्यायंस्तेजस्तु वैष्णवम् ॥

पश्चादपश्यद्विष्णूक्तमागमं विस्तरं तथा ।

सश्रोतं च स्वमात्रं च वेदमन्त्रैरभिष्टुतम् ॥

सङ्क्षिप्य सारमादाय शाणोल्लिखितरत्नवत् ।
 धातुर्विखनसा नाम्ना मरीच्यादीन् सुतान् मुनीन् ॥
 अबोधयदिदं शास्त्रं सार्धकोटिप्रमाणतः ।
 मुनिभिस्तस्य सङ्क्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः ॥
 कल्पेकल्पे महाविष्णोरुद्भूतं पूर्वतस्सदा ।
 तस्माद्वैदिकमाचारं यः कर्तुं भुवि वाञ्छति ।
 तस्येदं शास्त्रमित्युक्तं नेतरेषामितीरितम् ॥ इति ॥
 देवशब्दसामर्थ्यान्मत्स्यादिरूपेण क्रीडते तुभ्यम् ॥ ३ ॥

क्ष्मां मेकां सलिलावसन्नां श्रुत्वा स्वनन्तीमनु स्वयं भूत्वा
 वराहो जहार तस्मै देवाय सुकृताय पित्रे स्वाहा ॥ ४ ॥

क्ष्मां भूमिं एकां सलिलावसन्नां प्रलयजलाक्रान्तां स्वनन्तीं
 क्रोशन्तीं श्रुत्वा अनु पश्चात् स्वयं वराहो भूत्वा जहार उद्धृतवान् देवाय
 द्योतमानाय सुकृताय सुकृतं कृतवते पित्रे रक्षकाय ।

शान्तिपर्वणि—

आदौ महार्णवे घोरे भाराक्रान्तामिमां पुनः ।
 तदा बलादहं पृथ्वीं सर्वभूतहिताय वै ॥
 सत्त्वैराक्रान्तसर्वाङ्गां नष्टां सागरमेखलाम् ।
 आगमिष्यामि संस्थातुं वाराहं रूपमास्थितः ॥
 इति तस्मै ॥ ४ ॥

यः कुं धरमाणः कुं धरतां कुं धरतामित्यवोचत् तां सानु-
 मन्तो विदधत्स्वतेजसा तस्मै देवाय वरिष्ठाय वरप्रदाय पित्रे
 स्वाहा ॥ ५ ॥

यः परमात्मा कुं भूमिं धरमाणः आधारकूर्मादिरूपेण धारयमाणः कुं धरां धरतां गोवर्धनपर्वतभङ्गभयभीतानां भयनिवारणार्थं वर्षादिभयनिवारणार्थं च गोपान् प्रति कुं धरतां पर्वतानां सानुषु वसन्त्वित्यध्याहारः अवोचत् इत्युक्तवान् औचित्यवशात् समीचीनार्थश्च-कारनियमाच्च तां भूमिं सानुमन्तः पर्वताश्च गोपानां रक्षणार्थं स्वतेजसा—
सहकार्यनपेक्षं यत्तत्तेजः समुदाहृतम् ॥ इति ॥

विदधत् भृतवान् वरिष्ठाय श्रेष्ठाय वरप्रदाय पित्रे रक्षकाय तस्मै तुभ्यम् ॥ ५ ॥

पृथां प्रस्खलन्तीं प्रमृज्यामृजाङ्गीं य ऊर्वोरुपादधात् तस्मै मुख्याय वरदाय पित्रे स्वाहा ॥ ६ ॥

पृथां भूमिं प्रस्खलन्तीं जलमज्जनायासेन प्रकर्षेण स्वलन्तीं यथास्थाने स्थातुमसमर्थां अमृजाङ्गीं पङ्कादिभिर्लिप्तशरीरां प्रमृज्य शुद्धिं कृत्वा ऊर्वोरुपादधात् ऊरुमध्ये स्थापितवान् तस्मै मुख्याय वरदाय पित्रे ॥ ६ ॥

यां गामुशन्तीमुशन्नभिपूर्णांमारक्तनीलाममृतां रजन्तीमालालयन् लालितकङ्कणाङ्गीं तस्मै प्रजेशाय वरदाय पित्रे स्वाहा ॥ ७ ॥

यां गां भूमिं उशन्तीं आक्रोशन्तीं भूतभूभारपीडया क्रोशन्तीं वराहरूपेणावतीर्य उशन् शब्दं कुर्वन् अभिपूर्णां स्थावरजङ्गमादिभिः समृद्धां आरक्तनीलां रक्तनीलवर्णां अमृतां जलेनार्द्रां रजन्तीं रजसामिप्लुतां लालितकङ्कणाङ्गीं जवोद्धरणवेळायां लालितानि जलकणानि यद्वा कङ्कणानि यस्याः सा लालितकङ्कणाङ्गी तां भूमिं आलालयन् यः परमात्मा तिष्ठति प्रजानामीशाय प्रजेशाय वरदाय पित्रे तस्मै ॥ ७ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां
स्वाहा ॥ ८ ॥

प्रजानां प्रतिः प्रजापतिः हे प्रजापते शब्दवाच्यपरमात्मन् त्वदन्यः
विश्वा जातानि विश्वस्मिन् जातानि परिता पालयिता रक्षकः स्रष्टा वा
न बभूव यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां पतये
स्याम तुभ्यम् ॥ ८ ॥

यो धूर्धुरं धूर्धुरं धूर्वराणां सुधूर्धूरसि धूर्धुराणां धूरसि
धूर्वङ्ग मे स्वाहा ॥ ९ ॥

यः परमात्मा धूर्धुरं भारस्यापि भारभूतः धूर्वराणां भारवहने पुष्टानां
धूर्धुरं भाररूपं सुधूर्धूरसि धूर्धुराणां धूरसि भारभूतोऽसि तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यो वाप्यर्हिंसीज्जरया जरन्तं तं दैत्यमुख्यममृतात्मरूपं
सुखुरं खुराणां किञ्चित्स्वनन्तं तस्मै नृसिंहाय सुरेशपित्रे
स्वाहा ॥ १० ॥

यः परमात्मा नृसिंहरूपी जरया जरन्तं जीर्णतारहितं दैत्यमुख्यं
प्रथमं अमृतात्मरूपं वरप्रदानेन देवमनुष्यादिभिः दिवारात्रौ च मरणरहितं
भृगुः—

हिरण्यकशिपुर्नाम दैत्यराट् स प्रभुर्भवेत् ।

वरेण गर्वी दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥

देवैर्वा मानुषैर्वापि मृगैर्जीवैरजीवकैः ।

दिवारात्रौ तथा चैवं वयो नैवं ममेति च ॥

एवं वरेण गर्वन्तं दैत्यं देवविरोधिनम् ।

वधं कर्तुं कृतोद्योगश्चिन्तयित्वा हरिः प्रभुः ॥

नरसिंहवपुः कृत्वा दिवारात्रौ व्यपोह्य च ।

सन्ध्यायां तु वधं कुर्यात् स्वीयाङ्के तु नखाङ्कुरैः ॥

बाह्यमभ्यन्तरं भित्त्वा जीवाजीवैर्नखैः शुभैः ।

एवं दैत्यवधं कृत्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥ इति ॥

सुखुरं खुराणां नृसिंहनखापेक्षया सुकुमारनखं किञ्चित्स्वनन्तं
वज्राधिकनखाग्रैः हिंसितत्वात् सन्धितुमशक्याद्वा प्रमुत्वाद्वा किञ्चित्स्व
नन्तमहिंसीत् हिंसितवान् तस्मै नृसिंहाय नरसिंहरूपिणे सुरेशो ब्रह्मा रुद्रः
तस्य पित्रे रक्षकाय तस्मै ॥ १० ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः

सप्तमोऽनुवाकः

तपोनिधिं तपसां रयिदं रयिमायुरङ्गं व्यसनौघहन्तु
सासिष्वसन्तं सवने सवित्रे तस्मै सुरेशाय सुरबृन्दकर्त्रे स्वाहा ॥ १ ॥

तपोनिधिं “ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपश्शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो
दानं तपो यज्ञं तपो भूर्भुवस्सुवर्ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः ” इति, तपः स्वधर्मवर्तित्वम्,
“तप इति तपो नानशनात् परम् ” इत्यादिश्रुतिसिद्धानां तपःशब्दवाच्या-
नामावासभूतम् । तपसां रयिदं तपसामप्यैश्वर्यप्रदम् । रयिं ऐश्वर्यभूतम् ।
व्यसनौघहन्तु आपन्निवागकं स्वभक्तस्वापन्निवारकत्वं ब्रह्मादेरदृष्टम् ।
सासिष्वसन्तं असिसहितः सासिः प्रतिष इत्यर्थः तेष्वसन्तम् । सवने

समये सवित्रे फलप्रदाय सुरेशाय ब्रह्मरुद्रादीनामीश्वराय सुरवृन्दकर्त्रे
देवसमूहकर्त्रे तस्मै तुभ्यम् ॥ १ ॥

यो वा नृसिंहो विजयं विभर्षि साराजिमन्तं रयिदं
कवीनां साराजिमन्तं सजयं सहस्रं तस्मै सुयन्त्रे सुशेवधये
स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा हिरण्यवधादिना विजयं विभर्षि । विष्णुसूक्ते
“प्रतद्विष्णुस्तव ते वीर्याय । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु
त्रिषु विक्रमणेषु । अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा” । प्रकर्षेण तस्माद्वि-
रण्यवधादिकारणादाविर्भूतो नृसिंहो न मृगः किन्तु विष्णुः भीमः दैत्य-
दानवरक्षसां भयंकरः,

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ इति ॥

कुचरो गिरिष्ठाः रत्नकूटपर्वते स्थितः सन् पादचारी भूत्वा
सन्ध्याकाले हिरण्यवधादिकं कृतवान् । यस्य विष्णोरुरुषु महत्सु त्रिषु
विक्रमणेषु भुवनानि अधिक्षियन्ति अधिक्षिप्तानि भवन्ति । तस्माद्विष्णुः
वीर्यवत्तया स्तवत इति ॥ श्रीमद्वैखानसेऽखिलसंहितायामप्येवमेवोक्तम्—

नरसिंहः सुभविता कस्माच्च भुवनेश्वरः ।

इत्युपक्रम्य ।

गत्वा तत्पुरसाब्दे तु पर्वतं शृङ्गिरूपिणम् ।

रत्नकूटमिति ख्यातं पर्वतं सुमनोहरम् ॥

तस्यैव शिखरे रम्ये दृष्टः स भगवान् किल ।

नारायणस्तु सिंहत्वे मुखं कृत्वा च दारुणम् ॥

दंष्ट्राणां च तु तीक्ष्णत्वं सटाभिः स्कन्धसङ्कटम् ।

नररूपं वपुः कृत्वा मानुषत्वे व्यवस्थितः ॥

सुदारुणं महद्रूपं शत्रूणां साधनाय च ।

नखैस्तीक्ष्णैः सुदंष्ट्रैश्च चतुर्भिर्बाहुभिर्युतम् ॥

नागराश्च किलोद्युक्ता हिरण्यपुरवासिनः ।

अपराह्णे महासिंहं पर्वताग्रे प्रतिष्ठितम् ॥

सहस्रादित्यसङ्काशं ज्वलन्तं प्रभया युतम् ।

आगच्छन्तं समुत्प्रेक्ष्य विद्रुता भयमोहिताः ॥

अपराह्णे मन्दभूते रक्तादित्यकरप्रभे ।

शीघ्रमुच्चार्य वेगेन मन्दिरं प्राविशद्वरिः ॥

इत्यादि ।

शीघ्रं चापं च गृह्णन्तं तत्प्रमुच्यासिमुत्तमम् ।

उत्पत्य खड्गं दृष्ट्वा तं हिरण्यकशिपुं रिपुम् ॥

एकेनैव च हस्तेन खड्गं जग्राह तस्य तम् ।

अन्येन पाणिना चारु समालम्ब्यादिकङ्कतम् ।

अस्त्रेण सह संयोज्य विभिदे तद्विधा हरिः ॥ इति ॥

साराजिमन्तं सर्वैश्वर्यवन्तं कवीनां ज्ञानिनां यद्वा भक्तानां
साराजिमन्तं साम्राज्यं सजयं जयसहितं सहस्रं अपरिमितं तस्मै प्रह्लादाय
सुयन्त्रे भगवद्भक्ताय यद्वा परमात्मज्ञानिने सुशेवधये निधिभूताय ॥ २ ॥

रयिः ककुब्जान् दधद्विनष्टं रयिमद्विधानं तस्मै ककुब्जे
विकटाय पित्रे स्वाहा ॥ ३ ॥

रयिः ऐश्वर्यरूपः ककुब्जान् वृषभाववान् यद्वा श्रेष्ठः दधद्विनष्टं
येन केन प्रकारेण यस्मै कस्मैचित् विनष्टं पदार्थं वरप्रदानादिमुखेन प्रापयन्

रयिमद्विधानं रयिः इत्यनेन “ऋचः सामानि यजूंषि । सा हि श्रीरमृता सताम्” इति श्रुत्युक्तं विधानं विधिः श्रुतिप्रसिद्ध इत्यर्थः । अनेन शास्त्रयोनित्वं दर्शितम् । ककुत्वे ककुदि स्थिताय विकटाय वेङ्कटाय । ऋग्वेदे “अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे शिरिंबिठस्य सत्त्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि” इति ॥ हे अरायि ऐश्वर्यहीने काणे एकाक्षिन् अन्धस्य गमने सामर्थ्याभावात्काणस्य यथाकथंचित् गमनयोग्यता संभवतीति काणेत्युक्तम् । विकटे गिरिं गच्छ वेङ्कटगिरिं प्रति गच्छ “चतुर्हृतो ह वै नामैषः । तं वा एतं चतुर्हृतं सन्तम् । चतुर्होतेत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥”, “इन्द्रो ह वै नामैषः । तं वा एतमिन्द्रं सन्तम् । इन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥” इति श्रुतेः परोक्षेणोक्तम् । सदान्वे सर्वदा अन्वेषणं कुरु ॥ यद्वा सर्वदा अन्वेष्य शिरिंबिठस्य श्रीपीठस्य,

स्वामिपुष्करिणीतीरे कोटिकन्दर्पमूर्तिमान् ।

आस्ते लक्ष्म्या च धरया रमन् षोडशवार्षिकः ॥ इति ॥

सत्त्वभिः सात्त्विकगुणैः तेभिः तैः त्वा त्वां चातयामसि चातयामः विनाशयामः ।

पादौ—

स्वामिपुष्करिणीतीरे सर्वान्तर्याम्यधोक्षजः ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

चिन्तितस्य तु विद्या तु चिन्तामणिमिमं जगुः ।

केचिद्दानप्रदत्वाच्च ज्ञानाद्रिरिति तं विदुः ॥

सर्वतीर्थमयत्वाच्च तीर्थाद्रिं प्राहुरुत्तमाः ।

पुष्कराणां च बाहुल्यत्वात् गिरावस्मिन् सरससु च ॥

पुष्कराद्रिं प्रशंसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ।
 गिरावस्मिन् तपस्तेपे सोऽपि च स्वाभिवृद्धये ॥
 तस्मादाहुर्वृषाद्रिं तं मुनयो वेदपारगाः ।
 शातकुम्भस्वरूपत्वात् कनकाद्रिं च तं विदुः ॥
 द्विजो नारायणः कश्चित् तपः कृत्वा महत्पुरा ।
 पश्चादश्वस्य नामा च व्यपदेशं मुरारितः ॥
 वैकुण्ठादागतत्वेन वैकुण्ठाद्रिरिति स्मृतः ।
 हिरण्याक्षविनाशाय प्रह्लादानुग्रहाय च ॥
 नारसिंहाकृतिं लेभे यस्मात्तस्मात्स्वयं हरिः ।
 सिंहाचल इति प्राहुस्तस्मादेव मुनीश्वराः ॥
 अञ्जनाद्रौ तपः कृत्वा हनूमन्तं व्यजायत ।
 तदा देवाः समागत्य देवकार्यार्थकारकम् ॥
 यस्मात्पुत्रं मम सुतं जग्मुस्तस्मादमुं गिरम् ।
 अञ्जनाद्रिं वराहाद्रिं वराहक्षेत्रलक्ष्मतः ॥
 नीलस्य वासुरेन्द्रस्य यस्मान्नित्यमवस्थितिः ।
 तस्मान्नीलगिरिं नामावदंस्ते तं महर्षयः ॥
 वेकारोऽमृतबीजं तु कट ऐश्वर्यमुच्यते ।
 अमृतैश्वर्यसङ्घत्वाद्वेङ्कटाद्रिरिति स्मृतः ॥
 अयं कदाचिद्देवानां श्रीनिवास इवावभौ ।
 श्रीनिवासगिरिं प्राहुस्तस्माद्देवा दिवौकसः ॥
 आनन्दाद्रिमिमं प्राहुर्वैकुण्ठपुरवासिनः ।
 प्राहुर्भगवतः क्रीडाप्राचुर्यात्तु तवासुराः ॥

श्रीप्रदत्ताच्छ्रयो वासाच्छब्दशक्त्या च योगतः ।

रूढ्या श्रीशैल इत्येतन्नाम चास्य गिरेर्भवेत् ॥

बहूनि चान्यनामानि कल्पभेदाद्भवन्ति हि ॥

सर्वपापानि वै प्राहुः कटस्तद्वाह उच्यते ।

सर्वपापदहो यस्माद्वेङ्कटाचल इत्यभूत् ॥

कलिदोषपरीतानां नराणां पापचक्षुषाम् ।

वेङ्कटेशात्परो देवो नास्त्यन्यः शरणं भुवि ॥ ३ ॥

राकामह९ सुहवा९ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु

त्मना सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीर९ शतदाय-
मुक्थ्यं स्वाहा ॥ ४ ॥

राका परमपुरुषरञ्जनाद्राका यद्वा रातीति राका परमपुरुषरञ्जन-
योग्या अहं तापत्रयाभिभूतोऽहं यद्वा चतुर्विधपुरुषार्थकामोऽहं सुहवां
शोभनहवां लक्ष्म्याराधनं अधिकं शोभनार्थमेव नाभिचारनिमित्तम् ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

सत्वेन शौचसत्याभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ।

धनैश्चर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥

स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् ।

स शूरः स च विक्रान्तो यं त्वं देवि निरीक्षसे ॥

सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।

पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुबलभे ॥ इति ॥

चतुर्विधपुरुषार्थेष्वपि लक्ष्म्या एव प्राधान्यात् सुहवां इत्युक्तम् ।
सुष्टुती सुषन्ति शोभनरूपया स्तुत्या हुवे आह्वये शृणोतु नः आर्तनादं
शृणोतु यद्वा मम विज्ञापनं सुभगा,

भगः श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नार्ककीर्तिषु ॥ इति ॥

शृणोति निखिलं दोषं शृणोतु च गुणैर्जगत् ॥

श्रूयते चाखिलैर्नित्यं श्रूयते च परं पदम् ॥ इति ॥

सा भक्तस्य आर्तनादं श्रुत्वा तन्निवारणे यत्नं कर्तुं समर्था महानुभावा वीर्यवती कीर्तिमतीत्यादिगुणविशिष्टेत्यभिप्रायेण सुभगा इत्युक्तम् । बोधतुत्मना वेगेन बुध्यताम् । यद्वा सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया सूच्यग्र-सन्ततधारया कृपाकटाक्षजलेन नः सिञ्चतु ददातु वीरं परमात्मानं यद्वा पुत्रपौत्रादिकं शतदायमुक्थ्यं प्राणभूतं ददातु प्रयच्छतु ॥

ननु “पूर्वपक्षो राकापरपक्षः कुहूः” इति श्रुतेः देवतान्तरपरत्वेन श्रूयमाणो राकाशब्दः कथं लक्ष्मीपरो भविष्यतीति चेत्—उच्यते ; प्रकरणानुक्तादुक्तां योगो रूढिमपहरतीति न्यायात् भगवच्छब्दस्य तत्रैव मुख्यवृत्तत्वात् पुरुषाकारभूतत्वात् राज्ञि हं रञ्जनात् सतामिति “अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी” इत्यादिभिः पुंस्त्वाभिधानेश्वरेश्वरीमिति सर्वशेषित्वाच्च ॥ ४ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तु पारे सर्वाणि
रूपाणि विचित्य धीरः नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते
स्वाहा ॥ ५ ॥

श्रीवेङ्कटेशत्वेन पूर्वं प्रतिपादितस्य परमात्मनः स्वरूपं स्तोतुमारभते—
वेदाहं इति ॥ एतं वेङ्कटाचलनिवासिनं पुरुषं पुरुषसूक्तेन प्रतिपाद्यम् । श्रूयते हि—भगवन् कूर्मरूपं प्रस्तुत्य कूर्मरूपो भगवान् ब्रह्माणमाह—“मम वै त्वङ्माँसा । समभूत्”—इति ॥ ब्रह्माह—“नेत्यब्रवीत्”—इति ॥ पुनश्च भगवान् कूर्मः प्राह—“पूर्वमेवाहमिहासमिति । तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्”—इति ॥ तदेव न्यस्तपुरुषत्वात् परं दर्शयति—“स सहस्रशीर्षा

पुरुषः । सहस्राक्षः सहस्रपात् । भूत्वोदतिष्ठत्” ॥ इत्यादि ॥ महान्तं
“ तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्” इति ॥ पूर्णत्वात्पुरुषः इति ॥

पाञ्चे—

शब्दोऽयं सोपचारेण तथा पुरुष इत्यपि ।
निरुपाधौ वदन्त्येते वासुदेवे सनातने ॥
सर्वलोकप्रतीत्या च पुरुषः प्रोच्यते हरिः ।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽन्यः पुरुषशब्दभाक् ॥
ब्रह्माद्याः सकला देवा यक्षतुम्बुरुनारदाः ।
ते सर्वे पुरुषांशत्वादुच्यन्ते पुरुषा इति ॥

उत्तररामायणे अगस्त्यः—

असौ राम महाबाहुः रतिमानुषचेष्टया ।
तेजोमहत्तया चासि संस्कार इति पूरुषम् ॥

हरिवंशे—

गोवर्धनादिधरणीनाथ नन्दसुतोऽपि सन् ।
पुरुषस्यांशभूतं त्वामादधन्निरणे वही ॥

स्कान्दे—

यदा भास्करशब्दोयमादित्ये प्रतितिष्ठति ।
यदा चाम्नौ बृहद्भानुर्यदा वायौ सदा गतिः ॥
तथा पुरुषशब्दोऽयं वासुदेवेऽवतिष्ठति ।
यदा शङ्करशब्दोऽयं यथा देवे व्यवस्थितः ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

देवतिर्यङ्मनुष्येषु पुंनामा भगवान् हरिः ।

श्रीर्नाम लक्ष्मीमैत्रेय नानयोर्विद्यते परम् ॥

नारसिंहे—

य एव वासुदेवोऽयं पुरुषः प्रोच्यते बुधैः ।

प्रकृतिस्पर्शराहित्यात् स्वातन्त्र्ये वैभवादपि ॥

स एव वासुदेवोऽयं साक्षात्पुरुष उच्यते ।

स्त्रीप्रायमितरत्सर्वं जगद्ब्रह्मपुरस्सरम् ॥ इत्यादि ॥

सहस्रशीर्षेत्यादिशब्दसिद्धः पुरुषः श्रीवेङ्कटेशः तस्य वैभवं प्रतिपादयति ॥

अत्र प्रथमया विष्णोर्देशतो व्यासिरीरिता ।

द्वितीययास्य विष्णोश्च कालतो व्यासिरीरिता ॥

विष्णोर्मोक्षप्रदत्वं च कथितं तु तृतीयया ।

एतावानिति मन्त्रेण वैभवं कथितं हरेः ॥

तस्माद्विराडित्यनया वदेन्नारायणाद्धरेः ।

प्रकृतेः पुरुषस्यापि समुत्पत्तिः प्रदर्शिता ॥

यत्पुरुषेणेत्यनया सृष्टियज्ञः समीरितः ।

अनेनैव तु मन्त्रेण मोक्षश्च समुदीरितः ॥

तस्मादिति च सप्तार्चान् जगत्सृष्टिः समीरिता ।

वेदाहमिति मन्त्राभ्यां वैभवं कथितं हरेः ॥

यज्ञेनेत्यनया चर्चा सृष्टेर्मोक्षस्य चेरितः ।

य एवमेतज्जानाति स हि मुक्तो भवेदिति ॥

पुरुषसंहितायां किं स्वरूपं आदित्यवर्णम्—

आदित्यवर्णं पुरुषं वासुदेवं विचिन्तय ॥ इति ॥

तमसस्तु पारे तमश्शब्देन प्रकृतिरुच्यते—

तमसः परमे दान्ते ह्यस्ति प्रकृतिमण्डलम् ।

ऊर्ध्वमवस्थितं सर्वाणि विचित्य निर्माय नामानि कृत्वा ॥

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥

भारते—

सर्वेषां च सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥ इति ॥

धीरः—धियो रममाणः अभिवदंस्तैराभिमुख्येन वदन् यदास्ते
अस्त्येव तमित्यनेन पूर्वं प्रस्तुतमेव नान्यं दद इति । सन्निहितस्य परित्यागे
कारणाभावात् ॥

वेङ्कटाचलमाहात्म्ये—

स्वामिपुष्करिणीतीरे सर्वान्तर्याम्यधोक्षजः ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

इति पुरुषसूक्तप्रतिपाद्यत्वेनोक्तत्वाच्च ॥ ५ ॥

दिग्दोषो यस्य विदिशश्च कर्णौ द्यौरास वक्त्रमुदरं नभो
वा सासि वा स्म या स्वयमाप दन्तं तस्मै वरत्रे वरदाय कस्मै
स्वाहा ॥ ६ ॥

यस्य परमात्मनः दिग्दोषः दिशः दोषः बाहवः विदिशश्च
अवान्तरकर्णौ द्यौर्वक्त्रमास उदरन्नभः “नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्”
इत्यादिश्रुतयः । या विश्वंभरा भूमिः सा त्वमेवासि स्म भूतार्थसूचकं
अन्तर्यामीत्यर्थः ॥

श्रुत्यन्तरे—

यस्यास्यमग्निर्द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ॥ इत्यादि ॥

पादभूता या भूमिः सा स्वयं वराहरूपेण तत्र दन्तमाप दंष्ट्राग्रस्थि-
तेत्यर्थः तस्मै वराहरूपिणे वरत्रे वरप्रदानेन त्राति वरत्रः वरप्रदानसमर्थाय

कस्मै परब्रह्मणे कस्मा इत्युक्तत्वात् ब्रह्मकं ब्रह्ममुखमिति परब्रह्मपरत्वेनोक्तत्वात् ।
 “सदेव सोम्येदमग्र आसीत्”, “एकमेवाद्वितीयम्” इत्यादिश्रुत्यनुसारेण
 पृथग्देवीभूषणायुधादिरहितत्वेन श्रुतिसिद्धम् । वेङ्कटाचले विद्यमानोऽपि
 मन्त्रो वेङ्कटेशपरः ॥

पादौ—

येनैव दंष्ट्राग्रसमुद्धृता धरा विभर्ति विश्वं ससुरासुरेन्द्रम् ।
 नताः स्म तस्मै वरदाय पुंसे सर्वात्मने शेषविभूतिदायिने ॥ इति ॥

पद्मास्य वक्षाः परमः सुपुण्यः पद्मा जनित्री परमस्य वासः
 सूक्ष्मं सावित्रं स्वयमादधानः सावित्ररूपं परमं सुपुण्यं स्वाहा ॥७॥

पद्मा लक्ष्मीः अस्य पूर्वं प्रतिपादितस्य वेङ्कटेशस्य वक्षाः वक्षसि
 विभक्तिव्यत्ययः परमः अर्चावतारे वरप्रदानादिषु समाभ्यधिकारहितः
 सुपुण्यः,

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ।

वेङ्कटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति ॥

आश्च सप्तमहापुरुषः कीर्त्यन्ते मोददायकाः ।

ता वेङ्कटाद्रिपर्यन्ता ग्रामकोट्यंशशक्तयः ॥

नास्ति पुण्यतमं तीर्थं स्वामिपुष्करिणीसमम् ।

सममस्तीति यो ब्रूयात्तत्समो नास्ति पातकी ॥ इत्यादि ॥

पद्मा जनित्री सर्वत्र जननी । ऋग्वेदे—“अहं रुद्राय धनुरातनोमि
 ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ । अहं जनाय समदं कृणोम्यंहं द्यावापृथिवी आवि-
 वेश । अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तस्समुद्रे ।” श्रीसूक्ते—
 “मातरं पद्ममालिनीम्”, श्रीविष्णुपुराणे—

त्वं माता सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता ।

त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्यासं चराचरम् ॥ इति ॥

परमस्य अभ्यधिकरहितस्य अस्य वक्षः पद्मावास इति वा ॥
भगवच्छास्त्रे—

महाप्रलयकाले तु सर्वलोकविनाशने ।

तस्मिन्नपि च काले तु वत्सरूपावसत्स्वयम् ॥

श्रीवत्साङ्को हरिस्तस्मात् हरिवक्षसि सुस्थिता ।

प्रलयान्ते पुनस्तृष्टा पृथग्भूता च सा भवेत् ।

स्त्रीवेषेण च सर्वासां भेदमूर्तित्वमेयुषी ॥ इति ॥

सूक्ष्मं सावित्रं स्वयमादधानः “अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्” इत्य-
स्यार्थोऽत्राभिप्रेतः । छान्दोग्ये—“य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो
दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णस्तस्य यथा
कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी” इति ॥ मैत्रायणीश्रुतिः—“स्थिरमचलम-
मृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरं धाम” इति ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—

ईश्वरं पुरुषाख्यं च सत्यधर्माणमच्युतम् ।

भर्गाख्यं विष्णुसंज्ञं च ध्यात्वामृतमुपाश्नुते ॥ इति ॥

दृश्यो हिरण्मयो देव आदित्यो नित्यसंस्थितः ।

यः सूक्ष्मः सोऽहमित्येव चिन्तयामः सदैव तु ॥

किञ्च—सूक्ष्मं सावित्रं इत्युक्तत्वात् “घृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इति
त्रीणि आदित्य इति त्रीणि । एतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं श्रियाभिषिक्तम् ।
य एवं वेद । श्रिया हैवाभिषिच्यते” ॥ इति ॥ यजुषि—“घृणिः सूर्य
आदित्यो न प्रभावात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् । सत्यं वै तद्रसमापो ज्योती

रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम्” ॥ इति ॥ एवं श्रुतिस्मृतिषु प्रतिपादितं सावित्रं रूपं पूर्वोक्तः परमात्मा स्वयमादधानः सावित्ररूपं परमं सुपुण्यम् । “आदित्यो वा एष एतन्मण्डलम्” इत्यादिश्रुत्यनुसारेण, “असावादित्यो ब्रह्म” इति श्रुतेश्च, आदित्यमण्डलान्तर्वर्ती श्रीवेङ्कटेश इत्यभिप्रायेण सावित्ररूपं परमं सुपुण्यं इत्युक्तम् ॥ ७ ॥

यः पुण्डरीकः परमान्तरात्मा कम्प्राङ्गरूपं कमलं दधार
सासिष्वसन्तं सरसे रसाय स्वाहा ॥ ८ ॥

यः परमात्मा पुण्डरीकः पुण्डरीकः छान्दसत्वात् । परमान्तरात्मा अत्रापि दहरपुण्डरीकमध्यवर्ती चेत्यर्थः । छान्दोग्ये—“अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम्” इति ॥ यद्वा—पुरुषव्याघ्रः कम्प्राङ्गरूपं कमनीयमङ्गरूपं यस्य तत् । कमलं जलमलङ्करोतीति कमलं दधार कमले दधार ब्रह्माणं सरसे रससहिते द्रवेऽपि चेति रागात्मकरससूते पद्मे रसाय लोकसृष्टये ब्रह्माणं दधार तस्मै ।

भारते—

स्वयंभूस्तस्य देवस्य पद्मं सूर्यसमप्रभम् ।

नाभ्या विनिस्तृतमरुक् तत्रोत्पन्नः प्रजापतिः ॥ इति ॥ ८ ॥

रयीणां पतिं यजतं बृहन्तं रारागमुक्तं गुरुं सश्रीकं तं
रायिरूपं रयिभूतभूतं रयिमत्सुरत्रः स्वाहा ॥ ९ ॥

रयीणां पतिं ऐश्वर्याणां पतिं बृहन्तं “बृहद्ब्रह्ममहश्चेतिशब्दाः पर्यायवाचकाः” इति पूर्वस्मिन्मन्त्रे प्रतिपादितं ब्रह्माणं परब्रह्मभूतं रारागमुक्तं समग्रषाड्गुण्यपरिपूर्णैश्वर्यत्वात् तुच्छरूपपरत्वादिन्द्राद्यैश्वर्यरागरहितम्,

एते वै निरयास्तात स्थानस्य परमात्मनः ।

इति वचनात् । गुरुं—

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।

अन्धकारनिरोधित्वादगुरुरित्यभिधीयते ॥ इति ॥

विसृष्ट्यादिसामर्थ्यज्ञानप्रदं सर्वाकं सर्वैश्वर्यवन्तं तं रायिरूपं
ऐश्वर्यरूपं रयिभूतभूत ऐश्वर्यस्यापि ऐश्वर्यभूतं रयिमत्सुरत्रः ऐश्वर्यवतां
देवानां रक्षिता अस्मै ।

आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रयमिच्छेद्धुताशनात् ।

शंकराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥ इति ॥

ज्ञानप्रदोऽपि परमात्मैवेत्यभिप्रायेण गुरुशब्दप्रयोगः यद्वा तत्त-
दन्तर्यामित्वेन ॥ ९ ॥

रायां पतत्रे रयिमादधात्रे रायो बृहन्तं रयिमत्सुपुण्यं
राराजिमन्तं रतये रमन्तं तं विम्बवन्तं ककुदाय भद्रे स्वाहा ॥१०॥

रायां पतत्रे स्वभक्तस्थतुच्छैश्वर्याणां पतनानन्तरं त्रात्रे रक्षित्रे,

यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम् ।

बन्धून् वा नाशयिष्यामि व्याधीनुत्पादयाम्यहम् ॥ इति ॥

रयिमादधात्रे अनश्वरैश्वर्यप्रदात्रे रायो बृहन्तं लीलाविभूत्यपेक्षया
नित्यविभूतेरधिकत्वात् “पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि”
इति श्रुतेः । रयिमत्सुपुण्यम् ,

सत्पात्रदानेन भवेद्धनाढ्यो धनप्रकर्षेण करोति पुण्यम् ।

पुण्यादवश्यं त्रिदिवं प्रयाति पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी ॥

सुपुण्यं सुप्रसिद्धानां पुण्यप्रदं राराजिमन्तं देशकालाद्यपेक्षा-
राहित्येन निरन्तरैश्वर्यवन्तं रतये लीलारसानुभवार्थं रमन्तं परमात्मानं

शैलजादिरूपेण विम्बवन्तं ककुदाय श्रैष्ठ्याय भद्रे शुभाश्रयाय स्वाहा
जुहोमीत्यर्थः ॥ १० ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ।

अष्टमोऽनुवाकः

यत्सारभूतं सकलं धरित्रीं मोदप्रायेणानुभूतमनुविधं सूक्ष्मः

सुरेशः सकलं विभर्ति तस्मै सुरेशाय सकलं सुपुण्यं स्वाहा ॥ १ ॥

यत्सारभूतं प्रकृतिपुरुषयोर्बलभूतं यद्वा जगतः सकलं “षोडशकलो
वै पुरुषः” इति श्रुतेः । सकलासु हितां धरित्रीं धारणात् त्रायत इति
धरित्रीं प्रकृतेः मोदप्रायेणानुभूतं लीलाप्रायेण परमात्मनानुभूतं अनुविधं
अनुप्रविद्धं “तदेवानुप्राविशत्” इति श्रुतेः ॥ सूक्ष्मः,

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ इति श्रुतेः ॥

“अणोरणीयान्” इति जीवापेक्षया सूक्ष्मः सुरेशः ब्रह्मादीनामीशः
सकलं चिदचिदात्मकं जगत् विभर्ति । “व्यष्टभ्राद्रोदसी विष्णुरेते । दाधार
पृथिवीमभितो मयूखैः” इति तस्मै सुरेशाय पूर्वोक्तसुरेशः सकलं
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सुपुण्यं सुतरां पुण्यं यत्सुरेशाय तस्मै ॥ १ ॥

फलो वा एष लोकानामजरः महात्मा विश्वं यः पाति

विमलोऽमलाख्यस्तस्मै ककुत्त्रे वरदस्य पुष्ट्यै स्वाहा ॥ २ ॥

एष परमात्मा लोकानां भूरादीनां तत्तल्लोकानां देवमनुष्यादीनां
च फलः फलभूतः फलप्रदश्च । “फलमत उपपत्तेः” इति । अजरः
जरारहितः ।

अशनायापिपासे च शोकमोहौ जरामृती ।

एताः षड्धर्मयः प्रोक्ताः षड्धर्मिरहितश्च सः ॥

महात्मा महान् विश्वं जगत् यः पाति रक्षति विमलः अपहृतपाप्म-
त्वादिगुणः अमलाख्यः,

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रं विट्कर्णविण्णखाः ।

श्लेष्माश्रुदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥

इति द्वादशमलरहितः ककुत्त्रे श्रेष्ठाय पोषणादिशक्तिसहिताय तस्मै
वरदस्य वरप्रदानसमर्थस्य पुष्ट्यै,

भृगुः—

श्रीः सा सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च ।

कीर्तिः शान्तिस्तथा पुष्टिस्तुष्टिरित्यष्टशक्तयः ॥ इति ॥

पोषणरूपायै शक्त्यै परमात्मने ॥ २ ॥

धूर्नो वहन्तां रतये रमन्तां प्रभूतिमन्तस्समयं सुषुम्ना अं
राजिमन्तं सकलस्य गुप्त्यै स्वाहा ॥ ३ ॥

नः धूः भारं भरन्यासं वहन्तां “वह प्रापणे” इति । परमात्मा स्वयमेव
प्रापयताम् ।

स्वामी स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।

स्वदत्तस्वधिया सार्धं स्वस्मिन्न्यस्यति मां स्वयम् ॥

इति सर्वदानुसन्धाय संयोज्य धूर्वहन्तां रतये तत्तद्विषयानुभवार्थं
तत्तत्स्थाने रमन्तां इन्द्रियाणां प्रभूर्तिं परमपुरुषानुभवैश्वर्यरूपां अन्तस्समयं
सुषुम्ना अन्तस्समये अं राजिमन्तं अकाराक्षरपूर्वकमन्त्रं प्रतिपादयन्तं
सकलस्य कला तु षोडशो भागः सर्वेन्द्रियोपरतस्य सुषुम्नानाड्यां गमनं च
भरन्यासं श्रुतवतः प्रयच्छति तस्मै ॥ ३ ॥

विश्वं विभर्ति प्रसुरोऽभूदन्तं संराजवन्तं सकलं प्ररूढं स
नो वितत्य प्रहिणोतु पत्रे स्वाहा ॥ ४ ॥

विश्वं समस्तं प्रसुरोऽभूदन्तं तावत्रयादिना प्रकर्षेण सुरोऽभूदन्तं
संराजवन्तं समूहवन्तं सकलं कलासहितं प्ररूढं देवमनुष्याद्यनुकारेण समस्तं
वितत्य विस्तार्य विभर्ति स देवः नः श्रेयः प्रहिणोतु प्रयच्छतु पत्रे पदात्
त्रायत इति तस्मै ॥ ४ ॥

सो वा स्वरूपः समदृक् समग्रो विधुदं तुदन् यो विदधत्पदं
वा वियति प्रकाशं बृहते गुहेन तं विम्बवन्तं समदं समग्रं
स्वाहा ॥ ५ ॥

यः परमात्मा देवासुरेषु समुद्रमथनवेळायां समदृक् समग्रः वञ्चितुं साव-
धानः विधुदं विधुश्चन्द्रः तं दमयतीति । दम इतीन्द्रियनिग्रहशक्तिसम्भवात्
विधुदो राहुः तं समदं मदसहितं समग्रं सावधानं विम्बवन्तं राहुममृतपान-
वेळायां तुदन् हिंसां कुर्वन् तस्य राहोः वियति आकाशे पदं स्थानं गुहेन
ग्रहरूपेण बृहते पूर्वचन्द्राय विदधत् कल्पितवान् स एव स्वरूपः तस्मै ॥ ५ ॥

भूर्भुवं वा भुवो वा सुवो वा किञ्चित्स्वनन्तं सुषुवे समस्तं
सर्वस्य दातारमजरं जरित्रे स्वाहा ॥ ६ ॥

भूर्भुवं भूमेरपि भूमिं उत्तरकुरुदेशादिकं भुवो वा सुवो वा
अन्तरिक्षं स्वर्गं वा वाशब्दो लोकान्तरपरः । किञ्चित्स्वनन्तं अल्पशब्द-
वाच्यत्वेन स्वनन्तं शब्दयन्तं सुषुवे सृष्टवान् समस्तमपि सर्वस्य दातारं
चतुर्बर्गफलप्रदं अजरं जरारहितम् ।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ इति ॥

जरित्रे प्रकृतिद्वारेण जरित्रे ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—

न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ इति ॥

तस्मै ॥ ६ ॥

दाक्षायण्यां प्रसृतं समस्तं सङ्कोचयित्वा सकलं वितानं

संवासयन् यः सकलं वरिष्ठं तस्मै प्रजेशाय धुरन्धराय स्वाहा ॥७॥

दाक्षायण्यदितिः तस्यां तं प्रसृतं उद्धृतं समस्तं दैतेयजातं सङ्कोच-
यित्वा अल्पावशिष्टं कृत्वा सकलं कलासहितं वितानं लोकस्याच्छादन-
भूतदेवजातं संवासयन् वरिष्ठं श्रेष्ठं मनुष्याणां रक्षणार्थं स्थापितवान् “ त
एनं तृप्त आयुषा तेजसा वर्चसा श्रिया यशसा ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन च
तर्पयन्ति ” इत्यादि प्रजेशाय प्रजानामीश्वराय धुरंधराय सर्वभारवहाय
तुभ्यम् ॥ ७ ॥

आशास्समस्ताः प्रतरन्ननु तमन्तस्तास्ता वसेद्घौः कमला

समस्ताः सा मे गृहे समधत्त पुष्टिं स्वाहा ॥ ८ ॥

स्वभक्तानां स्वाराधकानां आशाः कामान् प्रतरन् प्रयच्छन् अनु
साकल्येन तं अन्तः हृदये परमात्मा तिष्ठति । या कमला लक्ष्मीः सापि
तास्ताः प्रविश्य वसेत् ।

श्रीविष्णुपुराणे—

त्वं माता सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता ।

त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥ इति ॥

सर्वत्र व्याप्तिरुच्यते कथं व्याप्तिरिति चेत् यथा परमात्मना
जगद्व्याप्तं तथेति भावः सर्वात्मना सा लक्ष्मीः सैषा लक्ष्मीः मे गृहे पुष्टिं,

त्वयावलोकिताः सद्यः शीलधैः सकलैर्गुणैः ।

धनैश्चर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ।

समधत्त अन्तर्यामिणः परमात्मनो लक्ष्म्याश्चायं मन्त्रः ॥ ८ ॥

यो जङ्गमानां सकलं विभर्षि सर्वं वियद्विचरते शक्ष्यन्
तन्नौकूले वान्तिकेऽजस्रं स्वाहा ॥ ९ ॥

यः परमात्मा जङ्गमानां देवमनुष्यादीनां सकलं योगक्षेमादिकं
विभर्षि वियद्विचरते आकाशे यत्किञ्चित् विचरते तत् सर्वं त्वमेव विभर्षि
शक्ष्यन् शक्तः तन्नौकूले वा तत्सर्वं नौरिव जलधौ नौरिव अन्तिके समीपे
अजस्रं पुष्टिं विभर्षि तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यो वा दशानां प्रसृताः समस्तास्तां तां दधानास्समयात्सु-
बीजाः शब्दादिरीत्यै स्वबलं बलाय स्वाहा ॥ १० ॥

बीजाङ्कुरप्ररोहादिकं परमात्मशक्त्येत्याह—यो वा दशानां इति ॥
यः परमात्मा दशानां देवमनुष्यमृगपक्षिसरीसृपक्रिमिश्वेतवृक्षजगुल्मलतादीनां
प्रसृताः प्रसृतयः समस्ताः नामरूपकृत्यविभागादिकं तां तां दधानाः
समयात् समये सुबीजाः शब्दादिरीत्यै परमात्मशक्त्या प्ररोहादि-
सामर्थ्ययुक्ता भवन्ति ये स्वबलं तत्सर्वं परमात्मन एव बलं तस्मै बलाय
बलरूपाय ॥ १० ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः

नवमोऽनुवाकः

चत्वारो दोषाः प्रहरन्ति यस्य सर्वस्य गोप्त्रे सुरसाय
धान्ने सोमस्य पुण्यं रयिमत्प्रवृद्धयै स्वाहा ॥ १ ॥

यस्य सवितृमण्डलवर्तिनः परमात्मनः चत्वारः सुषुम्नादिका दोषः
बाहवः पुण्यमाहुतिं प्रहरन्ति ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥ इति ॥

सर्वस्य गोप्त्रे—

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।

इति सर्वौषधीनां पोषणद्वारा मनुष्यादीनां गोप्तृत्वं सुरसाय सुतरां
रसरूपाय धाम्ने अमृतमयतेजःस्वरूपिणे प्रहरन्ति प्रकर्षेण हरन्ति
रयिमत्प्रवृद्धयै—

दिनेदिने कलावृद्धिः पौर्णमास्यां तु पूर्णता ॥ इति ॥

श्रीवैखानससूत्रे—

“यथा हवास्य सुषुम्ना जेनातिप्यति प्राणावति रेतोधा इत्येताहुतिं
गृहीत्वा रश्मयश्चतस्रः प्रश्नाः सन्दधीरन् सह वा शुद्धा अमृतवह चिनुहि
दिव्यालोकपावनीत्येताभिश्चन्द्रमसमाप्याययति मूलगामीव वा
यावन्नमृतोद्गारिसुरप्रियेत्येताभिरमृतेन तां तर्पयति ।” किंच सर्वस्य गोप्तृत्व-
श्रवणात् ॥

ऋषय ऊचुः—

कौतूहलसमुत्पन्ना देवता ऋषिभिः सह ।

संशयं परिपृच्छन्ति व्यासं धर्मार्थकोविदम् ॥

कथं वा क्षीयते सोमः क्षीणो वा वर्धते कथम् ।

इमं प्रश्नं महाभाग ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥

व्यासः—

शृण्वन्तु देवताः सर्वे यदर्थमिह आगताः ।

तदहं संप्रवक्ष्यामि सोमस्य गतिमुत्तमाम् ॥

अग्नौ हुतं च दत्तं च सर्वं सोमगतं भवेत् ।
 तत्र सोमः समुत्पन्नः शीतांशुर्हिमलक्षणः ॥
 अष्टाशीतिसहस्राणि विस्तीर्णं योजनानि तत् ।
 प्रमाणं तत्र विज्ञेयं कलाः पञ्चदशैव हि ॥
 षोडशी तु कलाप्यत्र त्वित्येकोऽपि विधेर्वले ।
 पपुः सोमवपुर्देवाः पर्यायेणानुपूर्वशः ॥
 प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः ।
 विश्वेदेवास्तृतीयां तु चतुर्थीं सलिलाधिपः ॥
 पञ्चमीं तु वषट्कारः षष्ठीं पिबति वासवः ।
 सप्तमीमृषयो दिव्या अष्टमीमज एकपात् ॥
 नवमीं कृष्णपक्षस्य यमः प्राश्नाति वै कलाम् ।
 दशमीं पिबते वायुः पिबत्येकादशीमुमा ॥
 द्वादशीं पितरः सर्वे समं प्राप्नोति भागशः ।
 त्रयोदशीं धनाध्यक्षः कुबेरः पिबते कलाम् ॥
 चतुर्दशीं पशुपतिः पिबत्यन्त्यां प्रजापतिः ।
 एवं पीतः कलाशेषश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥
 कला षोडशिका या तु ह्यपः प्रविशते सदा ।
 अमायां तु सदा सोम ओषधीः प्रतिपद्यते ॥
 तमोषधिगतं गावः पिबन्त्यम्बुगतं च यत् ।
 तत्क्षीरममृतं भूत्वा मन्त्रपूतं द्विजातिभिः ॥
 हुतमग्निषु यज्ञेषु पुनराप्यायते शशी ।
 दिनेदिने कलावृद्धिः पौर्णमास्यां तु पूर्णिमा ॥

“नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे” ॥ इत्यादि ॥

त्रिमुहूर्तं वसेदकें त्रिमुहूर्तं जले वसेत् ।
 त्रिमुहूर्तं वसेद्गोषु त्रिमुहूर्तं वनस्पतौ ॥
 वनस्पतिगते सोमे स्त्रियं वा योऽधिगच्छति ।
 स्वर्गस्थाः पितरस्तस्माच्च्यवन्ते नात्र संशयः ॥
 वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम् ।
 घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥
 वनस्पतिगते सोमे यस्तु भुङ्क्ते परौदनम् ।
 तस्य मासगतं पुण्यं दातारमधिगच्छति ॥
 वनस्पतिगते सोमे नातिहेयांस्तु वाहयेत् ।
 नाश्रन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च ॥
 वनस्पतिगते सोमे मन्थानं यस्तु कारयेत् ।
 गावस्तस्य प्रणश्यन्ति चिरकालमुपस्थिताः ॥
 वनस्पतिगते सोमे स्त्रियं वा योऽधिगच्छति ।
 स्वर्गस्थाः पितरस्तस्माच्च्यवन्ते नात्र संशयः ॥
 सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु गर्भिणीं श्रावयेत्स्त्रियम् ।
 ऋषभं जनयेत्पुत्रं सर्वज्ञं वेदपारगम् ॥
 सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु श्राद्धकाले सदा पठेत् ।
 तदन्नममृतं भूत्वा पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥
 सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु सर्वकाले सदा पठेत् ।
 सर्वं मानव आप्नोति सोमलोकं स गच्छति ॥ इति ॥

एवंविधाकारचन्द्ररूपेण गोप्त्रे तुभ्यम् ॥ १ ॥

वक्षो वसत्यस्य वरां वरिष्ठं वाकं दधाना ववृधे समस्तं
 तस्मै वरिष्ठाय वरप्रवृद्धयै स्वाहा ॥ २ ॥

अस्य परमात्मनो वक्षसि वाकं दधाना वरिष्ठं श्रेष्ठं वक्षः प्राप्य या
वसति वरां वाकं दधाना उत्कृष्टरूपां वाकं वाचं दधाना पुरुषाकाररूपां
वाचं दधाना श्रावयन्ती वसति वृद्धे समस्तं जङ्गमाजङ्गमादिकं प्रति वृद्धिं
गता तस्यै वरिष्ठाय तस्मै ॥ २ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य
जन्तोः तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशं
स्वाहा ॥ ३ ॥

अणोरणीयान्महतः आकाशादिभूपर्वतादिभ्यो महीयानात्मा अन्तः
प्रविश्य नियन्ता ह्यात्मा अस्य जीवस्य गुहायां हृदयगुहायां निहितः एवं-
भूतं तं अक्रतुं अकर्माणं पश्यति वीतशोकः धातुः प्रसादात् परमात्मनः
प्रसादाद्यः पश्यति वीतशोकः महिमानं महिमावन्तं ईशं इत्यर्थः ॥ धातुः
प्रसादादित्यनेन—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेघया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः

तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥

इति निर्हेतुकत्वं तस्य प्रसादात् ॥ ३ ॥

विष्णुर्वरिष्ठो वरदानमुख्यो यो विश्वर्षीन् ध्यायन्नकुर्वन्
विश्वं हीषद्विष्णवे याः प्रभविष्णवे ता अमितंभरत्रे स्वाहा ॥४॥

विष्णुः व्याप्तः परमात्मा वरिष्ठः श्रेष्ठः वरदानमुख्यः यः परशु-
रामरूपी विश्वर्षीन् जमदग्नीन् । पूजायां बहुवचनम् । ध्यायन् अकुर्वन्
विश्वं यथायोग्यत्वेन क्षत्रियवंशजातं ईषत्कार्यं हि विष्णवे याः शक्तयः—

परमेष्ठी पुमान्विश्वो निवृत्तः सर्व एव च ।

पञ्चैताः शक्तयः प्रोक्ताः परस्य परमात्मनः ॥

आचार्या वैष्णवी सूक्ष्मा लक्ष्मीः पुष्टिर्निरञ्जना ।

जीवनी मोहिनी माया नवैता विष्णुशक्तयः ॥ इति ॥

ता विष्णुशक्तयः प्रभविष्णवे रामभद्राय अमितंभरत्रे मितरहित-
धनुर्भरणादमितंभरः तेन जनकप्रतिज्ञाप्रातिभरत्वधनुः स्वशक्तिभिस्सहस्र-
शोऽधाद्यः अत्र विश्वर्षिशब्दप्रयोगात् अत्यन्तश्रेष्ठत्वं वा । श्रुतिः—“ विश्वा-
मित्रजमदग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेताः स एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत्तेन वै स
वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृद्धम् ” इत्यादि ॥ ४ ॥

अब्जोऽजुषन्तः प्रपतत्यतन्तः पूंषूपुषन्तः पुनयः प्रवाळः
कंकं जनित्रे समतेजसं ते स्वाहा ॥ ५ ॥

अब्जः ब्रह्मा । भारते—

निशि सुस्वाथ भगवान् क्षपान्ते प्रतिबुध्य यः ।

पश्चाद्बुध्वा ससर्जापस्तासु वीर्यमवासृजत् ॥

तदण्डमभवद्देवं सहस्रांशुसमप्रभम् ।

अहं कृत्वा ततस्तस्मिन् ससर्ज प्रभुरीश्वरः ॥

हिरण्यगर्भं विश्वात्मा ब्रह्माणं जलजं मुनिम् ।

भूतभव्यभविष्यस्य कर्तारमनघं विभुम् ॥ इति ॥

अजुषन्तः सृष्टिकर्तृत्वाभिमानेन त्वत्पादसेवामकुर्वन्तः । अब्ज इति
जातावेकवचनम् । यद्वा अण्डबाहुल्यत्वाभिप्रायेण प्रपतत्यतन्तः पूंषूपुषन्तः
शरीरं पोषयन्तः पुनयः प्रवाळः प्रकर्षेण बालं ववयोरभेदः कंकं जनित्रे
समतेजसं ते एवं रजोगुणदोषदुष्टं ब्रह्माणं ते त्वं समतेजसं जनित्रे
“ नारायणाद्ब्रह्मा जायते ” इति श्रुतयः तुभ्यम् ॥ ५ ॥

मामात्मगुप्तां वहते स्वभूत्यै तां राजिमन्तां धूर्धूरयन्तीं
धूरसि ध्रुवाय स्वाहा ॥ ६ ॥

मां लक्ष्मीं आत्मगुप्तां आत्मभूतेन स्वेनैव गुप्तां भूत्यै लोकानामैश्वर्याय
वहते वक्षसि वहते स्म भूतार्थसूचनत्वात् प्रलयकालेऽपीत्यर्थः । तां राजिमन्तां
लावण्यसंपत्सारभूतां धूर्धूरयन्तीं समग्रैश्वर्यगतिभूतां मां वहत इति
पूर्वत्रान्वयः धूरसि भारभूतोऽसि ध्रुवाय स्थिराय तुभ्यम् ॥ ६ ॥

यं चिन्तयन्तो निगमान्तरूपं यं विश्वरूपं परमात्मपुण्यं
तं विन्दमानां सकलं व्रजन्तीं तं दैवमुख्यं सुरतं भवाय
स्वाहा ॥ ७ ॥

यं निगमान्तरूपं “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इत्यादिवेदान्तप्रति-
पाद्यरूपम् । यद्वा यं विश्वरूपं—

यस्यास्यमग्निर्द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ।

इत्यादिविश्वरूपम् । यद्वा परत्वव्यूहविधावन्तर्याम्यर्चावतारादिरूपं
वा चिन्तयन्तः ध्यायन्तः सकलं स्वकलासहितत्वेन ।

लक्ष्मीतन्त्रे—

महालक्ष्मीः समाख्याता साऽहं सर्वाङ्गसुन्दरी ।

महाश्रीः सा महालक्ष्मीश्चण्डाचण्डी च चण्डिका ॥

भद्रकाळी तथा भेदा काळी दुर्गा महेश्वरी ।

त्रिगुणा भगवत्पत्नी तथा भगवती परा ॥

एताः संज्ञास्तथान्याश्च तत्र मे बहुधा स्मृताः ।

विकारयोगादन्याश्च तास्ता वक्ष्याम्यशेषतः ॥

रक्षयामि जगत्सर्वं पुण्यापुण्ये कृताकृते ।

महनीया च सर्वत्र महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥

महाब्धिश्रयणीयत्वान्महाश्रीरिति गद्यते ।
 भण्डस्य दयिता भण्डी भण्डत्वाद्भण्डिका मता ॥
 कल्याणरूपा भद्रास्मि काळी भद्रा प्रकीर्तिता ।
 कलात्सतां स्वरूपत्वादपि काळी प्रकीर्तिता ॥
 सुहृदां च द्विषां चैव युगपत्सदसद्विभोः ।
 भद्रकाली समाख्याता मायाश्चर्यगुणात्मिका ॥
 माया योग इति ज्ञेया यज्ज्ञानाज्ञानयोर्नृणाम् ।
 पूर्णषाड्गुण्यरूपत्वात्स्मृता चाऽहं परात्परा ॥
 शासनाच्छक्तिरूपाहं राज्यहं रञ्जनात्सताम् ।
 सदा शान्तविकारत्वाच्छान्ताहं परिकीर्तिता ॥
 मत्तः प्रक्रमते विश्वं प्रकृतिः सास्मि कीर्तिता ।
 श्रयन्ति ह्ययना चास्मि शृणामि दुरितं सताम् ॥
 शृणोमि करुणां वाचं शृणोमि च गुणैर्जगत् ।
 शरणं सर्वभूतानां रमेऽहं सर्वकर्मणाम् ॥
 ईडिता च सदा देवैः शरीरं चास्मि वैष्णवम् ।
 एतान्मयि गुणान् दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥
 गुणयोगविधानज्ञाः श्रियं मां संप्रचक्षते ।
 साऽहमेवंविधा नित्या सर्वाकारा सनातना ॥ इति ॥

ब्रजन्तीं सर्वस्यापि गतिभूतं तं परमात्मानं विन्दमानां प्राप्तवतीं
 च चिन्तयन्तो ये तिष्ठन्ति तेषां भोग्यरूपाय “सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह
 ब्रह्मणा विपश्चितेति” इति श्रुतेः ॥ ७ ॥

पुण्यां च पुण्यः पुरुषे पुरमे तां राजिमन्तां निशि चोदि-
 तानां निदधाति पुष्ट्यै हरन् पराय स्वाहा ॥ ८ ॥

पुण्यः पोषकः परमात्मा यद्वा परमपावनः **पुण्यां** पोषिकां पुरुषे पुरुषशब्दः साधारणः स्वकृपाकटाक्षविषयभूते **पुरुषे** **पुंरग्रे** शरीरपूर्वभागे पादगुह्यनाभिहृदयकण्ठमुखेषु **पुष्ट्यै** ऐश्वर्यानुभवार्थं लक्ष्मीं निदधाति स्थापयते **निशि** चोदितानां रात्रौ चकारात् सन्ध्याकाले च उदिताः जाताःसुरदानवादयः “दिवा देवानसृजत नक्तमसुरान्” इति श्रुतेः । तां **राजिं** दीप्तिरूपां लक्ष्मीं **हरन्** तेषामैश्वर्यं **हरन्** **अन्तां** शिरसि स्थितां निदधाति अयमेवार्थो मार्कण्डेयपुराणेऽवगम्यते—

सप्तस्थानान्यतिक्रम्य येषां लक्ष्मीः शिरःस्थिता ।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं तेषां सम्यक्प्रहीयते ॥

एवंरूपेण मर्यादास्थापकाय तुभ्यम् ॥ ८ ॥

स नो भूतो यो वाऽमृतात्मा सुपुष्टिमस्मत्पितरं पवित्रं स नोऽस्तु भूत्यै कमलं पराय स्वाहा ॥ ९ ॥

स परमात्मा नो भूतः न जातः “अमानोनाः प्रतिषेधे” इति । श्वेताश्वतरे—

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके

न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।

स कारणं करणाधिपाधिपो

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ इत्यादयः ॥

अमृतात्मा—

षड्भावषट्कोशषड्मिहीनं शुद्धात् परं निर्मलमप्रमेयम् ।

ब्रह्माद्यमेकं सदग्रं समग्रं भजन्ति ये तत्र भवन्ति धन्याः ॥ इति ॥

अस्ति जायते परिणमते वर्धते अपक्षीयते विनश्यतीति षड्भावविकाराः

अस्थिशुक्लमज्जाः पितृतः, त्वङ्मांसरुधिराणीति मातृतः, इति षट्कोशाः ।

अशनायापिपासे च शोकमोहौ जरामृती ।

एताः षड्भूयः प्रोक्ता देहिनां तु विशेषतः ॥ इति ॥

अस्माकं सुपुष्टिं सुतरां पुष्टिं ऐहिकं अस्मत्पितरं पवित्रं पितृ-
शब्देन पितृवंशजानां मातृवंशजानां सर्वेषामुपलक्षणम् ।

आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः ।

वैष्णवो नः कुले जातः स पुनस्तारयिष्यति ॥

स नोऽस्तु भूत्यै स परमात्मा नः भूत्यै भगवत्प्राप्तिरूपैश्वर्याय अस्तु
कमलम् ॥ ९ ॥

स एव नित्यं सकलाः समूर्तयः सुरतास्त्वनन्तास्ते
जयन्तो वियति क्षयाणां तत्तत्सवित्रे हरते पराय स्वाहा ॥१०॥

नित्यं वियति आकाशे यद्वा अनन्ता इत्यनेन आकाशास्ता
उच्यन्ते सुरताः रतिसहिताः सकलाः नृत्यगीतवाद्यादिकलासहिताः
समूर्तयः मूर्तिमन्तः जयन्तः जयशीलास्सन्तः ये तिष्ठन्ति ते सर्वे स एव ।
तु शब्दो विशेषद्योतकः । सद्धारकत्वेन यद्वा अन्तर्यामित्वेन—

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ।

नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्यं ॥

वियति क्षयाणां आकाशे स्थानं प्राप्तानां “देवगृहा वै नक्षत्राणि”
इति श्रुतेः । तत्तत्सवित्रे तत्तत्कर्मफलानुभवस्थानजनकाय हरते—

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥

इति भगवद्वचनात् । पराय—

ब्रह्माण्डे—

ब्रह्मा शंभुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः ।

एवमाद्यास्तथा चान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा ॥

जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ।
वितेजसश्च ते सर्वे पञ्चत्वमुपयान्ति च ॥ इति ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

सृष्टिस्थित्यन्तकर्णीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ इति ॥
जगत्संहारकत्वेन रुद्ररूपक्षयशब्देन स्थानम् ।
निरुक्ते—

क्रमादिह गृहादीनां नामानि विविदुर्बुधाः ।
प्रासादमास्पदं सन्न गृहं धाम सनातनम् ॥
विमानं निलयं धिष्ण्यं गेहं च वसतिस्तथा ।
हर्म्यं निकेतनं चैव सौधं वासः श्रयः क्षयम् ।
आलयो मन्दिरं चैव भवनावासवाचकाः ॥ इति ॥

इति श्रीविष्णुदेशपादाब्जसपर्यासुरतात्मना श्रीमत्कौशिकगोत्रेण गोविन्दाचार्यसमुना
वेदान्तदेशिकश्रीनिवासयज्वना विरचितपारमात्मिकोपनिषद्वाख्याने
नवमानुवाकार्यविवरणं समाप्तम्

दशमोऽनुवाकः

या गौर्वरिष्ठा सह सोर्धरित्री वसुं वसुं वै वसुनीह भद्रा
रेरीजयन्तो रजतं रजते स्वाहा ॥ १ ॥

या गौः वरिष्ठा धरित्री विश्वंभरा वरिष्ठा या गौः भूत्वा वसुं
ब्रीहियवादिकं वसुं द्रव्यादिकं वसुनीह भूलोके तत्तज्जात्यानुसारेण दुग्ध्वा

जङ्गमाजङ्गमादिकं च परमात्मना सह सोर्भद्रा शोभनानां कारणभूता
विभक्तिं रेरीजयन्तो दीप्तिमन्तो लोकस्थान् रजतं रजोयुक्तं यत्किञ्चिद्व-
स्तुजातं रजते दीप्तिं कुर्वते तुभ्यम् ॥ १ ॥

वायोरन्तरात्मा बहति समस्तः सपुण्यदेवेति स सूरिमुक्तः
सूरिः सुराणां सुरसोऽप्यसुन्दः समूह देवा वरदाय पित्रे
स्वाहा ॥ २ ॥

अयं मन्त्रः सुदर्शनपरः । वायोरन्तस्य सुदर्शनस्य वायोरगतिः
अन्तरात्मा बुद्धिरूपः चलस्वरूपमत्यन्तमन्तरितानलम् ।

चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुः करे स्थितम् ॥ इति ॥

समस्तः—

विष्णोरपररूपत्वात्सर्वं विष्णुवदाचरेत् ॥ इति ॥

सर्वस्वरूपी बहति भगवता मनसि यत्किञ्चिच्चिन्तितं तत्सर्वं प्रापयति
स सुदर्शनः सूरिमुक्तः भगवता राक्षसवधादिकं प्रति मुक्तः तद्वधप्रयुक्तदो-
षाभावात् । सपुण्यदेवेति सर्वत्रापि प्रसिद्धः । सुराणां सूरिः पूज्यः सुरसः
हत्यादिदोषदुष्टस्य लोके त्याज्यताप्रतिपादनात् तदोषाभावात्सुरसः । यद्वा
रुद्रनिवासभूतत्वाद्वा असुन्दः सुन्द दाहे [?] इति प्रतिसंहारकः । यद्वा
प्राणदः अनध्यायेष्वधीयानास्ते चक्रेण हताः प्रणष्टा इति चरण-
व्यूहैश्छन्दोगानां शिखाग्रहणमात्रेण प्राणदः समूह देवा य एवंरूपं
सुदर्शनं समूह सम्यक् धृत्वा देवाय वरदाय रुद्रस्य वरदायेत्यर्थः ।
पित्रे “नारायणाद्रुद्रो जायते” इत्यादिश्रुतिभ्यः रुद्रस्य पित्रे रक्षकाय ॥

ननु जगत्संहारकस्य कथं सुदर्शने वास उपपद्यत इति चेत् उच्यते ।
वेङ्कटगिरिमाहात्म्ये—

कथं सूर्यं परित्यज्य प्रभाऽन्यस्य भविष्यति ।

एवं श्रीकौस्तुभं चक्रं शार्ङ्गं शङ्खं तथैव च ॥

एवमादीनि वस्तूनि नित्यसिद्धानि शंकर ।
 नैतेषां च परित्यागे नान्यस्तेषां व्यपाश्रयः ॥
 अशक्यमिदमत्यर्थमित्याह प्रमथाधिपम् ।
 स चाह चान्वेतु वक्ष्ये तथैवास्तु यथेप्सितम् ॥

तत्रैव—

अन्तरात्मा हि सर्वेषां स्तौति नारायणं प्रभुम् ।
 तदशक्यं महच्चक्रं विष्णोरन्यस्य कस्यचित् ॥
 शुद्धसत्त्वस्य तद्विष्णोः सर्वेशस्य मया वपुः ।
 साक्षात्स्पृष्टो महान् भीतस्तमोगुणसमाश्रयः ॥
 यस्तत्त्वं च मया विष्णो दिव्यमङ्गलविग्रह ।
 त्वामेव तदहं नित्यं विष्णोर्नित्यानपायिनम् ॥
 अनुप्रविश्य त्वद्देहे वसिष्यामि सुदर्शन ।
 ननु यद्वैष्णवं तेजः शाणितं विश्वकर्मणा ॥
 जाज्वल्यमानमपतत्तद्भूमौ मुनिसत्तम ।
 तेन चक्रं महाविष्णोः शिविकामप्यकल्पयत् ॥
 दैत्यः पञ्चजनो नाम प्रभुर्जलभरस्तथा ।
 तस्यास्थिप्रभवं शङ्खमादाय पुरुषोत्तमः ॥ इति ॥

अनुशासनिके उमा—

बहूनामायुधानां तु पिनाकं धर्तुमिच्छसि ।
 किमर्थं देवदेवेश तन्मे शंसितुमर्हसि ॥

महेश्वरः—

शस्त्रग्रहं ते वक्ष्यामि शृणु धर्मं शुचिस्मिते ।
 युगान्तरे महादेवि कण्वनामा महामुनिः ॥

सेहे तीव्रां तपश्चर्यां कर्तुमेवोभयोः प्रियम् ।
 महाविष्णोश्च या माऽस्ति तां मायां प्रकृतिं विदुः ॥
 लोकयात्रा विना तां तु नैति श्रीः सा स्मृता बुधैः ।
 तस्याः श्रियाः स्त्रियोऽभिन्नाः पूर्णाश्च पुरुषोत्तमात् ॥
 तस्मात्तया श्रिया सार्धं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।
 संसारचक्रयत्नाभ्यां निजं ते स्यात्सुदर्शनम् ॥
 हंसाख्यं चेतनारूपं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ।
 तच्छङ्खरूपो देवश्च पाञ्चजन्याख्य उच्यते ॥
 पञ्चभूतात्मको ह्यस्य सर्ववेदमयोऽक्षरः ।
 छन्दोमयाभ्यां पक्षाभ्यां युक्तः पक्षिगणेश्वरः ॥
 गरुडो वाहनं चापि विष्णोर्देवस्य कीर्तितः ।
 पृथिवीवायुसंयोगश्चापः शार्ङ्गं हरेः स्मृतः ॥
 तेजो वायुमयो ह्यस्य नाम्ना संशरणाच्छरः ।
 विद्याविद्याशरैर्युक्ते अक्षये ते महेषुधी ॥
 लोकालोकाचलः प्रोक्तो विद्योताख्यं तु खेटकम् ।
 कृतान्तो नन्दकः खड्गं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥
 या दण्डनीतिः सा ख्याता गदा कौमोदकी हरेः ।
 सर्वार्थेषु जयो ह्यस्य स त्वजागरता स्थिता ॥
 सर्वबन्धुषु यद्वद्धं प्रेमपाशं परस्परम् ।
 दृढं भ्रातृसमाख्यं तत्त्वाशुसर्वार्थसंमतम् ॥
 सर्वप्राणिषु या शक्तिः शक्तिर्विद्युन्निभा मता ।
 मर्यादा यदधोलोके भेरी सा तु महारवा ॥

संसारभित्तिर्यो देहो लीलाख्यः स हरेर्द्विजाः ।
 यन्मनः शीघ्रं तस्य स रथः कामगो मतः ॥
 यो वायुर्वाति सोऽश्वस्तु पुण्डरीकपदाह्वयः ।
 इत्येवं ब्रह्मणा चोक्तं तस्मादेवि श्रिया सह ॥
 आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणोऽमलम् ।
 विभर्ति कौस्तुभमणिस्वरूपं भगवान् हरिः ॥
 श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्तेन समाश्रितम् ।
 प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ॥
 भूतादिमिन्द्रियादींश्च द्विधा वै परमीश्वरः ।
 विभर्ति शङ्करूपेण शार्ङ्गरूपेण च स्थितम् ॥
 चलस्वरूपमत्यन्तं जपेनान्तरितानिलम् ।
 चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुःकरे स्थितम् ॥
 पञ्चरत्ने तु या माता वैजयन्ती गदाभृतः ।
 सा भूतहेतुसङ्घातभूता माता च वै द्विज ॥
 यानीन्द्रियाण्यशेषेण बुद्धिकर्मात्मकानि वै ।
 शराणि यान्यशेषेण तानि धत्ते जनार्दनः ॥
 विभर्ति यच्चासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्मलम् ।
 विद्यामयं नु तज्ज्ञानमविद्याचर्मसंस्थितम् ॥
 भूतानि च हृषीकेशो धत्ते सर्वेन्द्रियाणि च ।
 विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्वमेतत्समाश्रितम् ॥
 अस्त्रभूषणसंस्थानस्वरूपं रूपवर्जितम् ।
 विभर्ति मायारूपोऽसौ श्रेयसे भगवान् हरिः ॥
 सविकारं प्रधानं च पुमान् स्वं चाखिलं जगत् ।
 विभर्ति पुण्डरीकाक्षस्तदेवं परमेश्वरः ॥ इति ॥

एवं स्वतः सिद्धानामकृतकानां शङ्खादीनामन्येन धर्तुमशक्यत्वात् योगेन पाञ्चजन्यत्वादिशब्दवाच्यत्वाभावात् रूढ्या पाञ्चजन्यत्वादिक-मुपपन्नं ब्रह्मणा कल्पितं शार्ङ्गमिति नाम । एवमन्येषामप्राकृतानां पाञ्च-जन्यादिकं परमात्मन एव । अवतारादिष्वन्यत् अप्राकृतं वाचकवृत्तिप्रभृतिर्वा । कल्पितानि शङ्खादीनि ॥ २ ॥

यस्योपरिष्ठादधितिष्ठदात्मा सर्वोपरिष्ठात् परमात्मा मुक्तं
तं विरजं नित्यमनु संपराय स्वाहा ॥ ३ ॥

यस्य बद्धस्य उपरिष्ठात् बद्धापेक्षया मुक्तपरमसर्वोपरिष्ठादधि-
तिष्ठदात्मा बद्धमुक्तनित्यापेक्षया परमात्मा तं विरजं बद्धापेक्षया मुक्तं
विरजं अपहतपाप्मत्वादिगुणविशिष्टं मुक्तापेक्षया नित्यं अनु साकल्येन
संपराय उत्कृष्टाय यद्वा प्रकृत्यपेक्षया बद्धायेत्यादि ॥ ३ ॥

तमस्सर्वभूतमधुनाध्वरेण तं सत्त्वरूपमनुप्रविश्य संक्लेशयन्
सृष्टिनिमित्ताय तस्मै परब्रह्मणे परंज्योतिषे स्वाहा ॥ ४ ॥

“नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम् । नासीद्रजो नो व्योमापरो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन् । अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् । न मृत्यु-
रमृतं तर्हि न । रात्रिया अह आसीत् प्रकेतः । आनीदवातस्वधया
तदेकम् । तस्माद्भान्यं न परः किंच नास । तम आसीत् तमसा गूढमग्रे
प्रकेतम्” इति । जाबालोपनिषदि—“ओं तदाहुः । किं तदासीत् । तस्मै
स होवाच । न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात्तमः स जायते तमसो भूतादिराका-
शमाकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्रेरापः अद्भ्यः पृथिवी तदण्डं समभवत् ।
तद्वत्संवत्सरमात्रमुषित्वा द्विधाऽकरोत् । अधस्तात् भूमिरुपरिष्ठादाकाशं मध्ये
पुरुषो दिव्यः । सहस्रशीर्षा पुरुषः । सहस्राक्षः सहस्रपात् सहस्रबाहुरिति

सर्वं तमोभूतं सृष्टेः प्रागा मनोस्तु सत्त्वरूपं सहस्रशीर्षेत्यादिरूपं
प्रजासृष्टिनिमित्ताय सृष्ट्यर्थम् ।

श्रीविष्णुपुराणे—

प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्य स्वेच्छया हरिः ।

क्षोभयामास संप्राप्ते सर्गकाले व्ययः स्वयम् ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विध्यनादी उभावपि ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।

संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥

एवमुक्तप्रकारेण अनुप्रविश्य प्रकृतिपुरुषौ शंक्लेशयन् सृष्टिमकरोत् ।
कथमिति चेत् सहस्रबाहुरिति सोऽग्रे भूतानां मृत्युमसृजत् । त्र्यक्षं त्रिपादं
खण्डपरशुमजीजनत् । तस्य ब्रह्माभिषेदे स ब्रह्माणमेव विवेश । स मानसात्
सप्त पुत्रानसृजत् । ते ह विराजं सप्तमानसानसृजन् प्रजापतयः “ब्राह्मणोऽस्य
मुखमासीत् । बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः । पद्भ्यां शूद्रो
अजायत । चन्द्रमा मनसो जातः । चक्षोः सूयो अजायत ” , “श्रोत्राद्वायुश्च
प्राणश्च हृदयात् इदं जायते अपानान्निषादा यक्षराक्षसगन्धर्वा अप्सरोभ्यः
पर्वतो लोमभ्यः ओषधिवनस्पतयो ललाटात् क्रोधजो रुद्रो जायते । तस्यैतस्य
महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्वेदो यजुर्वेदस्सामवेदोऽथर्वणवेदः शिक्षा कल्पो
व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणि व्याख्या-
नान्युपव्याख्यानानि सर्वाणि च भूतानि हिरण्यज्योतिर्यस्मिन्नयमात्मा
धीयन्ते भुवनानि विश्वा आत्मानं द्विधाऽकरोत् । अर्धेन स्त्री अर्धेन पुरुषो
देवो भूत्वा देवानसृजत् ऋषिर्भूत्वा ऋषीन् यक्षराक्षसगन्धर्वान् ग्राम्याना-
रण्यांश्च पशून्सृजत् । इतरा गा इतरोऽनडुह इतरा बडवा इतरोऽश्वतरान्
इतरा गर्दभीः इतरो गर्दभान् इतरा विश्वंभरीरितरो विश्वंभरान् ” इति एवं

सृष्टवान् । अयं परमात्मा क इत्याकाङ्क्षायां तस्मै परब्रह्मणे परंज्योतिष इति पुरुषनारायणपरंब्रह्मपरंतत्त्वपरंज्योतिःपरमात्मादिशब्दवाच्यो नारायण एवेति ज्ञापयितुं परब्रह्मणे परंज्योतिष इत्युक्तम् । परब्रह्मग्रहणात् सर्वमपि गृहीतं भवति ।

किञ्च—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

इत्यादि । किञ्च—“यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते” इत्यादि ।

जगत्कारणं ब्रह्मेत्युक्तं जगत्कारणत्वात् विष्ण्वादिमूर्तीनां मूलभूतानां षट्कोश-षड्भूमिलेशाभावात् ।

न भूतसङ्घसंस्थानं देवस्य परमात्मनः ।

न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मासमेदोऽस्थिसम्मिता ।

सर्वभूतमयं देहं त्रैलोक्ये सर्वजन्तुषु ॥

इत्यप्राकृतत्वात् “ऋतं सत्यं परं ब्रह्म” इत्यादिपरब्रह्मस्वरूप-प्रतिपादनात् पादादधात् त्रिपादात् देवेषु क्रमेणादिमूर्तिश्च मूर्त्या क्रमेण विष्णुं महाविष्णुं सदाविष्णुं व्यापिनारायण इति चतुर्मूर्तयो भवन्तीति मरीच्यादिभिः प्रतिपादितत्वात् “तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्” इत्युक्तत्वाच्च । “ऋतमग्निर्वा ऋतमसावादित्यम्”, “अग्निस्सर्वा देवताः”, “असावादित्यो ब्रह्म” इति समस्तकल्याणगुणाभिप्रायेण ऋतं सत्यमित्युक्तं “पूर्णत्वात् पुरुषः” इति पादनारायणादिषु पूर्णत्वाभावात्पूर्णत्वाद्व्यापिनारायणस्य ।

परशब्देन च व्यापी नारायण इतीरितः ।

नारशब्देन जीवानां समूहः प्रोच्यते बुधैः ॥

तेषामयनभूतत्वान्नारायण इहोच्यते ।
 नरसंबन्धिनो नारा नरश्च पुरुषोत्तमः ॥
 नाम्यत्यखिलविज्ञानं नाशयत्यखिलं तमः ।
 नरिष्यति च सर्वत्र नरस्तस्मात्सनातनः ॥
 नरसंबन्धिनः सर्वे चेतनाचेतनात्मकाः ।
 नृगन्तव्यतया नारा भार्या पोष्यतया नराः ॥

तथा—

नियाम्यत्वेन सृज्यत्वप्रवेशभरणैस्तथा ।
 अयं ते निहितो नारात् व्याप्नोति क्रिययाऽखिलम् ॥
 नाराश्चाप्ययनं तस्य तस्मै भावनिरूपणात् ।
 नराणामयनं वासश्चेतनस्यायनं सदा ।
 परमा च गतिस्तेषां नराणामात्मना स्थितिः ॥

व्यापिनारायणपरत्वाभिप्रायेण तस्मै परब्रह्मणे इत्युक्तम् ॥ ४ ॥

जेनातिर्जेनातिषां जेनातिरोजो बलमाहरत्सत्त्वात्मकं सं-
 जेनातिरित्थं तस्मै सूक्ष्मसूक्ष्माय तेजसे स्वाहा ॥ ५ ॥

परब्रह्मभूतनारायणस्य माहात्म्यं प्रतिपादयति अत्यन्तदीपवत्
 सूर्यचन्द्राग्न्यादीनां जेनातिः दीप्तिः ओजः परबलाहरणसामर्थ्यमोजः
 जगत्सृष्ट्यादिकं कुर्वतस्तस्य श्रीमहाविष्णोः बलं सत्त्वं सत्त्वात्मकं तदन्त-
 र्यामिणां संजेनातिः सम्यक् ज्योतिः इत्थं उक्तप्रकारेण तस्मै ॥ ५ ॥

सत्त्वं सत्त्वात्मकं वा रजो रजस आत्मकस्तमस्तमस
 आधारः साकृतं निरीश्वरमीश्वराय स्वाहा ॥ ६ ॥

अयमपि मन्त्रः पूर्वोक्तपरमात्मपरः सत्त्वं सात्त्विकं सत्त्वात्मकं
तदन्तर्यामिणं रजो रजस आत्मकः तदन्तर्यामिणं तमः तमस आधारः
साकृतं आकृतसहितं निरीश्वरम्,

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके

न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।

स कारणं करणाधिपाधिपो

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ इति ॥

ईश्वराय सर्वेश्वरायेत्यर्थः ।

विग्रहो हविरादानं युगपत्कर्मसन्निधिः ।

प्रीतिः फलप्रदत्वं च देवतानां न विद्यते ॥ इति ॥

विग्रहादिपञ्चकाभावात् चतुर्थ्यन्तः शब्दो देवता शब्दातिरिक्तदेवता-
भावात् मन्त्रार्थवादानां तत्र तात्पर्याभावाच्च ईश्वरायेति कथमुच्यते इति
चेत्—उच्यते; “यद्वै किञ्च मनुरवदत् तद्वेषजम्” इति श्रुतेः,

मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते ॥

इति संवर्तस्मरणाच्च । प्रमाणत्वेनाभिहितायां मनुस्मृतौ—

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।

त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥

इति प्रत्यक्षादीनां त्रयाणां प्रामाण्यप्रतिपादनात् “महाः इन्द्रो वज्र-
बाहुः”, “वज्रहस्तः पुरन्दरः”, “उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे
अवेपथः” इत्यादिदेवतासद्भावप्रतिपादनात् गारुडादिषु मन्त्रेषु मन्त्रवर्णानां
स्वार्थे तात्पर्यदर्शनात् विषहरणादिषु दृष्टत्वाच्च ईश्वरसद्भावोऽस्तीत्यवगन्तव्यः ।
स्मृतीनामपि वेदमूलत्वे त्रेधा निर्वाहः कार्य इति । नित्यानुमेयश्रुतिमूलत्वं

प्राभाकराः । उत्सन्नशाखामूलत्वमापस्तम्बाद्याः । विप्रकीर्णशाखामूलत्वमितरे । नित्यानुमेयश्रुतिमूलत्वे अक्षरानुपूर्व्यविशेषविशिष्टस्य नित्यानुमेयश्रुतिमूलत्वम् । नाक्षरानुपूर्व्यमूलत्वं यद्युच्यते तर्हि घटपटादीनामपि नित्यानुमेयश्रुतिमूलत्वं स्यात् । आनुपूर्व्यविशेषविशिष्टस्येति चेदुच्चार्यमाणानुपूर्व्यविशेषणविशिष्टत्वमिति सिद्धान्तेऽनुमेयत्वं भज्येतेति । उत्सन्नशाखा मूलमिति चेत् तेऽपि भिन्नभिन्नपाठाः प्रयोगादनुमीयन्त इति विक्षेपोत्सन्ना वा एकैवेति चेन्न सर्ववेदसाक्षात्कारवतो व्यासस्य एकस्यापि शिष्यस्याध्यापनसामर्थ्याभावेन तथा वक्तुमयुक्तम् । भवेदेवेति चेत् सः पदक्रमादिरूपेणाधीयमानत्वात् तथा वक्तुमयुक्तम् । किन्तु प्रकीर्णशाखामूलत्वं वक्तुं युक्तम् ॥

तदुक्तम्—

दुर्बोधा वैदिकाश्शब्दाः प्रकीर्णत्वाच्च ते खिलाः ।

तथैत एव स्पष्टार्थाः स्मृतितन्त्रे प्रतिष्ठिताः ॥ इति ॥

प्रसङ्गादेतत्सर्वमुपपादितम् ॥ ६ ॥

अनिर्भिण्णं यस्येदमासीदुदकात्मकं यस्योदावोज्यनुथमुच्च-
मुच्चैरुगाय स्वाहा ॥ ७ ॥

यस्य परमात्मनः यदा प्रलयः तदा लोके अनिर्भिण्णं भेदरहितं निरन्तरमुदकात्मकमासीत् । यस्य परमात्मनो दग्धुमिच्छा यदा यदा उदावः उत्कृष्टो दावः प्रळयाभिः अयनुथं तथा असमृद्धिः उच्चं अत्यन्तं उच्चैरुगाय श्रुतिस्मृतिषु सर्वत्र अत्यन्तं गायति इति उरुगः तस्मै ॥ ७ ॥

यस्येच्छा लोके वा प्रजायतिलोके यस्मै वासि तस्मै वासीत् यद्वास्संजातं [?] यत्सर्वमीशमाशिषे स्वाहा ॥ ८ ॥

यस्य परमात्मनः इच्छा लोके प्रजानामायतिः सृष्ट्यादिकं
“सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति” इत्यादिश्रुतेः । मनसैव जगत्सृष्टि-
संहारौ करोति यः तस्यां पक्षक्षपणे कियान् विस्तर इति लोके

(मातृकायामेतावदेवोपलब्धम्)

यज्ञोपवीतोपनिषत्

यज्ञोपवीती धृतचक्रधारी यो ब्रह्मविद्ब्रह्मविदां मनीषी हिरण्यमादाय
सुदर्शनं कृत्वा बहिसंयुक्तं स्त्री शूद्रो बाहुभ्यां धारयेत् । तस्माद्भर्मेण जायते ।
ब्राह्मणस्य शरीरं जायते । श्रीविष्णुं सर्वेश्वरं भजन्ति ।

नासादिकेशपर्यन्तमूर्ध्वपुण्ड्रं तु धारयेत् ।

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥

भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी ॥

मृत्तिके हन मे पापं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

तस्माद्विरेखं भवति तं देवकीपुत्रं समाश्रये । अग्निना वै होत्रा चक्रं
पाञ्चजन्यं प्रतप्तं द्वयोर्भुजयोर्धारयेत् । आत्मकृतमाचरेत् । आचार्यस्य संमुखं
प्रपद्येत । तस्माद्वैकुण्ठं न पुनरागमनं सालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्यं
गच्छति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति यज्ञोपवीतोपनिषत् समाप्ता

राधोपनिषत्

प्रथमः प्रपाठकः

ॐ अथ सुषुप्तौ रामः स्वबोधमाधयेव किं मे देवः कासौ कृष्णो योऽयं मम आतेति तस्य का निष्ठा ब्रूहीति । सा वै ह्युवाच । राम शृणु भूर्भुवस्स्वर्महर्जनस्तपस्तत्यं तलं वितलं सुतलं रसातलं तलातलं महातलं पातालं एवं पञ्चाशत्कोटियोजनं बहुलं स्वर्णाण्डं ब्रह्माण्डमिति अनन्तकोटिब्रह्माण्डानामुपरि कारणजलोपरि महाविष्णोर्नित्यं स्थानं वैकुण्ठः । स ह पृच्छति । कथं शून्यमण्डले निरालम्बने वैकुण्ठ इति साऽनुयुक्ता । पद्मासनासीनः कृष्णध्यानपरायणः शेषदेवोऽस्ति । तस्यानन्तरोमकूपेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि अनन्तकोटिकारणजलानि तस्य सप्तकोटिपरिसहस्रपरिमिताः फणाः तदुपरि वैकुण्ठो विष्णुलोक इति । रुद्रलोकः शिववैकुण्ठ इति । दशकोटियोजनविस्तीर्णो रुद्रलोकः । तदुपरि विष्णुलोकः । सप्तकोटियोजनविस्तीर्णो विष्णुलोकः । तदुपरि सुदर्शनचक्रं त्रिकोटियोजनविस्तीर्णम् । तदुपरि कृष्णस्य स्थानं गोकुलाढ्यं माथुरमण्डलं महत्पदं सुधामयसमुद्रेणावेष्टितमिति । तत्राष्टदलकेसरमध्ये मणिपीठे सप्तावरणकमिति । स पृच्छति । किं रूपं किंस्थानं किं पद्मं किमन्तःकेसरः किमावरणम् । इत्युक्ते साऽनुयुक्ता । गोकुलाढ्ये माथुरमण्डले बृन्दावनमध्ये सहस्रदलपद्मे षोडशदलमध्ये अष्टदलकेसरे गोविन्दोऽपि श्यामपीताम्बरो द्विभुजो मयूरपिच्छशिराः वेणुवेत्रहस्तो निर्गुणः सगुणो निराकारः साकारो निरीहः स चेष्टते विराजत इति । पार्श्वे राधिका चेति । तस्या अंशो लक्ष्मीदुर्गाविजयादिशक्तिरिति । पश्चिमे सम्मुखे ललिता । वायव्ये श्यामला । उत्तरस्मिन् श्रीमती । ऐशान्यां हरिप्रिया । पूर्वस्मिन् विशाला । अग्नेय्यां

श्रद्धा । याम्यां पद्मा । नैऋत्यां भद्रा । षोडशदले अग्रे चन्द्रावती । तद्वामे चित्ररेखा । तत्पार्श्वे चित्रकरा । तत्पार्श्वे मदनसुन्दरी । तत्पार्श्वे श्रीमदा । तत्पार्श्वे शशिरेखा । तत्पार्श्वे कृष्णप्रिया । तत्पार्श्वे वृन्दा । तत्पार्श्वे मनोहरा । तत्पार्श्वे योगनन्दा । तत्पार्श्वे परानन्दा । तत्पार्श्वे प्रेमानन्दा । तत्पार्श्वे सत्यानन्दा । तत्पार्श्वे चन्द्रा । तत्पार्श्वे किशोरीवल्लभा । तत्पार्श्वे करुणाकुशला इति । एवं विविधा गोप्यः कृष्णसेवां कुर्वन्तीति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति । मानसपूजया जपेन ध्यानेन कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्राप्नोति । नान्येनेति । नान्येनेति । नान्येनेति ॥

इत्याथर्वण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां प्रथमः प्रपाठकः

द्वितीयः प्रपाठकः

ॐ साऽनुयुक्ता । तस्य बाह्वेषु शतदलपद्मपत्रेषु योगपीठेषु रासक्रीडानुरक्ता गोप्यस्तिष्ठन्ति । एतच्चतुर्द्वारं लक्षसूर्यसमुज्ज्वलम् । तत्र द्रुमाकीर्णम् । तत्प्रथमावरणे पश्चिमे सम्मुखे स्वर्णमण्डपे देवकन्या । द्वितीये सुदामादि । तृतीये किङ्किण्यादि । चतुर्थे लवङ्गादि । पञ्चमे कल्पतरोर्मूले उषा तत्सहितोऽनिरुद्धोऽपि । षष्ठे देवाः । सप्तमे रक्तवर्णो विष्णुरिति द्वारपालाः । एतद्बाह्वं राधाकुण्डम् । तत्र स्नात्वा राधाङ्गं भवति । ईश्वरस्य दर्शनयोग्यं भवति । यत्र स्नात्वा नारद ईश्वरस्य नित्यस्थलसामीप्ययोग्यो भवति । राधाकृष्णयोरेकसासनम् । एका बुद्धिः । एकं मनः । एकं ज्ञानम् । एक आत्मा । एकं पदम् । एका आकृतिः । एकं ब्रह्म । तथा समं हेममुरलीं वादयन् हेमस्व-

रूपामनुरागसंवलितं कल्पतरोर्मूले [आस्ते ।] सुरभिविद्या अक्षमाला श्रुतिरिव परमा सिद्धा सात्त्विकी । ^(१)शुद्धा सात्त्विकी गुणातीता स्नेहभावरहिता । अत एव द्वयोर्न भेदः । कालमायागुणातीतत्वात् । तदेव स्पष्टयति अथेति । अथानन्तरं मङ्गले वा । अथ वा श्रीवृन्दावनमध्ये ऋग्यजुस्सामस्वरूपम् । ऋगात्मको मकारः । यजुरात्मक उकारः । श्रीरामः सामात्मकोऽपि अकारः । श्रीकृष्णः अर्धमात्रात्मकोऽपि । यशोदा इव बिन्दुः । परब्रह्म सच्चिदानन्दानन्दराधाकृष्णयोः परस्परसुखाभिलाषरसास्वादन इव तत्सच्चिदानन्दामृतं कथ्यते । तल्लक्षणं यत् प्रणवं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकं इच्छाज्ञानशक्तिनिष्ठं कायिकवाचिकमानसिकभावं सत्त्वरजस्तमस्वरूपं सत्यत्रेताद्व्यापरानुगीतम् । व्यापरस्य पश्चाद्वर्तते कलिः । एतच्चतुर्युगेषु गीयते । तद्भूर्भुवस्सर्वलक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदतिरिक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्वं ह्येतद्ब्रह्म आत्मा सोऽहमस्मि इति धीमहि चिन्तयेमहि । “ आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति ” इति यत् श्वेताख्यं श्वेतद्वीपनाम स्थानं तुरीयातीतं गोकुलमथुराद्वारकाणां तुरीयमेतद्विष्यं वृन्दावनमिति पुरैवोक्तं सर्वं संपत्संप्रदायानुगतं यत्र ॥)

इत्याथर्वण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां द्वितीयः प्रपाठकः

तृतीयः प्रपाठकः

अथानन्तरं भद्रश्रीलोहभाण्डीरमहातालखदिरवकुलकुमुदकाम्यमधुवृन्दावनानि द्वादशवनानि कालिन्ध्याः पश्चिमे सप्तवनानि पूर्वस्मिन् पञ्चवनानि उत्तरस्मिन् गुह्यानि सन्ति । मथुरावनमधुवनमहावनखादिरवनभाण्डीरवननन्दीश्वरवननन्दवनानन्दवनखाण्डवनपलाशवनाशोकवनकेतकवनद्रुमवन-

^१ कुण्डलद्वयान्तर्गतो भागो व्याख्यानवत् भाति ।

गन्धमादनवनशेषशायिवनश्यामायुवनभुज्युवनदधिवनवृषभानुवनसंकेतवनदीप -
वनरासवनक्रीडावनोत्सुकवनान्येतानि चतुर्विंशतिवनानि नित्यस्थलानि नाना-
लीलयाधिष्ठाय कृष्णः क्रीडति । [तानि वनानि] वसन्तऋतुसेवितानि
मन्दादिपवनयुक्तानि [सन्ति] यत्र दुःखं नास्ति सुखं नास्ति जरा नास्ति मरणं
नास्ति क्रोधो नास्ति तत्र पूर्णानन्दमयः श्रीकैशोरकृष्णः शिखण्डिलदललम्बित-
त्रियुमगुञ्जावतंसमणिमयकिरीटशिराः गोरोचनातिलकः कर्णयोर्मकरकुण्डलो
वन्यस्रग्वी मालतीदामभूषितशरीरः करे कङ्कणं बाहौ केयूरं पादयोः किङ्किणीं
कट्ट्यां पीताम्ब [रं च धारयन्] गम्भीरनाभिकमलः सुवृत्तनासायुगलो
ध्वजवज्रादिचिह्नितपादपद्मो महाविष्णु [रास्ते] ।

एवंरूपं कृष्णचन्द्रं चिन्तयेन्नित्यशः सुधीः ॥ इति ॥

तस्याद्या प्रकृती राधिका नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कारशोभिता प्रसन्नाशे-
षलावण्यसुन्दरी । अस्मदादीनां जन्म तदधीनं अस्यांशाद्बहवो विष्णुरुद्रादयो
भवन्ति । एवंभूतस्यागाधमहिम्नः सुखसिन्धोरुत्पन्नमिति मानसपूजया ध्यानेन
कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्राप्नोति । नान्येनेति । नान्येनेति ।
नान्येनेति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं
भवति ॥

इत्याथर्वण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां तृतीयः प्रपाठकः

चतुर्थः प्रपाठकः

अथ पुरुषोत्तमो यस्यां निशायां तुरीयं साक्षाद्ब्रह्म । यत्र परमसंन्या-
सस्वरूपः कृष्णः कल्पपादपः । यत्र लक्ष्मीर्जाम्भवती राधिका विमला चन्द्रावली

सरस्वती ललितादिरिति । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपो जगन्नाथः अहंशेषांशज्योतीरूपः सुदर्शनो भक्तश्च । एवं पञ्चधा विभूतमिति । यत्र च मथुरा गोकुलं द्वारका वैकुण्ठपुरी श्वेतपुरी रामपुरी यमपुरी नरसिंहपुरी नरनारायणपुरी कुबेरपुरी गणेशपुरी शक्रपुरी एता देवतास्तिष्ठन्ति । यत्र रसातलपातालगङ्गारोहिणी-कुण्डममृतकुण्डमित्यादिनानापुरी । यत्रान्नं सिद्धान्नम् । (^१शूद्रादिस्पर्शदोषरहितं ब्रह्मादिसंस्कारापेक्षारहितं यत्र श्रीजगन्नाथस्य योगमित्यर्थः । “नाभ्या आसीत्” इति मन्त्रेण, “अन्नपतेऽन्नस्य” इति मन्त्रेण, “अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजाय भागमत्समे सुखं प्रमार्यते यशसा च बलैन च” इति मन्त्रेण, “विश्वकर्मणि स्वाहा” इति मन्त्रेण, “आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम्” इति मन्त्रेण, “पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि स्वाहा” इति मन्त्रेण, “अन्नं ब्रह्म” इति श्रुत्या च कैवल्यमुक्तिरुच्यते । यत्रान्नं ब्रह्म परमं पवित्रं शान्तो रसः कैवल्यमुक्तिः सिद्धा भूर्भुवस्स्वर्महत्तत्त्वमित्यादि यत्र भार्गवी यमुना समुद्रममृतमयं बृन्दावनानि नीलपर्वतगोवर्धनसिंहासनं प्रासादो मणिमण्डपो विमलादिषोड-शचण्डिकागोप्यो यत्र समुद्रतीरे च निरन्तरं कामधेनुबृन्दं यत्र नृसिंहादयो देवता आवरणानि यत्र न जरा न मृत्युर्न कालो न भङ्गो न जयो न विवादो न हिंसा न शान्तिर्न स्वप्न एवं लीलाकामशरीरी स्वविनोदार्थं भक्तैः सहोत्कण्ठितैस्तत्र क्रीडति कृष्णः ।)

एको देवो नित्यलीलानुरक्तो

भक्तव्यापी भक्तहृद्यन्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

^१ कुण्डलद्वयान्तर्गतो भागो व्याख्यानवत् भाति ।

मानसपूजया जपेन ध्यानेन कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण
नित्यस्थलं प्राप्नोति । नान्येनेति । नान्येनेति । नान्येनेति । इति वेदवचनं
भवति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति ॥

इत्याथर्वण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां चतुर्थः प्रपाठकः

इति राधोपनिषत् समाप्ता

लाङ्गूलोपनिषत्

ॐ अस्य श्रीअनन्तघोरप्रलयज्वालाग्निरौद्रस्य वीरहनुमत्साध्यसाधना-
घोरमूलमन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्रीरामलक्ष्मणौ देवता ।
सौ बीजम् । अञ्जनासूनुरिति शक्तिः । वायुपुत्र इति कीलकम् । श्रीहनु-
मत्प्रसादसिद्धयर्थं भूर्भुवस्स्वर्लोकसमासीनतत्त्वंपदशोधनार्थं जपे विनियोगः ।

ॐ भूः नमो भगवते दावानलकालाग्निहनुमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
हृदयाय नमः । ॐ भुवः नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते तर्जनीभ्यां नमः ।
शिरसे स्वाहा । ॐ स्वः नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते मध्यमाभ्यां नमः ।
शिखायै वषट् । ॐ महः नमो भगवते पातालगरुडहनुमते अनामिकाभ्यां
नमः । कवचाय हुम् । ॐ जनः नमो भगवते कालाग्निरुद्रहनुमते
कनिष्ठिकाभ्यां नमः । नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ तपः सत्यं नमो भगवते भद्र-
जातिविकटरुद्रवीरहनुमते करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अस्त्राय फट् ।
पाशुपतेन दिग्बन्धः । अथ ध्यानम्—

वज्राङ्गं पिङ्गनेत्रं कनकमयलसत्कुण्डलाक्रान्तगण्डं

दम्भोलिस्तम्भसारप्रहरणविवशीभूतरक्षोऽधिनाथम् ।

उद्यल्लाङ्गूलधर्षप्रचलजलनिधिं भीमरूपं कपीन्द्रं

ध्यायन्तं रामचन्द्रं प्लवगपरिवृढं सत्त्वसारं प्रसन्नम् ॥

इति मानसोपचारैः संपूज्य, ॐ नमो भगवते दावानलका-
 लामिहनुमते [जयश्रियो जयजीविताय] धवलीकृतजगत्त्रय वज्रदेह वज्रपुच्छ
 वज्रकाय वज्रतुण्ड वज्रमुख वज्रनख वज्रबाहो वज्रोम वज्रनेत्र
 वज्रदन्त वज्रशरीर सकलात्मकाय भीमकर पिङ्गलाक्ष उग्र प्रलयकालरौद्र
 वीरभद्रावतार शरभसालुवभैरवदोर्दण्ड लङ्कापुरीदाहन उदधिलङ्घन
 दशग्रीवकृतान्त सीताविश्वास इश्वरपुत्र अञ्जनागर्भसंभूत उदयभास्कर-
 बिम्बानलग्रासक देवदानवक्रुषिमुनिवन्द्य पाशुपतास्त्रब्रह्मास्त्रबैलवास्त्रनाराय-
 णास्त्रकालशक्तिकास्त्रदण्डकास्त्रपाशाघोरास्त्रनिवारण पाशुपतास्त्रब्रह्मास्त्रबैल-
 वास्त्रनारायणास्त्रमृड सर्वशक्तिग्रसन ममात्मरक्षाकर परविद्यानिवारण आत्म-
 विद्यासंरक्षक अग्निदीप्त अथर्वणवेदसिद्धस्थिरकालाग्निनिराहारक वायुवेग
 मनोवेग श्रीरामतारकपरब्रह्मविश्वरूपदर्शन लक्ष्मणप्राणप्रतिष्ठानन्दकर स्थल-
 जलाग्निमर्मभेदिन् सर्वशत्रून् छिन्धि छिन्धि मम वैरिणः खादय खादय
 मम संजीवनपर्वतोत्पाटन डाकिनीविध्वंसन सुग्रीवसख्यकरण निष्कलङ्क
 कुमारब्रह्मचारिन् दिगम्बर सर्वपाप सर्वग्रह कुमारग्रह सर्व छेदय छेदय भेदय
 भेदय भिन्धि भिन्धि खादय खादय टङ्क टङ्क ताडय ताडय मारय मारय
 शोषय शोषय ज्वालय ज्वालय हारय हारय देवदत्तं नाशय नाशय अति-
 शोषय अतिशोषय मम सर्वं च हनुमन् रक्ष रक्ष ॐ ह्रां ह्रीं हूं हुं फट् धे
 धे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते महावीराय सर्वदुःखविनाश-
 नाय ग्रहमण्डलभूतमण्डलप्रेतपिशाचमण्डलसर्वोच्चाटनाय अतिभयङ्करज्वर-
 माहेश्वरज्वर-विष्णुज्वर-ब्रह्मज्वर-वेताळब्रह्मराक्षसज्वर-पित्तज्वर-श्लेष्मसाल्निपा-

तिकज्वर-विषमज्वर-शीतज्वर-एकाहिकज्वर-द्व्याहिकज्वर-त्र्यैहिकज्वर-चातु-
र्थिकज्वर - अर्धमासिकज्वर - मासिकज्वर-षाण्मासिकज्वर-सांवत्सरिकज्वर-अ-
स्थ्यन्तर्गतज्वर-महापस्मार-श्रमिकापस्मारांश्च भेदय भेदय स्वादय स्वादय
ॐ हां ह्रीं हूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते अङ्गशूल-अक्षिशूल-शिरश्शूल-
गुल्मशूल-उदरशूल-कर्णशूल-नेत्रशूल-गुदशूल-कटिशूल-जानुशूल-जङ्घाशूल-ह-
स्तशूल-पादशूल-गुल्फशूल-वातशूल-पित्तशूल-पायुशूल-स्तनशूल-परिणामशूल-
परिधामशूल-परिवाणशूल-दन्तशूल-कुक्षिशूल सुमनश्शूल-सर्वशूलानि निर्मूल्य
निर्मूल्य दैत्यदानवकामिनीवेतालब्रह्मराक्षसकोलाहलनागपाशानन्तवासुकि-
तक्षककाकोटकलिङ्गपद्मकुमुदज्वलरोगपाशमहामारीन् कालपाशविषं निर्विषं
कुरु कुरु ॐ हां ह्रीं हूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ग्लं ग्लीं ग्लूं ॐ नमो भगवते पातालगरुडहनुमते
भैरववनगतगजसिंहेन्द्राक्षीपाशबन्धं छेदय छेदय प्रलयमारुत कालाग्नि-
हनुमन् शृङ्खलाबन्धं विमोक्षय विमोक्षय सर्वग्रहं छेदय छेदय मम सर्वका-
र्याणि साधय साधय मम प्रसादं कुरु कुरु मम प्रसन्न श्रीरामसेवकसिंह
भैरवस्वरूप मां रक्ष रक्ष ॐ हां ह्रीं हूं हां ह्रीं क्ष्मौं भ्रैं श्रां श्रीं क्लूं क्लीं
क्रां क्रीं हां ह्रीं हूं हैं ह्रौं ह्रः हां ह्रीं हुं ख ख जय जय मारण मोहन
घूर्ण घूर्ण दम दम मारय मारय वारय वारय खे खे हां ह्रीं हूं हुं फट्
घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते कालाग्निरौद्रहनुमते आमय आमय लव लव
कुरु कुरु जय जय हस हस मादय मादय प्रज्वलय प्रज्वलय मृडय मृडय
त्रासय त्रासय साहय साहय वशय वशय शामय शामय अस्त्रिशूलडमरुखङ्ग-
कालमृत्युकपालखट्वाङ्गधर अभयशाश्वत हुं हुं अवतारय अवतारय हुं हुं

अनन्तभूषण परमन्त्र-परयन्त्र-परतन्त्र-शतसहस्र-कोटितेजःपुञ्जं भेदय भेदय
 अग्निं बन्धय बन्धय वायुं बन्धय बन्धय सर्वग्रहं बन्धय बन्धय अनन्तादिदुष्ट-
 नागानां द्वादशकुलवृश्चिकानामेकादशलक्षानां विषं हन हन सर्वविषं बन्धय
 बन्धय वज्रतुण्ड उच्चाटय उच्चाटय मारणमोहनवशीकरणस्तम्भनजृम्भणाक-
 र्षणोच्चाटनमिलनविद्वेषणयुद्धतर्कमर्माणि बन्धय बन्धय ॐ कुमारीपदत्रिहार-
 बाणोग्रमूर्तये ग्रामवासिने अतिपूर्वशक्ताय सर्वायुधधराय स्वाहा अक्षयाय
 घे घे घे घे ॐ लं लं लं प्रां प्राँ स्वाहा ॐ हां हीं ह्रूं हुं फट् घे घे
 स्वाहा ॥

ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः ॐ नमो भगवते भद्रजानिकटरुद्रवीर-
 हनुमते टं टं टं लं लं लं लं देवदत्तदिगम्बराष्ट्रमहाशक्त्यष्टाङ्गधर अष्ट-
 महाभैरवनवब्रह्मस्वरूप दशविष्णुरूप एकादशरुद्रावतार द्वादशार्कतेजः
 त्रयोदशसोममुख वीरहनुमन् स्तंभिनीमोहिनीवशीकरिणीतन्त्रैकसावयव नगर-
 राजमुखबन्धन बलमुखमकरमुखसिंहमुखजिह्वामुखानि बन्धय बन्धय स्तम्भय
 स्तम्भय व्याघ्रमुखसर्ववृश्चिकामिज्वालाविषं निर्गमय निर्गमय सर्वजन-
 वैरिमुखं बन्धय बन्धय पापहर वीर हनुमन् ईश्वरावतार वायुनन्दन अञ्जना-
 सुत बन्धय बन्धय श्रीरामचन्द्रसेवक ॐ हां हां हां आसय आसय हीं हां
 प्रीं क्रीं यं भैं भ्रं भ्रः हट् हट् खट् खट् सर्वजन-विश्वजन-शत्रुजन-वश्यजन-
 सर्वजनस्य दृशं लं लां श्रीं हां हीं मनः स्तम्भय स्तम्भय भञ्जय भञ्जय
 अद्रि हीं व हीं हीं मे सर्व हीं हीं सागरहीं हीं वं वं सर्वमन्त्रार्थाथर्वण-
 वेदसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा । श्रीरामचन्द्र उवाच । श्रीमहादेव उवाच ।
 श्रीवीरभद्रस्तौ उवाच । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥

इत्याथर्वणहस्त्ये लाङ्गलोपनिषत् समाप्ता

श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषत्

निरञ्जनो निराख्यातो निर्विकल्पो नमो नमः ।

पूर्णानन्दो हरिर्मायारहितः पुरुषोत्तमः ॥

अष्टावष्टसहस्रे द्वे स्त्रियो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । स्मृतिर्जायते पुरुषोत्तमात् । षट्छास्त्राणि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । छन्दो जायते पुरुषोत्तमात् । निगमो जायते पुरुषोत्तमात् । प्रजापतिर्जायते पुरुषोत्तमात् । शशिरवी जायते पुरुषोत्तमात् । सकलतीर्थानि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । परशिवशक्तिर्जायते पुरुषोत्तमात् । ऋषयोऽनृषयो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । इन्द्रो जायते पुरुषोत्तमात् । द्वादशादित्या रुद्राः सर्वा देवता जायन्ते पुरुषोत्तमात् । देवा जायन्ते पुरुषोत्तमात् । सप्त सागरा जायन्ते पुरुषोत्तमात् । सर्व आत्मा जायते पुरुषोत्तमात् । मनःसर्वेन्द्रियाणि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अष्टादश ब्रह्माण्डानि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अष्टसिद्धिनवनिधयो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । वनभारा अष्टादश जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अमृतो जायते पुरुषोत्तमात् । अम्भो जायते पुरुषोत्तमात् ॥

ॐ निगमं शङ्करोऽब्रवीत् । गौः । म्मा । ज्मा । क्ष्मा । क्षा । क्षमा । क्षोणिः । क्षितिः । अवनिः । उर्वी । पृथ्वी । मही । रिपः । अदितिः । इळा । ^१जीवामकालाशूता जीवः जीवा अस्ताजीव्यामं सर्वमायु-जीव्याप्तं [?] । लोदकंचनकांचानु अमृतं न भवति [?] पारमधाराणि [परमधर्माणि] जातवेदाः प्रोवाचैवेदं सर्वम् । शिवशक्तिपशुजीवो ब्रह्मा भक्तः पशुवत् [?] । यन्नत्यादेव परं श्रक्तो परशिवः अन्या अवतारातेहि व्यास-वल्लश्रविठलेहरयस्तथा [?] । ललाटे ऊर्ध्वपुण्ड्रं मध्यच्छिद्रं चन्दनतिलकं

^१ “जीवामकालाशूता जीवः” इत्यारभ्य “पुरुष एवेदं सर्वम्” इत्येतत्पर्यन्तं अतीव विकला मातृकेति सानुतापं यथास्थितं दीयते ॥

शुभं हरिमन्दिरं मध्यपद्मं कण्ठेतुलसी शङ्खचक्रं गदा बाहुगोपीचन्दनचर्चनं
परं गतिः जीवोत्तमस्य । ब्रह्मा शक्तिर्महादेवो जन्यते पुरुषोत्तमात् । ॐ
आपोऽमृतमर्त्यस्य मर्त्योऽपश्यत् यस्तु जन्यते पुरुषोत्तमात् । अमृतात्
प्राणाश्चाहो मम जायन्ते पुरुषोत्तमात् । मनसि निषण्णः श्रीप्राणाय प्रज्ञानाय
स्वराट् पुरुषोत्तमः । श्रीकृष्णभगवान् नारायणः परमात्मा पुरुषोत्तमः
त्रिगुणरहितः स्वयम् । कथम् ? पुरुष एवेदं सर्वम् ॥

इति श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषत् समाप्ता

सङ्कर्षणोपनिषत्

अथ तद्विष्णोः इति शान्तिः । अथ सङ्कर्षणोपनिषदुच्यते । शेषो ह
वै वासुदेवात्सङ्कर्षणो नाम जात आसीत् । सोऽकामयत् प्रजाः सृजेयेति ।
ततः प्रद्युम्नसंज्ञं मन आसीत् । तस्मादहंकारनामाऽनिरुद्धः । ततो हिरण्य-
गर्भोऽजायत । तस्माद्दश प्रजापतयो मरीच्यादयः स्थाणुदक्षकर्दमप्रियव्रतो-
त्तानपादादयोऽप्यजायन्त । तेभ्यः सर्वाणि भूतानि च । तस्माच्छेषादेव
सर्वाणि समुत्पद्यन्ते । तस्मिन्नेव प्रलीयन्ते । स एव बहुधा जायमानः
सर्वान् परिपाति । स एव काद्रवेयो व्याकरणज्यौतिषादिशास्त्राणि निर्दिमाणो
बहुभिर्मुमुक्षुभिरुपास्यमानोऽखिलां भुवमेकस्मिन् शीर्ष्णि सिद्धार्थवद्धार-
यमाणस्त्वैर्मुनिभिः संप्रार्थ्यमानः सहस्रशिखरमेरोरिशरोभिर्वारयमाणो
महावायोरहंकारं निराचकार । स भगवान् युगसन्धिकाले स्वेन रूपेण
युगे युगे तेनैव जायमानः स्वयमेव सौमित्रिरैश्वराके[वंशे जा]यमा[नो]
रक्षांसि सर्वाणि विनिघ्नन् चातुर्वर्ण्यधर्मान् प्रवर्त[यति ।] स एव
भगवान् युगसन्धिकाले[शरदःसं]निकाशो रौहिणेयो वासुदेवः सर्वाणि

ग[दा]द्यायुधशास्त्राजन्यमण्डलान्निराचिकीर्ष[ति ।] भूभारमखिलं निचखान ।
 स एव भगवान् [शेषः] युगे तुरीयेऽपि ब्राह्मण्यां जायमानो
 रामानुजो भूत्वा सर्वा उपनिषद उद्दिधीर्ष[ति ।] सर्वाणि धर्मशास्त्राणि
 विस्तारयिष्णुः सर्वानपि वैष्णवान् धर्मान् विजृम्भयन् सर्वानपि पाषण्डान्नि-
 चखान । स एष जग[दाविर्भावतिरोभावहेतुः ।] स एष सर्वात्मकः । स
 एष मुमुक्षुभिर्ध्येयः । स एष मोक्षप्रदः एतत्स्मृ[त्या] सर्वेभ्यः पाप्मे-
 [प्म]भ्यो मुच्यते । तन्नाम संकीर्तयन् विष्णुसायुज्यं गच्छति । तदेतद्विवा-
 धीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । नक्तमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति ।
 तदेतद्वेदानां रहस्यम् । तदेतदुपनिषदां रहस्यम् । एतदधीयानः सर्वकृतुफलं
 लभते । शान्तिमेति । मनश्शुद्धिमेति । सर्वतीर्थफलं लभते । य एवं वेद ।
 देहबन्धाद्विमुच्यते । देहबन्धाद्विमुच्यते । इत्येवोपनिषत् ॥

इति सङ्कर्षणोपनिषत् समाप्ता

सामरहस्योपनिषत्

एकदा ब्रह्मणः पुत्राः सनकादयस्तत्त्वविवित्सया पितामहं पप्रच्छुः
 प्रणिपातपुरस्सरम् । अहो पितः निरन्तरं वैकुण्ठे या लीलास्ता ध्यायमानाः
 निरन्तरं चिदानन्देन सह संप्रेक्षामहे । वद यदि रुचिरापद्यते ।
 चिदानन्दरसं ब्रह्म किं वदन्ति ? व्यापकतया जगद्व्याप्य तिष्ठति यत्तद्ब्रह्म
 वदन्तितराम् । आपद्यमानोऽस्ति प्रकृतिं पुरुषः । कस्मात्प्रकृतियोगिता
 भवति ? जीवाः कीदृग्विधाः ? कस्मात्समुत्पन्ना भवन्ति ? तेषां लोका अलोकाः
 कियत्प्रमाणाः ? यान् वदन्ति पुराविदः । पितामह उवाच । नारायण-

मुखाच्छ्रुतोऽयं धर्मः । शृणुत सर्वा यैषा सृष्टिस्समुत्पद्यते । क्षराक्षराभ्या-
मधिकः पुरुषोत्तमसंज्ञितो भक्तिगम्य आनन्दमयो लोकः संविराजते । तस्य
पुरुषोत्तमस्य उत्तरकटाक्षात्समुत्पन्ना जीवाः । तेषां स्नेहमार्गोऽयमापद्यते ।
दक्षिणकटाक्षादुत्पन्नाः कर्मजडा आसुरा अल्पोपासका भवन्ति । तस्मिन्
रसिकानन्दस्वरूपात्पार्थात् द्वे एव मूर्तीं प्रकटिते । प्रथमा भक्तिसुन्दरी
प्रकटिता । पश्चान्मायादासी प्रकटिता । तयोः प्रथमा अत्यन्तवल्लभा
आस्त । भक्तेस्सकाशादुत्पन्ना जीवाः स्नेहमार्गीया भवन्ति । मायायाः
समुत्पन्ना आसुराः कर्मजडा अन्यधर्मरता एव भवन्ति । यदा कर्ममार्गे
रतिरसतां ते आसुरा भवन्ति । सा भक्तिस्त्रिविधैव भवति । एका
कर्ममिश्रिता देवानामृषीणामुपासकानां भवतितराम् । श्रवणकीर्तन-
स्मरणवन्दनसेवनोपकरणदास्यभावेनात्मसमर्पणम् । ते जीवा भक्तिमार्गीयाः
एवैते । स एवायं पुरुषः स्वरमणार्थं स्वस्वरूपं प्रकटितवान् । तद्रूपं
रससंवलितमानन्दरसोऽयं पुराविदो वदन्ति । सर्वे आनन्दरसा यस्मात्
प्रकटिता भवन्ति । आनन्दरूपेषु पुरुषोऽयं रमते । स एवायं पुरुषः
स्वयमेव समाराधनतत्परोऽभूत् । तस्मात् स्वयमेव समाराधनमकरोत् । अतो
लोके वेदे श्रीराधा गीयते । तत्स्वरूपात्सृष्टिर्या समुत्पन्ना सा रसिकानन्देन
सुसेव्यतां प्राप्ता आसीत् । प्रमाणप्रमेयादस्मान्मार्गादतिरिक्तोऽयं मार्गो
रसात्मकः । य एतन्मार्गे आसक्तास्ते रसरूपिणीं सृष्टिमन्तरुत्पद्यमानाः
भवन्ति । लक्ष्मीनारायणीयोऽयं संवादः । निरन्तरं नारायणो वैकुण्ठे रमया
रहस्यलीलां सङ्गायमानोऽभवत् । रमारमणो वैकुण्ठे नारायणः स्वयं
ध्यानापन्नोऽभवत् । तदा लक्ष्मीः रहस्युपासमाना तस्य तामवस्थां निरीक्ष्य
प्रश्रयावनता पप्रच्छ । किं ध्यायसि ? किं जपसि ? परं कौतूहलं
मे मनसि वर्तते । त्वत्तः परं को देवः ? को लोकः ? यस्य त्वं ध्यायसे

प्रतिक्षणम् । तव मनः कां लीलामापन्नं दृश्यते ? स होवाच लक्ष्मीं प्रति । महालीलास्थानं क्षराक्षराभ्यामधिकं पुरुषोत्तमाधिष्ठानम् । यत्र सप्तावरणानि तेजोमयानि । यत्र ब्रह्माण्डान्युत्पद्यन्ते लीयन्ते । कोटिश अण्डकटाहाः उत्पद्यन्ते लीयन्ते । यस्य प्रतापकल्पा उत्पन्ना ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो देवाश्च दिक्पालाः कोटिश उत्पद्यमाना लीयमानाश्च भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । अहो क्षराक्षराभ्यामधिकस्य रसिकानन्दस्य स्थानं विस्तरशो ब्रूहि । स होवाच । आदौ पुरुषोत्तमस्य रसिकानन्दस्य अनादिसंसिद्धा लीलाः भवन्ति । अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति । तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत् । तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति । तस्मादानन्दमयोऽयं लोकः । यत्रायं पुरुषो रमते तत्रायं रसो व्रजति । तस्माल्लोके वेदे व्रजलीला गीयते । तन्मध्ये वनानि द्वादश सन्ति । तेषां पृथक् नामानि सन्ति । तालवनं बृहद्वनं कुमुदवनं लोहवनं बकुलवनं भाण्डी-
रवनं महावनं गोष्ठं काम्यवनमरिष्टं च सदाशुभं दधिवनं वृन्दावनमिति । सदा आनन्दमयोऽयं लोको वेदविदो यं वदन्ति । यत्र वृन्दावनं सर्वकामसुखावहं भवति । यत्र वृक्षा आधिदैविका देवा एव भवन्ति । यत्र साधनवट-
भाण्डीरवटौ । यत्र वंशीवटसंकेतवटौ । अन्ये वृक्षाः कदम्बाद्या यत्र राजन्ते । यत्रोभयतटबद्धा यमुना रत्नखचिता आस्ते । यस्यां कुमुदवनानि राजन्ते । यस्यां हंससारसयूथानि क्रीडापराणि शोभाढ्यानि भवन्ति । यस्यास्तटे कोटिशः कुञ्जाश्च निकुञ्जाश्च राजन्ते । तस्मिन् मण्डले गोवर्धनोऽयं गिरिः । रत्नमयोऽयं गिरिः राजमानो भवति । अयं गिरिः श्रीराधिकायाः रमणस्थानम् । स एवायं गिरिर्वृन्दावने सदा रसिकानन्दस्य क्रीडास्थानं भवति । तस्मिन् वने पशुपक्षिगणा आधिदैविकीं सृष्टिं प्राप्ताः सदा सानुभवा भवन्ति । आधिदैविकी या सृष्टिः सा सृष्टिस्तस्मिन् लोके

लोकतां प्राप्नोति । सा सृष्टिर्द्विभेदा भवति । एका संसिद्धा अन्या साधनसिद्धा भवति । या संसिद्धा सा तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वस्वरूपात् समुत्पाद्या भवति । या साधनसिद्धा सा भजनमार्गे प्रपन्ना । भक्तास्तां लीलां तद्भावेन प्राप्नुवन्ति । रसलीलायामुपकरणानि रसलीलायामधिकरणे सख्यश्चातुर्यगुणयुताः ससखीसमूहा यौवनसंपत्तिपूर्णा अनेककलाकोविदाः रसभावेन पूर्णा भवन्ति । यत्र चन्दनवृक्षाणां श्रेणयो राजमाना भवन्ति । मणिविद्रुमलताग्रथिताः सुवर्णसुगन्धसंवलिता वृक्षास्तेषां पुष्पाणि संराजमानानि भवन्ति । तत्र सखीयूथानि भोज्यं हस्ते गृहीत्वा तिष्ठन्ति । तासु श्रेणिषु लतान्तरैर्ग्रथितानि द्वाराणि मणिलतायुतानि भवन्ति । मणिमण्डलं यत्र तेजोमयं मणिमण्डपेन सह भ्राजमानं भवति । लताग्रथिता मणिस्तम्भाः शतशो राजमाना भवन्ति । तस्मिन् मण्डपे परितः सुवर्णभित्तिषु जटिताः मणयस्तेजोमयाः संराजमाना भवन्ति । तत्राधित्यकासु चन्द्रकान्तमणिना द्योतिता जलमणयो जलधाराश्च भवन्ति । तेन जलेन पूरिताः सुगन्ध-मणिपुष्करिण्यो राजमाना भवन्ति । तत्र कमलानि प्रफुल्लानि श्वेतरक्त-पीतानि मनोहरशोभां ददति । तत्रोपस्थितपरागस्तद्वनं वासयति । तत्र हंसयुग्मानि कोटिशो देववाण्या निकुञ्जदेव्या यशो गायन्ति । यत्र भ्रमराः सानुभवा देववाण्या निकुञ्जदेव्या यशो गायन्ति । तत्र पुष्करिणीः परितो दश दश मन्दिराणि चतुष्कोणेषु सन्ति । रत्नमयकुड्येषु कृत्रिमाः पक्षिणः सानुभवा इव दृश्यन्ते । तत्र मध्ये मध्ये वृक्षा निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । सुकोमलैः पत्रैस्तेजोमयै राजन्ते । तेषां सुगन्धेन उन्मदा भ्रमरास्तस्याः श्रीराधिकाया यशो गायन्ति । तत्र केचित् वृक्षाः पुष्पैः शाखाप्रतिशाखाः नम्रा भवन्ति । तेषु वृक्षेषु हरितपीतशुभ्रश्वेता द्योतिताः पुष्पगुच्छा भवन्ति । तेषामधःशृङ्गारवत्यादयः सख्यः पुष्पाणां शय्या रचयन्ति । तत्र लतान्तरैः

आच्छादिता वृक्षा निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तत्र मणिजटितानि रमणस्थानानि कोटिशो राजन्ते । यत्र ललिता विशाखा सुभगा कलावती मनोरमा चन्द्रकलामोहिनी गतिरतिविलासिनी मोहिनी शास्त्रगीतज्ञा गुणज्ञा भोगज्ञा भोगप्रदा कामप्रदा कामदा केलिदा सुरतकलाकोविदा संभोगसुखदा गतत्रपा निःशङ्करतिदा सुतरां सुरतान्तनिद्रिता अन्याः कोटिशः सख्यः संविराजमाना भवन्ति । दश मन्दिराणि भक्ष्यभोज्यैः संपूरितानि भवन्ति । यत्र घृतपक्वानि पक्वान्नान्यनेकशो विविधरसयुक्तानि सन्ति । तेषु मन्दिरेषु कटुतिक्तकषायमाधुर्यरसा भोगवत्या सख्या कृताः संपूर्णाः प्रतिकृष्टं नूतना भवन्ति । अत्रे सिद्धान्नभोगापूपपायसपक्वान्नभागाः शाकविविध-
षड्ससंवलिता अन्नपूर्णया सख्या संपादितास्तथा निकुञ्जदेव्या सेव्य-
माना भवन्ति । वस्त्रवत्या सख्या संपादितान्यनेकशो वस्त्राणि समयो-
चितानि मनोरमाणि सन्ति । भूषणभूष्या सख्या रचितानि भूषणानि तस्या निकुञ्जदेव्याः प्रीणनाय तेषु मन्दिरेषु शय्याभोजनशृङ्गाराः कोटिशः सन्ति । तत्रान्ये शृङ्गारादिभोगा भोगवत्या कृतास्तेषु मन्दिरेषु तस्याः सुखार्थं भवन्ति । तत्र चतुःश्रेणीनि दशदशमन्दिराणि सन्ति । तेषु मन्दिरेषु शय्याभोजनशृङ्गारा अनेकधा रचिता भवन्ति । तेषु मन्दिरेषु सखीनां समूहाः पृथक् पृथक् कार्येषु संलग्ना भवन्ति । तेषां मध्ये रास-
मण्डलं तेजोमयमानन्दमयं तस्याः श्रीराधिकायाः सुखार्थं वृन्दानाम्ना सख्या तथा संपादितं भवति । तेषु मन्दिरेषु सखीनां एका योगमाया सखी सर्वासां सखीनां सर्वत्र एकभावं करोति । तस्मिन् स्थाने सुनादाः सख्यः सुनादेन सप्तस्वराणि श्रावयन्ति । तत्र ब्रह्माण्डे याः सिद्धयोऽणिमा-
दयस्तत्र सखीरूपं विधाय तां श्रीराधिकां सेवमाना भवन्ति । सुमेरुहेमा-
द्रिमलयाद्याः पर्वता अन्ये ये निधयो देवानां सन्ति ते निधयस्तस्याः

निकुञ्जदेव्याः प्रीणनाय सखीनां रूपाणि विधाय तन्मण्डलं सेवन्ते । तस्मिन्मण्डले श्रीरपि सखीरूपं विधाय आकारं गोपयन्ती सेवमाना भवति । नित्यलीलायां षडृतवोऽपि सखीनां रूपाणि विधाय सेवमाना भवन्ति । काले काले तासु निकुञ्जश्रेणिषु सञ्चारिणीनां नानाभोगान् ददति । मेघा नाना-सखीनां रूपाणि कृत्वा जलसेचनं कुर्वन्ति । कामदेवोऽपि सखीरूपं विधाय तत्स्थानं सेवमानो भवति । अहोरात्रमपि स्वस्वरूपेण अहनि निशि च सेवते तन्मण्डलम् । तदिच्छया कचिद्विधा कचिन्निशा कचित्प्रातः कचित्सायं कचिन्मध्याह्नः कचिन्निशीथं नानाभावेन कालेकाले तन्मण्डलं सेवते । नानामणय ओषधयो वनस्पतयो वृक्षा ये पृथिव्यां सन्ति ते आधिदैविकीं सृष्टिं प्राप्ताः सेवमाना भवन्ति । सिन्धवः स्वरूपेण निधीन् गृहीत्वा तन्मण्डलं सेवमाना भवन्ति । सुमेरुहेमाद्रिमलयाद्याः पर्वताः तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । सखीरूपेणात्यन्तमणिज्योत्स्नाभिर्यत्र तत्र अन्ये च ब्रह्माण्डवर्तिनस्तत्स्थानं दीपयन्तो भवन्ति । पृथिव्यां यत्किञ्चिद्वस्तुमात्रं तस्याधिदैविकं रूपं तत्रैवास्ति । तस्मात्सर्वं समुत्पन्नं भवति । ब्रह्माण्डे ये देवास्ते आधिदैविकेन रूपेण तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । तस्मात्ते सर्वे समुत्पन्ना ब्रह्माण्डे भवन्ति । वेदाः स्वर्गचाभिस्तस्मिन्स्थाने तस्या निकुञ्ज-देव्या यशो गायन्ति । कामदुग्धाः स्वयूयेनाधिदैविकं रूपं विधाय संसेवन्ते । दधिदुग्धतक्रनवनीतघृताद्यान् रसान् गृहीत्वा सेवमाना भवन्ति । तत्र रासमण्डलमेतैर्गुणैरन्यैर्विविधैः संपूरितं रसिकानन्देन सह श्रीराधिकां सेवमानं भवति । यस्य रासमण्डलस्य परितः स्थानानि द्वादश संशोभमानानि भवन्ति । एकं मज्जनस्थानम् । यत्रोष्णोदकपुष्करिण्यो जलैः संपूर्णा भवन्ति तत्र मज्जनवत्यादयः सख्यो मज्जनार्थं सेवमाना भवन्ति । तत्रान्याः पुष्करिण्यः शीतोदकपूर्णा भवन्ति । तत्र निकुञ्जानां श्रेणयो रत्नालवालैश्चन्द्रोद्भवैर्जलैः

सेव्यमाना भवन्ति । तत्रान्याः पुष्करिण्यः शीतोदकपूर्णा भवन्ति । चन्द्रकान्तमणेरुत्पन्नैर्जलैः सेव्यमाना मुक्तालता मुक्तागुच्छैः संपूरिता भवन्ति । मणिलतासु ज्योत्स्नायां प्रतिविम्बिताः पक्षिणः परस्परं दृष्टिवन्धेन नृत्यं कुर्वन्ति । द्वितीयं शृङ्गारस्थानम् । यत्र शृङ्गारवत्या सख्या अधिश्रितम् । तस्मिन् स्थाने अधिश्रिता रङ्गवत्यादयः सख्यो मोदन्ते । तृतीयं मानस्थानम् । यत्र मानवत्यादयः सख्यो मानं रचयन्ति । यस्मिन् मन्दारवृक्षाः सुवर्णलताः सुगन्धा ग्रथिता भवन्ति । तेषु वृक्षेषु पुष्पाणि सुगन्धसंबलितानि भवन्ति । लतान्तरैराच्छादितं स्थानं सुगन्धसंबलितं मनोरमं तेजसा दीप्यमानं भवति । हरितपीतच्छायाभिः संयुतं तेजसा दीप्यमानं भवति । मन्दारनिकुञ्जाः श्रीराधिकाया अधिष्ठानम् । यमुनायास्तीरे धीरसमीरे एकवटश्चकास्ति । तस्य वटस्य परितो निकुञ्जानां श्रेणयो राजमाना भवन्ति । द्वादश निकुञ्जाः सन्ति । सखीनां सञ्चाराः सूक्ष्मतरा लतान्तरैर्ग्रथिता भवन्ति । तत्र ललितादयः सख्यो रसिकानन्देन सह वचनप्रतिवचनोत्तरं ददति । कुञ्जान्तरश्रेणिषु सखीनां मध्यसञ्चारोऽस्ति । रसिकानन्दः पुरुषोत्तमः स्वयमेव प्रणिपातं करोति । स्वामिनी मनोरमा निकुञ्जे स्वयमेवातिमानातुरतया मनोभावापन्ना भवति । स्वभावसंसिद्धाः सख्यो भावापन्ना भवन्ति । अतिरसलंपटो रसिकानन्दः सर्वासां सखीनां प्रणिपातं करोति । अत्यन्तमग्नाः सख्यस्तत्सुखं निरीक्ष्य सुरतानन्दे मग्ना भवन्ति । चतुर्थं भोगस्थानम् । यत्र सुभोज्या सख्या सेवितम् । यत्र खाद्यपेयलेखचोप्यरसा अनेकस्वादुयुताः भवन्ति । अन्नपूर्णया सख्या पाचितानन्नरसानत्युष्णान् सद्यःपाचितानिव श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः सेवते । अगुरुरसांस्तैलरसान् पुष्परसान् नानासुगन्धरसान् श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः संसेवमानो भवति । अन्ये ताम्बुलादयो लवङ्गकर्पूरादय एलाजातीफलपूगफलनाळिके-

रपनससहकारभद्राक्षेक्षुरसैः शर्करादयः पिष्टरसपूर्णतया निकुञ्जदेव्या सं-
 सेव्यन्ते । ललिता रङ्गवती भोगवती प्रेमोत्कण्ठा सुरतानन्दा सुरतरसको-
 विदा चेति सख्यः श्रीराधिकाया दत्तं प्रसादं भुञ्जते । तत्रैकं रसिकानन्द-
 शृङ्गारस्थानम् । यत्र पारिजातकवृक्षाः सदा पुष्पैः प्रफुल्लिता नम्रा भवन्ति ।
 तत्र सुगन्धसुवर्णलताभिः संवलितं भवति । सुगन्धमुक्तालताभिः पारि-
 जातकवृक्षा ग्रथितनिकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तत्र एको भ्रमरो देववाण्या
 चातुर्येण मानस्थाने राधिकां प्रति दूतत्वं करोति । स भ्रमरो रसिकानन्दं प्रति
 प्रियो भवति । स भ्रमरः स्वचातुर्येण श्रीराधिकाया मानापकरणं करोति ।
 स भ्रमरोऽत्यन्तमनोहरचातुर्यासीमगुणज्ञः स्वभावसंसिद्धः साधनसिद्धो
 भवति । स भ्रमरो रसिकानन्दस्य दूतो भवति । निरन्तरं श्रीराधिकायाः
 मानलीलायां सहकारी भवति । तस्माद्रसिकानन्दस्यातितरां वल्लभो भवति ।
 तेऽत्र भ्रमरा मनोहरशब्देन सङ्गीतरसं गमयन्ति । तत्रैकः शुकः साधनसिद्धः
 श्रीराधिकाया मानस्थाने मन्दारनिकुञ्जे निवसति । तेन शुकेन भ्रमरचातुर्यं
 निरीक्ष्य तस्या निकुञ्जदेव्याः कृपां निरीक्ष्य अत्याश्चर्यं प्रपेदे । स भ्रमरस्तेन
 शुकेन पृष्ठः अहो अले त्वं कः ? केन साधनेन त्वयेदं रूपं प्राप्तम् ? कथं
 श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकाया दूतत्वं प्राप्तः ? अलिरुवाच । अहो शुक त्वं
 पूर्वं कोऽसि ? केन साधनेनेदं लीलास्थानं प्राप्तम् ? शुक उवाच । अहं पूर्वं
 ब्राह्मणोऽस्मि । विष्णोरुपासककुलोत्पन्न एकात्मभावेन मम मनो हरिं भजमानं
 भवति । एकस्मिन् वासरेऽस्मि ब्रह्मलोकं गतः । तत्रानन्यमार्गीया भक्ताः
 मया दृष्टाः । रसमार्गीया भक्ता मया दृष्टाः । तेषां सङ्गमेन मया
 निकुञ्जलीला अनुभूताः । तत्रारिष्टे श्रीराधाकृष्णपुष्करिण्युद्भवां मृत्तिकां
 भक्षयता तत्र निरन्तरक्रीडास्थलं मया श्रुतं पूर्वम् । अस्या मृत्तिकायाः
 माहात्म्यं महालीलायाः प्राप्तेः कारणम् । भ्रमरो वदति । त्वया किं

श्रुतमस्या माहात्म्यम् ? शुक उवाच । श्रीरसिकानन्देन वन्दितम् ।
 श्रीराधिकायाः प्रेमवत्यादयः सख्यस्तस्मात्स्थानात्समुत्पन्नाः । स्वयमपि
 तस्मिंस्थले रासलीलायाः प्रारम्भः कृतः । तस्मिन् काले श्रीरसिकानन्देन
 स्वयमेव वन्दितं तपसा ध्यानेनाधिकृतम् । तस्माल्लोके वेदे वन्दितमिदं
 स्थानम् । अस्य स्थानस्य मृत्तिका मया अनुभूता । तेनेदं स्थानं प्राप्तम् ।
 इदं शरीरं तथा मृत्तिकया पुष्टं साधनसिद्धं जातम् । अहो भ्रमर त्वं
 कथय यदि रुचिः स्यात् । अलिरुवाच । अहमपि पूर्वं गौडदेशोद्भवकायस्थः ।
 वैष्णवोऽहं निरन्तरं प्रेमाधिक्येन रसिकानन्दं सेवमानोऽभवम् । गुर्वनुग्रहेण
 साधूनां रसमार्गीयाणां सङ्गेन मया रसमार्गरूपा कथा श्रुता । तेषां
 साधूनां सङ्गो मयानुभूतः । तत्कथाद्वारेण मम हृदि प्रविष्टो रसः । अहं
 रसलीलायां प्रपन्नोऽभवम् । रसलीलायां प्रवृत्तिरन्यधर्मविस्मरणपूर्विका
 जाता । तस्याः सेवाकथायां प्रत्ययो बभूव । ये रसमार्गीया भक्तास्तेषां
 सम्बन्धालापकीर्तनगोष्ठीमार्गानुभवान्मनो भावमापन्नं प्रेमाधिक्यं सुखसंपत्तिः
 इष्टतमवस्तुपात्रदेहादि यत्किञ्चित् समर्पयेदिति । इत्यानुभविकेन मार्गेण
 भक्तैस्सह ब्रजलोके प्राप्तोऽहं सर्वसङ्गरिक्तोऽभवम् । तस्मिन् ब्रजमण्डले
 निवसन्नहं प्रतिकक्षं प्रतिकुञ्जं तां लीलां चिन्तयमानस्तद्वावापन्नो भवामि ।
 तद्भक्तैः सह देहादिसुखं ततो ग्राह्यं ततो देयमिति मनसा वाचा तैः सह
 कालोऽज्ञातकालविषयोऽप्यते । एवं मम धर्मः सिद्धो भवति । सिद्धधर्मेण
 शरीरं साधनसिद्धं बभूव । तदा ममाभिलाषो मनस एवं भूतो भवति ।
 येनाभिलाषेणाहं भ्रमररूपेण तस्या निकुञ्जदेव्या यशः सङ्गायामि ।
 पश्चात्प्रसन्नेन रसिकानन्देन तथा देव्या मनसेप्सितं रूपं दत्तम् । इदं
 मान्यस्थानं दत्तम् । अहो शुक अहमस्मिन् स्थाने श्रीराधिकाया वने
 क्रीडापरो भवेयमिति । तद्बृन्दावनं सर्वकालसुखसमृद्धिसंपूर्णं श्रीराधिकया

सदा सेवितं रसिकानन्देन सह । तस्मिन् वायवः शीतमन्दसुरभिभावेन
 सेवमानाः सन्ति । तत्र स्थाने अमृतोदा पुष्करिणी आस्ते । तासु पुष्करिणीषु
 कन्दुकलीलया श्रान्ताः सख्यो मञ्जनं कुर्वन्ति । अतितरां सितजलकलोलैर्मञ्ज-
 नक्रियायां तस्मिन्नत्यन्तरसममानि हंसयूथानि राजन्ते । उपरि पक्षिणां
 पङ्क्तिः कलकण्ठैः सेव्यमाना अभ्येति । अतितरामानन्दमग्नाः सखीनां
 गणा गुणगणान् सङ्गायमाना भवन्ति । तत्रोपर्येकं शृङ्गारस्थलं
 मन्दिरमस्ति । एकं भक्ष्यभोज्यस्थलमस्ति । एकं सखीसङ्गमोपवेशताम्बूल-
 सुगन्धरससेवनायैवेति । एकं शय्यागृहं सुगन्धमणिमयभोगान्वितम् ।
 आधिदैविकेन रूपेण कामः सखीरूपं विधाय स्वयमेव सेवमान आस्ते ।
 रतिसंभोगातिकलाकौतुकानि नेत्रहावभावकटाक्षसंवलितकामरसभावभेदानि
 संयोक्ष्यमाणकामरससुखसंपत्तियोग्यतां मनोभवः संयोक्ष्यमाणसुखं च पिबति ।
 नित्यं नित्यनूत्रभावभेदशृङ्गारं नूत्रम् । रूपं नूत्रम् । क्रीडा नूत्रा । वचनं
 नूत्रम् । प्रतिक्षणं प्रतिक्षणं नूत्रमेव सुखं सखीनाम् । नूत्रः सर्वो भाव आस्ते ।
 एकादशश्रेणयः सदा वसन्तस्थानम् । किंशुकवकुलाम्रवृक्षाः शोभायमानल-
 वङ्गलतापरिशीलिता अत्यन्तं निगूढगुच्छपुष्पपरागा भवन्ति । उन्म-
 दकोकिलभ्रमरसूक्ष्मस्वरसङ्गीयमानानि सखीनां यूथानि केशबन्धन-
 वस्त्राण्यतिरञ्जितानि शोभामातन्वन्ति । कलगीतानि वसन्तोद्भवानि
 सङ्गीयन्ते । तस्मिन् स्थाने सदा कौतुकाविष्टा गोप्यः केसरकर्पूरमृगमदा-
 गुरुरसान् सेचयन्त्यो भवन्ति । परस्परं हस्तैः कनकखचितजटिताः सर्वाः
 कन्या मृगमदकर्पूररसं सिञ्चन्त्य आपद्यन्ते । अभिलिम्पन्त्यः परिमृजन्त्यः
 अञ्जन्त्यो लोचने काश्चित् काश्चित् गानं गायन्त्यो गोप्यः । तां ब्रजेश्वरीं
 ब्रजनायिकां ताः सख्यो वेषशृङ्गारशोभासंराजितामशोभयन्त । तस्मिन्
 वसन्तऋतुः सखीरूपं विधाय तां ब्रजेश्वरीमुपसेवमान आस्ते । यत्र

वसन्तस्तत्रैव कामावेशो जन्यते । स कामः सखीरूपं विधायोपसेवमानः
 आस्ते । रतिभावे सा ब्रजेश्वरी तां देवीमुपसेवमानातिगुणगणनया
 कचित्पुष्पावेशेन वसन्तं सुखमुपसेवते । कचित्फलावेशेन वसन्त उपसेवते ।
 कचित्कोमलाङ्कुरावेशेन वसन्त उपसेवमान आस्ते । कचित्पक्षिणां
 रवेण उपसेव्यमान आसेवामातनोत् । कचिल्लतान्तरैराविर्भावेनोन्मदभ्रमर-
 पिकशुका गीतगानं कुर्वाणा आपद्यन्ते । रसिकानन्दस्तया निकुञ्जदेव्या
 सह वसन्तोद्भवैः पत्राङ्कुरैः शय्यां विधाय वसन्तसुखान्यनुभवन्नास्ते ।
 विविधलतान्तरेषु पुष्पगुच्छसंवलिताः सख्यः शय्यां विविधप्रकारां प्रतिकुञ्जं
 रचयन्ति । उपकरणकामकलया सुरतकेलिञ्च उपतापसुखमन्वभूत् । आसे-
 दिवान् रतिरससुरतानन्दो विविधकलारूपेण प्रतिपद्यमानो भवति । हाव-
 भावकेलिकौतुकानि भवन्ति । वसन्तः कामेन सह रसलीलारतिं विस्तार-
 यति । तत्रानेकलता वसन्तोद्भवैः कुसुमैर्वनलीलायां प्रफुल्लिता नम्राः
 भवन्ति । नानाकौतुकाविष्टाः प्रेमवत्यादयः सख्य अतिभावापन्ना बभूवुः ।
 तस्यां लीलायां चतस्रः सख्यः श्रीराधिकां संसेवमाना भवन्ति । तस्य
 वसन्तस्य सुखं केनोपवर्ण्यते । चतस्रः सख्यः कथिताः । तासां नामानि
 शृणुत । रङ्गवती गुणवती गानवती मनोरमा । एताः सख्यस्तस्मिन्
 वसन्तस्थाने सेवमाना भवन्ति । तद्वसन्तस्थानं श्रीराधिकाया अतितसां
 वल्लभं भवति । तत्स्थानं श्रीराधिकया रसिकानन्देन सह सेव्यमानं भवति ।
 ताः सख्यस्तस्मिन् स्थाने प्रेम्णो भावं विस्तारयन्ति । रङ्गवती रसरङ्गलीलां
 विस्तारयति । नानाभावेन वसन्तरङ्गभोगान् विस्तारयति । एवं नानाभाव-
 भेदं सुरतानन्दं विस्तारयति । गुणवती रागरङ्गसुगन्धरसवीणावेणुप्रणाळिकया
 सर्वासां सखीनां कामलीलायाः प्रबोधं जनयति । गानवती गीतगानगुणेन
 श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकां प्रीणयति । मनोरमा मनोरमं भावमापन्ना

भवति । ताः सख्यो भावापन्नाः साधनसिद्धा भवन्ति । ता ऊचुः । तास
साधनं किं येन साधनेन वसन्तलीलायाः स्थानं प्राप्तम् । अहो भक्तानां
रसमार्गीयाणां पुण्या रसमार्गिणी कथा निःश्रेयसाय भवति । येषां स्नेहमार्ग-
धर्मकर्मरहितकेवलमनसा वृत्तिः श्रीराधिकायां गतिरतिभावो भवेत् ते एव
तां लीलां प्राप्नुवन्ति । तस्मात्ताभिर्यत्साधनं कृतं तत्सर्वं कथय । अहो ताः
सख्यः वैवस्वतमनोः पुत्र्य आसन् । ताः कन्याः पितुर्गृहे निरन्तरं क्रीडमानाः
बभूवुः । एकरूपा एकस्थिता एकप्राणा एकभावापन्ना बभूवुः । अतिगुण-
गणनारताः पितृवत्सला भवन्ति । तस्य राज्ञो गृहे एकदा नारदः समागतः ।

ताः कन्या नारदं दृष्ट्वा प्रणिपातपुरस्सराः ।

तद्रूपमद्भुतं दृष्टं जटामकुटमण्डितम् ॥

वस्त्रालंकरणैर्युक्तं वीणावादनतत्परम् ।

कृताञ्जलिपुटाः सर्वाः स्थितास्तं चोपतस्थिरे ॥

पप्रच्छुस्तं तथाभूतं विनयान्नयकोविदाः ।

भगवन् सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽऽसि ॥

भवादृशा महाभागा लोकानां च हिते रताः ।

शरणागतदीनानां कृपां कुर्वन्ति साधवः ॥

इति संप्रार्थितो नारदः प्रसन्नो बभूव । भोः पुत्र्यः को भवतीनां
मनोऽभिलाषः ? तत्सर्वं विस्तरशो ब्रूत । नारदेनैवं चोदिताः कन्याः पुनः
प्रोचुः । पितुर्गृहे भावापन्नैर्भक्तैः सङ्गीयमानोऽयं व्रजलोकः । त्वं विस्तरशो
ब्रूहि तम् । श्रुतमात्रोऽयं रसलीलां ददाति । तस्मात्तत्स्थानं रसिकानन्देन
श्रीराधिकया सह सेवितं वर्णय । नो मनोऽभिलाषो भवति । यदि कृपा
स्यात्तर्हि तल्लोकविस्तारं वद । पुनर्नारद उवाचेदं तासां मनोऽभिलाषं ज्ञात्वा ।
शृणुत सख्यो रहस्यम् । न कदाचिद्वचनीयम् । तत्स्थानं कोटिसूर्यप्रतीकाशं

तेजोमयं यत् निर्गुणं ब्रह्म पुराविदो वदन्ति । यस्मात्प्रजाः समुत्पन्नाः । ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो यस्मादुत्पद्यन्ते लीयन्ते । आत्मविदो ज्ञानिन उत्पद्यन्ते लीयन्ते रसमार्गिणो भक्ता यं स्थानं प्राप्नुवन्ति । कन्या ऊचुः । ये रसमार्गीयाः भक्तास्तेषां लक्षणानि वद । नारद उवाचेदम् । ये रसिकानन्दोपासकास्ते सर्वात्मभावेन भजनं कुर्वते । भजनानन्दोपासकानां न वर्णो नाश्रमो न देशो न कालोऽस्ति । यो धर्माधर्मौ परित्यज्य श्रीरसिकानन्दं सेवमानो भवति सः तां लीलां प्राप्नोति । येषां मनसि निश्चयस्तेषां प्रीतिरुत्पद्यते । य एवं रसमार्गे प्रपन्ना न तेषां धर्माधर्मौ बाधमानौ भवतः । विषयैर्बाध्यमानोऽपि न बाध्यते । येषामहोरात्रं सेवाकथायां नित्यमासक्तिस्तेषां भजनानन्दो भवति । ये तस्मिन् मार्गे प्रपन्ना भक्तास्तेषां देयं ततो ब्राह्मं यत्किञ्चिद्वस्तुमात्रम् । भक्तानां भक्तैस्सह कार्यं नान्यैः । भक्तानां भक्त एव ज्ञातिः । कुलवर्णधर्मादि सर्वं दैवतं यत्किञ्चिन्मात्रम् । रसगाः सेवकाः तेषां संबन्धो नान्यैः । अहो वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैः शास्त्रैर्नानावादैः नानाकर्मव्रतोपवासादिभिर्यमैर्नियमैश्च नानाऋषिकृतस्मृतिसिद्धान्तैरैकादश्युपवासादिव्रतनियमैस्तुलापुरुषदानादिभिर्नानादर्शनसिद्धान्तविचारैर्वर्णाश्रमोचितधर्मैः पितृश्राद्धादिभिः सूर्यचन्द्रोपरागकालोचितैर्ग्रहनक्षत्रताराज्योतिश्शास्त्रनिश्चयेन भ्रान्तचित्तैर्विधिनिषेधस्मृत्योक्तैर्धर्मैर्भ्रान्ताः सन्ध्योपासनकालसंस्कारैर्बलिवैश्वदेवबलिदानोपसर्पणैर्वेदमार्गादिभिर्नियमैरैतैश्चान्यैर्धर्मैर्विभ्रान्तास्तेषां रसिकानन्दः पुरुषोत्तमो न रमते । अहो सख्यः कर्मविभ्रान्तास्तां लीलां कदाचिन्न जानन्ति । साग्निका अग्निव्रतधारकाः कर्मजडास्तैः सह कदाचित्तद्धर्मालापनं न कुर्यात् । अतः किं बहुनोक्तेन । ब्राह्मणा ये भक्तिमार्गे न विदन्ति तेषां संभाषणं स्पर्शं न कुर्यात् । कदाचिन्नालपेत् । ता ऊचुः—

भगवन् सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽटसि ।

शरणागतदीनानां कृपां कुर्वन्ति साधवः ॥

अतः प्रार्थयामो महालीलाया दर्शनं यत्र रसिकानन्दपुरुषोत्तमो रमते । एवं प्रार्थितो भगवान् नारदस्तासामत्यानन्दमयलोकं दर्शयामास । महामन्त्रविद्यया कृतसंस्कारास्ताः सख्यस्तस्यां लीलायां भावापन्ना बभूवुः । ता ऊचुः । नारदेनोपदिष्टां विद्यां कथय यया विद्यया श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकया सह क्रीडास्थानं द्रक्ष्यामः । स होवाच । शृणुत सख्यः । यस्यां विद्यायां सद्यः समभ्यसनेन महावनविहारस्पर्शनं भवति । कृपासमभ्यसनात् रमणानन्दलोकस्पर्शनं भवेत् । क्लीं सकलकामदात्रीं भ्रूं भोगदात्रीं ह्रीं रसिकानन्दविलासदात्रीं ह्रीं रतिकेलिकलाकोविदां बां वृन्दावनशशिनीं स्त्रुं सुरतानन्दरूपां श्रीं मनोहारिणीं नृं निकुञ्जकेलिकौतुकाविष्टदेहां भ्रूं भोगात्मिकां स्त्रां सखीनां सुखदायिनीं ह्रीं रासकेलिकलात्मिकां ध्यायेत् । क्लीं नमः । इमां विद्यां भोगात्मिकां नारदेन दत्तां ताः कन्या जगृहुः । रसिकानन्दप्राप्त्यर्थं गृहीत्वा तां विद्यामभ्यसेत् । तासां पितुर्गृहे एकं वनं नानापुष्पवृक्षैः सुशोभाढ्यम् । तत्र पुष्पलतानां निकुञ्जाः सुशोभाढ्याः संराजमाना मनोहराः सन्ति । तत्र ताः कन्या इमां विद्यामभ्यस्तवत्यः वृन्दावनबुद्ध्या । अहोरात्रं तद्बुद्धयस्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदालिकाः तस्यां लीलायां मग्ना नान्यं देहविषयं विदुः । कचिद्रुदन्यस्तच्चिन्तया कचिन्नृत्यन्त्यः कचिदलौकिकाः कथा वदन्यः कचिद्भक्तैस्सह अनुशीलयन्त्यः कचित्तस्मिन् वने वृन्दावनशोभां विधाय तद्भक्तैः सह राधा-रसिकलीलयोरनुभवं कुर्वन्ति । एकदा तासामाश्विन्यां पौर्णमास्यां महालीलाया महोत्सवकाले निकुञ्जदेव्या दर्शनं प्रदत्तम् । अशरीरया वाण्या वरो दत्तः । भवतीनां मनोऽभिलाषो मया ज्ञातः । यदि मम लोकदर्शना-

काङ्क्षा स्यात् । वृन्दावने गोवर्धनाद्रिशिरसि पुष्करिणीं विधाय तत्र मम ध्यानापन्नैर्भूयताम् । ममानुग्रहेण मम लीलावलोको भविष्यतीति ता वरेण छन्दयित्वा अन्तर्दधे । ताः कन्यास्तत्र गत्वा तथाकुर्वन् । तस्मिन् गोवर्धने अप्सरःपुष्करिण्यां ताः सर्वाः पूर्वोक्तया विधया श्रीराधिकाया भजनं चक्रुः । इत्थं भजनमापन्नाः कन्या मासेनैकेन तं लोकमपश्यन् । वृन्दावनं श्रीमत् सर्वकालसुखावहम् । यत्र षडृतवः आधिदैविकेन रूपेण सेवमाना भवन्ति । यत्र रत्नजटिला भूमयो मणिज्योत्स्नाभिर्दीप्यमाना भवन्ति । यत्र फलैः पुष्पैः पत्रैर्मणीनां स्तंभाः शतशो राजमाना भवन्ति । यत्र मणीनां लता भ्राजमाना विद्रुमलताभिः ग्रथिता भवन्ति । सुवर्णलताग्रथिता मुक्तालता मुक्तागुच्छैः पूर्यमाणाः भवन्ति । यत्र सखीनां यूथानि परस्परं शृङ्गाररसेन क्रीडमानानि भवन्ति । यत्र फलैः पुष्पैः सुकोमलैः पत्रैर्विराजमाना वृक्षा लताभिः संकीर्णा भवन्ति । यत्र मध्यश्रेणीषु सखीनां चारा अतिसुशोभमाना भवन्ति । यत्र वकुलवृक्षाणां वनानि कुत्रचित्संराजमानानि भवन्ति । कुत्रचिन्मन्दारवृक्षाः संराजन्ते । अम्लानपुष्पैर्नारङ्गैः सुशोभाढ्या भवन्ति । कुत्रचित्पारिजातकवनानि सुगन्धसंवलितानि सन्ति । तत्र वनेषून्मदाः कोकिला गायमानाः भवन्ति । कुत्रचिन्मन्दारवृक्षाः पुष्पपरागैश्चिता वल्लैश्छादिता इवासन् । तासु वृक्षाणां श्रेणीषु ताः कन्या एकं महास्थानं ददृशुः । पञ्चविंशद्योजनायतं परितो वाप्यो दशदशचतुष्कोणेषु नानारसैः संपूर्यमाणा भवन्ति । दश वायवः केसरकर्पूरमृगमदरसैः संपूर्यमाणा भवन्ति । दश वायवोऽगुरुस-संपूर्यमाणा भवन्ति । दश वायवः सुगन्धपयसा संपूर्णा भवन्ति । दश वायव उष्णोदकेनातिनिर्मलेन सुगन्धेन संपूर्यमाणा भवन्ति । तत्र दश वायवो मृज्जलेन सुशीतलेन संपूर्यमाणा भवन्ति । तत्र मध्यमण्डले

पञ्चविंशद्योजनायते सुशोभादये मणिज्योत्स्नाभिः संवेष्टिते सखीनां यूथानि यत्र क्रीडां कुर्वन्ति तत्र परितो निकुञ्जानां श्रेणयः सूक्ष्मलतान्तरैः संवेष्टिता भवन्ति । तत्र मध्ये एकं रत्नासनं सुखसंपूरितं सुरतानन्दस्थानं भवति । यत्र प्रेमवती स्नेहवती गुणवती उत्कण्ठावती उत्साहवती भोगवती कलावती गानवती मनोरमा सुरतानन्दा सुखसंवलिता निद्रा-संवलिता निःशङ्का लज्जागतत्रपा सुभगा शृङ्गारवती संभोगवती भावशुद्धा एता अन्याश्च सख्यस्तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । निरन्तरं रासकेलिकौतुकेन नृत्यपरा सुगन्धकलावती संगीतज्ञा अङ्गसंवलिता रागज्ञा गुणज्ञा एताः अन्याश्च सिद्धान्तस्थानं सेवमाना भवन्ति । तत्र विहङ्गमानां पङ्क्तयो नानारूपैः कलशब्दैः सङ्गायन्त्यो भवन्ति । कचित् सखीमण्डले ताः रासक्रीडां कुर्वन्ति । कचित् कुञ्जान्तरे पुष्पपल्लवैः रचितशय्यायां क्रीडां कुर्वन्ति । कचिन्नानापुष्पैरङ्गप्रत्यङ्गेषु परस्परं शृङ्गारं कुर्वन्ति । कचित् पुष्पमालाभिरङ्गप्रत्यङ्गैः शृङ्गाररसं कुर्वति । कचित्कुञ्जान्तरे शृङ्गाररसं कृत्वा सुखं संसेवमाना भवन्ति । ताः कन्याः श्रीराधिकारसिकं दृष्ट्वा अत्यन्तमेव मुमुहुः स्तुतिं चक्रुः । अतितरां नम्राः कन्याः प्रश्रयावनताः नमश्चक्रुः विनयभावापन्ना बभूवुः । तथा श्रीराधिकया स्वस्वरूपं प्रदत्तम् । तासां महालीलायां योग्यता प्रदत्ता । अहो सत्सङ्गमाहात्म्यं केन वर्ण्यते । दर्शनात्स्पर्शनादालापाद्भोजनाच्छयनादासनाद्भोजनोच्छिष्टकृपाप्रसादात् रसिकानन्देन सहितायाः श्रीराधिकायाः कृपा भवति । अहो रसिकानन्दोपासकानां लक्षणानि वद येनाहं सतां सङ्गे विचरामि । अहो श्रुतमहालीलाः ! ये निरन्तरं सेवमाना भक्ता वेदमार्गकर्मातिरिक्ता भवन्ति ते रसिकानन्दमार्गमाचार्योक्तमधीत्य यो बृन्दावनोक्तमार्गः सखीभिरुपासितः तासां मार्गे प्रपन्ना भवन्ति । अहो नानास्मृत्युक्तान् धर्मान् ये कुर्वन्ति

त इह संसारे विचरन्ति । ये पितृन् यजन्ति ते पितृलोकं प्राप्नुवन्ति । देवान् ये यज्ञकर्मणा यजन्ति ते देवलोकं स्वकर्मोपाजितं यान्ति । ये ब्राह्मणाः ब्रह्मवर्चसमुपासमानास्ते ब्रह्मलोकं प्राप्नुवन्ति । गायत्रीं य उपासते ते सूर्य-मण्डले लयं यान्ति । येषां मध्ये शैवाः शिवोपासकास्तेषां प्रमादेनापि संभाषणं न कुर्यात् । ये कैवल्यधर्मरतास्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासाः जलमाविशेत् । अहो रुद्रोपासका ये तमोधर्मरतास्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेत् । यक्षोपासकाः सदा त्याज्याः । गणपतिदुर्गायाः भजनभेदा अनेकशः सन्ति । तान् ये भजन्ति तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेद्रसिकानन्दोपासकः । कर्मकाण्डोपासका रसिकानन्दमार्गं न जानन्ति । जैनबौद्धचार्वाकमीमांसकवेदान्तन्यायपातञ्जलमतान्तराणि तेषां सिद्धान्तं कुर्वन्ति । ये भ्रान्ता भजनमार्गमविदुषः पण्डितमानिनस्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च न कुर्यात् । विष्णुभजनरता नारायणोपासकाः श्रवणकीर्तनस्मरणवन्दनरता मत्स्यकच्छपवराहनृसिंहवामनपरशुरामरामोपासका वैष्णवास्तेऽपि तं लोकं न जानन्ति । तस्मात्तेषां सङ्गस्त्याज्यः । विष्णुभक्ताः ज्ञानवैराग्ययुक्ता अनन्याश्रययुक्तास्तेऽपि तं मार्गं न जानन्ति । सूक्ष्मतरमार्गो ब्रह्मादिभिर्नारदादिभिः रुद्रादिभिः सृष्टिकर्तृभिः प्रजापतिभिरप्यगम्यः । तस्मात्तया श्रीराधिकयानुगृहीतास्तं रसं जानन्ति नान्ये । यदा यस्य देवतान्तरभजनं भवति वैष्णवेषु विद्वेषो भवति तान् रसिकानन्दपुरुषोत्तमो न स्पृशेत् । अहो रसिकानन्दोपासकानां क्रियाः शृणुत । ये मनसि भजने सुनिश्चयास्तल्लीलोपासकाः सत्कथाक्षिप्तमानसाः तल्लीलोपासकानां सङ्गेन कथाकीर्तनासक्तास्ते तत्सेवातद्भावेन शोकमोहभयोद्वेगरहिता अमत्सरा अहंभावरहिता ज्ञानवैराग्यसहिता वृन्दावनलीलोपासका भवन्ति । रसलीलायां निमग्नानां तेषां तद्भजनमेव

साधनं तद्भजनमेव ज्ञानं तद्भक्ता एव ज्ञातिः तद्भक्ता एव कुलं एवं रसलीलापन्नो भवति । गृहादिधर्मान् त्यक्त्वा वर्णाश्रमधर्मान् त्यक्त्वा जातिकुलधर्मान् त्यक्त्वा मोक्षधर्मान् त्यक्त्वा सव्यासधर्मान् त्यक्त्वा देशकालकर्मस्वभावसंसिद्धान् धर्मान् त्यक्त्वा रसलीलामभ्यसेत् । रसलीलायाः सेवावधिं कथय येन विधिना महालीलायाः प्राप्तिर्भवति । तद्भक्तानां दर्शनं भवेत् । स होवाच । रसलीलाया भजनं त्रिविधात्मकम् । एकं ध्यानमयम् । प्रतिकुञ्जं प्रतिवृक्षं ध्यानापन्नो भवेत् । रात्रौ दिवा रसिकानन्दं श्रीराधिकया सह हृदि चिन्तयमानः सखीभावेन भावापन्नो भवेत् । तदनुभावेन पुलिङ्गं विधूय महालीलायां लयलीयमानो भवेत् । द्वितीयं भजनप्रकारं शृणुत । येन भजनेन रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह दृष्टिपथमापद्येत योऽश्ममयं वा धातुमयं वा रसिकानन्दस्वरूपं श्रीराधिकया युतं विधाय शय्याभोजनशृङ्गारै राजोपचारैः स्नेहभावेन भजनं करोति अहोरात्रं तद्भावेनापन्नो भजनं करोति स तां लीलां प्राप्नोति । ये रसिकानन्दोपासका भक्तास्तेषां सेवायां व्रतधारणम् । अहो भक्तानां सेवास्तु दुर्लभतराः । येषां हृदि निश्चय आपन्नस्तेषां श्रीरसिकानन्दः श्रीराधिकया सह प्रसन्नो भवति । भक्तानां सेवास्तु अत्यन्तदुर्लभा भवन्ति । ये निष्कर्ममार्गिणो भक्तिमार्गं केवलमापन्नास्ते सेव्याः पूज्या एव भवन्ति । ये अन्यधर्मं त्यक्त्वा रसिकानन्दसेवकास्ते भक्ता नान्ये । भक्ताः सुसेवमाना भवन्ति । तस्मात्सुसेवमाना भक्ताः कृपां कुर्वन्ति । साधूनां समचित्तानां कृपया महालीलाया दर्शनं भवति । तस्मात् रसिकानन्दं हृदि स्थाप्य साधूनां सङ्गेन वृन्दावनरहस्यमार्गानुसारेण सुसेवमानो भवति । अतिरसमग्ना भक्ता नान्यं विदन्ति । अहो पुनर्महालीलाया वर्णनं श्रुत्वा वयं न तृप्यामः । शृणुत पुत्राः । वनविहारलीला पूर्वं नारायणेन लक्ष्म्यग्रे

कथिता तदा श्रुतं तदहं वर्णयामि । अहो महालीलायाः स्थानं नारायणेनापि न दृष्टम् । यत्राष्टौ मणयः संराजमाना भवन्ति । चन्द्रकान्तमणिनामृतेन पुष्पपल्लविता वृक्षाः सेव्यमाना भवन्ति । लतानामालवालानि सौवर्णानि दीप्यमानानि जलैः पूर्यमाणानि भवन्ति । तत्र सूर्यकान्तमणिना प्रदीप्यमाना वृक्षलताः शोभायमाना भवन्ति । मणिलताभिर्भ्रथितानि मन्दिराणि तेजोमयानि संराजन्ते । प्रसारितलता वृक्षैर्भ्रथिता निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तेषु निकुञ्जेषु लतानां नानारङ्गाः संदीप्यन्ते । तत्र शृङ्गारवत्यादयः सख्यः शय्योपकरणानि रचयन्ति । सुशोभायमानाः पक्षिणः कलशब्देन श्रीराधिकायाः शृङ्गाररसं सङ्गायन्तो भवन्ति । पिकयूथानि मनोहरेण शब्देन देववाण्या तस्याः श्रीराधिकाया रमणलीलां गायन्ति । तत्र मध्येमण्डलं तेजोमयमस्ति । हाटकमयास्तेजोभूमयस्तेजोमयाः संविराजन्ते । यत्र भूमौ परितः अष्टौ मणयः सन्ति तेषां प्रसारिता लताः सुवर्णलताभिर्मुक्तालताभिर्भ्रथिताः पुष्पैः पल्लवैः संवल्लिता भवन्ति । प्रतिमण्येकैकं मन्दिरं सकलसिद्धवस्तुसमन्वितं भवति । रतिमन्दिरे शय्याः पयःफेननिभाः संराजन्ते । तत्रान्नानि विविधानि अन्यपूर्णया सख्या पाचितानि । प्रतिक्षणं नूतानि श्रीराधिकायै भोज्यार्थं भवन्ति । तत्र सुगन्धरसिकया सख्या रचिताः सुगन्धरसा अगुरुचन्दनकेसरीमृगमदकपूर्णाद्या अनेकसुगन्धरसाः श्रीराधिकया संभोज्या भवन्ति । तत्र शृङ्गारवत्या सख्या रचिताः शृङ्गारा वल्लालङ्कारसंयुक्ताः सुभगा नानावस्तुमयाः श्रीराधिकार्थं कल्पिताः सुभोज्या भवन्ति । रङ्गवत्या रचिता रतिरङ्गा वचनप्रतिवचनमया इन्द्रियादिभावमयाः श्रीराधिकाया भोगार्थं भवन्ति । गानवत्या रचिता नानारागरङ्गभोगाः समयोचिताः प्रतिक्षणं नूतनाः श्रीराधिकार्थं सुभोज्या भवन्ति । नृत्यकवत्या रचिताः सुगन्धकलाः श्रीराधिकार्थं कल्पिता भवन्ति । तत्र

स्थाने भोगवती नाम्ना सखी नानाभोगान् कल्पयति । कटुतिक्तमधुरकषायाः सुस्वादा भोगाः श्रीराधिकाया भोज्यापन्ना भवन्ति । रतिवती नाम्ना सखी नानारतिसुखमुत्पादयति । रतिकलाकौतुकानि मनोज्ञानि भवन्ति । सुरतानन्दा सखी नानासुरतकलां श्रीराधिकायै कल्पयति । मनोज्ञा सखी नानामनोभावं ददाति । सुखदा सखी नानासुखं रसिकानन्दं प्रति राधिकायै कल्पयति । ताः सर्वाः सख्यः सुखकेलिकलानुभावेन रासलीलां कुर्वन्ति । तस्मिन् मध्यमण्डले सुरचिता सखी कस्मिंश्चित्समये रासलीलां रचयति । तत्र मध्ये कामेन सेवितं तेजोमयमासनं कल्पयित्वा श्रीराधिकाया सह रसिकानन्दं समावेशयति । तत्र परित एताः सख्यः क्रीडाकलां दर्शयन्ति । कलावती गुणवती पुष्पवती अङ्गचपला सुरतकलाकोविदा रसकलाभिज्ञा रसभावज्ञा विपरीतसुरतनृत्यकलाकोविदा एताश्चान्याः सख्यः तस्मिन् मण्डले स्वान् स्वान् गुणान् प्रकटीकृत्य रसिकानन्दं सेवमानाः भवन्ति । साधनसिद्धाः संसिद्धाः सख्यः अनेकरूपैस्ताभ्यां सुसेव्यमानाः भवन्ति । यादृशा भक्तास्तादृशं सुखं तादृशौ लीलाभावश्च भवेत् । पुनस्ते ऊचुः । महास्थानं कियत्प्रमाणम् ? संसिद्धोऽयं रसः । संसिद्धः कीदृग्विधः ? ते संसिद्धा भक्ताः कीदृग्विधाः ? तेषां रूपं कीदृग्विधम् ? रसिकशिरोमणिरानन्दात्मकपुरुषोत्तमः श्रीराधामानन्दरमणानन्दरूपां तेन रूपेण सह बुभुजे । नित्यानन्दरूपेण सह पुरुषोत्तमो नित्यानन्दरूपः संक्रीडमानो भवति । सः एवं रूपं गोपिकास्वाविर्भावेन क्रीडयिष्यति । पृथग्रूपेण क्रीडमाना अभ्येति । तद्भावे क्रीडिष्यमाणा गोप्यः पृथक् संक्रीडमाना इव एकमेव स्थानमध्यासते । तेषां स्थानं कियत्प्रमाणम् ? कीदृग्विधा भक्ताः ? क्रीडमानं रूपं ताभिः संपीयमानसौष्ठवं किम् ? पुनरुवाचेदम् । रहस्यमतितरां सौष्ठवम् । षड्विधोऽयं रसः । तेषामेव रासलीलायामापद्यमानं

रूपम् । रहस्यस्थानं महालीलायां शतयोजनायतं पद्मरागजाम्बूनदसुवर्ण-
 खचितम् । नीलमणिना परिधयः शोभादद्या एवासन् । मध्येमध्ये पुष्पराग-
 मणीनां स्थानं संभ्राजते । तेषामतितरां मणिज्योत्स्नां राजमानामभ्येत्य
 तस्मात् परितः शतकुञ्जविद्रुमलताः सुवर्णसुगन्धलताग्रथिताः सुसुगन्धाढ्य-
 मातन्वन् । तेषामेव मणीनां शक्तयो विराजन्ते । पुष्पितवृक्षलता सुगन्धर-
 साभ्येति । तत्सुगन्धावेशिताः सख्यो भावापन्ना रमणरसरमणे रसरमणा-
 नन्दे रसे मग्ना भक्ताः प्रेमवत्यादयो लीलायां योग्यतामभियन्ति । रतिक्रीडा-
 यामानन्दरसः संभवति । ते सख्यस्तस्मादुत्पन्ना भवन्ति । शृङ्गाररसं दृष्टि-
 गोचरमुपसंपद्यन्ते । तस्मात् रमणानन्दादुत्पन्ना आत्मानन्दरूपिणः । यत्र
 यत्र तथा देव्या स्वावेशेन सुखं सुसंसिद्धोऽयं रसः । तासां गोपीनां
 गृहंगृहमापद्यमानः प्रतिरूपं सुखं संयोजयति । तासामेव रसावेशेन रासस्थानं
 शतयोजनायतं पद्मरागमणिजटिलनीलमणिना विराजितं जांबूनदमणिना
 सुवर्णेन जटितं शतशो मणिखचितम् । तस्मिंस्थाने मणिस्तंभाः शतशो
 विराजमानास्तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वावेशेन अनेकशो रूपाणि कृत्वा
 आत्मानं विभज्य स्वरसभोगसुखं संभुञ्जते । यथायथा रूपाणि तथातथा
 रसिकानन्दस्य रूपाणि सुखं संभोक्ष्यन्ते । तेषु तेषु रूपेषु क्रीडन्त्यस्ताः
 निकुञ्जदेव्याः स्वामिभावेन ब्रजलीलायाः सुखमापद्यन्ते । स एव रासः ।
 आनन्दाद्रमणानन्दोऽयं योज्यते । चन्द्रावलीचन्द्रभागासुश्रोणीसुभगाद्याः
 शतशो गोपभार्या वेदऋचः । वेदपुरुषा इमे गोपास्तासां गोपीनां
 स्वामिन्या आत्मस्वरूपेण स्वयमेव रमणानन्देनायोज्यन्त । अग्निना
 प्रज्वलिता रज्जुर्दृश्यमाना अग्निरेवाभाति । गोकुलोऽयमग्नेः संयोगादेवा-
 भाति । ता गोप्यस्तद्भावेन रसं अनुभवन्त्यस्तस्या निकुञ्जदेव्या भावमा-
 पन्ना आसन् । द्वयो रासयोरिदं भवति । तृतीये रासे तु गृहं गृहं प्रति

स्वयंस्वयमेव रसिकानन्दस्वरूपे क्रीडिता आसन् । स्वानन्दाविर्भावाय तासां योग्यतां निरूपयति । सुखमनुभवन्त्य आत्मभाव एवासन् । चतुर्थे तु गोरसविक्रीडा गोप्यश्चन्द्रावलीप्रभृतयोऽनेकशो दानलीलया निकुञ्जदेव्या स्वावेशेन सुखमनुभूय तद्वचनादभीष्टानि प्रतिपद्य योग्यानीन्द्रियाणि परस्परसुखं भुञ्जानास्तस्या निकुञ्जदेव्या रसिकशिरोमणिना सह सुखं स्वयमेव रूपेण अनुभवन्ति । पञ्चमी महालीला स्वयमेव वृषभानुगृहे प्रकटिता । तां तथा सह पुरुषोत्तमरसिकानन्दोऽयं स्वयमेव ब्रजलीलायां प्रकटितवान् । सः एव सुखं रमणानन्दरूपेण संभोक्ष्यमाणोऽभवत् । परस्परबाललीलासुखयुग्मरूपे एकमेव रूपं भवति । एवं तस्मिन् वृषभानुगृहे स्थानानि शतशः पञ्चरागकुब्धानि गृहाणि तप्तसुवर्णपरिधीनि विराजमानानि भवन्ति । ललिताविशाखाशृङ्गारवत्यादयः स्वयमेव प्रकटिताः सख्यः स्वयमेव स्वरसं प्राप्ताः रसमानन्दात्मकमनुभवन्ति । अन्याश्च शतशो गोपीभावं प्राप्तास्तां लीलां प्राप्ता भवन्ति । यं यं भावं संयोक्ष्यमाणा गोपी भवेत्तं भावं द्वारि प्राप्य रासलीलाकृते उज्जहार । अत्यन्तभावलीलायां संयोक्ष्यमाणा गोपी पुष्करिण्यां तासामङ्गरागेण गीपीचन्दनं तासामेवोच्छिष्टं बुभुजे । भक्तानां तदेव हितकारि भवेत् । तदङ्गरागोद्भूततदाविर्भावेन महालीलायोग्यतां प्रतिपेदिरे । पुनः संशयं पप्रच्छुः । अहो द्वारिकायां रासः कस्मिन् समये कृतः ? तत्र महालीलायाः स्थानं कुत्रास्ति ? यत्र रसिकानन्दः पुरुषोत्तमः क्रीडति । केऽत्र भक्ताः ? केषां सहायेन महालीलास्थानं प्रकटितम् ? शृणुत सख्यः । महानयं गोप्यो रसः । ये प्रत्ययापन्ना भक्तास्ते तं रसमनुभवन्ति ब्रजलीलयाम् । त्रिविधा गोप्यः सन्ति । एका वेदऋचः सन्ति । एके अग्निकुमाराः सन्ति । एके संसिद्धाः श्रीराधिकया सह प्रकटिता भवन्ति । अष्टौ यूथानि संसिद्धानां भवन्ति । तेषां द्वादश यूथानि ब्रह्मणः पुत्राः

अभिकुमाराः सन्ति । द्वादश यूथानि वेदस्त्रीणां सन्ति । ते साधनसिद्धाः
ये भक्ताः श्रीराधिकया सह रसिकानन्दोपासका भवन्ति । याः
संसिद्धास्तासां नित्यलीलायामनुभवः । ये अभिकुमारास्ते ब्रजलीलायां
श्रीराधिकया सह रसिकानन्दमुपासमानास्तां लीलां प्राप्ता भवन्ति ।
या वेदरूपिण्यस्तासां विरहभावेन महाननुग्रहः कृतः । प्रथमं महालीलायाः
प्राप्तिः पश्चाद्विरहः । ता विरहोत्कण्ठिता गोप्यो नान्यसुखं विदुः । तासामर्थे
पञ्चयोजनपर्यन्तं महालीलायाः स्थानं प्रकटीकृतम् । तासां मनोभावबुभुत्सया
एकं स्वगणं रहस्यलीलायोग्यं प्रेषयामास । द्वारिकालीलायां महालीला
प्रकटिता । स एव गणस्तास्तत्रैव नयति । रसिकानन्दस्तासां स्वली-
लामाविष्करोति । रुक्मिण्याद्याः पट्टराश्यस्तां लीलां श्रुत्वा उत्कण्ठिताः
बभूवुः । तामिः प्रार्थितो रसिकानन्दो महालीलां दर्शयामास । तदा
रसिकानन्देनोक्तास्ताः पट्टराश्यो भवन्त्यस्तलीलायोग्या न भवन्ति । इमाः
लीला लोके वेदमर्यादातिरिक्ताः । रसमार्गोपासका भक्ताः स्त्रियस्तां
लीलां जानन्ति । वयं राजपुत्र्यः कथं तस्यां लीलायां योग्या न भवेम ।
बहुशः प्रार्थितो रसिकानन्दस्तथेत्युक्त्वा पुनराह । अहो राजपुत्र्यो भवतीनां
यदि महालीलादर्शनाकाङ्क्षा भवति तर्हि अहं निशीथे आधिदैविकीं
रात्रिं प्रकटयिष्यामि । तत्राधिदैविकोऽयं चन्द्रस्तत्राधिदैविका भक्ताः
लीलोपयोग्या भवति । भवत्यस्तत्रैवायान्तु । इति कथितास्ताः सर्वाः
विस्मयापन्ना बभूवुः । अहो अत्यन्तमाश्चर्योऽयं विलासः । तत्रागता सुयोगा
सखी रासलीलायां योगं चकार । सखी तत्र रासलीलां रचयति ।
तत्र रसिकानन्दः पुरुषोत्तमोऽतिमनोहररूपेण तासां मनांसि जह्वे ।
ताः सर्वा गोप्यः श्रीराधिकायाः कृपावशेन रमयांचक्रुः । तत्र रसिकानन्देन
ब्रह्मरात्रिः प्रकटिता । तस्यां रात्रौ ताः सर्वा मनोरथशतै रमयांचक्रुः ।

कीडान्ते ब्रह्मरात्रिरपावृत्ता बभूव । द्वारिकायां स्थिता राजपुत्र्यः
 द्वारे स्थितान् गुरुनुग्रसेनवसुदेवाद्यान् ददृशुः । रसिकानन्देन मोहि-
 तास्तत्र स्थिता गुरवो ददृशुः । तासां ता रात्रयो रासलीलाया ध्यानेन
 व्यतीताः । ब्रह्मरात्रिरपावृत्तेति प्रातस्ताः सर्वास्तत्रैव समागताः ।
 तत्र तत्स्थानं ददृशुः । यत्र मणिलता मुक्तालताः सुवर्णलताः पुष्पैः पत्रैः
 फलैः संपूर्णा मणिस्तम्भैर्ग्रथिता निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । सिद्धयो मूर्तिमत्यः
 तत्रैव स्थिता ददृशिरे । कामदेवो रत्या सह तत्रैव ददृशे । तत्र स्थिताः
 गोप्यो रसिकानन्देन संयुक्तास्तासां राजपुत्रीणां लीलां दृष्ट्वा निर्गलित-
 माना बभूवुः । ताः प्रश्रयावनता रसिकानन्दं पप्रच्छुः । अहो
 रासलीलामस्माकं दर्शय । ताथिः प्रार्थितो रसिकानन्दः प्रोवाच ।
 समयोऽयं व्यतीतः । ब्रह्मरात्रिस्तु गता । मया भवतीनां पूर्वं कथितमस्ति ।
 भवत्यो रासलीलायां योग्या न भवन्ति । ये वेदोक्तकर्ममार्गरतास्ते
 कदाचिदिमां लीलां न जानन्ति । तस्मात् भवत्य इमा लीलायोग्या न
 भवन्ति । ब्रह्मलोके स्थिता रुद्रलोके स्थिता इन्द्रलोके स्थिता नागलोके
 स्थिताः स्त्रियस्ता अपीमां लीलां न जानन्ति । अन्ये मम भक्ताः
 बहवः सन्ति । तेऽपीमां लीलां न जानन्ति । तस्मात् भवत्यो
 निर्गलितमाना जाताः । तेन भावेनैतासां दर्शनं न प्राप्ताः । ताः
 राजपुत्र्यो रुक्मिण्याद्या रसिकानन्देनोक्ता दृष्ट्वा प्रसन्ना बभूवुः । तासां
 नामानि पप्रच्छुः । सुयोगजा सखी तासां गोपीनां नामानि कथयामास ।
 इयं चन्द्रावली नाम्ना तथा चन्द्रकला विख्याता । चन्द्रानना रोहिणी
 मनोरमा माधवी पुष्पगन्धा सुरतकलावती भोगवती हंसगमना गुणवती
 गानवती सुरतकलाकोविदा सुविहारवती नृत्यकलाभिज्ञा एताः सख्यः
 स्वयुथैस्तन्मण्डलं सेवमाना भवन्ति । ताः पट्टराज्यस्ताः संपूजयामासुः ।

नानासुगन्धाङ्गरागेण वस्त्रालङ्कारभूषणैस्तासां शृङ्गारमकुर्वन् । तासामुच्छिष्ट-
जलेन पङ्काङ्गरागेण गोपीपुष्करिणीति विख्याता बभूव । यस्यामुत्पन्ना
मृत्तिका अतिपवित्रा भवति । ता गोप्यस्तद्भावेन महालीलायां लयं
प्राप्ता बभूवुः । सा लक्ष्मीः प्रश्रयावनता नारायणं पप्रच्छ । तेऽमिकुमाराः
ऋषयः कुतः समुत्पन्नाः ? तैरिदं स्थानं कथं प्राप्तम् ? केन साधनेन
ते सिद्धा भवन्ति ? स होवाच । पूर्वं ब्रह्मा लोकपितामहः सनकादिना
पृष्टः । महालीलायाः स्थानं कथय । यत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह
नित्यं क्रीडति । तत्प्रश्नेनातुरो ब्रह्मा ध्यानापन्नो बभूव । स समाधौ
महालीलां ददर्श । तद्दर्शनेन विकलेन्द्रियो बभूव । तत इन्द्रियेभ्यो रेतः
आपद्यत । ततो रेतः अग्नौ न्यपतत् । गार्हपत्यकुण्डे निपतितं रेतः पुरुषायितं
बभूव । ततः समुत्पन्नाः पुरुषा अमिकुमरा भवन्ति । ततस्ते ऋषयो गोवर्धनाद्रौ
शिरसि तप आतन्वन् । तद्दिनमारभ्यैते तु ऋषयो व्रजं सेवमाना बभूवुः ।
एकदा ते ऋषयो गोवर्धनाद्रौ शिरस्येकां कन्यां ददृशुः । श्रीराधिकयानु-
गृहीतां सर्वाङ्गमनोहरां तत्रापसरःपुष्करिण्यां मज्जमानां तां दृष्ट्वा ते प्रश्रयेण
नम्रा बभूवुः । सा कन्या तान् प्रत्युवाच । भो ऋषयः कुतः समायाताः ?
किं कुरुत ? ऋषय ऊचुः । वयं ब्रह्मणः पुत्रा अस्मिन् वने निवसन्तो
महावनविहारलीलादर्शनकाङ्क्षिणो भवामः । पुनस्तेऽमिकुमारा ऋषयः
ऊचुः । भो भवती कुतः समायाता किं कार्यं कुरुते ? इदं रहस्यम् ।
यदि मनसि कृपाविष्टा तर्हि रहस्यं कथय । साधवो दीनवत्सला एवासते ।
तया देव्या अनुगृहीतानां तेषामतिकृपाशाली स्वभावोऽयमापद्यते । सा
पुनरुवाचेदं स्वयमेव करुणया । अहो अहमपि पूर्वं महारुद्रराज्ञः पुत्री
आसम् । तस्य गृहे निरन्तरमत इतः क्रीडमाना गीतगानैर्हरलीलां मनस्या-
सादितास्मि । तस्य गुरुविभाण्डकमुनिपुत्री रूपशालिनी नाम्ना सा

निरन्तरं तस्यां लीलायां सदा ध्यानानुभावना तथा देव्यानुगृहीता लीलोपयोग्यैति । तदा श्रावितानामधुनातर्नीं लीलां सोपरिष्ठामभ्येति । ते ऊचुः । को मन्त्रः ? क उपदेशः ? किं ध्यानं तस्याः ? उपदिश । यदि करुणावती वद । शृणुतेदं रहस्यम् । न कदाचिद्वचनीयोऽयं रसः सर्व एव । धर्माधर्मविरक्ता ये भक्तास्तेषामप्यवचनीयः । रसरहस्यविद्यामुपासमानः सद्योदर्शनमापद्यते । ॐ क्लीं क्लीं राधे संमोहिनि कामदात्रि कामकेलिकलारूपिणि नमो नमस्ते । इदं रहस्यं सर्वेषामपि दुर्लभतरम् । आनन्दरसिकशिरोमणिमोहनेन रूपेण सद्योलक्षं जपित्वा ध्यानापन्नो भवेत् । संशृणुयात्तां सा नवकिशोरी तप्तहाटकामरणा केशच्छटाचिक्रणसुगन्धरसप्लावितसीमन्तसिन्दूरसेचितमणिघटितसुवर्णभूषणैर्भूषिता रत्नकर्णभूषणज्वलितकुण्डलाभ्यामन्यैः शुद्धाद्यैर्भूषणैः संयोजिता केसरमृगमदकर्पूरचन्दननानारेखासंयोजितललाटा मणिहीरकजात्यतिलकयोजिता संशोभते । कामकार्मुकभ्रूलतासंमोहितरसिकानन्दा तद्भाणमूर्च्छितेयं सदा तदावेशयोग्यतां प्रपद्य ध्यायमाना भवति । तां प्रपद्य स विश्वजयी भवेत् । नेत्रकृपाकटाक्षैर्मक्तानामभयदायिनी भवति । खञ्जनमीनचाञ्चल्यवशीकृतो रसिकानन्दो भवेत् । नासाचञ्चुरतितरां तेजसा राजते । कपोलौ सुवर्णसंपुटौ तेजोमयौ भातः । शोभते नासा आभरणरचिता । मणिमयमुक्ताफलैर्गुम्भितो भवति विम्बाधरो विद्रुमकान्तिः । द्विजाली ताराकारा भवति । सा तेजसा भातितराम् । ज्योत्स्नाराजमानाननोत्कण्ठग्रीवा राजन्तेऽतितरां कपोलकण्ठादयः । तिरस्कुर्वन्ति तस्या बाहुशोभां केयूरकटकानि मरकतगुम्भितानि बलयानि शतशः तेजोमयानि । अतितरां लघु ताराकान्ति तिलकं शोभामत्येति । राजमानौ हस्तौ करतलाभ्यां यावकरसविभाविताङ्गुलीभ्यां सूक्ष्मतरमणिघटिकाभ्यां भवेताम् । सुवर्णभूषणानि संराजमानानि सुरोचन्ते । तस्या वक्षोजावति-

मृगमदागुरुरचितावेव पुरुषोत्तमरसिकानन्दरमणाधिष्ठानं संराजमानावेव भवतः । मुक्तागुम्भितहारवल्लीद्वयौ च गिरी इव संराजमानौ भवतः । गम्भीरनाभिहृदसन्निधाने नवरोमराजीया शोभा हाटकोपघटितनीलमणि-राजिरिव राजते । कटिमेखला क्षुद्रघण्टिकाराजमाना मणिघटितहाटकखचि-तताराजालशोभामभ्येति । संराजमानजघनस्थलवासिमोहनगृहं सौभाग्याढ्यं शंबरवैरिणोऽधिष्ठानं रसिकानन्दैककलसुरतममलाम्बरैः परिवेष्टितं सुवर्णतार गुम्भितं शोभायमानं राजते । कदलीकाण्डरुचिरावूरू शोभामभीतः । चरणकमलमञ्जरीशोभा राजमाना यावकरङ्गरञ्जितेव शोभामभ्येति । नख-चन्द्रतेजसा राजमानोऽयं लोको विराजमभ्येति । अतः परं शृणुत सखायः । रसिकानन्दस्य रूपं सदा निकुञ्जदेव्या ध्येयम् । आनन्दमात्रोऽयं करपादे तेजोमयोऽमृतमयः । श्यामहिरण्यपरिमध्यवनमालया युतो बर्हापीडो नटनाश्वयुक्तो मञ्जो रोचमानो राजमानः शोभायमानः शोभया संराजते अतितराम् । एक एव पुरुषोऽयं स्त्रीषु रमणानन्दीयति । रसः संराजमानत्व-मभ्येति । संशोभायमानो भवेत् । एक एव रसो द्विधा भिन्नोऽयं श्रीराधा-कृष्णरूपाभ्याम् । नित्यानन्दाय नमो नमः । तस्मात् रससंयोगे भक्ता-स्तस्मिन् रसे संप्रीयमाणमनसः सखिस्थाने शोभायमानमभ्येत्य संगच्छन्ते । कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्रप्रभं संराजमानं तेजोमयं ब्रह्मेति पुराविदो वदन्ति । यस्मात् सृष्टिरुत्पद्यमानाभ्येति । संरोचमानाद्यस्मात् समुत्पन्नसृष्टयो ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो यस्य प्रतापशक्त्योत्पन्ना नानासृष्टिं कुर्वन्ति । यस्य प्रतापशक्त्योत्पत्तिस्थितिलयानातन्वन्ति । यस्मात् प्रेमानन्दान्नित्यानन्दोऽयं लोकः प्रकटितो भवति । प्रेमानन्द एव सृष्टिस्त्वाधिदैविकी । तस्मात् प्रेमानन्दरक्तपुरुषोत्तमाधिष्ठानसौष्ठवं यत्र कोटिशो निकुञ्जनानालताग्रन्थिस्तासु गन्धवृक्षादिः राजमानत्वमभ्येति । यत्र निकुञ्जश्रेणिषु सखीनां यूथान्यतितरां

क्रीडाशृङ्गारयोग्यान्युपकरणानि राजमानान्यभ्येत्य शोभायमानानि राजन्ते । स्थाने स्थाने पृथक् प्रक्रियमाणानि शृङ्गारस्थानानि । हाटकमणिमय्यो भूमयः । नानारङ्गमयफलपुष्पवृक्षादिराजमानामभियन्ति षडृतवः । यत्राधि-
 दैविकरूपेण विराजमाना नानातन्वन् । तेषामेव यादृशा भक्तास्तादृशलीला-
 दृष्टिमामद्यमानं शृणुत । सखिप्रेम्णाऽयं लोकः सृष्टोऽस्माभिः पितृगृहं
 त्यक्त्वा अस्मिन् वने पर्वते नानारमणस्थानमस्माकमनुभवं प्रतिपद्य रचितं
 आधिदैविकं स्थानं वृन्दावनं अतिपुष्टपुष्करिणि यत्र निकुञ्जदेव्या सह
 पुरुषोत्तमो रमणानन्दो नित्यक्रीडामातनोत् । संकेतस्थानं रमणानन्दयुतो
 रसिकानन्दः क्रीडते । रमणानन्दः स्वरूपस्वामिन्यावेशः । रसिकानन्दस्तु
 पुरुषावेशः । इमां लीलाविद्यामधीयते ये तेऽनेन व्रजसङ्गिनः सङ्गेन सङ्गच्छ-
 न्ते । तस्मात् तस्या लीलायाः कथा मद्भक्तैः सह भक्त्या लीलाकथायां मग्नाः
 रात्रौ यत्र यत्र पुरुषासक्ता आत्मानन्दं तद्रूपिणं कुर्वाणा भवेयुः । रुचिरां
 लीलां योज्यमानां तां प्रतिपद्यमाना हि तया स्तुत्या ध्यानेन तल्लीलानुभवेन
 तन्मन्त्रोपासनेन तां लीलां पश्यन्तस्त ऋषयस्तद्भावेन गोवर्धनाद्रिशिरसि
 अटन्तः आत्मानं तद्भावेन भावयन्तोऽभवन् । रतिसमावेनानन्द-
 योग्यतां वृक्षलतौषधयोऽनेकशोऽतितरामापद्यन्त । श्रीराधापुष्करिण्यां तं
 मन्त्रं जेषुः । तद्वचनं चक्रुः । तद्रूपे गुणात्मके एकरसे प्रत्यपद्यन्त ।
 अतितरां गाढप्रेमरूपमापद्यन्त । अतीन्द्रियज्ञानेन संयोक्ष्यमाणा
 आपद्यन्त । रतिप्रसङ्गेन तया निकुञ्जदेव्या स्वलोकदर्शनमनुभाविता
 अभूवन् । सा अत्यन्तगाढप्रेम्णा तल्लोकसेवनात् स्वोच्छिष्टं भुञ्जानान्-
 तान् प्रति तद्भावाभवत् । वृन्दावनेरहस्यक्रीडायां महारासस्थलं दर्शया-
 मास । तद्दर्शनेन योग्यतां प्राप्ता अत्यन्तस्तवनं चक्रुः । ते अग्नि-
 नमः । नम आनन्दरसदायिने । प्रेमानन्दाय रतिदायकसुरतानन्दाय

कुमारा ऊचुः । श्रीरसिकानन्दाय नमः । नमस्तुभ्यम् । रसिकानन्दाय नमो नमः ।

अव्याकृतविहारिण्यै सर्वव्याकृतिहेतवे ।

नमः कल्याणनिधये नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥

नमोऽनन्तभोगवर्धिन्यै भोगात्मिकायै भोगसाक्षिण्यै । नमः शृङ्गार-
रूपाय । नमो भोगरूपाभ्याम् ।

शरदि क्रीडते तुभ्यं नम आनन्दशालिने ।

नमोऽनन्तविहाराय नमस्ते रसरूपिणे ॥

नमो रससाक्षिणे । नमो गूढकेलिकलाय । नमो दानशीलाय ।
नमो वृन्दारण्यविहारिणे । तदनुरूपेण तदा साक्षिणे नमोऽणुरूपाय । नमो
धर्माय । नमः सर्वधर्मातिरिक्ताय । नमः कामदेवकुञ्जराय नमो नमः ।
सङ्केतविहारिणे नमः । दानलीलासुखदायिने नमः । भोगसुखरूपाय
नमः । अत्यन्तसुखदेहिने नमः । सर्वधर्मातिरिक्ताय नमः । अनन्त-
सुखसंभवाय नमः । श्रीराधिकावल्लभाय नमः । श्रीराधाधरसुधा-
शालिने नमः । क्लीं कामवने कुञ्जकेलिरसिकाभ्यां नमः । व्रां
व्रीं वृन्दावने रहसि संवलितनित्यानन्दरूपाभ्यां नमः । नमः ह्रीं
सृष्टिसमुत्पन्नाभ्याम् । नमः ह्रां सर्वचैतन्यभोगश्रावकाभ्याम् । युवाभ्यां
नमो रमणसुखवल्लभाभ्याम् । ॐ श्रीवृन्दावनसदामोददायिभ्यां नमः । ॐ
नमो वृन्दावने सखीसमूहे परस्परक्रीडासंवलितदेहाभ्याम् । ॐ नमः
परस्परशृङ्गारसुखभोगवद्भ्याम् । ॐ नम आद्यनादिसंभोगसुखभोक्तृ-
भोगाभ्याम् । ॐ नमो वृषभानुनन्दगृहे क्रीडार्थं संप्रकटितदेहसंभवाभ्याम् ।
ॐ नमो ललितादिसंस्तुत्यदेहाभ्याम् । ॐ नमो यमुनाकेलिरसिकाभ्याम् ।
ॐ नमो जलकेलिरसिकाभ्याम् । ॐ नमो नौकारसकलोलभ्याम् ।

ॐ नमो ग्रीष्मर्तुसेवितरूपाभ्याम् । ॐ नमो वसन्तर्तुसेवितरूपाभ्याम् ।
 ॐ नमः शरदि रासक्रीडाकुतूहलेनानन्दविहारसर्वप्रदायिभ्याम् । यत्
 यौवनेऽद्भुतं रूपं कामकलाचातुर्याभिसंमितं तेभ्य एव नमो नमः ।
 अत्रातिस्नेहसंकुलितमनोसद्म येषां तेभ्य एव नमो नमः । सर्वकारणरूपाभ्यां
 नमो नमः । सर्वरूपाविर्भावाभ्यां नमो नमः । भक्तवात्सल्याविर्भावाभ्यां
 नमो नमः । अत्यन्तनिगूढभावसंमोहिताभ्यां नमो नमः । प्रत्ययरस-
 वीरुत्सुखदातृगुणगणयोग्याभ्यां नमो नमः । अनन्यभावरूपशोभासञ्चरित-
 स्वारस्यसंवलितगुणगणनाभ्यां नमो नमः । रूपशोभासञ्चरितरसरसवादिगुण-
 गणनाभावाभावसंवाहिभ्यां नमो नमः । यद्रूपदत्तपृथिव्यां तदेकरूपाभ्यां
 नमो नमः । एवं स्तुत्या स्तावितौ सद्योदर्शनमभवताम् । तद्दर्शनप्राप्त्या
 कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्राद्वादं तस्या निकुञ्जदेव्याः कटाक्षमन्वभवन् ।
 तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वस्वरूपेणाहो प्रार्थयत वरमित्युक्त्वा मनोऽभिलषितं
 उपाच्छन्दन्त । ब्रजगोपकन्या भविष्यामः । तथा ममावेशेन रसिकानन्दे
 सुरतानन्दा भवन्तु । तेऽग्निपुत्रा ब्रजे सत्स्वरूपतां प्राप्ता महालीलायाम् ।
 नित्यानन्दरूपमेव यन्ति ते येषां स्थानं शतशो निकुञ्जरासस्थलानि ।
 निकुञ्जदेव्या श्रीराधिकायामानं शतसहस्रधा कृत्वा तस्मिन् रसिकानन्दे तया
 देव्यात्मानं रसयाञ्चक्रुस्त ऋषयः । तदभावोऽनल्पं विपर्ययमातनोत् । तस्यां
 लीलायां भावापन्ना भावा अभवन् । शृणु महालक्ष्मी लीलायां येऽप्यरण्य-
 धर्मिणो ये ज्ञानवैराग्यरहितास्ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति । तस्माद्धर्माधर्मौ
 परित्यज्य पापपुण्यं परित्यज्य ये रसिकानन्दीमाज्ञां प्राप्तास्ते तां प्राप्नुवन्ति ।
 इदं रहस्यं न कदाचिद्वाच्यम् । सा लक्ष्मीः पुनरुवाच । ये योग्येषु
 सदा सहकारिणोऽभवन् नित्यलीलयानुभवलीलामापद्यन्त तैः किं
 साधनं कृतम् ? केन साधनेन सिद्धा आसत ? अत्यन्तरसलीलामग्नाः

रसिकानन्दे तथा देव्या श्रीराधिकया दर्शनसुखं प्राप्तवन्तः । किं प्राप्तं येन आनन्दे अभवन् । स होवाचेदं रहस्यं प्रश्नम् । सखायः समुत्पद्य नित्यं ब्रजलीलायां सहकारिणोऽयुज्यन्त । यथापूर्वं गोपानां द्विधा भेदा अभवन् । ये गोपाः सदा वनलीलायां सहकारिण आसत् ते सदा सुश्लोकदेवप्रस्थवरूथपकृष्णवलरामदेवहारकुमुदरोचिष्मद्रमणाद्या विराजमाना अभियन्ति । तेषां स्वलीलार्थं स्वर्गानन्दात् ते गोपाः प्रकटिताः । तेषां प्रेमानन्दं दत्तवान् । ते प्रेम्णा भजनेन रमणानन्ददर्शनयोग्या अभवन् । येषां प्रेमानन्दसंपत्तिस्ते रमणानन्ददर्शनयोग्या एव भवन्ति । रमणसंपदि योग्या दर्शनस्पर्शालापसुखलीलारतिरास्तां तेषाम् । रमणानन्ददर्शनयोग्यतामातन्वन्नन्येषाम् । एकरतिरास्ताम् । रमणसेवायां संस्थापकशय्योपकरणगुणरूपगानरतिध्यानकीर्तनलीलास्मरणतद्भावापत्तिरूपसेवा यथाकालोपपन्नसेवैवास्ताम् । रतिसेवायां रतिसेवाकथायां मनोऽयुज्यत । अहो लक्ष्मि मम रूपाप्यनेकशो ममावतारा अनेकशः । अंशकला आवेशाः पूर्णांशास्तेऽपीमां लीलां न जानन्ति । अन्यास्तवांशकला उत्पन्नास्ताः अपि लीलां न जानन्ति । अन्ये ये शतशः सहस्रशस्तेऽपि तस्या लीलायाः अनन्तरा आपद्यन्ते । तस्मात्तत्तल्लीलोपयोगिलीलाप्राप्तिरेवास्ताम् । न धर्मो न कर्म न ज्ञानम् । न कर्म केवलम् । एक एव तल्लीलापाठः । एकैव लीलोपसेवा । किशोरनवनूत्ननवीयस्सदाविहारानन्दकलानिधेः रसिकानन्दशिरोमणेः श्रीराधाश्रियोऽतिमोहनस्योपासका भक्तास्तेषामुपासनम् । तल्लीलायोग्यतया धर्मोपासका वैष्णवा वैकुण्ठलीलामनाश्रिताः सनकादयो नारदादयोऽपि । जयन्तकुमुदजयविजया अन्ये च ये तेषां मम रूपाणि रासलीलायोग्या ये ममाविर्भावास्तेषां दर्शनं न भवत्येव । अन्ये कर्मोपासकास्तां लीलां स्वप्नेऽपि न ददृशुः । अहो अनन्यभक्तिपरा काष्ठा । अहो मद्भक्तानां सङ्ग

एव परा काष्ठा । तल्लीलाकथा परा काष्ठा । तस्यां लीलायां प्रत्ययः परा काष्ठा । अन्यकथाधर्मदानव्रततीर्थसाधनानि विमुक्तानि । यमनियमप्राणायाम-प्रत्याहारकलासुखभाविता सामान्यभक्तिरपि त्यक्ता । तल्लीलोपासकानां एकैव ब्रजलीलातायत । रतौ रमणानन्दे रतिरासां भवति । अवस्थितोऽयं रसः । शुष्कवादिनामन्यां लीलां न शृणुयात् । कर्मवेदजनितानि कर्मोपासनानि ये कुर्वन्ति ते कर्मजडा आसुरास्तेषां हठात्सङ्गस्त्यज्यते । चित्तवृत्तिं दूषयति । येषां सङ्गं नालपेन्न शृणुयात् ते धर्मविरोधिनस्तां लीलां न जानन्ति । तस्मात्तद्धर्मदृढकारिणो ये ते सेव्याः पूज्याः । ते तां लीलां ददति । अनन्यधर्मान् शृणुयादिति रसमार्गिणां धर्मः । अरसिका जीवाः कर्मजडा ये तेषां स्वेष्टं न दर्शयेत् । स्वेष्टस्य वार्तामपि न श्रावयेत् । सखायो येषां विद्याविर्भावस्तेषाम् । अन्य-विद्यारुचिर्न भवत्येव । यदनन्यधर्मे रुचिरास्तेऽरुचिरन्यत्र भवेत् । तस्य स्वेष्टे आविर्भवति रतिः । सोऽन्यदिष्टं विस्मरति । गुरुकृपया जीवत्वं प्रपन्नानामनुग्रहत अनुग्राह्यानुग्राहकभावेन रतिराविर्भवति । अतिरतेः स्नेहं विना न प्राप्तिः स्यात् । नारायणं प्रति लक्ष्म्या आविर्भूतया तथा निकुञ्जदेव्या यानि सुखान्यनुभूयन्ते तेषां प्रश्नं पुनरभिवदति । ये साधनसिद्धास्तेषां कुतः स्थितिः । कया सरण्या तल्लोकप्राप्तिः स्वरतिरास्ते । कया रसिकानन्देन तस्या निकुञ्जदेव्याः प्राप्तिर्भवेत् । ये गवां गणास्तेऽतितरां तस्या देव्याः दृष्टिगोचरा एवासताम् । पुरुषो रसिकानन्दः स्वहस्तेन तेषां यथासुखं परिमार्जयन् दधिदुग्धनवनीताद्यान् रसान् स्वयमेव भुङ्क्ते । ये वत्सतरास्तेषां स्वहस्तेन पृष्ठभागान् परिमार्जयति । तेषां स्थानं कियत्प्रमाणम् । नन्दादयो गोपा वृषभान्वादयश्च ते गोपाः साधनसिद्धा वा संसिद्धा वा । यशोदाद्याः स्त्रियो मातृभावं प्राप्तास्ता अनादिसंसिद्धा वा साधनसंसिद्धा वा । यासां

गृहे रसिकानन्दोऽयं पूर्वं तथा श्रीराधया स्वयमेव संसिद्धासु भावप्रकटितः
 एव भवति । अत्यन्तस्नेहावभवताम् । अत्यन्त उत्सवो रमण एव भवति
 भजनप्रेमानन्दसुखप्राप्तौ । अतितरां रूपासक्तिर्न कथं भवेत् । सुखरूप-
 रतिर्येषामन्यत्किं स्मर्यते । स होवाच पूर्वं सृष्ट्युत्पन्ना अष्टौ वसवः । तेषां
 वसुनाम्ना अष्टौ कोटयो वसवो देवप्रवरा मम लीलालोकं श्रुत्वा तल्लोके श्रुते
 उत्कण्ठमाना लीलयापेदुरिति श्रुतम् । इमं महिमानमभ्येत्य वनलीलासक्ताः
 अतितरामासताम् । अतिलोलुपे चित्ते तस्यां व्रजलीलायां राधा आस्त ।
 संसिद्धनिकुञ्जलीलायां मयोपविष्टा मौनेनापन्नभावा अभवन् । ओङ्कारा-
 विर्भावलीलारूपश्रीराधारसिकानन्दरूपं प्रतिपद्य मनो भावापन्नं कृत्वा तां
 लीलां गायमाना अभवन् । ते वसव ऊचुः । ॐ श्रीराधारसिका-
 नन्दविनोदाभ्यां संयुक्ताभ्यां नमो नमः । नित्यक्रीडात्मने नमो नमः ।
 कामकेलिकौतुकात्मने नमो नमः । केलिकौतुकात्मने नमो नमः ।
 शृङ्गाररसविनोदिने नमो नमः । धात्रे क्रीडासंपादिने नमो नमः ।
 अनन्तरससंपादकारिणे नमो नमः । सीमन्तिने नमो नमः । रतौ
 संभोगिने नमो नमः । नानासुरतानन्दनिधये नमो नमः । रसिकानन्दशि-
 रोमणये नमो नमः । रासमानजलक्रीडात्मने नमो नमः । क्रीडाविनो-
 दिने नमो नमः । रतिसंभावितसुखसंवलितात्मने नमो नमः । सुरतो-
 त्कण्ठिने नमो नमः । यौवनात्मने नमो नमः । रससंभोगात्मने नमो नमः ।
 अत्यन्तक्रीडाश्रान्तिसंवलितवदनाय नमो नमः । प्रथमसङ्गरञ्जितात्मने नमो
 नमः । संभोगचटुचाटुवचनाय नमो नमः । मृदुकपोलवाण्यात्मने नमो नमः ।
 निकुञ्जे पुष्पशय्याशृङ्गारवत्सखीसुखदात्रे नमो नमः । आलिङ्गनचुम्बनसुरत-
 सुखसंवलितवदनाय नमो नमः । सुरतानन्दसमग्रवशीकृतरसिकानन्दाय
 नमो नमः । आसनभेदसंयोगसुखदात्रे नमो नमः । विपरीतसुखदाय

उदारचेतसे संभावितजितरसिकशिरोमणये नमो नमः । सुरतानन्दवशी-
कृतस्वाधीनपतिकाशृङ्गारात्मसुखदायिने नमो नमः । ललितायां विशाखायां
कलावत्यां शृङ्गारवत्यां योजितात्मने नमो नमः । भोगद्रष्टे भोगसंभवाय
नमो नमः । निद्रासंभावितविप्रलम्भसुखसमनुभवतिरस्कृतरसिकानन्दात्मने नमो
नमः । अत्यन्तप्रवीणरससुखरसिकशिरोमणिभोगभावुकात्मने नमो नमः ।
सर्वक्रीडारसपूरिणे नमो नमः । पृथिव्यां यत्र सुरतानन्दभोगास्तद्भोगाविर्भा-
वान्तर्यामिणे नमो नमः । पृथिव्यां यदानन्दरूपं तत्तदानन्ददायिने नमो
नमः । पृथिव्यामतिकाममनोरथं सिद्धं वासिद्धं सुन्दरं सुभगं तेषामेव नमो
नमः । एवं स्तुतस्तदा वसुभिः स्वानन्दाविर्भावं ददावतिप्रीतो रुद्रोऽयम् ।
वसूनां प्रवरोऽयं नन्दोऽभवत् । धरानाम्नी स्त्री यशोदास्त । बृहद्रसुश्रेष्ठः
कीर्तिदेव्या सह वृषभानुरभवत् । निकुञ्जदेव्या रसिकानन्देन सह यत्रा-
नन्दोऽभवत् । नन्दोपनन्दभद्राश्वकृतवदुग्रभङ्गोदधिसामन्तातिरोचिष्मत्कात्ये-
यमत्यनघरोचिष्मदुष्णीपरश्मिवसुसुजया अन्ये च शतशो वसवः साधनसिद्धाः
एवासत । तेषां स्त्रीषु श्रीयशोदा सा च सत्या आस्त । रसिकानन्दशिरोम-
णिर्बृन्दावनेश्वर्या सह संक्रीडमानोऽभवत् । अतिरूपलावण्यलवकसूक्ष्मस्व-
रूपेणैवं भजमानाय नन्दरूपं दत्तवान् । ते गोपा गोप्यः । ते परस्परमेक-
प्राणा एवासत । ते गोपा एकप्राणा एकरूपिण एकभावा अभवन् ।
येषां पुरुषोत्तम आनन्दः । अन्याश्च गोप्यो नानाभजनभावमाविष्कृत्य
भजनानन्दे भजनं कुर्वन्ति । अतितरां स्नेहोऽभवत् । सा लक्ष्मीनारायण-
मुवाचेदम् । अत्यानन्दोऽयं लोकः । यस्मिन् लोके केवलरसनिधिर्मोहनेन
रूपेण क्रीडामकरोत् । सा बृन्दावनेश्वरी कोट्यानन्दरूपा यत्र बालकेलिक्रीडां
व्यदधात् । तेषां स्थानानि कीदृग्विधानि । गृहाणि कीदृग्विधानि ।
वद सर्वमानन्दाविर्भावेन । भजनानन्दः सुखं श्रीराधारसिकमोहनमेवं

क्रीडामातनोत् । स होवाच लक्ष्मीम् । नन्दस्य गृहं सर्वसमृद्ध्या-
नन्दावधि मणिमयमाधिदैविकेन रूपेण स्वप्रकाशमकरोत् । पञ्चराग-
मयः कुड्यः । सुवर्णजाम्बूनदप्राकारा वीथयो विराजमाना भवन्ति ।
यत्र वृषभानुगृहं नन्दगृहाद्योजनायितम् । तस्मात् स्थानात् द्वादश
श्रेणयोऽतितरां लघुकोमलमणय एवासन् । तासु श्रेणिष्वनेकशो
लताप्रतानिन्य एवासन् । सुवर्णयूथिकाप्रवालैर्मणीनारङ्गप्ररोहैरानन्द-
क्रीडास्थानमनुरचितं भवति । तत्रेदं संकेतस्थानम् । अहो लक्ष्मि
किं वर्ण्यते चतुर्योजनायितम् । नन्दवृषभानोर्गृहात् द्वादश श्रेणयो
विराजमानाः सङ्केतस्थलादुपरितः । तेषु स्थानेषु मध्यस्थिता अनेकशो
विविधलताप्रावारा अभियन्ति । मुक्तालताग्रथिता मणीनां तेजसा प्रद्योतिता
अभ्येत्यतितराम् । सहस्रनिकुञ्जा कदम्बलता सुगन्धसंवलितातितरां
विस्तीर्णाभ्येति सुभगा कदम्बमञ्जरी । हरितपीतनीलश्वेतशुभ्राः कदम्बाश्च
परागोद्धूतपरिधयः सुवासिता आसन् । तद्गन्धलोलुपभ्रमराः संसिद्धाः
साधनसिद्धा अनेकशः कोमलकलं यशो गायमानाः सन्ति । कोकिलपिकशुकाः
संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेककोमलकलं गायमानाः सन्ति । रूपलावण्ययुताः
हंसमयूरादयोऽनेकशो रुचिरा भवन्ति । ते तस्मिन् स्थाने रसिकानन्देऽति-
मोहनरूपे नित्यं संक्रीडमाना भवन्ति । वृन्दावनेश्वरीनित्यक्रीडाप्रधानं भवति
राससखीनां समूहेन दशसहस्राणां समेतानां वृषभानोर्गृहम् । वृषभानुपुरं
पूर्णानन्दयुतं प्रेमानन्दयुतं सुखसन्ततियुतम् । सर्वाः समृद्धयो द्वारे तिष्ठन्ति ।
अष्टमहासिद्धयो द्वारे द्वारे तिष्ठन्ति । अतितरां सुखसंपत्तिः स्वरूपेण
सुसेवते । ये ये विद्यासधर्माणः सुभगाः सुरतकलाकामनिद्रालज्जाप्रेमसुरतो-
त्कण्ठादयस्ते विराजमाना भवन्ति । अधितत्स्थानं निकुञ्जे मध्ये सुगन्ध-
शीतला मणयो ग्रीष्मादिषु ऋतुषु सेव्यरूपाः क्वचित् सुगन्धपारिजाताः

केचिद्वृक्षाश्चम्पकाः सदापुष्पिताः सदा सुकोमलैः पत्रैर्विराजन्ते सुगन्धाः ।
 केचिद्वृक्षाः पक्कफलसुगन्धरसयुक्ता विराजमाना आसते । केचिल्लताप्रकीर्णाः
 अतितरां सुगन्धयुताः । आमोदगन्धलुब्धा भ्रमरा मुदा गायन्ति ।
 काश्चिद्गोप्यस्तत्र मज्जन्त्य आसते । काश्चिद्गोप्यस्तस्यां वस्त्रालंकरणै-
 र्भूषयांचक्रुः । काश्चिद्गोप्यः प्रेमासक्ता राधारसिकानन्दाभ्यां भोजनं चक्रुः ।
 काश्चिद्गोप्यो दोलां ताभ्यां सह दोलयित्वा गायमाना आसन् । मुदा
 काश्चिद्गोप्यस्तच्चित्रशालायां स्वानि स्वानि रूपाणि पश्यन्ति हृष्यन्ति
 रात्रौ दिवानवरतम् । गोप्यो भावाश्रितास्तद्दाललीलां गायमाना भजनं
 चक्रुः । अत्यासक्ताः प्रेमभजनरूपा आनन्दं विन्दन्ते । ततो गोपास्तथा
 रसिकानन्दे मग्ना अत्यन्तप्रेमभजनं कुर्वते । ये प्रेमभजने निमग्नास्ते तां
 लीलामापद्यन्ते । नित्यलीलाभजनानन्दोऽयं रसोऽनिर्वचनीयः । नन्दयशोदा-
 वृषभानुसत्यादयो ये भक्तास्ते भजनानन्दं नित्यमनुभवन्त्यतितराम् ।
 भूयो भूयः सुखसौष्ठवमभवत् । एवं गोपा गोप्यस्तन्मयतां प्राप्नुवन्ति ।
 तासां मातृभावं प्रपन्ना गोप्यो भजनानन्दे भजनमेव कुर्वाणा आसन् ।
 तासां गृहा दिष्ट्यानादिसुखसमृद्धिसंपत्तयो भवन्त्यानन्दसुखसमृद्धि-
 सिद्धयः । नानाभजनयोग्यान्पुपकरणानि तदर्थं संपादितानि भवन्ति ।
 गोपगोपिकादीनां समृद्धिसुखं तस्य भजनार्थमेव भवति । अतितरां सुखार्थमेव
 योग्यतापद्यते । अनन्तसुखसंपत्तितया निकुञ्जदेव्याः स्वावेशेन सुखकोट्या-
 नन्दं प्राप्नुवन्ति । अभियन्ति च सुखसंयोग्यताम् । पृथिव्यां भारते क्षेत्रे
 आनन्दमयो लोकः स्वसृष्टिलीलार्थं स्वयमेव प्रकटितः । तस्मिन् व्रजलोके
 सर्वा एव लीलाः सन्ति । ये गोपा गोप्यस्ते आधिदैविकीं लीलामतितरां
 संसिद्धा अनुभवन्ति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । रहस्य इह व्रजमण्डले यानि
 पृथक्स्थानानि तानि ब्रूहि । एकविंशतियोजना भूमिरानन्दमय्येवास्ति ।

यमुनाया दक्षिणकूलतो महास्थानं पञ्चयोजनायतं विहारस्थानमतितरां
सूक्ष्मं नित्यविहाररहस्यकेलिकलाविर्भावभावितम् । तस्मिन् स्थाने ये वृक्षाः
गृहाणि निकुञ्जा अन्यानि विहारस्थानानि तान्याधिदैविकान्यासन् । यो
वंशीवटोऽयं साक्षाच्छिवोऽयम् । यो भण्डीरवटः स एव देवेन्द्र आसीत् ।
तत्र स्थिता ये पक्षिणस्ते साधनसिद्धा आसन् । ते निरन्तरं ताभ्यामासन् ।
ये तत्र मनुष्या आधिदैविकरूपा एवासन् ते वृन्दावनेश्वरीसमनुगृहीतास्सदा
तां लीलां दर्शयन्ति तदनुग्रहतः । यासामज्ञात्वा ज्ञात्वा वा यस्मिन्
कस्मिन् भावे भावो भवेत्ता भावेन तां लीलां प्राप्नुवन्ति । यत्र कुत्रापि
स्थितोऽपि तद्बृन्दावनोद्भवां मृत्तिकां भक्षयेत् । स एव तां लीलां प्राप्नोति ।
तत्स्थानोद्भवानां वृक्षाणां पुष्पमालां ये कण्ठे धारयन्ति ते सर्वकृत्यं विधूय तां
लीलां प्राप्नुवन्ति । सदा तां लीलां गायमानास्तां लीलां प्राप्ता एव सन्ति ।
यैः प्रतिक्षणं वृन्दावनं स्मर्यते ते कृतार्थतां प्राप्नुवन्त्यतितराम् । अस्या-
माधिदैविकीं लीलां प्राप्तास्तां लीलां गायन्ति ध्यायन्ति । स्नेहासक्ता ये
तस्मिन् स्थले निवसन्ति ते पूर्वं तत्सृष्टद्युत्पन्ना एव सन्ति नान्यत्र ।
तस्मिन् वृन्दावने गोवर्धनोऽयं पर्वतः पञ्चयोजनायतः । त्रीणि योजना
न्यच्छिद्रितसप्तशृङ्गाणि निरस्तधातुमयानि । यत्र निरन्तरं श्रीराधारसिकः
पुरुषोत्तमः संक्रीडते । यस्य गह्वराणि सुकोमलानि सुगन्धजुष्टानि
विराजमानानि भवन्ति । यस्मिन् गोवर्धने स्वयमेव श्रीराधारसिकशिरोमणिः
क्रीडां करोति । अतितरामानन्दमयोऽयं पर्वतो यस्मिन् पर्वते रुद्रो रुद्राण्या
सह पूर्वं सृष्ट्यादौ तप आतनोत् । येन तपसा शिवः शिवोऽभूत् तत्र
रुद्रशिवपुष्करिण्यां ये मज्जनं कुर्वन्ति ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति । ये तं पर्वत-
मुपसेवमाना भवेयुस्तेषामनेनैव शरीरेण लीलायोग्यतास्ति । अनेनैव
गोवर्धनाद्रौ कामदुघा या तप आतनोत् सेयं गोविन्दपुष्करिणी ।

ये प्रेममग्नास्तस्यां पुष्करिण्यां मज्जन्ति सेवन्ते ते तां काले काले तस्याः दर्शनयोग्यतामतिप्रेमानन्दप्राप्तिमनुभवन्ति । यत्र मानससरोवरं विधाय मयापि तप आतन्यत । तत्तल्लोकेच्छया अप्सरसा उर्वश्या तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ तप आतन्यत । सानुभवोऽयं लोको यत्र यत्र परितः शिलाः श्रीराधाकृष्णनामाञ्चितास्तत्र ताः शिलाः श्रीवृन्दावनेश्वर्यधिवसति । आनन्दमयेन सह ये भक्तास्तस्य परिक्रमं कुर्वन्ति ते तल्लीलादर्शनयोग्यतां प्राप्नुवन्ति । इन्द्रपराजयमहोत्सवे अहमपि ब्रह्मादिना सह तस्मिन् स्थाने दर्शनार्थं गमिष्यामि । अतितरां श्रीराधारसिकस्य क्रीडास्थानं भवति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रहस्यस्थानेऽस्मिन् पर्वते रुद्रेण कस्मिन् काले तपः आतन्यत । तल्लीलां विस्तरशो ब्रूहि । मम मनोऽतिलोलं तस्यां कथायाम् । सुखे कस्तृप्तिं याति । येन तपसा ध्यानेन तद्भावो भवेदतितराम् । अहो अहं तं लोकं श्रोतुकामा । विस्तरेण ब्रूहि । एवं प्रपन्नां हृद्याधाय स्वयमेव नारायण अभिवदत्यतितरामानन्दमयेन चेतसा । स होवाच । शृणु लक्ष्मि अस्य लोकस्य हन्त माहात्म्यम् । अहं वक्तुमशक्तश्च । यस्य श्रीराधिका रसिकानन्दस्य विहारस्थस्य दर्शनालापकथानुभव अतितरां सद्यः सरूपे रमणानन्दे स्नेहाधिक्यं प्रापयन्ति । तथैव ते धन्यास्ते कृतार्थाः । ते अन्य-धर्मरहितत्वेन प्रेमामन्दे प्रीतिमापद्यन्ते । अतितरामासक्तिर्भवेत् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा अन्ये जात्यन्तरजाः शतशो जात्यन्तरभेदास्ते प्राप्नुवन्ति । न वर्णेन न धर्मेण येषां लीलारतिरास्ते ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति । अन्यभावेनेश्वराविष्टचित्ता अन्यदेव प्राप्नुवन्ति । तद्भावे न कदाचित्तमेव प्राप्नुवन्ति । येषां तल्लीलानुभवो न स्यात् तेषामनेकशः साधनानि वृथा स्युः । ब्रह्मविद्यासेविनो ज्ञानिन आत्मवेदनेन तां लीलां न प्राप्नुवन्ति । तस्मात्तल्लीलादर्शनयोग्या भक्ताः स्वभावेन तस्याः श्रीराधि-

काया अनुग्रहात्स्वात्मभावा भवन्ति । शिष्टानुशिष्टस्वेष्टध्यानकथासेवानुभावेन
 तेषामनुभवकथायामासक्तिः स्यात् । सा संयोक्ष्यमाणा रतिरिन्द्रियार्थे ।
 रतिसङ्गो भावापन्नो भवति । ये रतिकलनयानुगृह्यन्ते ते तां लीलां
 प्राप्तवन्तो भवन्ति । सर्वं त्यक्त्वा तल्लीलाया अनुभविनो भवन्ति ।
 अनुभवसंभवस्तदा भवेत् यदा साधवः कृपां कुर्वन्ति रतिर्भवति च । सा
 लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । त्वयोक्तं यैषा ब्रजवासिनी सृष्टिरद्भुतं स्थानं प्राप्तैवेति
 यस्मिन् स्थाने गोवर्धनोऽयं राजमान आस्ते । तस्मिन् गोवर्धने रुद्रेण तपो
 रुद्राण्या सहाक्रियत । पुष्करिणीं विधाय तप आतनोत् । यथायं लोको
 रुद्रेण तपता दृष्टः स्तुतः कथितो हृदि ध्यात एवायं लोकः सर्वेषां भक्तानां
 संदृश्यते । सुशोभनोऽयं लोकः सर्वेषां लोकमहालीलाया आवेशेन तेषां
 भक्तानामनुग्रहं प्रपद्यमानो भवेत् । कथं रुद्रेण दर्शनं प्राप्तम् ? केन साधनेन
 शिवः सिद्धोऽभवत् ? स एवं गोवर्धनाद्रौ कियत्कालं किरूपं तपोऽतप्यत ?
 दृष्टविभवोऽयम् । विस्तरशो ब्रूहि यदि कृपाभावो भवेत् । स होवाच । पूर्वं
 सृष्ट्यादावेकस्मिन् समये शिवः शिवया वैकुण्ठे तल्लीलादर्शनार्थं गतवान् ।
 तत्र नानासत्त्वमयानि संक्रीडमानान्यनेकशो रुद्रेण दृष्टानि । सर्वा मया
 क्रीडिताः क्रीडा दृष्ट्वा अनुभूय अतृप्तेन्द्रियोऽभवत् । ममाग्रे स्थितो रुद्रो मम
 ध्यानावस्थां दृष्ट्वा अत्याश्चर्यवान् अहो साक्षान्नारायणोऽयं परं ब्रह्म । रुद्रादयो
 यं ध्यायन्ति । रुद्रादयो यां वैकुण्ठाश्रितां लीलामभिलषन्ति । आदित्या-
 दयो यं द्योतयन्ति । यस्य कलावतारान् पृथिव्यां देवा ऋषयः स्तुवन्ति ।
 यं नारायणं ध्यायन्ती तेन रमा सदा क्रीडते । यं गत्वा चतुर्धा मुक्तयो द्वारे
 तिष्ठन्ति । तद्धाम सर्वेषां देवादीनामपि दुर्लभतरम् । स एव नारायणः
 कस्य भजनं कुरुते । अत्याश्चर्यं गतो रुद्रो बद्धाञ्जलिः सन्
 नारायणं स्तौति । स होवाच रुद्रः । नमोऽनन्ताय महते वैकुण्ठाय श्रीमते

तेजोमयाय तुभ्यं नित्यं नमो नमः । तवांशकला या नृसिंहाद्याः
 रामाद्या अनेकशो लीलामयास्ता ध्यायमानोऽहं शिवतां प्राप्तः ।
 अहमधुनात्याश्चर्यं गतवानस्मि । अहं निरन्तरं तव ध्यानेन विचरामि
 पृथिव्याम् । त्वं कं ध्यायसि ? सर्वं वर्णय तव कृपा यदि स्यात् । इति
 शिवेन संप्रार्थितोऽहं तल्लोकस्थितिं कथयिष्यन्—शृणु तात अहं नित्यं
 तल्लोकं ध्यायामि । यत्र निकुञ्जेश्वर्या क्रीडते रसिकानन्दो वनविहारे ।
 यद्रहसि क्रीडास्थानम् । यत्र आनन्दमयकामकेलिकौतुकरतिरासविनोद-
 कुञ्जाश्च शतशो विराजन्ते । यत्र गोवर्धनोऽयं गिरिः राजमानो भवति । यत्र
 कदम्बकुञ्जश्रेणयो गह्वराणि रत्नानि धातुमयानि । यत्र पुष्करिण्योऽ-
 मृतोदैः पूर्णा विराजन्ते । यत्र मणिगणाकरा ज्योत्स्नातितेजोरूपसंवलित-
 परस्परवस्तुप्रतिविम्बिता आसते । तस्य लोकस्य दैवतं श्रीराधिकया
 सहानन्दरसिकं पुरुषं ध्यायेम । यस्य कटाक्षात् समुत्पन्ना लोकानां
 ब्रह्माण्डानामुत्पत्तिस्थितिलयान् कुर्वन्ति । अनेकशो विद्या अविद्या देवा-
 श्चासुराश्चानेकशः सृष्टिस्थितिलयान् लभन्ते । यत्र ब्रह्माण्डानि कोटिशो
 विराजमानानि राजन्ते । तदतितरां सुशोभायमानं ब्रह्मेति पुराविदो
 वदन्ति । यत्र गत्वा धाम्नि लयं यान्ति योगीन्द्राः । शृणु यदि
 ते तस्य लोकस्य द्रष्टुमिच्छा वर्तते तर्हि त्वं व्रज । व्रजमण्डले
 गोवर्धनो गिरिरास्ते । रत्नधातुमयोऽयं पर्वतः । यत्र रसिकानन्दो वृन्दावनेश्वर्या
 सह क्रीडमानोऽभवत् । परितः क्रीडोपयुक्तानि वनानि द्वादश शोभाय-
 मानानि सुगन्धलतौषधिभिः संलम्बानि राजन्ते । यमुनामृतोदकैः क्रीडाविहार-
 स्थलानि संराजन्ते । यत्र यमुना बद्धोभयतटीविराजमाना भवति । अतितरां
 पद्मरागपुष्परागचन्द्रकान्तसूर्यकान्तमणीनां तेजोभिर्विराजमानानि जलानि
 शोभन्ते । यत्र यमुनाया उपरि शतशो वानीरकुञ्जा विराजन्ते ।

जातियूथिकामल्लिकासुवर्णयूथिकाप्रकरसुगन्धसंबलितेऽस्मिन् परागधृतोन्मदाः
 भ्रमरपिकशुकसारसहंसश्रेणयः शोभायमानाः कलकण्ठैर्निकुञ्जदेव्या यशोऽति-
 तरां गायमाना भवन्ति । यत्र वृन्दावनलीलाया निकुञ्जदेव्याः
 रमणलीलास्थानम् । यस्य स्मरणादेव रसाविष्टचित्तो भवेत् । वृन्दावनं
 वृन्दावनं इति प्रतिक्षणं ये वदन्ति ते देहोपाधिं त्यक्त्वा तस्य
 लीलारतिमनुभवन्ति । तन्ममापि निरन्तरं ब्रह्मादीनामप्यदृष्टगोचरम् ।
 सहस्रयोजनात् ये वृन्दावनं संस्मरन्ति वृन्दावनमिति प्रतिक्षणं वदन्ति ते
 तल्लीलोपयोग्या एव भवन्ति । यत्र कुत्रापि मृतो वृन्दावनोपासकस्तत्स्थलं
 तीर्थरूपं भवेत् । ये वृन्दावनोद्भवास्तुलसीकाष्ठाङ्कितमालाः कण्ठे धारयन्ति
 ते कृतार्थतां प्राप्नुवन्ति । तस्यां लताः सरसा आसते । अतितरां प्रीतिः
 भवति । ये वृन्दावने वृक्षास्ते आधिभौतिकाः सिद्धाः । साधनसिद्धा इतस्ततो
 भ्रमन्तीर्लता ओषधिक्रीडास्थलानि कुर्वन्ति । तथा देव्या वृन्दावनेश्वर्या
 त्रयः कोटयः पुलिन्दगणा उत्पादिताः । तेषां वृन्दावनवासिनां देहोच्छिष्टानि
 मलमूत्रादीनि देहोद्भवानि कफलालामूत्राणि ते पुलिन्दगणा ऊषरे
 उत्क्षिपन्ति । तेषां भक्तानां दिव्यदेह आधिदैविक एवास्ते । अतितरां
 सौभाग्याढ्यो भवति । अहो शिव वृन्दावनमाहात्म्यं केन वर्ण्यते ? सेवका यत्र
 कुत्रापि यत्किञ्चित् भोगार्थं कुर्वन्ति तद्भोगो रसिकानन्देन सह निकुञ्जदेव्या
 सर्वः संभोक्ष्यते । अतितरां सुखसंभोगस्थानं तत् स्थानं ममापि ध्येयं भवति ।
 अहं निरन्तरं ध्यानापन्नो भवामि । तस्मिन् वृन्दावने मध्यस्थानं निरन्तरं
 मम ध्येयम् । तस्य स्थानस्य ध्यानेनाहमानन्दस्थानमानन्दावेशेन
 भवामि । आनन्दध्यानादहं तत् प्रतिपद्ये । अहो शिव त्वमप्यानन्द-
 स्थानमतितरां प्रतियोज्य तदभ्येहि । ध्यानापन्नो भव । रतिसभावभेदध्याना-
 पन्नो भव । तद्वृन्दावनेश्वरीरूपमङ्गप्रत्यङ्गं रसिकानन्देन सह यो ध्यायति

स एव क्रीडायां मनोभावापन्नो भवति । पुनः शिव उवाच । त्वयोक्तानि द्वादशवनानि । तेषु वनेषु पृथक् पृथक् वद सर्वम् । स होवाच । शृणु शिव वर्णनं वनानां यानि श्रुत्वा ब्रजलीलायामत्यन्तसुखिनः संभवन्ति । महावने नन्दस्याधिष्ठानम् । गोकुले गवामधिष्ठानम् । यमुनायां क्रीडाधिष्ठानम् । बृन्दावने स्वामिन्या लीलाधिष्ठानम् । कामवने महालीलासङ्केतस्याधिष्ठानम् । बृहद्वने वृषभानुपुरनन्दपुराधिष्ठानम् । लोहवने पुलिन्दस्याधिष्ठानम् । तालवने उपनन्दाद्यधिष्ठानम् । दधिग्रामे दध्यधिष्ठानम् । गोवर्धनाद्रिपृष्ठे दधिविक्रयाधिष्ठानम् । गोवर्धनाद्र्यधो दानश्रेणिदानलीलाधिष्ठानम् । अयं गोवर्धनाद्रिः रमणलीलाधिष्ठानं भवति ।

अरिष्टे गोगणे कुब्जवटे बृन्दावने तथा ।

गोवर्धनगिरौ रम्ये सृष्टिः सर्वात्मना भवेत् ॥

भोः शिव अस्मिन् स्थाने श्रीराधारसिकानन्दावेव रूपेण सदा रमणं कुरुतो लीलासमेतौ । अत्यद्भुता संसिद्धा लीला सदा गोवर्धनाद्रौ । आनन्दमये स्थाने तप आचर । स रुद्रो रुद्राण्या सह तत्र पुष्करिणीं विधाय तन्नारायणमुखात् श्रुतं लोकस्य ध्यानमकरोत् । किञ्चिद्ध्यानेन ध्यानापन्नोऽभवत् । दशसहस्रवर्षं तल्लोकदर्शनार्थं तप आचरत् । तद्ध्यानेन निकुञ्जदेव्या दृष्टिपथमतिमोहनेन रूपेणानन्ददर्शनमापेदे । घनविद्युदुपमरूपनवीनया जायया सह केलिसम्पत्तिसमवेतं रमणानन्दं क्रीडासमेतमरूपयत् । तद्रूपदर्शनेन समाकुलोऽयं शिवस्त्रिभिर्नेत्रैर्निरूपयन् पुनःपुनः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तुतिमापेदे । उवाचायं शिवः । अं अं अनन्ताय नमो नमः । श्रीं श्रीं श्रीकृष्णाय तुभ्यं नमो नमः । सं सं संभोगप्रियाय नमो नमः । बृं बृं बृन्दावनविहारिणे नमो नमः । कुं कुं कुञ्जविहारिणे नमो नमः । लं लं ललिताविहारिणे नमो नमः । क्रीं क्रीं क्रीडावनविहारिणे नमो नमः । रां रां

राधामनोहारिणे नमो नमः । किञ्च निरन्तररासक्रीडासक्ताय नमो नमः ।
 सदामनोहारिणे नमो नमः । सदा रतिप्रियाय नमो नमः । सदा गानप्रियाय
 नमो नमः । सुरतानन्दाय नमो नमः । आलिङ्गनप्रियाय नमो नमः ।
 कूटस्थाय नमो नमः । रमणानन्दसुखदात्रे नमो नमः । अतिभोगप्रियाय
 नमो नमः । अन्तरात्मने नमो नमः । अतिरतिविहारिणे नमो नमः ।
 अत्यद्भुतचारित्राय नमो नमः । भारद्वाजरूपिणे नमो नमः । रामाय
 नमो नमः । मोक्षदाय नमो नमः । भक्तप्रियाय नमो नमः ।
 भक्तानन्दप्रदाय नमो नमः । अत्यानन्ददायकाय नमो नमः ।
 सकलकलाकोविदाय नमो नमः । महाक्रीडासुखदाय नमो नमः । महा-
 लीलाविहारिणे नमो नमः । कस्तूरीतिलकाङ्किताय नमो नमः ।
 शृङ्गारवत्यादीनां सखीनां सुखदायकाय नमो नमः । मोक्षदाय नमो नमः ।
 स्वच्छन्दोपात्तदेहाय नमो नमः । शोकमोहभयवैराग्यदुःखनाशहेतवे नमो
 नमः । अन्तर्यामिणे नमो नमः । रसिकानन्दाय नमो नमः । परस्पर-
 रासकेलिकलाकौतुकाय नमो नमः । विप्रलम्भसुखप्रदाय नमो नमः । अति-
 रतिकौतुकाय नमो नमः । अगणितानन्ददायिने नमो नमः । एवं स्तुत्वा तदा
 रुद्रस्तूर्ण्णीं केवलेन्द्रियस्तद्भावभावितोऽप्यासीत् । सरतिरासीत् । गतव्यथः
 आसीत् । समचेता आसीत् । स्तुत्वा रसिकानन्देऽभवत् । ॥ तथा
 बृन्दावनेश्वर्यां स्तुत्या प्रसन्नया वरेण छन्दितः साभिप्रायेण स्तवेन
 स्तविता त्वं वरं प्रार्थयेति । अकामो वा सकामो वा मद्भक्तो यजमानोऽयम् ।
 वरेण तां प्रति छन्दयित्वा शिश्राय । अहो मयि यदि तुष्यसि तर्हि
 ब्रजलोके क्रीडास्थानं दर्शय । अयं देवो वरो ममाभिलषितः । वरोऽसौ तव
 भवेत् । तथा निकुञ्जदेव्या दत्तो वरोऽयं ते दिव्यं चक्षुर्दत्तवत्यस्मि । त्वं
 चक्षुषाऽनेन मम विहारस्थलं दर्शयिष्यसि । तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ रुद्रस्य

सर्वा ब्रजलीला दृष्टिपथे आविरभूवन् । प्रथमं नन्दस्य भवनं कोटि-
वैकुण्ठव्यापिरत्नकुण्डचैर्वरमणिस्तम्भैः शोभितमप्यासीत् । अतितरां नन्दगृहं
पञ्चविंशतियोजनायतं पञ्चयोजनभूमौ मणिस्तम्भाकुलं बालक्रीडायां
रमणयोग्यं यत्र पुरुषोत्तमो रसिकानन्दः संसिद्धलीलां करोति । सा
ब्रजेश्वरी स्वयमेव देवरूपं विधाय तस्मिन् रसिकानन्दे क्रीडां करोति ।
यथा पुरुषोत्तमस्य रसिकानन्दस्य संसिद्धप्रकटानुभावस्तथा संसिद्धोऽयं
नन्दवसुभिः स्वावेशप्रकटानुभावो वितन्यते । नन्दगृहाद्वृषभानोर्गृहं यो-
जनायितम् । रङ्गवत्यादयः सख्यः प्रेमवत्यादयश्च यशोदायाः समीपे
क्रीडोपकरणान्यकुर्वन् । उपनन्दस्य पुत्री विशाखा नाम्ना रसिकानन्दस्य
भावामिज्ञैवास्ते । नन्दस्य वृषभानोर्गृहात् श्रीरसिकशिरोमणिद्वादशश्रेणयः
एवासते । रमणस्थानं पञ्चयोजनविस्तीर्णमेवास्ते । अतिरतिरमणकोटिकाम-
पूर्णं जाम्बूनदसुवर्णखचितसुकोमलमास्ते । रमणसरसाः शतशः सुगन्धपारि-
जातका इव मणयो ललामभूतपरस्परगन्धाढ्या भवन्ति । कल्पद्रुमवृक्षाः
वाञ्छितफलदातारो भवन्ति । अतितरां फलपुष्पमणिलताहरितपीतश्वेतशुभ्र-
भ्रमरसंवलितयोजितानि रतिकलाभावस्थानानि संराजन्ते यमलैर्यमलैः
कुञ्जविद्रुमलताग्रथितानि । अतिरसरमणानन्दयोग्यानि शय्योपकरणानि
संयोक्ष्यमाणानि भवन्ति । शाखासक्ताः पक्षिणो विराजमाना नानारङ्गैश्च-
ञ्चुपक्षैर्भवन्ति । ते पक्षिणः कलशब्दं समवेता यशो गायमाना भवन्ति ।
तेषु पक्षिषु केचित् साधनसिद्धाः संसिद्धाश्च भवन्ति । अतिप्रव्रजिताः
परस्परगोष्ठीयुक्ता आसतेऽतितराम् । मणिज्योत्स्नापाकृतान्धकारैरतितरां
रात्रौ दिवा तेजसा व्यक्तान्यासत । तस्मिन् स्थाने रङ्गवती प्रेमवती रसि-
कानन्देन सह क्रीडतः । वृषभानुकुमारी ललिता विशाखा अनूराधा
चन्द्रकला सुमुखी सुभगा भोगवती सुगन्धाङ्गी रतिमती कामपूरा कामदा

कामाक्षी कलावती हरिणाक्षी हंसगमना शृङ्गारवती दृष्टिमोहना जितकामा वशकामा कामवर्धिनी सर्वाङ्गकामा कामदृष्टिः कामकलाकोविदा रतिदात्री रतिसुखसंपत्प्रदा सलज्जा निःशङ्का निर्लज्जा अतिरतिभोक्त्री श्रान्ता सोत्साहा सुरतागमज्ञा वनस्थानज्ञा सङ्केतज्ञा लतावृक्षज्ञा निकुञ्जश्रेणिषु मार्गज्ञा लतापरीक्षाकोविदा मणिपरीक्षाकोविदा अतिसन्धिज्ञा सङ्केतरसज्ञा केकाभिज्ञा पक्षिणां भाषाभिज्ञा पक्षिसंबन्धाभिज्ञा सङ्केतस्थानज्ञा संभावितरसज्ञा शय्योत्पाता खाद्यपेयचोप्यलेह्यरसास्वादज्ञा नानासुगन्धरसभेदज्ञा वस्त्र-सुगन्धभेदज्ञा भूषणज्ञा अङ्गयोग्यभेदाभिज्ञा शृङ्गारयथायोग्यकालाभिज्ञा तालाभिज्ञा गीतज्ञा गीतरसभेदज्ञा तन्तूत्पाद्यरागभेदज्ञा सुगन्धज्ञा अङ्गरसभेद-गुणज्ञा सुगन्धनृत्यभेदज्ञा संपत्तिसुखज्ञा सदारासक्रीडाप्रकटगुणगानको-विदा रासागमसोत्साहा रासलीला वचनसुखदायिनी एताः सख्यो विहार-स्थाने आसते । कुञ्जप्रतिकुञ्जसुखदायिनीषु सखीनां कुञ्जश्रेणिषु सुखसंपत्ति-सुखार्थं विद्रुमश्रेणीया नानाकुञ्जा अतितरां संशोभन्ते । तासु श्रेणिषु पुष्पपरागोद्धृता यवनिकाः संभवन्ति । तत्सृष्टिवेष्टितेऽङ्गभूषणैर्भूषितानि स्थानानि भूषयन्ति । शोभायमानानि रचितयोग्यान्यत्युन्नतश्रेणिषु वियूथानि विराजमानानि भवन्ति । सखीनां समूहाः श्रेणिषु संभोक्ष्यमाणाः क्रियामारभन्ते । द्वादशश्रेणिषु श्रीनन्दस्य श्रीवृषभानोर्गृहात् पृथग्द्वाराणि राजन्ते । तत्र जाम्बूनदसुवर्णभूमिमणिगणचित्रितमध्यस्थलं क्रीडाविहारसं-युक्तं मण्डलाकारं पञ्चयोजनायतम् । यत्र काम आधिदैविकेन रूपेण उपसेवमानो भवति । श्रेणीनां द्वाराणि तस्मिन्मण्डले पृथक्शोभायमानानि सन्ति । एका श्रेणी मणिलतासुगन्धाढ्या सुकोमलातितरां न कोमला न कठिना । अत्यद्भुतसुरचितायां वृन्दा सखी आस्ते । तयातितरां तस्य सेवार्थं श्रीराधिकायाश्च रचिता शय्यैवास्ते । तत्र तस्मिन्

मणिलतान्तरे चतस्रः श्रेणयः शोभायमाना भवन्ति । तासु श्रेणिषु चतस्रः पुष्करिण्य आसते । एका पुष्करिण्युष्णोदकेन पूर्णैवास्ते । एका पुष्करिणी सुगन्धशीतजलैवास्ते । एका पुष्करिण्यमृतोदकेन पूर्णैवास्ते । तत्र मज्जनस्थानमत्यन्तशोभायमानं चतुःसरं यत्र मणीनां द्वादश शृङ्गाणि शोभायमानानि भवन्ति । एकस्माद्गृहादन्तःसुगन्ध-तैलागुरुरसकर्पूरमृगमदकेसररसाः शतशः पुष्पलतापत्रत्वक्पयोभिः सुगन्धि-तेषु रसेषु संपूरिता भवन्ति । मज्जनक्रियोपयोग्याः सखीनां समूहाः मज्जनं कारयन्ति । नानाजलकेलिसुखसंपत्तिर्मज्जनावती तन्मज्जनेऽतितरां सरतिरास्ते । जलसंपत्त्यै अतितरां सुजलकल्लोला सखी उपसेवते । तत्र हंसीहंसाः सारसाः पक्षिणोऽग्रेऽग्रे क्रीडन्ति । अतितरां जलकेलिकल्लोल्कर्म-करणादनन्तरं तत्राधिदैविकेन रूपेणाभिरत्यन्तसुखदायकरूपेण सेवते । अतितरां सूक्ष्मस्वरूपकिरणैः सूर्यरूपः सेवमान आस्ते । अङ्गराग-संपूर्णमङ्गरागस्थानम् । मन्दिरमत्यमृतमङ्गसुखदायि शोभायमानमभ्येति । यत्र चन्द्रकिरणाः शोभायमाना आसते । सूक्ष्मतरतेजसा सेवमानाः आसते । तत्र रङ्गवत्यो नानाङ्गरागं प्रकुर्वन्ति । अतिसुखदायिनोऽतितरा-मङ्गरागाः शोभायमानाः सुखभोगा आसते । शोभते तृतीयं शृङ्गारगृहम् । यत्र गृहात् गृहन्तरात् द्वाराणि शोभायमानानि भवन्ति । तत्र सखीनां सञ्चार आस्ते । अतिरतिसञ्चारिताः सख्यः सुखदायिन्यः शृङ्गारमधि-कुर्वन्ति । प्रथममगुरुवासितकवरीसुगोप्यमानानि मन्दारपारिजातपुष्पाणि शोभायमानान्यातन्वन् । तत्कालं मण्डलेन गुम्भितकेशपाशः शोभते । क्षुद्रघण्टिकाशब्दसूक्ष्मतरसंभाविता बृन्दावनेश्वरी प्रीयमाणा भवति । सीमन्तो नानामणिमुक्ताग्रथितजाम्बूनदसुवर्णखचित एवैति । मेघोपरि चन्द्र-ज्योत्स्ना इव नक्षत्रगणा विराजन्ते । स्यूतपुष्पसुवर्णजटितमणिमुक्ता-

खचितान्तरज्योत्स्नाभाविताः शोभायमाना आसते । कुटिलजटितज्योत्स्नाभिः
अभ्रच्छायाकर्बुरितचन्द्र इवास्ते । कर्णकुण्डलज्योत्स्नारुचिमण्डलं कुण्डल-
युगळम् । ललाटं तिलकहाटकहीरकमणिज्योत्स्नाभिरतितरां जटितं संराजते ।
मणिभ्रुवौ विजयकामकार्मुकखण्डलते इव संविराजते । नेत्रे चितखञ्जनमीन-
चातुर्यं जितवती । नासा कनकमुक्तायोजिता संराजते नितराम् ।
नासाभरणनीलपीतरक्तमणिज्योत्स्ना राजमाना नासामभ्येति । अतिरति-
विम्बाधरोष्ठौ विद्रुमरङ्गरञ्जितावास्ताम् । हीरकावलीघटितमुक्ताफलज्यो-
त्स्नाभिः रञ्जितमध्यचिबुकं मुखमण्डलं सलाञ्छनं चन्द्रमण्डलमिवास्ते ।
घटितकोमलमुक्तावलीकौ कुचकुम्भौ हाटकमणिज्योत्स्नाभिः पुष्पपराग-
परीताविवास्ताम् । भुजलताकरकङ्कणमरकतज्योत्स्नाभिर्हस्ताङ्गुलिमुद्रिका-
जटितमणितेजांसि राजमानानि सन्ति । नाभिहृदकुहरे लोक इव
आशङ्क्यते । कटिमेखलाक्षुद्रघण्टिकाः कामदेवदुन्दुभिभूषणानि भवन्ति ।
नागेन्द्रहस्ता अतिरतिस्कृता एव त्वचि कर्कशत्वेन । कदलीस्तम्भाः
एकान्तशैत्येन तदूर्वोरुपमानवाह्या एवासन् । चरणकमलौ नूपुराभ्यां शोभाय-
मानावास्ताम् । आपद्यमाना आसेदुष्यो विशदचरणाङ्गुल्यः शोभायमानाः
भवन्ति । गतिरतिविलासवत्यास्ते । रङ्गवती सखी वानीरश्रेणिनिकुञ्जे
रसिकानन्दस्य शृङ्गारं दर्शयन्त्यास्ते । श्यामहिरण्यपरिधिवनमाल्यवर्हाद्योतित-
मुक्तावली शोभते । धातुप्रवालनटवेषविचित्रिताङ्गशोभाढ्या सन्निकृष्यन्त्या-
सीत् । मकराकृतिकुण्डलौ शोभायमानमाननमतनुताम् । कनककपिशं
वनमालया विराजते वेणुवादनकलरवकलापकलितं पीताम्बरम् । तस्मिन्
मध्यस्थाने चतुर्धा श्रेणयः विद्रुमलतालवङ्गलताग्रथिताः । वृक्षाग्रग्रथिताभिः
श्रेणिसञ्चार आस्ते । तस्यां श्रेण्यां मध्ये एकं शय्यामन्दिरं मणिकुञ्जघटितं
विराजते । पुष्परागमणिना खचितज्योत्स्नाभिः संवलिताः प्रतिबिम्बिताः

मणयोऽतितरां राजमाना भवन्ति । रङ्गवती प्रेमवती नन्दगृहं सकलशृङ्गार-
भूषणैर्भूषितं रसिकानन्दमतिप्रेम्णा आनयति । अत्यन्तानन्दमग्नान्यानन्द-
रसेन वनान्युत्फुल्लितानि संसिद्धानि कोटिशः । सखीनां समूहाः कोटिशो
गीतानि गायन्ति । तासु श्रेणिषु परस्परसञ्चाराय सखीनां मार्गा आसते ।
मार्गे मणिद्योतिताः परिधयो राजमानाः शोभन्ते । एका पञ्चमी श्रेणी
पुष्पिता नानारङ्गरचिता आस्ते । पुष्पाणि फलानि लतायां सन्ति ।
अनेकमणिलताप्रवरज्योत्स्नापुष्पलता आरक्ता एवासते । पुष्पितवृक्षाणां
सुगन्धमणिलतानां परस्परज्योत्स्नासंवलितवीथयो विराजन्ते । अमृतफल-
फलिता वृक्षा अतितरां पीतरक्ततरङ्गितनानाज्योत्स्नाः परस्परमतितरां
शोभायमाना भवन्ति । अतिस्वादूनि मधुराणि फलानि नम्राणि सन्ति तेषाम् ।
तेषामधः सूक्ष्माः पुष्पलता नानारागरङ्जिता एवासते । तासां लतानामधः
शय्यारचिता रमणानन्दसुखसंभोगायैवातितरां सुगन्धपुष्पसिकतारचिताः
योग्या नानास्तरणैः संवलिताः कामरसपोषका एवासते । तासु
श्रेणिषु विचित्रशाला अनेकशः संराजमाना भवन्ति । तासु शालासु सूक्ष्माणि
सुगन्धमणीनां गृहाणि संराजन्ते । तेष्वन्तर्नानामक्ष्यभोज्यानि वस्तून्य-
तितरां सौष्ठवेन राजमानानि प्रकाशन्ते । अन्यतो रचिता शय्या विविक्ता
आस्ते । यत्र सा वृषभानुसुता सुरतानन्दश्च संभाषेते । तस्मिन् क्रीडामण्डले
षष्ठी श्रेणी मणिप्रेष्ठैर्विराजमाना भवतितराम् । द्वारं त्वारक्तमणिखचित-
यन्त्रकवाटस्थलहाटकजटितमणिराजिराजमानं भवति । तत्र षडृतवः संलम्भाः
सेवन्तेऽतितराम् । यत्र ग्रीष्मोऽयं ऋतुः तत्र शीतलजलाः पुष्करिण्यस्तट-
भूमिरल्लकुटीचन्द्रकान्तमणिजलयन्त्राणीवासीदन्ति । यत्र हंसीनां यूथानि
क्रीडां कुर्वन्ति । अन्ये पक्षिणः देववाण्या परस्परसुखमनुभवन्त आसते ।
भोगताम्बूलाद्या अतितरां तस्मिन् स्थाने आसते । श्रेणिसप्तमद्वारमतितेजो-

मयमुत्तरा शतं मन्दिराणि एकावल्या सन्ति । दक्षिणतः शतं मन्दिराण्ये-
कावल्या राजन्ते । यत्र सखीनां यूथानि तेषां स्थानानि क्रीडाविहारस्थ-
लानि योज्यमानानि संभवन्ति । यत्र ललिता विशाखा अन्याश्च शतशः
सख्यो रतिप्रेमानन्दस्थाने रमणानन्दयोग्या भक्तास्तिष्ठन्ति । यस्यां श्रेण्यां
गृहं गृहं प्रति अष्ट सिद्धयो मूर्तिमत्यः संराजमाना आसते । अनेकशो
भूषणैर्भूषिता अलं गोप्यस्तेषु गृहेषु क्रीडां कुर्वन्ति । नानारसा नवनीतरसाः
राधास्वादितमिष्टरसा अनेकरसास्वादसुखदाः सन्ति । दुग्धफेनानेकभोगाः
सुखसंभोग्या भवन्ति । तेषु आस्तरणयुक्ताः शय्याः शतशो राजमानाः
भवन्ति । तेषु स्थानेषु सुरतानन्दप्रेमानन्दमग्नाः सख्यस्तदुपकरणरसं
सङ्कलयन्ते । अष्टमी श्रेणिः आम्रकदम्बकदलीचम्पकाशोकपुन्नागरोध्रमन्दा-
रपारिजातकल्पकनीपनीरवटन्यग्रोधोदुम्बरजम्बूवृक्षसरलर्शिशुपाखदिरवकुलपि-
प्पलश्लेष्मातकवदरीतालतालीवनमधुरशाखालवङ्गैलाजातीत्वक्पूगनालिकेरमातु-
लङ्गक्रमुककण्टकिनोऽनेकशः वृक्षाः पुष्पलताग्रथिताः केतक्यः अमृतवल्क्य-
मृतफलैर्ग्रथिता अनेकपुष्पगुच्छलताग्रथिता वल्क्यो वसन्ते वासन्तीपल्लवैः
योग्यास्तस्मिन् कदम्बवने निर्भरसेचनरससङ्कुलिता अनेकलताग्रथिताः
सुवर्णालवालश्रेणयो ग्रथिताः जलपुष्करिण्य इवागाधजलपूरिता एवासते ।
पट्टडोरिग्रथितसुवर्णघटिको जलप्रवाहो जलयन्त्रमुखाविर्भूतो भवति । तत्र
मध्ये पुष्करिण्यां रत्नखचिता मुक्ताखचिता द्वार्जलयन्त्रशीकरैराविष्टा भवति ।
नवमी श्रेणिर्जलेन सिच्यमाना अनेकजलक्रीडोपकरणा संयोक्ष्यमाणा
भवति । ' कचित्सूर्यक्लीकमलानि कचित्सोमवंशीकमलानि विराजमानानि ।
तस्य मध्यस्थले वानीरकुञ्जे यमुना जलकल्लोलवती रत्नबद्धोभयतटी राजमाना
भवति । यत्र वृक्षशाखा जलस्पर्शाद्दोलाविद्रुमलता भवन्ति तत्र वृन्दावने-
श्वरी रसिकानन्देन सह दोलायामेति । ललिताद्याः सख्यः संगायन्त्यो

भवन्ति । तत्र मयूरकोकिलहंससारसविहगाद्याः सङ्गायमाना गुणगणनायुताः भवन्तितराम् । दशमी श्रेणिः रसिकानन्दस्य कन्दुकलीलाधिष्ठानस्थानं प्रति योजनायतं सुवर्णभूमिजटितखचितं पद्मरागमणिगणावलितं भूमिरचितं रङ्गश्रेणिविराजितमतितरां शोभते । अतिविविक्ते तस्मिन्स्थाने कन्दुकलीलया सुशोभमानं स्थानम् । ताः सर्वाः सख्यः कन्दुकलीलायां कन्दुकलीलापरस्परस्वमर्यादा नातिक्रामन्ति । श्यामा रसवती ललिता शृङ्गारवती रङ्गवती कलावती गुणवती गानवती कुञ्जवती सुश्रोणी चन्द्रमुखी चन्द्रलेखा ताः सर्वाः सख्यः कन्दुककेलियष्टिं गृहीत्वा स्वमर्यादाः नातिक्रामन्त्यः क्रीडन्ति । रसिकानन्दशिरोमणिः स्वयमेव कन्दुकयष्टिं गृहीत्वा क्रीडति । विशाखा चन्द्रलेखानूराधा अतिरतिज्ञा रमणानन्दज्ञा सुरतोपदेशा सुरतकलाकोविदा गानवतीत्येताः सर्वाः सख्यः कन्दुकयष्टिं गृहीत्वा श्रीराधिकायाः कन्दुकमर्यादामनतिक्रम्य कन्दुकं नयन्ति । एवं परस्परं स्वं स्वं मर्यादया कन्दुकं नयन्ति । यदा श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः कन्दुकव्याजेन क्रीडामनुभवति तदा ताः सर्वाः सख्यो जयशब्दमुदीरयन्ति । अन्याः पुष्पवत्यादयः सख्यः पुष्पवृष्टिं कुर्वन्ति । तस्मिन् क्रीडास्थाने एकं मन्दिरं प्रेमवत्या सुरचितं सर्वभोगाढ्यं मनोरममस्ति । प्रेमवती प्रणिपातपुरस्सरं श्रीराधिकया सह रसिकानन्दं श्रमापनोदार्थं नयति । तत्र भोगवती सर्वभोगान् गृहीत्वाऽग्रतस्तिष्ठति । तत्रान्तः सुरचिता सखी सुभगां सर्वभोगान्वितां शय्यां रचयित्वा प्रश्रयावनता श्रीराधिकया सह रसिकानन्दं नयति । तत्र मनसि सोत्साहं करोति । तत्र रहसि चतस्रः सख्यः सुसेवमाना भवन्ति । सुकामा अलज्जा सुरतोद्गमा सुरतानन्दा सेवमाना भवन्ति । अन्या ललितादयः सख्यस्तत्सुखं निरीक्ष्यातिरसमस्मास्तां लीलां गायमाना भवन्ति ।

तदा लीलान्ते चतस्रः सख्यः सेवमाना भवन्ति । निद्रालसा संमीलिता सुसुखा गतत्रया सुसेवमाना भवन्ति । तत्र जाताः सुलज्जा भोगवती गानवती सुसेवमाना भवन्ति । एवं कन्दुकलीलायाः सुखं प्रत्यवसरं श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः सुसेवते । तत्र सहस्रनिकुञ्जैर्ग्रीष्मर्तुः सेव्यमानो भवति । रत्नजटिताः पुष्करिण्यः सुवासितैः सुजलैः संपूर्णाः भवन्ति । तत्र नम्रा वृक्षाः परितः पुष्पैः फलैः संपूर्णा भवन्ति । तत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह जलक्रीडां करोति । तत्र मज्जनवती तरङ्गिणी जलकल्लोला प्रेङ्खितवती सेव्यमाना अगाधजला नौकावती सुप्लवनवती जलाभिज्ञा सुलहरी हस्तपल्लवा एताश्चान्याः सख्यः श्रीराधिकया सह जलक्रीडां कुर्वन्ति । तत्र जलक्रीडाव्याजेन रसिकानन्दो नानासुखं करोति । तत्र जलक्रीडान्ते शृङ्गारवती सखी शृङ्गारस्थानं नयति । तत्र पुष्पवती पुष्पमण्डनं रचयति । एवं ग्रीष्मलीलां नानासखीभिः सार्धं रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह संसेवमानो भवति । ततः प्रावृल्लीलाया अनुभवः कथ्यते । सहस्रनिकुञ्जैः प्रसारिता प्रावृडानन्दमयी भवति । मेघा नानारूपाणि विधाय मणिमयभूमिं जलैः सिञ्चमाना हरितशाडलैः शोभायमानां कुर्वन्ति । मयूरपिकहंससारसयुताः पक्षिणः नानाकलशब्दैः कुञ्जान्तरं सेवमाना भवन्ति । कौसुम्भासुरङ्गाक्षणिकाप्रद्योतिताः सोत्साहाः सख्यः रसिकानन्दं श्रीराधिकया सह सेवन्ते । नानावृक्षा लताभिर्ग्रथिताः पुष्पैर्नम्रा भवन्ति । तत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह नानावेषैः शृङ्गारानुभवैः सुरतानन्दसुखं भुञ्जमानो भवति । प्रावृल्लीलां निरीक्ष्य ललितादयस्तां लीलां सज्जायमाना भवन्ति । ततः शारदलीलायाः सुखं संवर्ण्यते । सहस्रैर्निकुञ्जैः प्रसृता शरत् प्रद्योतमाना भवन्ति । यत्र सर्वाः लताः प्रफुल्लिताः सर्वे वृक्षाः प्रफुल्लिताः सर्वासां सखीनां मनांसि

प्रफुल्लितानि भवन्ति । यत्र शारदनिकुञ्जाः प्रफुल्लिताः तत्र मध्ये नित्यं रासमण्डलं सदा रसिकानन्देन सेवितम् । यत्र श्रीराधिका स्वसखीभिः सार्धं नित्यानन्दलीलां करोति । तन्मण्डलं पञ्चयोजनायतं नानारङ्गमणिस्तम्भ-शतशोभितं नानालताभिः पुष्पिताभिराच्छादितं परितः द्वादशश्रेणि-संवलितम् । तासु श्रेणिषु अनेकशः सख्यः संशोभमाना भवन्ति । प्रथमश्रेण्यां ललिताविशाखादयः सख्यः नानाविधान्युपकरणानि कुर्वन्ति । द्वितीय-श्रेण्यां प्रेमवत्यादयः सख्यः राजमाना भवन्ति । तृतीयश्रेण्यां शृङ्गारवत्या-दयः सख्यो नानालंकारसुखरूपा अनेकशः शृङ्गारं कुर्वन्ति । चतुर्थश्रेण्यां भोगवत्यादयः सुगन्धवत्यादयः सख्यो नानाभोगरसान् रचयन्ति । पञ्चम-श्रेण्यां पुष्पवत्यादयः सख्यो नानाविचित्राणि माल्यानि कुर्वन्ति । षष्ठश्रेण्यां भूषावत्यादयः सख्यो रत्नजटितानि हाटकमयानि मनईप्सितानि रचयन्ति । सप्तमश्रेण्यामन्नपूर्णाद्याः सख्यो नानान्नमयरसान् पाचयन्ति । नानाविधानि पकान्नानि प्रतिक्षणं नूतनानि पाचयन्ति । अन्या रसभेदान् रचयन्ति । अष्टमश्रेण्यां सुगन्धवत्यादयः सख्यो नानासुगन्धान् रचयन्ति । गानवत्यादयः सख्यो गानं कुर्वन्ति । तन्तुवादिन्यादयः सख्यस्तालैः सुगानं कुर्वन्ति । नवमश्रेण्यां विलाससुरतरङ्गवत्यादयः सुरतानन्दादयः अभिनव-कला आसनभेदान् सङ्गीतसाहित्यकलाकुशलाः सख्य ऋग्यजुस्सा-माथर्वणवेदरूपाः सख्यो नानास्तुतिभेदैर्गुणगणनां कुर्वन्ति । एकादश-श्रेण्यां रङ्गवत्यादयो रङ्गरसभावान् नानाविचित्राणि वचनानि नम्राणि प्रेमोत्पादकयुतानि श्रावयन्ति । द्वादशश्रेण्यां सखीनां विविधसञ्चार आस्ते । तस्यां श्रेण्यामन्तर्भागे चतस्रः श्रेण्यो विराजन्ते । तत्र गृहाणि शतशो हाटकमणिखचितानि संरोचमानानि भवन्ति । रत्नविधिषु योज्यमानाः श्रेण्यः सुवर्णयूथिका अतिसुगन्धा मुक्तायूथिका अतितरां राजमानाः

भवन्ति । तत्र तरुपुष्पाणि नानारङ्गमयानि सुगन्धाढ्यान्यनेकशो राजमानानि भवन्ति । तस्यां हरितपीतारक्तरक्तलता अनेकशः शोभाभेदैरत्यन्तं राजमानाः आसते । मणिलता आन्तरैर्मणिपुष्पैः संराजमाना भवन्ति । तासां लतान्तः सूक्ष्मलताः पुष्पिता राजमाना आसते । तासु श्रेणिषु सखीनां रमणस्थानानि सुरच्यमानानि गुणगन्धाढ्यानि रूपप्रतिकृतियुतान्यतितरां भवन्ति । सा श्रेणी श्रीराधाया अतितरां बल्लभा आस्ते । यदा गृहवनविहारेच्छाविर्भवति तदा तस्यां श्रीराधा स्वयमेव विचिन्वती स्वयमेव पुष्पहारावलीं ग्रथयति । रसिकानन्दः पुष्पाणि चिनोति । हरितपीतश्वेतारक्तपुष्पगुच्छैर्ग्रथितां हारावलीं श्रीराधायाः कण्ठे स्वहस्तेन परिधापयति । सा अतितरां विराजते । तस्यां श्रेण्यामेकं मन्दिरं गुप्तक्रीडास्थलं महातेजोमयं मणिमयसप्तभूमिकं संराजमानं भवति । एका भूमिः कनकमयी । तदुपरि रत्नसोपानसंवलिता भूरारक्तमणियुता भवति । अनेकरङ्गरञ्जितान्तरा सोपानपरम्परा संराजमाना भवति । तदुपरि भूः पुष्परागरचितातितरां सुशोभाढ्या भवति । तत्र सोपानपरम्परा शोभायमाना भवति । तदुपरि सोपानपरम्परा रत्नावलीखचिता नानारङ्गैः सुरचिता जाम्बूनदसुवर्णभूषिता परस्परसुगन्धसंवलितैवास्ते । सुरचितमणिवल्ली पुष्पपरागपरिधिमतितरां करोति । तदुपरि चन्द्रकान्तरचिता तत्सकाशात् चतुर्थी भूमिर्जलशीकरसंयोगिनी भवति । जलयन्त्रशीकरकणिकामयैः सुगन्धजलैः पूरितायां पुष्करिण्यां ग्रीष्मादौ श्रीराधिकया श्रीरसिकानन्देन च सुरतानन्दसुखमनुभूयते । यत्र सुखमनुभवन्तावासाते तत्र मणिलताग्रथिता विद्रुमदोलास्ते । रत्नजटितदोलायां मणिज्योत्स्नाः प्रतिबिम्बभावापन्ना एव भवन्तितराम् । तदुपरि सोपानपरंपरा मणिग्रथिता भवति । तदुपरि सुगन्धमणिरसवलिता भूः संराजमाना आस्ते । तत्र भूम्यां सूर्यचन्द्राग्नि-

देवता आधिदैविकेन रूपेण सखीरूपं विधायोपसेवमाना भवन्ति । तस्यां भूम्यां सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो भवन्ति । श्रीराधिकायाः रसिकानन्देन सह देहात्समुत्पन्नाः सख्यो दृष्टवती कलावती सोत्साहा प्रेमसंवलिता लज्जावती गुणवती गुणाढ्या भवन्ति । अन्या अनेकसख्यो रतिसुखमनुभवन्त्यो भावापन्ना भवन्ति । तदुपरि सोपानपरम्परा चत्वरे आस्ते । अत्यन्तसुखश्रेणिसञ्चारा सोपानपरम्परा रत्नावलीभूषिता भवति । रतिसुखसंपत्तिप्रतिकूजा अनेकभूमयो योजिताः । एवंविधं मण्डलं द्वादशद्वारयुतम् । द्वादशद्वारे द्वादश श्रेणिसञ्चारा भवन्ति । अतः परम्पराश्रेणिसञ्चारो भवति । तन्मण्डलं यदेतत् षड्गुणप्रसिद्धं भवति । षड्गुणाः षडृतवः उपसेवमाना भवन्ति । एतस्मिन् मण्डले पूर्वतः सखीरूपं विधाय सूर्यः सुकोमलैः किरणैरुपसेवमान आस्ते । तस्य मण्डलस्योत्तरतश्चन्द्रः उपसेवमानो भवति । एतस्मिन् मण्डले पश्चिमतोऽग्निराधिदैविकेन रूपेण उपसेवमानो भवति । ग्रहास्तास्तारका अन्यानि नक्षत्राण्याधिदैविकं रूपं विधाय सदा उपसेवमाना भवन्ति । इन्द्रोऽपि सखीरूपं विधाय देवाङ्गनाभिः सह विमानावलीषूपविश्य सदोपसेवमानो भवति । पितामहोऽपि सूक्ष्मरूपं विधायान्तरिक्षे तल्लोकदर्शनाकाङ्क्षो भवति निरन्तरम् । अन्ये दिक्पालाः संसिद्धा निरन्तरमाधिदैविकेन रूपेण तन्मण्डलमुपसेवमानास्तन्मण्डल्लोकानन्दमग्ना भवन्ति । तन्मण्डलोपासका भक्ता अन्यं न भजेरन् । अन्यधर्मासक्ता इदं मण्डलं न जानन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । ये मण्डलमुपासते ते किं कर्म कुर्वन्तो भवन्ति ? स होवाच । तेऽनन्योपासकाः भवन्ति । अनन्यभजनसिद्धा आत्मभावा भवन्ति । आत्मभावा मण्डलमुपासते । आत्मानात्मभावो भवेत् । अतितरामात्मानन्दे मग्ना अन्य-रसं न भावयन्ति । आत्मानन्दे मग्ना अभक्ता न स्पृशन्ति । आत्मानन्दे

मग्ना आत्मभावा भवन्ति । नान्यं शृण्वन्ति न नमन्ति न गायन्ति । ते भक्ता आत्मरसभाविता आत्मनो रतिरसभावनयानन्दं शृण्वन्त्यानन्दं गायन्ति । आनन्दयुता भक्ता अतिरसमग्ना गुणान् गृणन्ति । अतिरसमग्नास्तदुच्छिष्टमुपभुञ्जते । अनुच्छिष्टं कदाचिन्न भुञ्जते । तन्मण्डलोपासकाः भक्ता अभक्तान् न स्पृशन्ति । ये अन्योपासका भक्ता आनन्देऽनाश्रिताः कर्मजडाः कर्मकाण्डोपासका एव ते । अग्न्योपासका ये ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसोपासका एव ते । तेषां संभाषणं तन्मण्डलोपासकः प्रमादेनापि न कुर्यात् । ये अन्यधर्मरहिता अन्यासक्तिरहितास्ते तन्मण्डलं प्राप्नुवन्ति । अन्यधर्मरहिता एव प्राप्नुवन्ति । अन्ये आत्मानं न विदुरात्मना । किं बहुनोक्तेन धर्मेण । ये ब्राह्मणा अन्यविद्योपासकाः कर्मजडाः कर्मकाण्डोपासकाः कालोपासकाः कर्मधर्मदेवपितृपासका एव भवन्ति ते । ये शैवाः शाक्ताः सुरामांसरताः कौला जैनाः पातञ्जला मीमांसकाः जडतां प्राप्ताश्चार्वाका अन्यधर्मदृढासक्ता भवन्ति । ये तां ब्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सहोपासते सदानन्दरसमनुभवन्तो भवन्ति । रतिकलाकोमला गुणगणनां कुर्वन्ति । तमेव रसं गायन्तो भवन्ति । अतिरतिमापद्यमाना भवन्ति । ये दर्भं हस्ते गृह्णन्ति ते तं रसं न प्राप्नुवन्ति । तिलाञ्जलिं पितृणां ये ददति ते तन्मण्डलं न प्राप्नुवन्ति । देवाश्चासुराश्च कर्मकाण्डोपासका एवेति, देवाः सद्विद्योपासका वैष्णवा एवेति, गुणातीतास्ते बृन्दावनेश्वरीमुपासते । रसिकानन्देन सह उपसेव्यमानमभियन्ति । अतिगुणमग्ना रात्रौ दिवा सदा सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो युज्यन्ते । रतिकलाकौतुकानि संभोक्ष्यमाणा भवन्ति । भक्तानामनुग्रहात् भगवान् रसिकानन्दोऽनुग्रहं करोति । ते मण्डलं विदुः । ये ब्रजमण्डलं सेवन्ते ते मण्डलं जानन्तोऽन्यासक्तिं विना मण्डलासक्तिं कुर्वन्तः सदा सर्वलोक-

रसलीलायामासक्ता भवन्ति । ये मनोरथशतैः रात्रौ दिवा तल्लीलाः
 प्रश्नन्ति ते तन्मण्डले भावापन्ना भूत्वा प्रतिष्ठितचित्ता भवन्ति । तन्मण्डलं
 श्रुत्वानन्दमासीदन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदं नारायणं तदा ।
 रमारमण वैकुण्ठे यो वै क्रीडयित्वात्मभावो भवतितरामतिप्रीत्या
 नारायणोऽयं वदत्यभीष्टमनन्तरम् । अन्त्ये ब्रजमण्डले पञ्चयोजनायतं
 मण्डलमस्ति । अधितन्मण्डलमासेदिवान् रुचिररतिमातनोति । यत्र शतशो
 गृहाणि हाटकमणिमयानि सहस्रपङ्क्तयोऽतितरां श्रेण्यो विराजमानाः
 भवन्ति । येषु मन्दिरेषु सप्तभूमिष्वतितरामभ्येत्य मनुष्या रतिरसमग्नाः
 भावापन्ना भवन्ति । मणिभूमिष्वतितरामास्ते पुरुषः । तत्र गोपानां गृहाणि
 पङ्क्तिशो विराजमानानि भवन्ति । गोपानां गृहे गृहे अष्टमहासिद्धयो
 राजमानाः सन्ति । तेषां गृहे गृहे कल्पद्रुमा राजमाना एव भवन्ति । तेषां
 गृहाश्रमः केवलं क्रीडार्थमेव भवति । तेषामात्मसुखार्थमेव न भवति ।
 कदाचन तेषामतिरसक्रीडा । अतिरसमग्ना हि संसिद्धा एवेति ते गोपाः
 गायन्ति रसिकानन्दस्य यशः । ब्रजेश्वर्या सह सङ्क्रीडमानो मानेन
 रसिकानन्दो गवां यूथान्यनेकशो हरितपीतश्वेतशुभ्रधूमाताम्राणि विराज-
 मानान्यनुयाति । कपिलाकज्जलिकाशुभ्राशुभ्राभ्राजमानानि यूथान्यनेकशो
 राजन्ते । यूथेषु प्रतिपङ्क्ति घटोद्ग्रीः शतशो राजमानाः सा ब्रजेश्वरी
 प्रतिक्षणमभ्येति । गाः कृपादृष्ट्यासेदिवान् संपोष्यमाणो भवति । सिद्धाभं
 पञ्चयोजनायतं गवाममृतमयं मण्डलम् । गवां गणा गोपैः सह सङ्क्रीडिताः
 भवन्ति । तत्र दुग्धसिन्धुरास्ते । वत्सवत्सतरीसहिता महोक्षाः सङ्क्रीडमानाः
 भवन्ति । तत्र मलमूत्ररहिता गावोऽमृतसं संभुञ्जाना भवन्ति । तत्र तत्र
 ता गावः कुञ्जे निकुञ्जे क्रीडमाना भवन्ति । अतिरतिमग्ना गावः
 क्रीडापरा भवन्ति । नन्दगृहात्परितो गवां गणाः कोटिशः शोभमानाः

भवन्ति । ताः सर्वा गोप्यो दधिमथनक्रियापरा रसिकानन्दस्य ब्रजेश्वर्या सह क्रीडां तां तां लीलां गायमाना भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । कामदुधया किं तप आचरितम् ? अतिरतिप्रीतिः कथमभूत् ? यासामेव दुग्धदधिनवनीतरसा घृतरसास्तया निकुञ्जदेव्योपसेव्यमाना वृषभानुगृहे प्रकटिता भवन्ति । निकुञ्जदेव्या सह तस्मिन् गृहे पुरुषो ह वै सङ्क्रीडा-
मातनोत् । तस्मिन् गृहे गवां गणाः शतशो राजमाना भवन्ति । ताः किमाचरितवत्यः किं कृतवत्यः कामापेदिरे रतिप्रीतिं कथमासत ? किं शृण्वन्त्य आपेदिरे ? स होवाच नारायणोऽयम् । गवां भेदौ द्वावेव भवतः । संसिद्धाः साधनसिद्धाश्च । या गावो ब्रजमण्डले तिष्ठन्ति ताः संसिद्धाः भवन्ति । एकस्मिन्नवसरेऽहं तां ब्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सह संवल्लितां तस्मिन् ब्रजमण्डले मनसासेदिवान् । कामदुधा या तप आतनोत् तस्मिन्न-
वसरे वैकुण्ठे आगता । कामदुधा मां निरन्तरं ध्यानावस्थायां रममाणं वीक्ष्य विचारितवती । अहो नारायणोऽयं सदा लक्ष्मीकान्तोऽपि प्रतिकलं कस्य ध्यानापन्नो भवतितराम् । पश्चात् यं नारायणो देव्या सह ध्यायति स्म । यस्यावतारकलाः कोविदाः सर्वे ध्यात्वा उपजीवन्ति । यद्येवंविधो नारायणः सर्वसुखसंपत्तिपूर्णानन्दः कस्य ध्यानमापन्न आसेदिवानिति । तथैवेत्यस्या मनोभिलाषं ज्ञात्वाहमुवाचेदम् । अहो कामदुधे तव मनसि किमागतमिति । सोवाचेदम् ।

नमोऽनन्ताय महते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।

योगेशाय च योगाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥

त्वयानुगृहीता भक्ता आत्मानं तन्मयं मत्वा आत्मभावा भवन्ति । गवां यूथानि शतशो विराजमानान्यमृतरससंज्ञिता गावो भवन्ति । तस्मिन्न-
वसरे वनेषु तृणसंवल्लिता निकुञ्जा अतिरसपूर्णा जलाशयाः शतशः

शोभमाना आसते । तस्मिन् स्थाने संभाषमाणान् तृणजलौषधयः संभाष-
 माणा भवन्ति । अतिपुष्टा गावो गोष्ठ्या आसेदुप्यः सुखसंभोज्यदुग्धरस-
 घृतरसदधिरसनवनीतरसाद्यान् भावापन्ना दाशुष्यो भवन्ति । शुभ्रश्चेतर्बुरिताः
 गावो रससंवलिता गोष्ठान्यनेकशो राजमानान्यभियन्ति । ता गोप्यो
 दधिमन्थनघोषेण सह संगायमाना भवन्ति । तासां शृङ्गारसुखमापद्य-
 मानोऽभवत् । गोलोकादागता कामदुघा नारायणमुखाच्छ्रुतमात्रे गोवर्धनाद्रौ
 शिरसि मन्त्रं जप्त्वा तद्भावेनाभवत् । सा ब्रजेश्वरी रसिकानन्देन प्रत्यक्ष-
 भावमातेने । सा प्रसन्ना सती तां लीलां दत्तवतीति । नारायणः
 प्रत्युत्तरमुवाच । अहो प्रिये अस्य लोकस्य कथा श्रूयमाणा सर्वेषां
 निविशमाना हृदि गतं कामक्रोधादिकं नाशयति । अतिरतिभक्तिरापद्यते
 रसिकानन्दरतिरापद्यते । वर्णाश्रमस्वधर्मा बाधका न भवन्ति । कामदुघा
 गोवर्धनाद्रिशिरसि गोविन्दपुष्करिण्यां तपश्चकार । महामन्त्रममुं जजाप ।
 शृणु तन्मन्त्रध्यानम् । ॐ नमः श्रीराधारसिकानन्दाभ्याम् । मूलमन्त्रोऽयम् ।
 द्वादशाक्षरसंवलितमोङ्कारबीजसंवलितं यो ध्यायेत् स एव तां लीलां प्राप्नोति ।
 अत एव कृतं पुष्करिण्यां गोविन्दकुण्डमिति नाम्ना प्रसिद्धं कुञ्जम् ।
 पृथिव्यां तस्मिन्नद्रौ सा वनफलतृणौषधीर्मक्षयामास । सा कामदुघा तपः
 आचरन्ती तस्मिन्नद्रौ परिचक्राम । एवं शतं समास्तपं आचरितवती । यत्र
 गोवर्धनाद्रौ रत्नधातुमयलतौषधयः सदा प्रफुल्लिताः फलिता रससंवलिताः
 अतिशोभायमाना भवन्ति । यत्र गह्वराणि रत्नहाटकमयान्यनेकशः शोभाय
 मानानि क्रीडास्थानानि भवन्ति । अनेकरङ्गविचित्रा ओषधयो नानारङ्गैः
 रक्षिता एव यत्र फलपुष्पैर्भासिता भवन्ति । यत्र सा ब्रजेश्वरी रसिकानन्देन
 सह सङ्क्रीडामतितरामातनोति । यत्र सखीनां वृन्दानि विहारपराणि । तत्र
 तस्यां पुष्करिण्यां सा ब्रजेश्वरी स्वस्वरूपं दर्शयामास । रसिकानन्दरूपं

रसरूपमेव साक्षादेवंविधमतिगुणसंवलितमेवास्ते । नूतनो नवजायया सह
 क्रीडनं दर्शयामास । सा कामदुग्धा स्तोत्रं चकार । नमो रसात्मने । नमो
 ज्ञानात्मने । नमः सदावनविहारिणे । नमः स्वभक्तकर्मस्वभावदुःखनाश-
 हेतवे । नमः प्राकट्यदेहरूपिणे । नमो यमुनाजलकलोलविहारात्मने । नमः
 कामकेलिकौतुकात्मने । नमः कामप्रियाय । नमः कामात्मने । नमः काम-
 संवलितदेहदात्रे । नम आदिकर्त्रे । नम आदिहेतुरतिदात्रे । नमः श्रीराधा-
 ध्यानापन्नदेहात्मने । नमो रसात्मने । नमो रसलंपटपरिपूर्णदेहदातृरूपिणे ।
 नमोऽनिर्वचनविहारिणे । नमो रतिदात्रे । नमो रतिकेलिकलकौतुकात्मने ।
 नमो भक्तिरतिदात्रे । नमो ज्ञाननिर्वाणदात्रे । नम आनन्दस्वरूपिणे ।
 नमस्तद्द्रष्ट्रे । नमस्तस्य हेतवे । नमः कलरासज्ञानविहारात्मने । नमोऽगुणाय ।
 नमः सृष्टिरूपगुणदायिने । नमो गुणकेलिसुरतानन्दसुखभोक्त्रे । नमो भोग-
 दायिने । नमो भोगात्मने । नम आत्मरूपिणे । नमः सुरतानन्दरूपरसदात्रे ।
 नमोऽनन्तचरित्रदायिने । नमः क्रमलीलात्मने । नमः श्रीराधाकृष्णरूपिणे ।
 नमः श्रीकृष्णराधारूपिणे । नमोऽनेकविहारदेहधारिणे । नमः शतसहस्र-
 कोटिशो लक्षकोटिविहाररूपिणे । नमो ललिताप्रतिक्षणसुखदात्रे । नमः
 कुञ्जान्तरविशाखाद्यनेकसखीविहारात्मने । नम आद्यनादिरूपसंसिद्धभक्ति-
 रूपिणे । नमो दानधर्मदात्रे । नमः सुखरूपिणे । नमो ब्रजाविर्भावभावि-
 ताय । नमोऽत्यन्तदानरूपिणे । नमः सदा वृन्दावनश्रेणिविहारिणे ।
 नम आदिद्वादशवनविहारात्मने । नमः पृथिव्यां यानि रूपाणि सुन्दराण्यने-
 कशस्तत्तव विजानीयात् । इति लक्ष्मीलज्जाधृतिकान्त्यनेकाकाराय गुणरति-
 दायिने नमो नमः इति स्तुत्वा स्थितां कामदुग्धां तद्दर्शनमहोत्सवाकुलां
 रसिकानन्दस्तया निकुञ्जदेव्या सहोवाचेदम् । अहो का त्वं स्तुतिं ब्रुवाणासि ।
 मम भक्तिरिह लोके दुर्लभा । दुर्लभतरं वरं वरय । तव मनसि मम

दर्शनादधिकं न किञ्चिदवशिष्यते । तव स्तवेन यो नित्यं स्तौति समाहितः
 सदाभीष्टं प्राप्नोति । पुनरुवाचेदं कामदुघा यदि देयो वरो नाथ तव
 लोके वसाम्यहम् । गोरसदधिरसदुग्धरसनवनीतरसघृतसफाण्टरसैरहं सेवे ।
 रसिकानन्द उवाच । अनेकशः स्वाविर्भावेन लोके मम बल्लभा त्वं सदा वस ।
 अहं त्वां रक्षिष्यामि । वनविहारे यथेच्छं विहर । ये अनन्याश्रया मम
 भक्तास्तेषां न वर्णाश्रमधर्मा आन्तरालिका जायन्ते । तेषां न कर्माणि
 आन्तरालिकानि जायन्ते । तेषां साधनमान्तरालिकं न जायते । व्रतानि
 यज्ञाश्छन्दांसि योगक्षेमफलानि चानन्यानि धर्मसाधनानि यत्किञ्चिदपि
 कृत्यं सर्वमान्तरालिकं न जायते । ये ब्राह्मणाः कर्मज्ञानसाधकास्तेषां
 ज्योतिर्प्रागमकर्मसाधकास्तेषां च सङ्गो हठात् त्याज्य एवेति वचनमस्ति ।
 दशयोजनं व्रजपरिणाहः । तत्र पशुपक्षिणो मृगा गावोऽन्ये ये वृक्षाः
 अनन्यपरा आसते । अतिरसमग्ना गायन्ति । तस्मिन्मण्डले देवाः
 दर्शनकाङ्क्षा एव भवन्ति । भक्तक्रियामापद्यमाना भक्तास्तन्मण्डलं वन-
 विहारस्थानं ये व्रजवासमिच्छन्ति ते एव सर्वधर्मातिरिक्ता भवन्ति ।
 कर्मातिरिक्ता भवन्ति । सङ्गातिरिक्ता भवन्ति । व्रजमण्डलोपासकाः
 भवन्ति । अहो लक्ष्मि सा सृष्टिस्तु सृष्ट्यतिरिक्तैवास्ते । तत्सृष्टेरुत्पद्यमानो
 रसमार्गमाश्रितो भवति । मनः सोत्साहं यद्येतस्मिन्मण्डले तदङ्गीकारं
 प्राप्तोऽमनोमोहोऽतितरां प्रतिसंयोक्ष्यमाणस्तं रसमनुभवन् भावापन्न आस्ते ।
 यदा यदा देवाश्च पितरश्च कालश्च व्रजातिसाधने यतन्ते तावत्सहस्र-
 शाखाध्यायी भवति । सर्वयज्ञकर्मकरोऽपि तन्मण्डलं स्वप्नेऽपि न जानाति ।
 ज्ञानिनो ये ब्रह्मबोधका योगिनस्तपस्विनस्ते स्वप्नेऽपि तन्मण्डलं न जानन्ति ।
 सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । कैश्चिद्द्वैस्तान् भक्तान् जानीमहे । स होवाच ।
 ते सदा प्रेममार्गिणो भवन्त्येव । न निर्विण्णा नातिसक्ता गृहादौ विषयादौ

नातिसक्ता यदृच्छया प्राप्तवस्तुमात्रमुपसेवमाना एव भवन्ति । न निर्वेदो नाश्रमो न कर्म यदृच्छाकथासेवा भक्तानां प्रीतिरनन्या भक्तिर्भवति । एवंविधसंसारातिरिक्तः स्वभावसंसिद्धो भवति । ततस्तां लीलां प्राप्तवन्तो भवन्ति । एवमुपासकास्तस्मिन्मण्डले गत्वातितरां संयोक्ष्यमाणाः आपद्यन्ते । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रसमार्गीया भक्तास्तन्मण्डलं प्राप्तवन्तः । तेषामेका दशा । तेषां का गतिः ? स होवाच । तन्मण्डलोद्भवाः भक्ता आत्मरतिगुणा रतिगुणाढ्या अनन्यमार्गाढ्यास्तां लीलां प्राप्तवन्तस्तन्नामाङ्कितवर्ष्माणस्तुलसीकाष्ठाङ्कितदेहा आत्मनाम्ना सुखालङ्कृतशरीरा रासादिलीलाध्यानावस्थायामापद्यमाना युज्यन्ते । कुञ्जे निकुञ्जे श्रेण्यां श्रेण्यां रतियोग्यताभावमापद्यमाना भवन्ति । तामेव कथां प्रतिक्षणं नूतनामासेवमाना आसते । श्वपचो वा ब्राह्मणो वा वर्णान्तरो वा यो भक्तानां सह सङ्गमापद्यते स एव तां लीलां प्राप्तो भवति । रतिमासेदिवान् यदि तदुच्छिष्टे कदाचिदन्नबुद्धिस्तेषामस्ति । तदुच्छिष्टे जले सदा तीर्थबुद्धिः भवति । तत्र तत्कथायां साक्षाद्बुद्धिर्भवति । ये मण्डलमुपासमानास्तेषां को धर्मः ? किं कर्म ? को रसो भवतितराम् ? ये तन्मण्डलमुपासमानाः भवन्ति तेषां किं तीर्थव्रतयज्ञधर्माः सन्ति ? किं बाध्यमानं भवेत् ? तेषां मुख्यं मनो भवति । ये गुणाढ्या रसरूपिण आनन्दरसनिमग्नास्ते गुणतद्वागिनो भवन्ति । तन्मात्रप्राप्तमार्गोऽयं लोकः सदाण्डजो भवेत् । आत्मानन्दे मग्नासु ये रात्रौ दिवा ब्रजध्यानापन्ना भवन्ति सदा तेषां नित्यं निकुञ्जदेव्या अनुग्रहो भवति । ये महालीलायामत्यासक्तास्तेषां कदाचित्कालधर्मभयं न भवत्येवेति सद्यः कृतार्थतोत्पद्यमाना भवति । अवर्णोऽपि सर्वर्णतां प्राप्नोति । ये न भवन्ति ते दुष्टगतयो भवन्ति । ये ब्रजमण्डलोपासकास्ते ब्रजे निवसन्ति । ये रासमण्डलोपासकास्ते रासलीलां

प्राप्नुवन्ति । अनन्तसुखं संभुञ्जते । या यशोदाद्या लीलामुपासमाना भजने प्रपद्यमाना भजनानन्दे संयोक्ष्यमाणा भवन्ति । ये नन्दादयोऽत्यन्तसखी-भावमुपासमाना अत्यन्तसङ्गं प्राप्तास्ते रमणानन्दसखीसमूहं प्राप्ताः । ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति ये निकुञ्जदेवीं ध्यायन्ति रमणानन्दमुपासते । अत्यन्तं सुरतानन्दं प्राप्ता ये संयोक्ष्यमाणा ब्रजमण्डलं मध्यस्थानं भजन्ति ते महालीलां प्राप्य संभोगसुखं संप्राप्नुवन्ति । स आह लक्ष्मीम् । श्रुत-परकाष्ठा ये सखीभावं प्राप्तवन्तस्ते गोपास्तां लीलां संप्राप्नुवन्ति । यः सर्वधर्मान्परित्यज्य तन्मण्डलोपासको भवति स एव तां लीलां प्राप्य सर्वव्रतातिरिक्तो ज्ञानातिरिक्तो विधूतविधिनिषेधकृत्याकृत्यगुणा-गुणभावाभावः सदा सङ्कल्प्यमाणो लीलायां प्रतिपद्यमानः संयुज्य-तेऽतितरां रसे । अहो लक्ष्मि षड्विधेयं रासमाया कथिता । सर्वा लीलां परित्यज्य तत्स्थानं प्राप्तवन्तो भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । कीदृश्विधं रासस्थानम् ? निरन्तरं तत्स्थानस्योपासका यदुपासनामात्रात्तां लीलां प्राप्नुवन्ति तद्वर्णय । स होवाच नारायणोऽयम् । एकं सहस्रादित्य-सङ्काशमतिह्लादमयम् । अहं ब्रह्मा रुद्रो देवा दिक्पाला यस्मात्समुत्पद्यमानाः यस्य प्रतापात्तस्मिन् स्थाने संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेकशो भक्ताः । यत्र मणय आधिदैविकेन रूपेण तेजांसि ददति । यत्र संसिद्धः सूर्यः सखीरूपं विधायोपसेवते । सूक्ष्मसूक्ष्मरूपं विधाय यत्रात्मना चन्द्रः सेवमानो भवतितराम् । यत्राग्निः सखीरूपं विधायोपसेवमान आस्ते । देवास्तस्मिन् स्थाने सदा संसिद्धा एवोपसेवमाना आसते । पृथिव्यां सूर्यचन्द्रनक्षत्राणि अन्ये ये साधनोपकारकास्ते सर्वे उपसेवमाना एवासते । अन्यास्तु यस्मात्स्थानादिमाः प्रजाः समुत्पद्यमाना भवन्ति तल्लोकं वर्ण-यामि । अनेकशः कोटिब्रह्माण्डकान्यतिशयाविर्भावमापद्यमानानि सन्तितराम् ।

तस्मिन् स्थाने मध्ये मध्ये आवरणज्योतिरास्ते । आवरणस्य मध्ये सहस्रयोजनपरिणाहवति गुणगणनाय श्रीराधाकृष्णस्य गुणगणाः सङ्गीयन्ते । प्रथमपरिणाहे गवां गणाः क्रीडापरा एव भवन्ति गोपगोपीभिः । एतानि क्रीडास्थानानि तृणजलौषधीलताफलपुष्पपत्रकोमलान्यासते । मधुघृतदुग्ध-
दधिनवनीताद्या रसाः संसिद्धा भवन्तितराम् । यत्रान्नानि खाद्यपेयचोप्य-
लेह्यविविधपक्करसानेकसंवर्लितानि भवन्ति । यत्र वृक्षा अमृतमधुधाराः
अतितरामासेदुषां वर्षन्ति । यत्र पुष्करिण्योऽमृतपूर्णा भवन्ति । तत्रामृतं
पीत्वा जरामरणगर्भोत्पत्तिविनाशा न भवन्तितराम् । अमृतोदं नाम सरो
देवैरुपपीयमानं भवति । तया निकुञ्जदेव्या स्वदृष्ट्यमृतेन संपूर्यमाणं भवति-
तराम् । तस्मिन् स्थाने गोपगोपीगणाः पुलिननिलीनाः सदा क्रीडापराः
भवन्ति । द्वितीयपरिणाहे वाटिकाः क्रीडास्थानानि वृक्षाः पक्कफलपुष्पनम्राः
पत्रैर्नम्रा धारा आसीदन्ति । क्रीडापराणां गोपीनां गणा निकुञ्जदेव्याः
श्रीराधायाः स्वावेशेन क्रीडापराः सुरतानन्देन संभोक्ष्यमाणा भवन्ति ।
यत्र भक्तास्तत्क्रीडापरास्तद्वचनपरास्तद्रूपा आसते । तस्मिंस्थाने ये भक्ताः
सदा रसमार्गिणस्तेषां सङ्ग आस्ते । अहो भक्तिमार्गरससंवर्लितोऽनुभवन्
तस्य सङ्गं रसिकानन्दस्वरूपो भवति । धर्मः स एव कर्माणि स एव
विद्या स एव भवति । ये धर्मास्ते अधर्माः । ये कर्माणि तान्येवाकर्माणि ।
तृतीयमावरणं महाक्रीडास्थानम् । तस्मिन् स्थाने एकसप्तत्यधिककोट्यो
निकुञ्जाः शोभायमाना आसते । यस्मिन्नावरणमध्ये रमणस्थलानि
कोटिशो राजमानानि । यस्मिन् स्थाने मणीनां बलयाः सुगन्धयुताः
राजमाना भवन्ति । पद्मरागमणिलताग्रथिता नीलमणिपुष्पसंवर्लिता भवन्ति-
तरां मध्ये मध्ये । विद्रुमकृता हाटककोटयो लताग्रथिता हाटकभूमिषु
रमणस्थानं शोभाढ्यं कुर्वन्तितराम् । रमणानन्दोऽयं सदा भक्तानां

सुखकरो भवति । यस्य लोकस्य कथाश्रवणमात्रात् सर्वे वर्णाः सर्वे धर्माः विधर्माणः प्रतिभान्तितराम् । यस्मिन्नावरणे स्वामिन्याः श्रीराधायाः श्रीरसिकानन्दस्य च सदा क्रीडास्थलं भवति । मणिलतानां सञ्चारे हंसीनां यूथान्यत्यन्तसोल्लासानि पीतग्रीवाणि रक्तचञ्चुपुटानि राजमानानि भवन्ति । ते सुस्वरेण संज्ञिता इव सामगानं कलकण्ठैः कुर्वन्तो भवन्ति । तस्मिन् आवरणे लतायां शुकयूथान्यत्यन्तहरितानि रक्तचञ्चुपुटानि पीतपुच्छपक्षाणि । यैः प्रतिशाखं गान्धर्ववेदो गीयमानो भवति । यस्मिन्नावरणे श्रीराधिकायाः स्वाङ्गात् संभाविताः सख्यः क्रीडापरा भवन्ति । सोत्साहा सोत्कण्ठा प्रेमप्रेक्षणा हास्यवती कटाक्षगुणवती सुखेहा मलिना शय्योपकरणा पुष्पवती निःशङ्का निर्लज्जा सुरतोत्कण्ठा सुरतानन्दा मालावती सुखश्रमा कलावती कलाकोविदा गुणज्ञा शृङ्गाररसा कामभाविता भावोत्साहा निद्रा-जागरिता सरससुखेत्यादिनानासख्यो रतिशृङ्गारमनुभवन्त्यो भवन्ति । निरन्तरं ताः सख्यः क्रीडापराः कुञ्जान्तरे रसिकानन्दं सेवमाना भवन्ति । लतान्तरे भक्ष्यभोज्यानि ताम्बूलाद्या भोगाः कामकेलिरसान्तरे सुखभोग-रसक्रीडाः कृतवत्यो भवन्ति । एतां लीलां संसिद्धाः सखीनां गणाः पक्षिणां गणाः प्राप्तवन्तो भवन्ति । साधनसिद्धास्तस्मिन्नावरणे क्रीडापराः भवन्ति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । केन साधनेनेदं स्थानं दृष्टिगोचरं भवति । स होवाच । सृष्टौ त्रयो योगा भवन्ति । ज्ञानयोगः कर्मयोगो भक्ति-योगश्चेति । तेषां त्रयाणां योगानां मध्ये प्रेमयोगोऽतिरिक्तो भवतितराम् । वेषामेव प्रेमसंपत्तिस्तेषामेव सुरतानन्दसुखं भवति । न धर्मेण नेष्टा-पूर्तेन न वर्णेन नाश्रमेण न तीर्थेन न व्रतेन न देहशोषणयोगेन न वेदोदितेन कर्मणा न धर्माधर्मविचारसाधनेन तत्स्थानं भवति । यो मनसि निरन्तरं तद्व्यानापन्नो भवति तस्य भवति । यत्र यत्र स्थितं

तत्र तत्र तमेव धर्मं जानीमहे । तमेव सुखं जानीमहे । तद्भानिः
तदन्तरायः । तदेव सुखं यत् तद्वक्तैः सह संभाषणात्तस्यावरणलीला-
वार्तायाः कालनिर्यापणम् । गृहोत्सवे येषामुपार्जितवस्तुमात्रं तदर्थं विनिहितं
भवति ते तल्लोकं प्राप्नुवन्ति । अहो लक्ष्मि इयं सृष्टिस्तु रसरूपिणी
भवति । तेषां रसमार्गव्यतिरिक्ता धर्मा बाधका एव भवन्तितराम् ।
मनःसङ्ग्रहमानीय मनसा भावेनेन्द्रियाणि मनसि धृत्वा मनसा भावेन
अहोरात्रं लयमापद्यन्ते । यस्मिन्नावरणे मनो निमग्नतां प्राप्नोति । तथा
निकुञ्जदेव्यानुगृहीतो रात्रौ दिवा कालेऽकाले तन्मार्गीयस्तल्लोकं सेवमानो
भवति । अहो मनसो वृत्तिरतितरां चञ्चलापि ते भक्ताः संसारासक्तिरहिताः
लोकेऽनेषणात्मानस्तन्मया अनपेक्षाश्चित्ते संपूर्णाः प्रशान्ताः समदर्शिनो
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहा भवन्ति । तेषु नित्यं महाभागाः
अन्यमार्गरहिता हि ये आत्मानं तन्मयं पश्यन्तस्त एवात्मानं सेवन्ते ।
ये तन्मार्गीयाः सन्तः सदोपासकास्तेषां प्रेमलक्षणकाष्ठाप्रतीक्षा भवति ।
अहो चतुर्थावरणं महास्थानम् । यस्मिन्नावरणे स्वामिन्याः स्वयं
विहारस्थलमस्ति । शतसहस्रकुञ्जा निकुञ्जा लतावती सुवर्णवर्णा विद्रुमलता
अमला निर्मला व्यक्तमुक्तालता आजमाना आसां सखीनां सञ्चा-
रोऽत्र स्थान आस्ते । सूक्ष्मलतान्तरे शय्योपकरणानि । अनेकलतान्तरे
रासक्रीडा भवतितराम् । अयं रासः सहजसंवलितो भवति । तस्मिन्नावरणे
अतिक्रीडापराणि रूपोणि कृत्वा रासलीलासुखमनुभवन्ती सा ब्रजेश्वरी
रसिकानन्देन सह सङ्क्रीडमाना आपद्यते । पञ्चममावरणं तेजोमयम् ।
अमृतमय्य ओषधयो राजमानाः फलपुष्पयुताः पक्वफलरसयुक्ता भवन्ति ।
अन्नरसाः सुपच्यमानाः सरसाः कटुतिक्तमाधुर्यमिष्टरससंयुक्ता अनेकशः
स्थानेषु तथा श्रीराधिक्रिया सेव्यमाना रसिकानन्देन संमोक्ष्यमाणः

विराजमाना भवेन्ति । आत्माविर्भावेन नानासुखं भवति । भोगस्थानं भवतितराम् । स्थाने स्थाने तस्मिन्नावरणे रतिसुखं भवतितराम् । षष्ठमावरणं तेजोमयम् । यस्मिन् हाटकमयानि मन्दिराणि विराजमानानि भवन्ति । शतं मन्दिराणि तेजोमयानि यत्र राजन्ते । सुवर्णजटितमणिभिराक्रान्ताश्चामीकरखचिता मञ्जूषाः शोभायमाना भवन्ति । यत्र राजमानानि हाटकमणिजटितानि भूषणानि यथायोग्यानि वस्त्राणि भवन्तितराम् । यत्रावरणे संभोगस्थाने सखीनां समूहाः शृङ्गारवत्यादयो राजमानाः भवन्ति । आत्मानं शतधा कृत्वा अनेकभोगरसरतिसुखं संभोक्ष्यमाणाः भवन्ति । सप्तमावरणं क्रीडास्थानं सहस्रयोजनायतम् । परितः परितो मणिस्तम्भा अतिरसाढ्याः सुगन्धाढ्या भवन्ति । अतिरसगुणाढ्या भूः हाटकसुगन्धकोमला आविष्टसुखाढ्या भवतितरां संभोक्ष्यमाणैव । यत्र वल्लीनां सञ्चाराः परापरसञ्चारा एवासते । हाटकजटितमणिज्योत्स्नाभिः सर्वं प्रतिविम्बितं वस्तुमात्रम् । तत्र कलावती गानवती सुगन्धा नृत्यपरा विशदा भोगपरा भोगवती भोगाभिज्ञा रतिकलाभिज्ञा कामसुखा कामातुरा निःशङ्का सदानन्दा सुरतसुखा सुरतानन्दा सुरतमग्ना आसनभेदाभिज्ञा अतिरसदानाभिज्ञा रसदा रसदातृभोगाभिज्ञा एताः सख्यः संसिद्धा अन्याः साधनसिद्धा अनेककलाकोविदा भवन्ति । तत्र मण्डलावरणे महास्थानं सशय्योपकरणम् । कलावती शय्योकरणानि करोति । सुरतोत्साहा सुरतोत्कण्ठां ददाति । निर्लज्जा निश्शङ्कं सुखं ददाति । सुरतोद्गमा आलिङ्गनचुम्बननमितप्रेमभररससुखं ददाति । रतिवती रतिसुखं ददाति । रतिकल्लोला रतिभररसालस्यमुकुलितनयना केलिसुखं ददाति । निभृतनिकुञ्जगृहं गतया तया देव्या सह रसिकानन्दः सुखमनुभवन्नास्ते । तस्मिन्निकुञ्जे सुरचिता सखी प्रतिकुञ्जं शय्यासुखं करोति ।

एका कलहंसी निरन्तरं तस्मिन्नावरणे सखीनां मण्डले मध्यस्था सदा क्रीडापरा कलशब्देन तां श्रीराधां रसिकानन्दं च क्रीडमानाऽभ्येति । तस्मिन्समये सुस्वरकण्ठेन सूक्ष्मस्वरं यथा भवति तथा तं गायमाना भवति । मानलीलायां रसिकानन्दवचनात्तां ब्रजेश्वरीं प्रसादयति निरन्तर-मतिमनोत्साहं च ददाति । सा ब्रजेश्वरी कलहंसी प्रत्यापद्यमानैव भवतितराम् । सा कलहंसी रसिकानन्दस्यातितरां वल्लभतया सुखमनु-भवन्ती संरोचते । सा सदा जागरिता सा सदा गुणज्ञा सा सदा रससुरतभोगज्ञा भवतितराम् । सा कलहंसी सर्वासां सखीनां मनांसि प्रतिहरति स्वक्रीडया । सा कलहंसी रसिकानन्दस्यातिवल्लभा भवतितराम् । सा कलहंसी साधनसिद्धैवेति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । अहो ! कलहंसी पूर्वं केन साधनेनेदं स्थानं प्राप्तवती । महास्थानं प्राप्तवती । अत्याश्चर्यम् ! निरन्तरं केन साधनेन श्रीराधायाः क्रीडासखी भवतितराम् । स होवाच नारायणोऽयम् । सा कलहंसी सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः पुत्री सरस्वती । सर्वविधाः प्रभवा यस्याः सकाशादुत्पद्यन्ते । चत्वारो वेदा उपवेदाः पुराणानि धर्म-शास्त्राणि पृथिव्यां यानि वर्तिष्यमाणानि तानि तस्या उत्पद्यमानानि भवन्ति । सा ब्रह्मणः पुत्री आप्तयौवनैवास्त । सा एकस्मिन् समये मम लोकं प्राप्ता ममोपासनां चक्रे । स्वसुखार्थं मम ध्यानापन्नाऽभवत् । बहुकालं मामुपसेव-मानाऽभवत् । तस्या भजनेन प्रसन्नोऽहं मम लीलास्थानं वैकुण्ठं दर्शितवान् । तस्मिन् त्वया मया क्रीडितानि स्थानानि संराजन्ते । यत्र वैकुण्ठे अनेकशो भक्ता जयन्तकुमुदजयविजयगरुडाद्याः शतशः पार्षदा राजमाना भवन्ति । यत्र चतुर्धा मुक्तयः सेव्यमाना आसते । यत्र वनानि कोटिशोऽतितरां सन्ति । सा वाग्देव्यतितरामुत्कण्ठमना अत्यन्तं सुखसमाविष्टमना मम कृपादृष्ट्या सुखं प्राप्ता महालीलां प्रार्थयामास । तदा मयोक्ता सा

वाग्देवी — त्वं ब्रजवासे ब्रज । पृथिव्यामच्छोदं नाम सरः कामवने सुगन्ध-
शिलायामस्ति । तत्राच्छोदे मज्जयित्वा सुगन्धशिलायां ब्रजेश्वरीं ध्यायमाना
रसिकानन्देन सह आपद्यस्व— इति । तत्र तत्स्थाने सर्वात्मभावेन प्रीतिरुत्पद्य-
माना भवति । प्रेमानन्दमनुभवन्तो भक्तास्तल्लीलोपयोग्या भवन्ति । सा
निरन्तरं वृन्दावनं कामवनं श्रीगोवर्धनमुपसेवमानासेदुषी । अच्छोदेऽप्सरः-
पुष्करिण्यां निरन्तरं मज्जमानाऽभवत् । शतं समा ब्रजलीलां सेवमानाऽभवत् ।
एकस्यां कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तस्मिन् तद्वासिनो रासलीलां कुर्वन्ति ।
बहवो भागवतानां समाजे कलहंसीरूपं विधाय तां लीलामदर्शयन् । निशि
दिने सा ब्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह दर्शनदृष्टिगोचरो भवतितराम् ।
अत्यानन्दरूपे सखीनां समूहमध्यस्थे महाक्रीडापरेऽतिमहामोहनरूपं दृष्ट्वा
इन्द्रियशुद्धिप्रेम्णा भावापन्नाऽभवत् । प्रसेदुष्यतिसुकोमललावण्या सा वरं
वरयेत्याह । सोवाचेदम् । यदि देयो वरस्तर्हि महालीलायां सदाहं सहचारिणी
भवामि । किमन्येन वरेण । अयं तावन्मनोभिलाषो यल्लीला दृश्यते ।
तथेत्युक्ता सा ताभ्यां स्वस्थानं ययौ । या सा तद्दिनमारभ्य क्रीडापरा
भवतितराम् । कुञ्जे निकुञ्जे तेनैव कलहंसीरूपेण प्रतिशाखं लीयमाना
सामगानेन मनोभावेन स्तौति नानाकौतुकक्रीडामकरोत् । सा महार-
मणस्थानं प्राप्ता । महालीलायां मग्ना रतिसुखमनुभवन्त्यास्त । सा
कलहंसी स्वयूथं विधाय कदाचित्समये रात्रिपरभागे सुरतोत्थितां लीला-
मगायत् । कदाचिन्मज्जनलीलामागायमाना भवति । शृङ्गारलीलायां शृङ्गारं
प्रति प्रतिक्षणं नूतनस्वाविर्भावरोद्धवा भवतितराम् । लीलामागायमाना
संभोक्ष्यमाणा भवति । भोगावस्थायां स्रक्चन्दनताम्बूलागुरुरसमृग-
मदकर्पूरकेसरसंवलितान्यास्तरणानि प्रतिक्षणं नूतनानि । अनेकशय्यायाः
सुगन्धशृङ्गारादुपरिप्रफुल्लितलाग्रथितपरस्परशुभाङ्गशोभनचन्दनवृक्षालम्बिताः

सुवर्णगन्धेन युता लतान्तराः सन्तितराम् । तत्र शृङ्गारे रतिशृङ्गाररसस्थानं
सङ्गायमाना भवतितराम् । भूषणस्थानं सुगन्धं सुवर्णम् । सुवर्णजटिता मणयः
सुष्ठु गन्धेन पूर्यमाणा भवन्तितराम् । वस्त्राप्यतिसुगन्धेनातिपद्यमानानि
परिधापयति । एवं कलहंसी वाग्भिः स्तुतिं चकार । अत्यर्थं सा निकुञ्जदेव्या
गानवल्लभा भवति । महाशृङ्गाररसोऽयम् । द्विधिनिषेधमार्गाननुसारिणी
शृङ्गाररसादनन्तरमात्मभावे भवति । रसमग्ना भवति संभाष्यमाणा मनोभव-
भावे भवति । आत्मभावेनेयं प्रत्यनुकरणं क्रियमाणमातनोति । वनलीलां
मनस्यातनोति । अतिरतिं संयोक्ष्यमाणा कलहंसी रात्रौ दिवा लतान्तरेषु फल-
मिष्टं मधु राधाया दत्वान्यदासेवते । तत्रैका पुष्करिणी मिष्टामृतसंपूरिता
भवति चतुर्योजनायता । तत्र पद्मपण्डानि सुवर्णसुगन्धसुकोमलानि
मनोहराणि भवन्ति । तस्मिन् पद्मवने विहारक्रीडापरा कलहंसी सुरोचमाना
भवति । अहो लक्ष्मि तस्मिन् केन भाग्योदयेन तस्या निकुञ्जदेव्या अनुग्रहेण
अनन्याश्रयधर्मोत्पत्तिर्यदा भवतितरां तदा रतिराविर्भवति । तावद्देहोपाधिकर्म-
क्षुत्तृट्पिपासामोहभयदुःखं तथा सुखानि तथा न भवन्ति यथा देवादीनाम् ।
व्रतोपवासधर्माधर्माः पितृकार्याकार्याणि यत्किञ्चिद्धर्माः शोभमाना धर्माः
अन्यान्युपवासमयानि पापपुण्यानि ज्ञात्वा यः सर्वधर्मातिरिक्तो भवेत् स
एव तन्मण्डलं प्राप्नोतीत्याह । अहो रम्यं पुण्यमाचरेत् । अतितरां भावो
भवेत् । संभोगलीलायां सुरतानन्दोऽयं लोकः सोऽवशिष्यते । सुरतानन्द-
सुखमनुभवन्तो भक्ता आत्मानं तन्मयतां नयन्ति । धर्माधर्मौ त्यक्त्वा समाः
सहजभावा भवन्ति । अतिरसमग्ना विद्यातपोध्यानमैत्रीकलागुणसंयुक्ताश्च
भवन्ति । अन्यप्रतिपत्तिसहितो नास्तिको न लभते तल्लोकप्राप्तिम् । अहो लक्ष्मि
कदाचिन्महाभाग्योदयेन अस्मिन्नावरणे प्रीतिरास्ते । यत्र वृक्षाः फलैर्नग्नाः
पुष्पमिष्टामृतमयरसमग्ना भवन्ति । यत्र शाखाः पुष्पनग्ना भवन्ति । पद्मे

आवरणे संसिद्धानि शुक्पिकयूथानि संराजमानान्यासते । केचिदाम्रवृक्षाः पक्कफलाः सदा संभोक्ष्यमाणा आसते । अतिरसमग्नः साधनसिद्ध एकः शुकोऽत्यन्तवल्लभोऽस्ति । यस्य पक्षचञ्चुकाः सा ब्रजेश्वरी स्वहस्तेन मार्जयति । रसिकानन्दोऽपि स्वहस्तेन भक्षं ददाति । तस्य सहचारिण्येका शारिका आस्ते । सा साधनसिद्धा भवतितराम् । तच्छुक्शारिकामिथुनं रसिकानन्दक्रीडायां सहचार्येव भवतितराम् । तत्र रसिका सा शारिका निरन्तरक्रीडापरा भवति । सुवर्णवर्णासु भूमिषु रत्नपरिधिषु सशय्योपकरणं विहारस्थलम् । तत्र वृक्षसञ्चाराः सुशोभाढ्या भवन्तितराम् । तत्र शुक्शारिकाः साधनसिद्धाः क्रीडापरा भवन्ति । अत्यासक्ता महाक्रीडायां संभवन्ति । अहो रसमार्गोऽयं दुर्लभतरोऽप्यासीत् । अहो महाभाग्यवशात्तस्याः निकुञ्जदेव्या अनुग्रहादत्यन्तप्रियतमो भवति । प्रीतिः प्रीत्या भवति भक्तिर्भक्त्या भवति स्नेहः स्नेहेन भवति तस्माद्भाग्योदयादतितरामासेदुषः । अहो भाग्यवन्तः कृतकृत्यवन्तः सर्वे तीर्थवन्तो भवन्ति । अतिरसमग्नः अतिभुञ्जाना अत्यन्तसुखमनुभवन्ति । य इमां लीलां संभुञ्जमानाः भवन्ति य इमां लीलामुपासमाना एव भवन्ति ते भक्ता भवन्ति । यदा महाभाग्योदयो भवतितरां तदास्यां लीलायां प्रत्ययो भवेत् । ते धर्मकारिणः, ते व्रतकारिणः । येषां लीलायामुपासनारुचिरास्ते ते व्रतकारिणो भवन्ति । यस्य महालीलायां मनोऽभ्येति । यो विधौ च प्रतिषेधे च निर्विद्य अस्यां लीलायां मनोभावापन्नो भवेत् स एव लीलोपयोग्यो भवेत् । ये प्रत्ययकारिणः तेषामनुग्रहः । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रहस्यलीलायां मनो भावापन्नं भवति । अत्यन्तरत्याविष्टचित्ता भावापन्ना भवामि । कः शुक्ः ? का शारिका भावापन्ना ? यस्यां रसिकानन्दोऽत्यन्तस्नेहाविष्टमना भवति सा ब्रजेश्वरी अत्यन्तं स्नेहं चकार । अतिदुर्लभतरं स्थानं प्राप्तम् । अविच्छिन्ना रतिगति-

योग्यता संयोक्ष्यमाणा भवतितराम् । स होवाच नारायणोऽयम् । शृणु लक्ष्मि
आदौ सृष्टेः सुमन्तो नाम ब्राह्मणः कौशिकगोत्रात्समुद्भूतो भवति । स कान्य-
कुब्जदेशे समुद्भूत आसीत् । अतितरां भावापन्नोऽभवत् । तस्य मनोरमा
भवत्यतिशयभक्तिमार्गरता । तौ दम्पती अतिसुभगावतितरस्नेहसंपन्नौ
निरन्तरसेवायां संयोक्ष्यमाणरती आसाताम् । तौ दम्पती अतिस्नेहेनाविष्ट-
चित्तौ काले काले तां ब्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सह उपसेवमानावासाताम् ।
तावतिवनलीलायामत्यासक्तौ भवतः । कस्मिन् कियद्भाग्योदयेन भक्तानां
सङ्गेन वनं वृन्दावनं प्राप्तौ ? तत्र वृन्दावने कामवने कदम्बषण्डे
वृषभानुपुरे नन्दग्रामे पावनसरसि प्रतिपद्यमानावभवताम् । एवंविधे रहसि
क्रीडाविहारे कियत्कालं वासमालम्ब्य तिष्ठन्तावभवताम् ? दम्पती साभिलाषौ
वने अत्यासक्तावभवताम् । मनोरथेन सह ब्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह
दृष्टिपथमापेदे । महालीलायां क्रीडापरौ संभावमाणौ संयुज्जाताम् ।
तद्दिनमारभ्य तौ दम्पती महालीलायां क्रीडापरावभवताम् । सा लक्ष्मीरुवा-
चेदं रहस्यम् । ब्रजवासिनीसृष्टिः कीदृग्विधा ? ये संसिद्धास्ते कीदृग्विधाः ?
अन्ये के जीवाः सृष्ट्यादौ प्रकटिताः ? जीवस्य कीदृग्विधं रूपम् ?
बन्धमोक्षौ कीदृग्विधौ भवतः ? पुनः स होवाच नारायणोऽयम् । अहो !
प्रपञ्चोऽयमनादिसंसिद्धो भवति । यथा ब्रह्म त्रिविधात्मकम् । सच्चिदानन्दा-
त्मकम् । सत्तु व्यापकतयास्ति । तेजोमयं चिदस्ति । आनन्दमयस्तु
पुरुषोत्तमोऽतिरिच्यते । यथा ब्रह्मानन्दोऽयं लोकः सच्चिदानन्दो भवति तथा
जीवसङ्घस्त्रिविधो भवति । सोवाचेदम् । किमयं जीवसङ्घो भवेत् ?
तेषां का दृष्टिः ? कावस्था भवति ? स होवाचेदम् । शृणु । अनादि-
संसिद्धोऽयं जीवश्चिदंशो भवति । सोवाचेदम् । यदि चिदंशो जीवः
कथमज्ञानेन जडतां प्रपद्यते । स होवाच । यथा अनादिसंसिद्धोऽयं

जीवसङ्घस्तथा मायाप्यनादिसिद्धा भवति । सा त्रिविधा व्याप्य तिष्ठति । स एवं जीवस्त्रिविधो भवति । सोवाचेदम् । जीवसङ्घस्त्रिविधस्तिष्ठति । वर्णय । स होवाच । सद्रूपः संसारात्मको भवति । नानाकर्माणि करोति । वर्णाश्चाश्रमाश्च धर्माश्च साधनानि संयुज्यन्ते । तेषामुत्पत्तिः स्थितिः । चिद्रूपो जीवो ज्ञानी भवति । स निष्कर्ममार्गीयो भवति । ये जीवाः आनन्दरूपास्तेषां सर्वधर्मत्यागात् रसानन्दस्वरूपा महालीलोपसेव्यमानाः आसते । तान् धर्माधर्मौ न बाधेते तस्यां महालीलायाम् । सोवाचेदम् । कया मायया संयुज्यमानो जीवः कर्ममार्गरतो भवति ? स होवाच । मायारूपं त्रिविधम् । यद्रूपं सद्रूपं तन्मायासंवलितोऽयं जीवसङ्घः कर्मकाण्डरतो भवति । चिद्रूपया मायया संवलितो जीवसङ्घः संन्यासी भवति । आनन्दसंवलितया माययानन्दात्मक एव भवति । आनन्दरसस्तु महालीलायाः कारणं भवतितराम् । तेषां कर्माणि याथातथ्येन वदामि । तेषां ये कर्ममार्गीयाः कर्मप्रतिपादका महावनलीलायामप्रत्ययकारिणोऽसुराः कर्मजडा अन्योपासकास्तदुपाधितयान्यमार्गी न विन्दन्ते । अग्नेरुपासकास्ते यज्ञकर्मवासनात्मकलिङ्गशरीरेषूत्पत्तिं भजन्ते । तेन वासनात्मकेन लिङ्गेनोत्पत्तिस्थितिलयानापद्यन्ते । तस्माल्लिङ्गशरीरात्मकोऽयं जीवस्य स्वभावः । यदा सर्वा वासना विधूय महालीलायां प्रविष्टचित्तो जायते अहो लक्ष्मि लीलां ज्ञात्वा ज्ञात्वा ध्यायमानो देहजनितकामक्रोधलोभमोहभयसुखदुःखलज्जालज्जा-ज्ञानमोहमत्सरदीनागममन्त्रतन्त्रौषधिरसज्योतिषवाग्विलासप्रपन्नान् नाना-संसारजनितानेकशः सात्त्विकराजसतामसान् संराजमानधर्माधर्मानतित-रामभिमानगुणान्निरस्यन् महालीलां प्रविष्टो भवेत् । आत्मानं तन्मय-मातनोति । अन्यत्र कापि विषयान्तरे प्रविष्टचित्तस्तद्रा तं लिङ्गं प्राप्नोति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । त्वयोक्तं जीवस्य मायाधीनत्वं जीवो येन वासनालिङ्ग-

शरीर उत्पद्यमानो भवति । किं बलं येन प्रयत्नवान् भवति ? स होवाच । तस्मान्महाभाग्योदयेन यदृच्छया गुरुसहायेन सङ्गेन साधूनामन्यधर्मरहितानां विधूतपापं मनस्तन्मयतया तेन मार्गेण लिङ्गशरीरं विधूय महालीलायां ब्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सहोपसेवमान आसीदति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । जीवस्य रूपं कीदृग्विधम् ? केन रूपेणोत्पत्तिस्थितिलयानापद्यते ? स होवाच । अनिर्वचनीयोऽयं जीवः । नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं द्रहृत्यग्निर्मारुतो नैनं शोषयत्यापो नैनं क्लेदयन्ति । यां यां वासनां प्राप्नोति तं तं लिङ्गशरीरं प्राप्नुवन्नास्ते । अत्यन्तं वासनाबद्धो जीवः । वासनामुक्तो महालीलायामासक्तः संसारे ननिर्विण्णो नातिसक्तो भवति । संसिद्धोऽयं जीवसङ्घो मायोपाधिभेदेन नानाशरीरभावमाप्नोति । असं-
सिद्धस्तु रक्तशरीरसंयुक्तो भवति । सोवाचेदम् । शरीरं कीदृग्विधम् ? तस्मिन् शरीरे के गुणा के अवगुणाः ? केन बन्धः शरीरे ? केनैव मुक्तिः तस्मिन् शरीरे ? को निरुपाधिः ? तस्मिन् किं ज्ञानं भवति ? कीदृशेन शरीरेण बन्धः ? कीदृशेन मोक्षो भवति ? स होवाच । शरीरभेदाः द्विविधाः । शरीरमेव कर्मोपजनितं यदृच्छया चोत्पन्नं तस्या निकुञ्जदेव्याः अनुग्रहाद्भवति । कर्मजडानां कर्मसंभूतवासनाजडात्मकं भवति । येषामनु-
ग्रहात्संभवो भवति तेषां स्नेहमार्गे रुचिरास्ते । येषां निर्वाणमार्गे रुचिर्भवति ते संन्यासिनो भवन्ति । शरीरं तु एकादशेन्द्रियात्मकम् । पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि । पञ्च कर्मेन्द्रियाणि । उभयात्मकं मनो जायते । पञ्च महाभूतानि पञ्च तन्मात्राणि । त्रयो गुणाः । पञ्चविंशत्तमो जीवः । षड्विंशको महाविष्णुः सदा द्रष्टा भवति । इमे जीवाः शरीरोपाधिं भुञ्जानाः सुखं दुःखं प्राप्नुवन्तो भवन्ति । सर्वेषां शरीराणां समानगुणा भवन्ति । रागादयः कामक्रोधलोभमोहजरामरणसुखदुः-
खान्यनुभवन्त आपद्यन्ते । इदं शरीरं जरया अस्तं गन्धर्वनगरोपमं मनोरथमयं

भवति । ते सर्वे गुणा लिङ्गशरीरोदयादपेता लिङ्गं विधूयात्मानं तन्मयतां नयन्ति । ते रागादयो दोषाः शरीरसंवल्लिताः । ते कामक्रोधादयस्तदर्थे प्रयुज्यमानाः साधनरूपा भवन्ति । सोवाचेदम् । कथं रागादयः साधनरूपा भवन्ति ? येषां संसर्गात् विकलतां प्रपेदिरे । भगवदर्थे प्रयुज्यमानाः रागादयः कथं निष्कर्मतां प्राप्नुवन्ति ? एष काम एष क्रोध एष लोभ एष मोह इत्यात्मलीलार्थे जीवं प्रयोजयति । स होवाच । माया त्रिविधा भवति । सद्रूपया माययोत्पादिताः कामक्रोधादयो गुणाः संसारोत्पत्तिप्रयोजकाः भवन्ति । चिद्रूपे आश्रिता जीवास्ते तान् गुणान् प्रपद्य जडतां प्रपेदिरे । आनन्दरूपे आश्रिता जीवास्तन्मयतां प्रपेदिरे । संसारितोऽयमानन्दमयो रस आत्मानमानन्दमयतया प्रपद्यते । रागादयः कामक्रोधादयो गुणाः साधनरूपा भवन्ति । अहो ! रसमार्गं प्रपद्यमानोऽयं जीवसङ्घ आत्मानं तन्मयतया ध्यात्वा वासनात्मकं लिङ्गं विधूयात्मभावमभ्यस्य तन्मयतां प्राप्नोति । यां यां वासनामात्मा विलापयमानो भवति तत्तद्भावेन तत्तल्लिङ्गं विलीयमानं भवति । अत्यन्तासक्तस्तस्मिन् मार्गे लिङ्गं विधूयापपाप्मा भावापन्नो भवेत् । यो मार्गस्ते कथितोऽयं मार्गो देवादिना न ज्ञातः । रुद्रादिना न ज्ञातः । तन्मण्डलमुपासमानस्तन्मयतां प्रपद्यते । इदं रहस्यं कथितम् । न वचनीयं कस्यचित्त्वया । स्वेष्टं हृदि ध्यात्वा तद्भावेन प्रलीयते । अहो लक्ष्मि इमं मार्गं समाश्रिता भक्ताः शरीरोपाधिधर्मान् मुक्त्वा तद्गुणतां प्राप्नुवन्तीति सामगा निरन्तरं रहसि सङ्गायन्तो भवन्ति ॥

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्वेत् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां राधे प्रसीद हरिवल्लभे ॥

इति सामरहस्योपनिषत् समाप्ता

[अस्याः “रसिकानन्दोपनिषत्” इत्येव नाम सुवचम्]

सुदर्शनोपनिषत्

यज्ञोपवीती धृतचक्रधारी यो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्वह्मविदां मनीषी हिरण्य-
मादाय सुदर्शनं कृत्वा वह्निसंयुक्तं स्त्रीशूद्रैर्बाहुभ्यां धारयेत् । तस्माद्भर्मेण
जायते । ब्राह्मणस्य शरीरं जायते । श्रीविष्णुं सर्वेश्वरं भजन्ति ।

नासादिकेशपर्यन्तमूर्ध्वपुण्ड्रं तु धारयेत् ।

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी ॥

मृत्तिके देहि मे पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

तस्माद्विरेखं भवति । तं देवकीपुत्रं समाश्रये । अग्निना वै होत्रा
चक्रं पाञ्चजन्यं प्रतप्तं द्वयोर्भुजयोर्धारयेत् । आत्मकृतमाचरेत् । आचार्यस्य
संमुखं प्रपद्येत । तस्माद्वैकुण्ठं न पुनरागमनं सालोक्यसामीप्यसारूप्य-
सायुज्यं गच्छति । य एवं वेद । इत्युपनिषत्^१ ।

यजुर्वेदे तृतीयकाण्डे तृतीयप्रश्ने—“ कक्षमुपौषेद्यदि दहति पुण्यसमं
भवति यदि न दहति पापसममेतेन ” । उष दाहे । उपकक्षं भुजः । “चरणं
पवित्रं विततं पुराणम् । येन पूतस्तरति दुष्कृतानि । तेन पवित्रेण शुद्धेन
पूताः । अतिपाप्मानमरार्तिं तरेम । लोकस्य द्वारमर्चिमत्यवित्रम् । ज्योति-
ष्मद्भ्राजमानं महस्वत् । अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम् । चरणं नो लोके
सुधितां दधातु ” । “ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते । प्रभुर्गात्राणि पर्येषि
विश्वतः । अतसतनूर्न तदामो अश्नुते । श्रुतास इद्वहन्तस्तत्समाशत । ”

^१ “ यज्ञोपवीतोपनिषत् ” इत्याख्यया या पूर्वं प्रकाशिता सैवैयमेतदवधीति
विभाव्यताम् ।

यो ह वै सुश्लोकमौले धर्माननुतिष्ठमानोऽग्निना चक्रं योऽग्निर्वै सहस्रारस्सह-
स्रारो नेमिर्नेमिना तप्ततनूस्सायुज्यं सलोकतामाप्नोतीति ।

चक्रं विभर्ति वपुषाभितप्तं बलं देवानाममृतस्य विष्णोः ।

स एति नाकं दुरिता विधूय विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ॥

चमूषच्छयेनश्शकुनो विभृत्वा गोविन्दद्रप्स आयुधानि बिभ्रत् [?] ।

अपामूर्मिं सचमानस्समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति [?] ॥

शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं स्मरणं हरेः ।

तदीयाराधनं चैव भक्तिर्बहुविधा स्मृता ॥

पशुपुत्रादिकं सर्वं गृहोपकरणानि च ।

अङ्कयेच्छङ्खचक्राभ्यां नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ॥

पशुर्मुप्यः पक्षी वा ये च वैष्णवसंश्रयाः ।

तेनैव ते प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

दक्षिणे तु भुजे विप्रो विभृयाद्वै सुदर्शनम् ।

सव्ये तु शङ्खं विभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।

अर्चनीयश्च सेव्यश्च नित्ययुक्तैः स्वकर्मसु ॥

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला

ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः ।

ये वा ललाटफले लसदूर्ध्वपुण्ड्राः

श्रीवैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥

पञ्चार्द्रतत्त्वविदुषां पञ्चसंस्कारसंस्कृतम् ।

पञ्चावस्थास्वरूपं ते विज्ञेयं सततं विभो ॥

पञ्चसंस्कारयुक्तानां वैष्णवानां विशेषतः ।

गृहार्चनविधाने न शङ्खं घण्टारवं त्यजेत् ॥ इति ॥

एतदथर्वशिरो योऽधीते य ऊर्ध्वपुण्ड्रं विधिवद्विदित्वा धारयति स वैदिको भवति । स कर्माहो भवति । अनेन तेजस्वी यशस्वी ब्रह्मवर्चस्वी भवति । अनेन कायिकवाचिकमानसपातकेभ्यः पूतो भवति । श्रीविष्णु-सायुज्यमवाप्नोति । श्रीविष्णुसायुज्यमवाप्नोति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति सुदर्शनोपनिषत् समाप्ता

४. शैव-उपनिषदः

नीलरुद्रोपनिषत्

नारायणकृतदीपिकाख्यव्याख्योपेता

प्रथमः खण्डः

अपश्यं त्वावरोहन्तं दिवितः पृथिवीमवः ।
अपश्यं रुद्रमस्यन्तं नीलग्रीवं शिखण्डिनम् ॥
दिव उग्रोऽवारुक्षत् प्रत्यस्थाद्भूम्यामधि ।
जनासः पश्यतेमं नीलग्रीवं विलोहितम् ॥
एष एत्यवीरहा रुद्रो जलासमेषजीः ।
वित्तेऽक्षेममनीनशद्वातीकारोऽप्येतु ते ॥
नमस्ते भवभामाय नमस्ते भवमन्यवे ।
नमस्ते अस्तु बाहुभ्यामुतो त इषवे नमः ॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत् ॥

या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः ।
 शिवा शरव्या या तव तया नो मृड जीवसे ॥
 या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
 तया नस्तन्वा शंतमया गिरिशन्ताभिचाकशत् ॥
 असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुर्विलोहितः ।
 ये चेमे रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे ॥ १ ॥

नीलरुद्रोपनिषदि षोडश्यां खण्डकत्रयम् ।

श्रुतिरूपेण तं देवं स्तौत्यपश्यमिति क्रमात् ॥

अस्पर्शयोगमुक्त्वा तत्संप्रदायप्रवर्तकं परमगुरुं योगसिद्धिप्रदं नीलरुद्रं
 स्तौति—अपश्यमिति ॥ दिवितो दिवः पृथिवी भूमिमवः अवस्तात्
 अवरोहन्तं त्वामहमपश्यमिति मन्त्रद्रष्टुर्वचः । अस्यन्तं क्षिपन्तं दुष्टान्
 “असु क्षेपणे” इति धातोः । शिखण्डिनं, “शिखण्डो बर्हचूडयोः” इति
 विश्वः । तयोरन्यतरदस्यास्तीति शिखण्डी तम् । दिवः सकाशादुग्रो रुद्रः
 अवारुक्षत् अवतीर्णवान् । प्रत्यस्थात् प्रतिष्ठां स्थितिं कृतवान् । भूम्यामधि,
 “अधिरीश्वरे” इत्यधिः कर्मप्रवचनीयः “यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं
 तत्र सप्तमी” इति स्वात्सप्तमी । भूमेरीश्वर इत्यर्थः । जनासः “आज्जसेर-
 सुक्”, “संबोधने च” इति प्रथमा । एत्यागच्छति । न वीरहा अवी-
 रहा सौम्यः । यद्वा अवीराणि पापानि हन्तीत्यवीरहा । जले आसः क्षेपो
 यासां ता जलासाः ताश्च ता मेषज्यश्च ता एतीत्यन्वयः । जलक्षिसाना-
 मोषधीनामक्षेमनिर्णोदकत्वं रुद्रसन्निधानादेव ते तवाक्षेमं व्यनीनशत् । अनेन
 क्षेमकारित्वमुक्तम् । अलब्धलाभो योगस्तत्कारित्वमप्याह—वातीकार इति ॥
 वातिः प्राप्तिः अप्राप्तं प्राप्तं करोतीति वातीकारः सोऽपि ते तवापूर्वलाभकरः

एतु आगच्छतु । योगक्षेमकरोऽभिषेकजले संनिहितो भवत्वित्यर्थः । मन्त्र-
लिङ्गादभिषेके विनियोगः । भामः क्रोधः । मन्युः तत्पूर्वावस्था । उतो उत ।
इषवे बाणरूपाय । अस्तवे “असु क्षेपणे” इति धातोः तवेन्प्रत्ययस्तुमर्थे,
अस्तुं क्षेप्तुमित्यर्थः । कं क्षेप्तुं गिरिशन्तं श्यतीति श्यन्, गिरेः श्यन्
संबन्धसामान्ये षष्ठ्या समासः, तं गिरिशन्तं, छान्दसो यलोपः । हे गिरित्र
गिरिरक्षक । तां शिवां कल्याणीं कुरु । अच्छा वदामसि । अच्छा
निर्मलम् । वदामसि वदाम । अच्छशब्दस्य “निपातस्य” इति दीर्घः ।
“इदन्तो मसि,” इदनर्थको निपातः । अयक्ष्मं नीरोगम् । सुमनाः
सुमनस्कमसत् भवेत् । लिङ्गर्थे लेट् तिप् इतश्च लोपः । परस्मैपदेषु लेट्
प्रभवत्यट् । शरव्या शरसंधात्री ज्या । “शरो दध्यग्रबाणयोः” इति
विश्वः । शरमर्हति यत् । अव शरस्य चेत्यवादेशः । शरवृत्ताद्वा सिद्धं
“शरुरायुधकोपयोः” । “उगवादिभ्यो यत्” । जीवसे जीवितुं, मृड
मोदय । यद्वा हे मृड । तया तन्वा नः अस्मान् जीवसे जीवयसि । शन्तमया
अतिशयेन शं शंतमा तया अभिचाकशत्, कशेर्यङ् उदात्ताल्लेट् तिप् अट् ।
अतिशयेन प्रकाशयत्विति प्रार्थना । बभ्रुः पिङ्गलः अव एषां ह ईडे
स्तुतये ईमहे कामयामहे ॥ १ ॥

इति प्रथमः खण्डः

द्वितीयः खण्डः

अपश्यं त्वावरोहन्तं नीलग्रीवं विलोहितम् ।

उत त्वा गोपा अदृशन्नुत त्वोदहार्यः ॥

उत त्वा विश्वा भूतानि तस्मै दृष्टाय ते नमः ।
 नमो अस्तु नीलशिखण्डाय सहस्राक्षाय वाजिने ॥
 अथो ये अस्य सत्त्वानस्तेभ्योऽहमकरं नमः ।
 नमांसि त आयुधायानातताय धृष्णवे ॥
 उभाभ्यामकरं नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ।
 प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरान्नियोज्याम् ॥
 या श्व ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ।
 अवतत्य धनुस्त्व५सहस्राक्ष शतेषुषे ॥
 निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः शंभुराभर ।
 विज्यं धनुः शिखण्डिनो विशल्यो बाणवा५उत ॥
 अनेशनस्येषव आभुरस्य निषङ्गथिः ।
 परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ॥
 अथो य इषुधिस्तवारे अस्मिन्निधेहि तम् ।
 या ते हेतिर्मीदुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ॥
 तया त्वं विश्वतो अस्मानयक्ष्मया परिब्भुज ।
 नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ॥
 ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।
 ये वाभिरोचने दिवि ये च सूर्यस्य रश्मिषु ॥
 येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।
 या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीनाम् ।
 ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ २ ॥

गोपा गोपाला अदृशन् अपश्यन् । उदहार्यः पानीयहारिण्यः ।

विश्वा विश्वानि भूतानि अदृशन् । योगिनामप्यदृश्यं त्वां कृपया आविर्भ-

वन्तमादित्यवत्प्रकाशमानं पामरा अपि ददृशुरित्यर्थः । बाजिनेऽन्नवते बाण-
रूपाय वा । सीदन्तीति सत्वानो गणाः । नमांसि नमस्काराः । न आत-
ताय अनातताय । धृष्णवे प्रगल्भाय । बाहुभ्यां कृत्वा धन्वने नमोऽकरव-
मित्यर्थः । उभयोररिप्रत्यरिभूतयो राज्ञोर्धन्वनो ज्यां प्रमुञ्च अनाततं कुरु ।
राज्ञोर्विग्रहे लोकानां क्लेशो भवति । ततस्तं शमयेति भावः । हे भगवः ।
यास्ते हस्त इषवो बाणास्ताः परावप पराङ्मुखान् मुञ्च । त्वमपि कोपं
लोकेषु मा कृथा इति भावः । इन्द्ररूपेण जगद्रक्षेति प्रार्थयते—अव-
तत्येति । स्वधिज्यं कृत्वा । सहस्राक्ष शक्ररूप । शतमिषुधयस्तूणा यज्ञरूपाः
यस्य तत्संबोधने । निशीर्य तीक्ष्णीकृत्य । मुखा मुखानि । नोऽस्मान् ।
शिवः कल्याणरूपः । शम्भुः सुखहेतुः सन्नाभर धारय पोषय वा ।
बाणवान् तूणीरः विशल्योऽस्तु भल्लरहितो भवतु । वैरिषु हतेषु तत्प्रयोजना-
भावात् । अनेशन् अदृश्या अभूवन् । “ नशिगम्योरलघित्वम् ” इति वार्ति-
केन लुङि घङि एत्वम् । निषङ्गथिः निषङ्गे । विश्वतः सर्वतः । अस्मान्
परिवृणक्तु परिवृणातु । अरे सम्बोधने । अथो पश्चाद्रक्षणानन्तरं यस्तव
इषुधिरस्मिन्निषुधौ तं बाणं निधेहि स्थापय । हे मीढुष्टम ईडित-
मेत्यर्थः । सेचकतम अयक्ष्मया सज्जया तया हेत्या परिविमुज परिपालय ।
सदस्कृतं गृहं कृतं यातुधानानां रक्षसां वनस्पतीनां चेषवः सर्पाः । तैर्हि ते
जनान् दशन्ति । अवटेषु गर्तेषु ॥ २ ॥

इति द्वितीयः खण्डः

तृतीयः खण्डः

यः स्वजनान्नीलग्रीवो यः स्वजनान्हरिः ।
 कल्माषपुच्छमोषधे जम्भयोताश्वरुन्धति ॥
 बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च नीलग्रीवश्च यः शिवः ।
 शर्वेण नीलकण्ठेन भवेन मरुतां पिता ॥
 विरूपाक्षेण बभ्रुणा वाचं वदिष्यतो हतः ।
 शर्व नीलशिखण्ड वीर कर्मणि कर्मणि ॥

इमामस्य प्राशं जहि येनेदं विभजामहे । नमो भवाय ।
 नमश्शर्वाय । नमः कुमाराय शत्रवे । नमः सभाप्रपादिने । यस्याश्वतरौ
 द्विसरौ गर्दभावभितस्सरौ । तस्मै नीलशिखण्डाय नमः । नीलशिखण्डाय
 नमः ॥ ३ ॥

केदाराधीशं महिषरूपं स्तौति—य इति । यः शिवः स्वजनान् भक्तान्
 प्रति नीलग्रीवः । यश्च स्वजनान्भक्तान् प्रति हरिर्हरितवर्णो भक्तवात्सल्येन
 भवति । महिषस्य हि तादृग्रूपं संभवति । ओषधे अरुन्धति रोधरहिते ।
 तं कल्माषपुच्छं कृष्णपाण्डुरपुच्छम् । आशु शीघ्रम् । जम्भय वीर्यवन्तं
 कुरु । ओषधीनां पशुभ्यो बलप्रदत्वात् । “कल्माषो राक्षसे कृष्णे कल्माषः
 कृष्णपाण्डुरे” इति विश्वः । केदारेश्वरस्य महिषरूपत्वात्पुच्छवत्ता संभवति ।
 बभ्रुः कचिदवयवे पिङ्गलवर्णः । बभ्रुकर्णः अन्तःपिङ्गलवर्णकर्णः । पितेति
 तृतीयार्थे प्रथमा । पितेत्यर्थः । अथ वाचं वदिष्यतः पिता देहिमात्रस्य
 जनकः ब्रह्म येनेश्वरेण हतस्तं त्वं पश्येत्यन्वयः । हे वीर कर्मणि कर्मणि
 विहितनिषिद्धरूपे इमामस्य जनस्याशां पृच्छतीति प्राट् । तां प्राशं
 पृच्छिकां वाचं जहि । वेदविहितनिषिद्धकर्मविषयं संशयं निराकुर्वित्यर्थः ।

येन कर्मणेदं जगद्विभजामहे कर्मभूमिमोगभूमिरूपेण विभक्तं कुर्महे ।
 कुमाराय कालानभिभूताय । शत्रवे संहर्त्रे । सभाप्रपादिने सभां प्रपद्यते
 तच्छीलः सभाप्रपादी तस्मै सभ्यायेत्यर्थः । अश्वतरौ ईषदूनमश्वत्वं ययोस्तौ
 अश्वतरौ । गर्दभादश्वयां जातौ । द्विसरौ अभितः सरत इत्यभितःसरौ
 गर्दभौ वर्तेते तस्मै । द्विरुक्तिः समाप्त्यर्था ।

नारायणेन रचिता श्रुतिमात्रोपजीविता ।

अस्पष्टपदवाक्यानां नीलरुद्रस्य दीपिका ॥ ३ ॥

इति तृतीयः खण्डः

इति नारायणकृतदीपिकाख्यव्याख्योपेता नीलरुद्रोपनिषत् समाप्ता

पारायणोपनिषत्

अथाह वै वेदानां वेदत्वमेतेन शाक्ते शक्तित्वमेति न वेदमातुर्वेद-
 मातृत्वमेतेन तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।
 परोरजसे सावदोम् । महाकालाय विद्महे श्मशानवासिने धीमहि । तन्नो
 रुद्रः प्रचोदयात् । रुद्र एवाग्निरिति । अथ प्रकाशः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ
 ऐं ह्रीं सौः । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः
 प्रचोदयात् । परोरजसे सावदोम् । सौः ह्रीं ऐं हौं क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं
 ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । हां ऐं
 ह्रीं श्रीं ॐ ॐ ॐ श्रीं ह्रीं ऐं । महाकालाय विद्महे श्मशानवासिने
 धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । रुद्र एवाग्निरिति संधट्टनाधीशो

भवेत् । तदिदंपारायणवशादानन्दपूर्णो भवेत् । ओधत्रयनामविशिष्टमाकृति-
विशिष्टं नवनाथनामविशिष्टं वा नाममयीमाज्ञां दद्यात् । घटिकापारायणं
चरेत् । दिनाक्षरयुगाक्षरे तद्दिननित्याहंसस्तदनु मातृकां जपेत् । कालनित्यां
जपेत् । द्विशतसाहस्रशीर्षं तरसाग्निजापी भवेत् । मन्त्रपारायणी भवेत् ।
नामपारायणी भवेत् । चक्रपारायणी भवेत् । स सर्वं पश्यति । स सर्वं जलमयो
भवेत् । वह्नौ वह्निमयो भवेत् । चराचरगतिर्भवेत् । पराशतषष्टिवाणीज्ञो
भवेत् । षोढान्यासाधिकारी भवेत् । मासतः पक्षतो वारतः पारायणी
भवेत् । सर्वाधिकारी भवेत् । दृष्टाकं चरेत् । तदाचरणी अमृतत्वं गच्छति ।
ब्रह्मत्वं गच्छति । साक्षात्सप्तमीरूपो भवेदिति प्रोतं वेद ॥

इत्यार्षवर्णीये सौभाग्यकाण्डे पारायणोपनिषत् समाप्ता

बिल्वोपनिषत्

अथ वामदेवः परमेश्वरं सृष्टिस्थितिलयकारणमुमासहितं स्वशिरसा
प्रणम्येति होवाच । अधीहि भगवन् सर्वविद्यां सर्वरहस्यवरिष्ठां सदा सद्भिः
पूज्यमानां निगूढाम् । कया च पूजया सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं शिव-
सायुज्यमाप्नोति ? केनैकेन वस्तुना मुक्तो भवति ? तं होवाच भगवान्
सदाशिवः ।

न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचित् ।

मत्स्वरूपस्त्वयं ज्ञेयो बिल्ववृक्षो विधानतः ।

एकेन बिल्वपत्रेण संतुष्टोऽस्मि महामुने ॥

इति ब्रुवन्तं परमेश्वरं पुनः प्रणम्येति होवाच ॥

भगवन् सर्वलोकेश सत्यज्ञानादिलक्षण ।
कथं पूजा प्रकर्तव्या तां वदस्व दयानिधे ॥

इति पुनः पृच्छन्तं वामदेवमालिङ्ग्येति होवाच ॥

बुद्धिमांस्त्वमिति ज्ञात्वा वक्ष्यामि मुनिसत्तम ।

मम प्रियेण बिल्वेन त्वं कुरुष्व मदर्चनम् ॥

द्रव्याणामुत्तमैर्लोके मम पूजाविधौ तव ।

पत्रपुष्पाक्षतैर्दिव्यैर्विल्वपत्रैः समर्चय ॥

बिल्वपत्रं विना पूजा व्यर्था भवति सर्वदा ।

मम रूपमिति ज्ञेयं सर्वरूपं तदेव हि ॥

प्रातः स्नात्वा विधानेन सन्ध्याकर्म समाप्य च ।

भूतिरुद्राक्षभरण उदीचीं दिशमाश्रयेत् ॥

सद्योजातादिभिर्मन्त्रैर्नमस्कृत्य पुनः पुनः ।

प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा शिवरूपमिति स्फुटम् ॥

देवीं ध्यायेत्तथा वृक्षे विष्णुरूपं च सर्वदा ।

ब्रह्मरूपं च विज्ञेयं सर्वरूपं विभावयेत् ॥

वामदक्षिणमध्यस्थं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।

इन्द्रादयश्च यक्षान्ता वृन्तभागे व्यवस्थिताः ॥

पृष्ठभागेऽमृतं यस्मादर्चयेन्मम तुष्टये ।

उत्तानबिल्वपत्रं च यः कुर्यान्मम मस्तके ॥

मम सायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।

त्रिमूर्तिस्त्रिगुणं बैल्वमग्निरूपं तथैव च ।

ब्रह्मरूपं कलारूपं वेदरूपं महामुने ॥

पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ।
 सबिल्वरूपं सगुणात्मरूपं तिमूर्तिरूपं शिवरूपमस्मि ॥
 पृष्ठभागेऽमृतं न्यस्तं देवैर्ब्रह्मादिभिः पुरा ।
 उत्तानबिल्वपत्रेण पूजयेत् सर्वसिद्धये ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बिल्वपत्रैः सदा चैव ।
 बिल्वपत्रं विना वस्तु नास्ति किञ्चित्तवानघ ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बिल्वपत्रैः सदा चैव ।
 उत्तानपत्रपूजां च यः कुर्यान्मम मस्तके ॥
 इह लोकेऽखिलं सौख्यं प्राप्नोत्यन्ते पुरे मम ।
 तिष्ठत्येव महावीरः पुनर्जन्मविवर्जितः ॥
 सोदकैर्बिल्वपत्रैश्च यः कुर्यान्मम पूजनम् ।
 मम सान्निध्यमाप्नोति प्रमथैः सह मोदते ॥
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।
 बिल्वपूजनतो लोके मत्पूजायाः परा न हि ॥
 त्रिसुपर्णी त्रिऋचां रूपं त्रिसुपर्णी त्रयीमयम् ।
 त्रिगुणं त्रिजगन्मूर्तित्रयं शक्तित्रयं त्रिदृक् ॥
 कालत्रयं च सवनत्रयं लिङ्गत्रयं त्रिपात् ।
 तेजस्त्रयमकारोकारमकारप्रणवात्मकम् ॥
 देवेषु ब्राह्मणोऽहं हि त्रिसुपर्णमयाचितम् ।
 मह्यं वै ब्राह्मणायेदं मया विज्ञप्तकामिकम् ॥
 दद्याद्ब्रह्मभूणवीरहत्यायाश्चान्यपातकैः ।
 मुक्तोऽखण्डानन्दबोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

त्रिसुपर्णोपनिषदः पठनात्पङ्क्तिपावनः ।
 बोधको ह्या सहस्राद्वै पङ्क्तिं पावयते ध्रुवम् ॥
 त्रिसुपर्णश्रुतिर्द्वेषा निष्कृतौ त्रिदले रता ।
 श्रद्धस्त्व विद्वन्नाथं तदिति वेदानुशासनम् ॥
 अखण्डानन्दसंबोधमयो यस्मादहं मुने ।
 विन्यस्तामृतभागेन सुपर्णेनावकुण्ठय ॥
 अमृतं मोक्षवाचन्तु तेनास्मदवकुण्ठनात् ।
 प्राप्येते भोगमोक्षौ हि स्थित्यन्ते मदनुग्रहात् ॥
 उत्तानभागपर्णेन मूर्ध्नि मे न्युञ्जमर्पयेत् ।
 मोक्षेऽमृतावकुण्ठोऽहं भवेयं तव कामधुक् ॥
 येन केन प्रकारेण बिल्वकेनापि मां यज ।
 तीर्थदानतपोयोगस्वाध्याया नैव तत्समाः ॥
 बिल्वं विधानतः स्थाप्य वर्धयित्वा च तद्गलैः ।
 यः पूजयति मां भक्त्या सोऽहमेव न संशयः ॥

य एतदधीते ब्रह्महाऽब्रह्महा भवति । स्वर्णस्तेय्यस्तेयी भवति ।
 सुरापाय्यपायी भवति । गुरुवधूगाम्यगामी भवति । महापातकोपपातकेभ्यः
 पूतो भवति । न च पुनरावर्तते । न च पुनरावर्तते । न च पुनरावर्तते ।
 ॐ सत्यम् ॥

इति बिल्वोपनिषत् समाप्ता

मृत्युलाङ्गूलोपनिषत्

अथ मृत्युलाङ्गूलं व्याख्यास्यामः । अस्य मृत्युलाङ्गूलमन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । कालाग्निरुद्रो यमश्च देवता । मृत्यूपस्थाने विनियोगः । अथातो योगजिह्वः साधुमतियोजितं स मे वाह कालं पुरुष-मूर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपाय नमो नमः । पशुपतये नमः । य इदं शृणुयान्नित्यं मृत्युलाङ्गूलं त्रिसन्ध्यं कीर्तयति वा स ब्रह्महेत्यां व्यपोहति । सुवर्णस्तेय्यस्तेयी भवति । गुरुदाराभिगाम्यगामी भवति । सर्वेभ्यः पात-केभ्य उपपातकेभ्यश्च सद्यो विमुक्तो भवति । सकृज्जप्तेनानेन गायत्र्याः षष्टिसहस्राणि फलितानि भवन्ति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मलोक-मवाप्नोति । यः कश्चिन्न ददाति स श्वित्री कुष्ठी कुनखी वा भवेत् । यः कश्चिद्दीयमानं न गृह्णाति सोऽन्धो बधिरो मूको वा भवति । मृत्युमुपस्थितः षण्मासादर्वाक् । बन्धोऽयं नश्यति इत्यनेन मृत्युलाङ्गू-लाख्यस्य च महामन्त्रस्य शतकृत्वो जप्तेन भगवान् धर्मराट् मम प्रीयताम् ।

ऋतं नष्टं यदा काले षण्मासेन मरिष्यति ।

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥

ऊर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपं नमाम्यहम् ।

सत्यं तु पञ्चमे मासे परं ब्रह्म चतुर्थके ॥

पुरुषं च तृतीये वा द्वितीये कृष्णपिङ्गलम् ॥

ऊर्ध्वलिङ्गं तु मासेन विरूपाक्षं तदर्धके ।

विश्वरूपं तृतीयेऽहि सद्यश्चैव नमो नमः ॥

इति मृत्युलाङ्गूलोपनिषत् समाप्ता

रुद्रोपनिषत्

विश्वमयो ब्राह्मणः शिवं व्रजति । ब्राह्मणः पञ्चाक्षरमनुभवति । ब्राह्मणः शिवपूजारतः । शिवभक्तिविहीनश्चेत् स चण्डाल उपचण्डालः । चतुर्वेदज्ञोऽपि शिवभक्त्यान्तर्भवतीति स एव ब्राह्मणः । अधमश्चाण्डालोऽपि शिवभक्तोऽपि ब्राह्मणाच्छ्रेष्ठतरः । ब्राह्मणस्त्रिपुण्ड्रधृतः । अत एव ब्राह्मणः । शिवभक्तेरेव ब्राह्मणः । शिवलिङ्गार्चनयुतश्चाण्डालोऽपि स एव ब्राह्मणाधिको भवति । अग्निहोत्रभसिताच्छिवभक्तचाण्डालहस्तविभूतिः शुद्धा । कपिश वा श्वेतजापि धूम्रवर्णा वा । विरक्तानां तपस्विनां शुद्धा । गृहस्थानां निर्मल-विभूतिः । तपस्विभिः सर्वभस्म धार्यम् । यद्वा शिवभक्तिसंपुष्टं सदापि तद्भसितं देवताधार्यम् ।

ॐ अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । स्थलमिति भस्म । जलमिति भस्म । व्योमेति भस्म इत्याद्युपनिषत्कारणात् तत् कार्यम् । अन्यत्र “ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां नमति सं पतत्रैर्घ्वावापृथिवी जनयन् देव एकः । ” तस्मात्प्राणलिङ्गी शिवः । शिव एव प्राणलिङ्गी । जटाभस्मधारोऽपि प्राणलिङ्गी हि श्रेष्ठः । प्राणलिङ्गी शिवरूपः । शिवरूपः प्राणलिङ्गी । जङ्गमरूपः शिवः । शिव एव जङ्गमरूपः । प्राणलिङ्गिनां शुद्धसिद्धिर्न भवति । प्राणलिङ्गिनां जङ्गमपूज्यानां पूज्यतपस्विनामधिकश्चाण्डालोऽपि प्राणलिङ्गी । तस्मात्प्राण-लिङ्गी विशेष इत्याह । य एवं वेद स शिवः । शिव एव रुद्रः प्राणलिङ्गी नान्यो भवति ।

ॐ आत्मा परशिवद्वयो गुरुः शिवः । गुरुणां सर्वविश्वमिदं विश्व-मन्त्रेण धार्यम् । दैवाधीनं जगदिदम् । तदैवं तन्मन्त्रात् तनुते । तन्मे दैवं

गुरुरिति । गुरूणां सर्वज्ञानिनां गुरुणा दत्तमेतदन्नं परब्रह्म । ब्रह्म स्वानुभूतिः । गुरुः शिवो देवः । गुरुः शिव एव लिङ्गम् । उभयोर्मिश्रप्रकाशत्वात् । प्राणवत्त्वात् महेश्वरत्वाच्च शिवस्तदैव गुरुः । यत्र गुरुस्तत्र शिवः । शिवगुरु-स्वरूपो महेश्वरः । अमरकीटकार्येण दीक्षिताः शिवयोगिनः शिवपूजापथे गुरुपूजाविधौ च महेश्वरपूजनान्मुक्ताः । लिङ्गाभिपेकं निर्माल्यं गुरोरभिपेक-तीर्थं महेश्वरपादोदकं जन्ममालिन्यं क्षालयन्ति । तेषां प्रीतिः शिवप्रीतिः । तेषां तृप्तिः शिवतृप्तिः । तैश्च पावनो वासः । तेषां निरसनं शिवनिरसनम् । आनन्दपारायणः । तस्माच्छिवं व्रजन्तु । गुरुं व्रजन्तु । इत्येव पावनम् ॥

इति स्त्रोपनिषत् समाप्ता

लिङ्गोपनिषत्

ॐ धर्मजिज्ञासा । ज्ञानं बुद्धिश्च । ज्ञानान्मोक्षकारणम् । मोक्षा-न्मुक्तिस्वरूपम् । तथा ब्रह्मज्ञानाद्बुद्धिश्च । लिङ्गैक्यं देहो लिङ्गभेदे न । अज्ञानात् ज्ञानं बुद्धिश्च । चतुर्वर्णानां धारणां कुर्यात् । पशुपक्षि-मृगकीटकलिङ्गधारणमुच्यते । पञ्चबन्धस्वरूपेण पञ्चबन्धा ज्ञानस्वरूपाः । पिण्डाज्जननम् । तज्जननकाले धारणमुच्यते । “सर्वलिङ्गं स्थापयति पाणि-मन्त्रं पवित्रम्”, “अयं मे हस्तो भगवान्” इति धारयेत् । “या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी”, “रुद्रपते जनिमा चारु चित्रम्”, “वयं सोम व्रते तव । मनस्तनुषु विभ्रतः । प्रजावन्तो अशीमहि ।”, “त्रियम्बकं यजामहे” इति धारयेत् । ब्राह्मणानां धारणां कुर्यात् । “पवित्रं ते विततं

ब्रह्मणस्पते ”, “ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् । अवस्यतं मुंचतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् । सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः । जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् । ” इति प्राकट्यं कुर्यात् । न कुर्यात्पशुभाषणम् । श्रौतानामुपनयनकाले धारणम् । चतुर्थाश्रमः संन्यासः । पञ्चमो लिङ्ग-धारणम् । अत्याश्रमाणां मध्ये लिङ्गधारी श्रेष्ठो भवति । शिरसि महादेव-स्तिष्ठतु इति धारयेत् । अन्यायो न्यायः । पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाश इति पञ्चस्वरूपं लिङ्गम् । त्वच्छ्रोत्रनेत्रजिह्वाघ्राणपञ्चस्वरूपमिति लिङ्गम् । रेतोबुद्ध्यापमनस्स्वरूपमिति लिङ्गम् । सङ्कल्प इति लिङ्गम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वरूपमिति लिङ्गम् । व्रतं चरेत् । संतिष्ठेन्नियमेन । सर्वं शाम्भवीरूपम् । शाम्भवी विद्योच्यते । चरेदेतानि सूत्राणि । पञ्चमुखं पञ्चस्वरूपं पञ्चाक्षरं पञ्चसूत्रं ज्ञानम् । सिद्धिर्भवत्येव । ज्ञानाद्वारणं लिङ्गदेह-प्रकार उच्यते । शिरःपाणिपादपायूपस्थं सर्वं लिङ्गस्वरूपम् । ब्राह्मणो वदेत् ।

ओङ्कारो बाणः शक्तिरेव पीठं सिन्दूरवर्णं सर्वं लिङ्गस्वरूपम् । कैवल्यं केवलं विद्यात् । व्यवहारपरः स्यात् । प्राण एव प्राणः । पूर्वं ब्रह्मा पीठम् । विष्णुर्बाणः । रुद्रः स्वरूपम् । सर्वभूतैरथापरित्याज्यश्च । विग्रहमनुग्रहलिङ्गेषु शक्तिकपालेषु सर्ववशङ्करं विद्यात् । जातिविषयान् त्यजेत् । श्रौताश्रौतेषु धारणम् । वेदोक्तविधिना श्रौतं तद्रहितमश्रौतम् । सर्ववर्णेषु धारणं कैलाससिद्धिर्भवति । धारणं देहे कैलासस्वरूपम् । धारणं देहे कैवल्यस्वरूपम् । धारणं देहे प्रणवस्वरूपम् । धारणं देहे वेदस्वरूपम् । धारणं देहे ब्रह्मस्वरूपम् । धारणं देहे शिवस्वरूपम् । शिरसि बाणं बाहुनाभिपीठप्रकृतिरूपकं देहे धारणं यस्य न विद्यते तद्देहं न पश्येत् । शिरःकपालं केशान् न कुर्यात् । शिरःपीठं लिङ्गात्मकं सर्वम् ।

शाम्भवीविग्रह उच्यते । प्राणादिलिङ्गस्वरूपं गुरोर्लिङ्गम् । गुरुसंभवात्मकं लिङ्गं प्रगुरोः । ततः प्रथमं प्रणिपतति । प्रणवस्वरूपं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गम् । प्रकाशात्मकं लिङ्गं विद्यालिङ्गम् । विद्यालिङ्गं ज्ञानस्वरूपम् । लिङ्गं प्रचरेच्छा-
स्वात् । लिङ्गस्वरूपेयं सिद्धिर्भविष्यति । सर्वदेहेषु लिङ्गधारणं भवति । इति वेदपुरुषो मन्यते । महापुरुषोपेतं यो वेद स एव नित्यपूतस्थः । स एव नित्यपूतस्थः स्यादैवलौकिकः पुरुषः । स एवामुष्मिकपुरुष इति मन्यन्ते । जीवात्मा परमात्मा च स एवोच्यते । इष्टप्राणाभावेषु लिङ्गधारणं वदन्ति । इष्टे धारणम् । तिस्रः पुरस्त्रिपदा विश्वचर्षणी । पुरनाशे लिङ्गस्वरूपाज्ञासिद्धिर्भव-
त्यवज्ञानेऽसति । संयुक्तं लिङ्गं मोक्ष एव भवत्येव । मोक्षमेव धारणं विद्यात् । उशंतीव मातरं कुर्यात् । इत्येवं वेदेत्युपनिषत् । ॐ तत्सत् ॥

इति लिङ्गोपनिषत् समाप्ता

वज्रपञ्जरोपनिषत्

सह नाववतु— इति शान्तिः ।

वज्रपञ्जरेण भस्मधारणं कुर्यात् । वामकरे भस्म गृहीत्वा सद्यो-
जातमिति पञ्चब्रह्ममन्त्रः । त्रियम्बकं जातवेदसे गायत्र्या मानस्तोकैरभिमन्त्र्य
मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य श्रीविद्येयं शिरसि । ऐं वद वद वाम्बादिनि ह्रस्वैः क्लिप्ते
क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु । हसकलरी ओं मोक्षं कुरु कुरु । हसौः इति
मुखे । ओं ओं नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वज्ञानं हारिके

जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वलन्ति प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं हूं र र र र ज्वाला-
मालिनि हुं फट् स्वाहा इति हृदये । जलवासिन्यै नमो नामौ । ह्रीं
वह्निवासिन्यै नमो गुह्ये । ओं सह नाभ्यादिजान्वन्तम् । ओं ह्रीं श्रीं
पशु हुं फट् स्वाहा जान्वादिपादपर्यन्तम् । ओं ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर
प्रस्फुर रूप तट तट चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम
बन्धय बन्धय घातय घातय हुं फट् स्वाहा इत्यधोरेण शिरसि । ओं वैष्णव्यै
नमो हृदये । पुनः अधोरेण पृष्ठे । पुनः सुदर्शनेन जान्वादिनाभ्यन्तम् ।
पुनः पाशुपतेन पादादिजान्वन्तम् । ह्रसौः अ अं क्षं स्तौः . . ओं ह्रीं
क्लीं क्षौं श्रीं ।

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

श्रीं क्षौं श्रीं ह्रीं ओं इति दक्षिणबाहौ । ओं क्षां ओं नमो भगवते
नारसिंहाय ज्वालामालिने तीक्ष्णदंष्ट्राग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वज्वरविनाशाय
सर्वभूतविनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा इति
वामबाहौ । उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिङ्गळ लोहिताक्ष देहि मे दापय स्वाहा ।
ओं ह्रीं हुं उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम् । यदि
शक्यमशक्यं वा ते भगवति शमय शमय स्वाहा ।

मृत्योस्तुल्यं त्रिलोकीं ग्रसितुमतिरसान्निस्सृता किं नु जिह्वा

किं वा कृष्णाङ्घ्रिपद्मसृतिभिररुणिता विष्णुपद्माः पदव्यः ।

प्राप्ताः सन्ध्याः स्मरारेः स्वयमुत नुतिभिस्तिष्ठ इत्यूह्यमानाः

देवैर्देव्यास्त्रिशूलक्षतमहिषजुषो रक्तधारा जयन्ति ॥

इति बडवानलदुर्गामृत्योस्तुल्यवनदुर्गाभिः सर्वाङ्गमुद्धूळयेत् । ततः
शेषभस्मनि जलं निक्षिप्य त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यात् ।

एता एव महाविद्या विभूतेरभिधारणे ।
 कथिताः परमेशानि सतां पूर्वतराघहाः ॥
 वज्रपञ्जरनाम्नैव यः कुर्याद्भस्मधारणम् ।
 स सर्वभयनिर्मुक्तः साक्षाच्छिवमयो भवेत् ।
 एतानि तानि श्रीमन्त्रपवित्रे यानि भस्मनि ॥

दग्धकामाङ्गविभूतित्रैपुण्ड्रितानि कथितानि ललाटपट्टे लोपयन्ति
 दैवलिखितानि दुरक्षराणि ।

इति वज्रपञ्जरोपनिषत् समाप्ता

वटुकोपनिषत्

अथ वटुकोपनिषदं व्याख्यास्यामः ।

वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यम् ।
 तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिर्भविता नेतरेषाम् ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च ब्रह्मा तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च विष्णुस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च रुद्रस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चेन्द्रस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाग्निस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च वायुस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सूर्यस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सोमस्तस्मै वै नमो नमः ॥

- यो वै वटुकः स भगवान् यश्च ग्रहास्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चोपग्रहास्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च भूस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च भुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च स्वस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चान्तरिक्षं तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च द्यौस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चापस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च तेजस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च कालस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च मृत्युस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चामृत्युस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाकाशस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च विश्वं तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च शुक्लं तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च दम्भस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चादम्भस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवात् यश्च सूक्ष्मं तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च स्थूलं तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च कृष्णस्तस्मै वै नमो नमः ॥
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाकृष्णस्तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सत्यं तस्मै वै नमो नमः ।
 यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सर्वं तस्मै वै नमो नमः ॥

भूस्ते आदिर्मध्यं भुवः स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि ब्रह्मैकस्त्वं द्विधा
त्रिधा बुद्धिस्त्वं शान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं विश्वमविश्वं
कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम् । अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्यो-
तिरविदाम देवान् । किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य ।
सोमसूर्यपुरस्तात् सूक्ष्मः पुरुषः । सर्वं जगद्धितं वा एतदक्षरं प्राजापत्यं सूक्ष्मं
सौम्यं पुरुषं ग्राह्यमग्राह्येण भावं भावेन सौम्यं सौम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण वायव्यं
वायव्येन ग्रसति स्वेन तेजसा तस्मादुपसंहर्त्रे महाप्रासायं वै नमो नमः ।

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।

हृदि त्वमसि यो नित्यं तिष्ठो मात्राः परस्तु सः ॥

तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारो य
ओङ्कारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो
योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं
तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एको य एकः स रुद्रो यो रुद्रः स ईशानो य
ईशानः स भगवान् महेश्वरो यो भगवान् महेश्वरः स भगवान् वटुकेश्वरो
यो भगवान् वटुकेश्वरः ।

अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्राम-
यति तस्मादुच्यत ओङ्कारः । अथ कस्मादुच्यते प्रणवो यस्मादुच्चार्यमाण
एव ऋग्यजुस्सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च
तस्मादुच्यते प्रणवः । अथ कस्मादुच्यते सर्वव्यापी यस्मादुच्चार्यमाण एव
सर्वान् लोकान् व्याप्नोति स्नेहो यथा पल्लपिण्डमिव शान्तरूपमोतप्रोतमनु-
प्राप्तो व्यतिषक्तश्च तस्मादुच्यते सर्वव्यापी । अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तो
यस्मादुच्चार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चास्यान्तोः नोपलभ्यते तस्मादुच्य-
तेऽनन्तः । अथ कस्मादुच्यते तारं यस्मादुच्चार्यमाण एव गर्भजन्मव्याधि-

जरामरणसंसारमहाभयात्तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते तारम् । अथ कस्मादुच्यते सूक्ष्मं यस्मादुच्चार्यमाण एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीराण्यधितिष्ठति सर्वाणि चाङ्गान्यभिमृशति तस्मादुच्यते सूक्ष्मम् । अथ कस्मादुच्यते शुक्लं यस्मादुच्चार्यमाण एव क्लन्दते क्लामयति च तस्मादुच्यते शुक्लम् । अथ कस्मादुच्यते वैद्युतं यस्मादुच्चार्यमाण एवाव्यक्ते महति तमसि द्योतयति तस्मादुच्यते वैद्युतम् । अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म यस्मात् परमपरं परायणं च बृहद्बृहत्या बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म । अथ कस्मादुच्यत एको यः सर्वान् प्राणान् संभक्ष्य संभक्षणेनाजः संसृजति विसृजति तीर्थमेके व्रजन्ति तीर्थमेके दक्षिणाः प्रत्यञ्च उदञ्चः प्राञ्चोऽभिव्रजन्त्येके तेषां सर्वेषामिह सद्गतिः । साकं स एको भूतश्चरति प्रजानां तस्मादुच्यत एकः । अथ कस्मादुच्यते रुद्रो यस्माद्विभिर्नान्यैर्भक्तैर्द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते तस्मादुच्यते रुद्रः । अथ कस्मादुच्यत ईशानो यः सर्वान् देवानीशत ईशानीभिर्जननी-भिश्च परमशक्तिभिः । अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः सुवर्दशमीशानमिन्द्र तस्थुषः । तस्मादुच्यत ईशानः । अथ कस्मादुच्यते भगवान् महेश्वरो यस्माद्भक्ता ज्ञानेन भजन्त्यनुगृह्णाति च वाचं संसृजति विसृजति च सर्वान् भावान् परित्यज्यात्मज्ञानेन योगैश्वर्येण महति महीयते तस्मादुच्यते भगवान् महेश्वरः । अथ कस्मादुच्यते भगवान् वटुकेश्वरो यस्मादन्तर्जलौषधिवीरुधानाविश्येमं विश्वं भुवनानि वा अवते तस्मादुच्यते भगवान् वटुकेश्वरः । तदेतद्ब्रुवन्नचरितम् ।

एको ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः

पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।

स एव जातः स जनिष्यमाणः

प्रत्यङ्मनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

एको वटुको न द्वितीयाय तस्मै
 य इमान् लोकानीशत ईशनीभिः ।
 प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
 संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता ॥
 यस्मिन् क्रोधं यां च तृष्णां क्षमां च
 ह्यक्षमां हित्वा हेतुजालस्य मूलम् ।
 बुद्ध्या सञ्चितं स्थापयित्वा तु रुद्रे
 शाश्वतं वै रुद्रमेकत्वमाहुः ॥
 वटुको हि शाश्वतेन पुराणेन
 वेषमूर्जेण तपसा नियन्ता ॥

अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म
 व्योमेति भस्म सर्वं ह वेदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि यस्माद्ब्रतमिदं पाशु-
 पतं यद्भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत्तस्माद्ब्रह्म तदेतद्वटुकं पशुपाशविमोक्षणाय ।

यस्मिन्निदं सर्वभोतप्रोतं
 तस्मादन्यन्न परं किञ्चनास्ति ।
 न तस्मात् पूर्वं न परं तदस्ति
 न भूतं नोत भव्यं यदासीत् ॥
 अक्षराज्जायते कालः कालाद्व्यापक उच्यते ।

व्यापको हि भगवान् वटुको भोगायमानो यदा शेते रुद्रस्तदा संहरते
 प्रजाः । उच्छ्वासिते तमो भवति तमस आपोऽप्स्वङ्गुल्या मथिते मथितं
 शिशिरे शिशिरं मथ्यमानं फेनं भवति फेनादण्डं भवत्यण्डाद्ब्रह्मा भवति
 ब्रह्मणो वायुर्वायोरोक्कार ओक्कारात्सावित्री सावित्र्या गायत्री गायत्र्या लोकाः

भवन्ति । एतद्धि परमं तपः । आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरो नम इति ।

य इमां वटुकोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीतेऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति । अनुपनीत उपनीतो भवति । स हामिपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स सूर्यपूतो भवति । स सोमपूतो भवति । स सत्यपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वेदेवैरनुज्ञातो भवति । स सर्वेदेवैरनुध्यातो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वविद्भवति । स सर्वायुरारोग्यवान् भवति । स कालज्ञानी भवति । स गुर्वनुग्रहभागी भवति । इत्येवं भगवद्वटुकेश्वरं यः स्तौति स वेद्यं वेदेति ॥

इत्याथर्वणरहस्ये वटुकोपनिषत् समाप्ता

शिवसङ्कल्पोपनिषत्

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १ ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

इति वाजसनेयसंहितायां शिवसङ्कल्पोपनिषत् समाप्ता

शिवसङ्कल्पोपनिषत्

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १ ॥
येन कर्माणि प्रचरन्ति धीरा यतो वाचा मनसा चारु यन्ति ।
यत्संमितमनु संयन्ति प्राणिनस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३ ॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥
यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥
यदत्र षष्ठं त्रिशतं सुवीरं यज्ञस्य गुह्यं नवनावमाय्यम् [?] ।
दश पञ्च त्रिशतं यत्परं च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ७ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ८ ॥

येन द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षं च ये पर्वताः प्रदिशो दिशश्च ।

येनेदं जगद्व्याप्तं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ९ ॥

येनेदं विश्वं जगतो बभूव ये देवा अपि महतो जातवेदाः ।

तदेवाग्निस्तमसो ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १० ॥

ये मनो हृदयं ये च देवा ये दिव्या आपो ये सूर्यरश्मिः ।

ते श्रोत्रे चक्षुषी सञ्चरन्तं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ११ ॥

अचिन्त्यं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तपरं च यत् ।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञेयं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १२ ॥

एका च दश शतं च सहस्रं चायुतं च

नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च ।

समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्च

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १३ ॥

ये पञ्च पञ्चदश शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं च ।

तेऽग्निचित्येष्टकास्तं शरीरं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १४ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

यस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

यस्येदं धीराः पुनन्ति कवयो ब्रह्माणमेतं त्वा वृणुत इन्दुम् ।

स्थावरं जङ्गमं द्यौराकाशं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १६ ॥

परात् परतरं चैव यत्पराच्चैव यत्परम् ।

यत्परात् परतो ज्ञेयं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १७ ॥

परात् परतरो ब्रह्मा तत्परात् परतो हरिः ।

तत्परात् परतोऽधीशस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १८ ॥

या वेदादिषु गायत्री सर्वव्यापी महेश्वरी ।

ऋग्यजुस्सामाथर्वैश्च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १९ ॥

यो वै देवं महादेवं प्रणवं पुरुषोत्तमम् ।

यः सर्वे सर्ववेदैश्च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २० ॥

प्रयतः प्रणवोङ्कारं प्रणवं पुरुषोत्तमम् ।

ओङ्कारं प्रणवात्मानं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यते ह्यज ईश्वरः ।

अकायो निर्गुणो ह्यात्मा तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २२ ॥

गोभिर्जुष्टं धनेन ह्यायुषा च बलेन च ।

प्रजया पशुभिः पुष्कराक्षं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २३ ॥

त्रियम्बकं यजामहे

सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय

माऽमृतात्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २४ ॥

कैलासशिखरे रम्ये शङ्करस्य शिवालये ।

देवतास्तत्र मोदन्ते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २५ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो

विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् ।

संवाहुभ्यां नमति संपतत्रैर्धावापृथिवी

जनयन् देव एकस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २६ ॥

चतुरो वेदानधीयीत सर्वशास्त्रमयं विदुः ।

इतिहासपुराणानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २७ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं

मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं प्रिया मा नः

तनुवो रुद्र रीरिषस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २८ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि

मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः

नमसा विधेम ते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २९ ॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म

पुरुषं कृष्णपिङ्गळम् ।

ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३० ॥

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे ।

वोचेम शन्तमं हृदे ।

सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३१ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्

वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।

स बुध्निया उपमा अस्य विष्टाः सतश्च योनिं

असतश्च विवस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३२ ॥

यः प्राणतो निमिषतो

महिल्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय

हविषा विधेम तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३३ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे

उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय

हविषा विधेम तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३४ ॥

यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु

यो रुद्रो विश्वा भुवनाऽऽविवेश ।

तस्मै रुद्राय नमो अस्तु

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३५ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षी

नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियं

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३६ ॥

य इदं शिवसङ्कल्पं सदा ध्यायन्ति ब्राह्मणाः ।

ते परं मोक्षं गमिष्यन्ति तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३७ ॥

इति शिवसङ्कलोपनिषत् समाप्ता

[इति शिवसङ्कल्पमन्त्राः समाप्ताः]

शिवोपनिषत्

प्रथमोऽध्यायः

कैलासशिखरासीनमशेषामरपूजितम् ।
 कालघ्नं श्रीमहाकालमीश्वरं ज्ञानपारगम् ॥ १ ॥
 संपूज्य विधिवद्भक्त्या ऋष्यात्रेयः सुसंयतः ।
 सर्वभूतहितार्थाय पप्रच्छेदं महामुनिः ॥ २ ॥
 ज्ञानयोगं न विन्दन्ति ये नरा मन्दबुद्धयः ।
 ते मुच्यन्ते कथं घोराद्भगवन् भवसागरात् ॥ ३ ॥
 एवं पृष्टः प्रसन्नात्मा ऋष्यात्रेयेण धीमता ।
 मन्दबुद्धिविमुक्त्यर्थं महाकालः प्रभाषते ॥ ४ ॥

महादेव उवाच—

पुरा रुद्रेण गदिताः शिवधर्माः सनातनाः ।
 देव्याः सर्वगणानां च संक्षेपाद्ग्रन्थकोटिभिः ॥ ५ ॥
 आयुः प्रज्ञां तथा शक्तिं प्रसमीक्ष्य नृणामिह ।
 तापत्रयप्रपीडां च भोगतृष्णाविमोहिनीम् ॥ ६ ॥
 ते धर्माः स्कन्दनन्दिभ्यामन्यैश्च मुनिसत्तमैः ।
 सारमादाय निर्दिष्टाः सम्यक्प्रकरणान्तरैः ॥ ७ ॥
 सारादपि महासारं शिवोपनिषदं परम् ।
 अल्पग्रन्थं महार्थं च प्रवक्ष्यामि जगद्धितम् ॥ ८ ॥
 शिवः शिव इमे शान्तनाम चाद्यं मुहुर्मुहुः ।
 उच्चारयन्ति तद्भक्त्या ते शिवा नात्र संशयः ॥ ९ ॥

अशिवाः पाशसंयुक्ताः पशवः सर्वचेतनाः ।
 यस्माद्विलक्षणास्तेभ्यस्तस्मादीशः शिवः स्मृतः ॥ १० ॥
 गुणो बुद्धिरहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
 भूतानि च चतुर्विंशदिति पाशाः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥
 पञ्चविंशकमज्ञानं सहजं सर्वदेहिनाम् ।
 पाशजालस्य तन्मूलं प्रकृतिः कारणाय नः ॥ १२ ॥
 सत्यज्ञाने निबध्यन्ते पुरुषाः पाशबन्धनैः ।
 मद्भावाच्च विमुच्यन्ते ज्ञानिनः पाशपञ्जरात् ॥ १३ ॥
 षड्विंशकश्च पुरुषः पशुरज्ञः शिवागमे ।
 सप्तविंश इति प्रोक्तः शिवः सर्वजगत्पतिः ॥ १४ ॥
 यस्माच्छिवः सुसंपूर्णः सर्वज्ञः सर्वगः प्रभुः ।
 तस्मात्स पाशरहितः स विशुद्धः स्वभावतः ॥ १५ ॥
 पशुपाशपरः शान्तः परमज्ञानदेशिकः ।
 शिवः शिवाय भूतानां तं विज्ञाय विमुच्यते ॥ १६ ॥
 एतदेव परं ज्ञानं शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
 विचाराद्याति विस्तारं तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ १७ ॥
 सकृदुच्चारितं येन शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
 बद्धः परिकरस्तेन मोक्षोपगमनं प्रति ॥ १८ ॥
 द्व्यक्षरः शिवमन्त्रोऽयं शिवोपनिषदि स्मृतः ।
 एकाक्षरः पुनश्चायमोमित्येवं व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
 नामसङ्कीर्तनादेव शिवस्याशेषपातकैः ।
 यतः प्रमुच्यते क्षिप्रं मन्त्रोऽयं द्व्यक्षरः परः ॥ २० ॥
 यः शिवं शिवमित्येवं द्व्यक्षरं मन्त्रमभ्यसेत् ।
 एकाक्षरं वा सततं स याति परमं पदम् ॥ २१ ॥

मित्रस्वजनबन्धूनां कुर्यान्नाम शिवात्मकम् ।

अपि तत्कीर्तनाद्याति पापमुक्तः शिवं पुरम् ॥ २२ ॥

विज्ञेयः स शिवः शान्तो नरस्तद्भावभावितः ।

आस्ते सदा निरुद्विग्नः स देहान्ते विमुच्यते ॥ २३ ॥

हृद्यन्तःकरणं ज्ञेयं शिवस्यायतनं परम् ।

हृत्पद्मं वेदिका तत्र लिङ्गमोङ्कारमिष्यते ॥ २४ ॥

पुरुषः स्थापको ज्ञेयः सत्यं संमार्जनं स्मृतम् ।

अहिंसा गोमयं प्रोक्तं शान्तिश्च सलिलं परम् ॥ २५ ॥

कुर्यात् संमार्जनं प्राज्ञो वैराग्यं चन्दनं स्मृतम् ।

पूजयेद्ध्यानयोगेन सन्तोषैः कुसुमैः सितैः ॥ २६ ॥

धूपश्च गुग्गुलुर्देयः प्राणायामसमुद्भवः ।

प्रत्याहारश्च नैवेद्यमस्तेयं च प्रदक्षिणम् ॥ २७ ॥

इति दिव्योपचारैश्च संपूज्य परमं शिवम् ।

जपेद्ध्यायेच्च मुक्त्यर्थं सर्वसङ्गविवर्जितः ॥ २८ ॥

ज्ञानयोगविनिर्मुक्तः कर्मयोगसमावृतः ।

मृतः शिवपुरं गच्छेत्स तेन शिवकर्मणा ॥ २९ ॥

तत्र भुक्त्वा महाभोगान्प्रलये सर्वदेहिनाम् ।

शिवधर्माच्छिवज्ञानं प्राप्य मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ३० ॥

ज्ञानयोगेन मुच्यन्ते देहपातादनन्तरम् ।

भोगान् भुक्त्वा च मुच्यन्ते प्रलये कर्मयोगिनः ॥ ३१ ॥

तस्मात् ज्ञानविदो योगात्तथाऽज्ञाः कर्मयोगिनः ।

सर्व एव विमुच्यन्ते ये नराः शिवमाश्रिताः ॥ ३२ ॥

स भोगः शिवविद्यार्थं येषां कर्मास्ति निर्मलम् ।

ते भोगान् प्राप्य मुच्यन्ते प्रलये शिवविद्यया ॥ ३३ ॥

विद्या सङ्कीर्तनीया हि येषां कर्म न विद्यते ।
 ते चावर्त्य विमुच्यन्ते यावत्कर्म न तद्ववेत् ॥ ३४ ॥
 शिवज्ञानविदं तस्मात्पूजयेद्विभवैर्गुरुम् ।
 विद्यादानं च कुर्वीत भोगमोक्षजिगीषया ॥ ३५ ॥
 शिवयोगी शिवज्ञानी शिवजापी तपोऽधिकः ।
 क्रमशः कर्मयोगी च पञ्चैते मुक्तिभाजनाः ॥ ३६ ॥
 कर्मयोगस्य यन्मूलं तद्वक्ष्यामि समासतः ।
 लिङ्गमायतनं चेति तत्र कर्म प्रवर्तते ॥ ३७ ॥

इति शिवोपनिषदि मुक्तिनिर्देशाध्यायः प्रथमः

द्वितीयोऽध्यायः

अथ पूर्वस्थितो लिङ्गे गर्भः स त्रिगुणो भवेत् ।
 गर्भाद्वापि विभागेन स्थाप्य लिङ्गं शिवालये ॥ १ ॥
 यावलिङ्गस्य दैर्घ्यं स्यात्तावद्वेद्याश्च विस्तरः ।
 लिङ्गतृतीयभागेन भवेद्वेद्याः समुच्छ्रयः ॥ २ ॥
 भागमेकं न्यसेद्भूमौ द्वितीयं वेदिमध्यतः ।
 तृतीयभागे पूजा स्यादिति लिङ्गं त्रिधा स्थितम् ॥ ३ ॥
 भूमिस्थं चतुरश्रं स्यादष्टाश्रं वेदिमध्यतः ।
 पूजार्थं वर्तुलं कार्यं दैर्घ्यात् त्रिगुणविस्तरम् ॥ ४ ॥
 अधोभागे स्थितः स्कन्दः स्थिता देवी च मध्यतः ।
 ऊर्ध्वं रुद्रः क्रमाद्वापि ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ५ ॥

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः ।
 एत एव त्रयो वेदा एतच्चान्यत्स्थितं त्रिधा ॥ ६ ॥
 नवहस्तः स्मृतो ज्येष्ठः षड्दहस्तश्चापि मध्यमः ।
 विद्यात् कनीयस्त्रैहस्तं लिङ्गमानमिदं स्मृतम् ॥ ७ ॥
 गर्भस्यान्तः प्रविस्तारस्तदूनश्च न शस्यते ।
 गर्भस्यान्तः प्रविस्तारात्तदुपर्यपि संस्थितम् ॥ ८ ॥
 प्रासादं कल्पयेच्छ्रीमान् विभजेत त्रिधा पुनः ।
 भाग एको भवेज्जङ्घा द्वौ भागौ मञ्जरी स्मृता ॥ ९ ॥
 मञ्जर्या अर्धभागस्थं शुकनासं प्रकल्पयेत् ।
 गर्भादर्धेन विस्तारमायामं च सुशोभनम् ॥ १० ॥
 गर्भाद्वापि त्रिभागेन शुकनासां प्रकल्पयेत् ।
 गर्भादर्धेन विस्तीर्णा गर्भाच्च द्विगुणायता ॥ ११ ॥
 जङ्घाभिश्च भवेत् कार्या मञ्जर्यङ्गुलराशिना ।
 प्रासादार्धेन विज्ञेयो मण्डपस्तस्य वामतः ॥ १२ ॥
 मण्डपात्पादविस्तीर्णा जगती तावदुच्छ्रिता ।
 प्रासादस्य प्रमाणेन जगत्या सार्धमङ्गणम् ॥ १३ ॥
 प्राकारं तत्समन्ताच्च गोपुरादालभूषितम् ।
 प्राकारान्तः स्थितं कार्यं वृषस्थानं समुच्छ्रितम् ॥ १४ ॥
 नन्दीश्वरमहाकालौ द्वारशाखाव्यवस्थितौ ।
 प्राकारादक्षिणे कार्यं सर्वोपकरणान्वितम् ॥ १५ ॥
 पञ्चभौमं त्रिभौमं वा योगीन्द्रावसथं महत् ।
 प्राकारगुप्तं तत्कार्यं मैत्रस्थानसमन्वितम् ॥ १६ ॥
 स्थानादशसमायुक्तं भव्यवृक्षजलान्वितम् ।
 तन्महानसमाग्नेय्यां पूर्वतः सत्रमण्डपम् ॥ १७ ॥

स्थानं चण्डेशमैशान्यां पुष्पारामं तथोत्तरम् ।
 कोष्ठागारं च वायव्यां वारुण्यां वरुणालयम् ॥ १८ ॥
 शमीन्धनकुशस्थानमायुधानां च नैऋतम् ।
 सर्वलोकोपकाराय नगरस्थं प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥
 श्रीमदायतनं शम्भोर्योगिनां विजने बने ।
 शिवस्यायतने यावत्समेताः परमाणवः ॥ २० ॥
 मन्वन्तराणि तावन्ति कर्तुर्भोगाः शिवे पुरे ।
 महाप्रतिमलिङ्गानि महान्त्यायतनानि च ॥ २१ ॥
 कृत्वाऽऽप्नोति महाभोगानन्ते मुक्तिं च शाश्वतीम् ।
 लिङ्गप्रतिष्ठां कुर्वीत यदा तल्लक्षणं कृती ॥ २२ ॥
 पञ्चगव्येन संशोध्य पूजयित्वाऽधिवासयेत् ।
 पालाशोदुम्बराश्वत्थपृषदाज्यतिलैर्यवैः ॥ २३ ॥
 अग्निकार्यं प्रकुर्वीत दद्यात् पूर्णाहुतित्रयम् ।
 शिवस्याष्टशतं हुत्वा लिङ्गमूलं स्पृशेद्बुधः ॥ २४ ॥
 एवं मध्येऽवसाने तन्मूर्तिमन्त्रैश्च मूर्तिषु ।
 अष्टौ मूर्तीश्वराः कार्या नवमः स्थापकः स्मृतः ॥ २५ ॥
 प्रातः संस्थापयेद्विङ्गं मन्त्रैस्तु नवभिः क्रमात् ।
 महास्नानपूजां च स्थाप्य लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ २६ ॥
 गुरोर्मूर्तिधराणां च दद्यादुत्तमदक्षिणाम् ।
 यतीनां च समस्तानां दद्यान्मध्यमदक्षिणाम् ॥ २७ ॥
 दीनान्धकृपणेभ्यश्च सर्वासामुपकल्पयेत् ।
 सर्वभक्ष्यान्नपानाद्यैरनिषिद्धं च भोजनम् ॥ २८ ॥
 कल्पयेदागतानां च भूतेभ्यश्च बलिं हरेत् ।
 सत्रौ मातृगणानां च बलिं दद्याद्विशेषतः ॥ २९ ॥

एवं यः स्थापयेल्लिङ्गं तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 कुलत्रिंशकमुद्धृत्य भृत्यैश्च परिवारितः ॥ ३० ॥
 कलत्रपुत्रमित्राद्यैः सहितः सर्वबान्धवैः ।
 विमुच्य पापकलिलं शिवलोकं ब्रजेन्नरः ।
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान् प्रलये मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

इति शिवोपनिषदि लिङ्गायतनाध्यायो द्वितीयः

तृतीयोऽध्यायः

अथान्यैरल्पवित्तैश्च नृपैश्च शिवभावितैः ।
 शक्तिः स्वाश्रमे कार्यं शिवशान्तिगृहद्वयम् ॥ १ ॥
 गृहस्येशानदिग्भागे कार्यमुत्तरतोऽपि वा ।
 खात्वा भूमिं समुद्धृत्य शल्यानाकोत्थ यत्नतः ॥ २ ॥
 शिवदेवगृहं कार्यमष्टहस्तप्रमाणतः ।
 दक्षिणोत्तरदिग्भागे किञ्चिद्दीर्घं प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥
 हस्तमात्रप्रमाणं च दृढपट्टचतुष्टयम् ।
 चतुष्कोणेषु संयोज्यमर्ध्यपात्रादिसंश्रयम् ॥ ४ ॥
 गर्भमध्ये प्रकुर्वन्ति शिववेदिं सुशोभनाम् ।
 उदगर्वाक्छिन्तां किञ्चिच्चतुःशीर्षकसंयुताम् ॥ ५ ॥
 त्रिहस्तायामविस्तारां षोडशाङ्गुलमुच्छिन्ताम् ।
 तच्छीर्षाणीव हस्तार्धमायामाद्विस्तरेण च ॥ ६ ॥
 शिवस्थण्डिलमित्येतच्चतुर्हस्तं समं शिरः ।
 मूर्तिनैवेद्यदीपानां विन्यासार्थं प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥

शैवलङ्गेन कार्यं स्यात् कार्यं मणिजपार्थिवैः ।
 स्थण्डिलार्धे च कुर्वन्ति वेदिमन्यां सवर्तुलाम् ॥ ८ ॥
 षोडशाङ्गुलमुत्सेधां विस्तीर्णीं द्विगुणेन च ।
 गृहे न स्थापयेच्छैलं लिङ्गं मणिजमर्चयेत् ॥ ९ ॥
 त्रिसन्ध्यं पार्थिवं वापि कुर्यादन्यद्दिने दिने ।
 सर्वेषामेव वर्णानां स्फाटिकं सर्वकामदम् ॥ १० ॥
 सर्वदोषविनिर्मुक्तमन्यथा दोषमावहेत् ।
 आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी ॥ ११ ॥
 वरमिष्टं च लभते लिङ्गं पार्थिवमर्चयन् ।
 तस्माद्धि पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥ १२ ॥
 निर्दोषं सुलभं चैव पूजयेत् सततं बुधः ।
 यथा यथा महालिङ्गं पूजा श्रद्धा यथा यथा ॥ १३ ॥
 तथा तथा महत्पुण्यं विज्ञेयमनुरूपतः ।
 प्रतिमालिङ्गवेदीषु यावन्तः परमाणवः ।
 तावत्कल्पान्महाभोगस्तत्कर्ताऽऽस्ते शिवे पुरे ॥ १४ ॥

इति शिवोपनिषदि शिवगृहाध्यायस्तृतीयः

चतुर्थोऽध्यायः

अथैकभिन्नावच्छिन्नं पुरतः शान्तिमण्डपम् ।
 पूर्वापराष्टहस्तं स्याद्द्वादशोत्तरदक्षिणे ॥ १ ॥
 तद्द्वारभित्तिसंबद्धं कपिच्छुकसमावृतम् ।
 पटद्वयं भवेत् स्थाप्यं सुवाद्यावारहेतुना ॥ २ ॥

द्वारं त्रिशाखं विज्ञेयं नवत्यङ्गुलमुच्छ्रितम् ।
 तदर्धेन च विस्तीर्णं सत्कवाटं शिवालये ॥ ३ ॥
 दीर्घं पञ्चनवत्या च पञ्चशाखासुशोभितम् ।
 सत्कवाटद्वयोपेतं श्रीमद्वाहनमण्डपम् ॥ ४ ॥
 द्वारं पश्चान्मुखं ज्ञेयमशेषार्थप्रसाधकम् ।
 अभावे प्राङ्मुखं कार्यमुदग्दक्षिणतो न च ॥ ५ ॥
 गवाक्षकद्वयं कार्यमपिधानं सुशोभनम् ।
 धूमनिर्गमनार्थाय दक्षिणोत्तरकुडचयोः ॥ ६ ॥
 आग्नेयभागात्परितः कार्या जालगवाक्षकाः ।
 ऊर्ध्वस्तूपिकया युक्ता ईषच्छिद्रपिधानया ॥ ७ ॥
 शिवाग्निहोत्रकुण्डं च वृत्तं हस्तप्रमाणतः ।
 चतुरश्रवेदिका श्रीमन्मेखलात्रयभूषितम् ॥ ८ ॥
 कुडचं द्विहस्तविस्तीर्णं पञ्चहस्तसमुच्छ्रितम् ।
 शिवाग्निहोत्रशरणं कर्तव्यमतिशोभनम् ॥ ९ ॥
 जगतीस्तम्भपट्टाद्यं सप्तसंख्यं च कल्पयेत् ।
 बन्धयोगविनिर्मुक्तं तुल्यस्थानपदान्तरम् ॥ १० ॥
 ऐष्टकं कल्पयेद्यन्नाच्छिवाग्न्यायतनं महत् ।
 चतुःप्रेगीवकोपेतमेकप्रेगीवकेन वा ॥ ११ ॥
 सुधाप्रलिप्तं कर्तव्यं पञ्चाण्डकविभूषितम् ।
 शिवाग्निहोत्रशरणं चतुरण्डकसंयुतम् ॥ १२ ॥
 बहिस्तदेव जगती त्रिहस्ता वा सुकुट्टिमा ।
 तावदेव च विस्तीर्णा मेखलादिविभूषिता ॥ १३ ॥
 कर्तव्या चात्र जगती तस्याश्वाधः समन्ततः ।
 द्विहस्तमात्रविस्तीर्णा तदर्धार्धसमुच्छ्रिता ॥ १४ ॥

अन्या वृत्ता प्रकर्तव्या रुद्रवेदी सुशोभना ।
 दशहस्तप्रमाणा च चतुरङ्गुलमुच्छ्रिता ॥ १५ ॥
 रुद्रमातृगणानां च दिक्पतीनां च सर्वदा ।
 सर्वाग्रपाकसंयुक्तं तासु नित्यबलिं हरेत् ॥ १६ ॥
 वेद्यन्या सर्वभूतानां बहिः कार्या द्विहस्तिका ।
 वृषस्थानं च कर्तव्यं शिवालोकनसंमुखम् ॥ १७ ॥
 अग्नार्घसवितुर्व्योम वृषः कार्यश्च पश्चिमे ।
 व्योम्नश्चाधस्त्रिगर्भं स्यात् पितृतर्पणवेदिका ॥ १८ ॥
 प्राकारान्तर्बहिः कार्यं श्रीमद्गोपुरभूषितम् ।
 पुष्पारामजलोपेतं प्राकारान्तं च कारयेत् ॥ १९ ॥
 मृद्धारुजं तृणच्छन्नं प्रकुर्वीत शिवालयम् ।
 भूमिकाद्वयविन्यासादुत्क्षिप्तं कल्पयेद्बुधः ॥ २० ॥
 शिवदक्षिणतः कार्यं तद्भुक्तेर्योग्यमालयम् ।
 शय्यासनसमायुक्तं वास्तुविद्याविनिर्मितम् ॥ २१ ॥
 ध्वजसिंहौ वृषगजौ चत्वारः शोभनाः स्मृताः ।
 धूमश्चार्द्धभध्वाङ्क्षाश्चत्वारश्चार्थनाशकाः ॥ २२ ॥
 गृहस्यायामविस्तारं कृत्वा त्रिगुणमादितः ।
 अष्टभिः शोधयेदापैः शेषश्च गृहमादिशेत् ॥ २३ ॥
 इति शान्तिगृहं कृत्वा रुद्राग्निं यः प्रवर्तयेत् ।
 अप्येकं दिवसं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥
 कलत्रपुत्रमित्राद्यैः स भृत्यैः परिवारितः ।
 कुलैकविंशदुत्तार्य शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥
 नीलोत्पलदलश्यामाः पीनवृत्तपयोधराः ।
 हेमवर्णाः स्त्रियश्चान्याः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ २६ ॥

ताभिः सार्धं महाभोगैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
 इच्छया क्रीडते तावद्यावदाभूतसंस्तवम् ॥ २७ ॥
 ततः कल्पाग्निना सार्धं दह्यमानं सुविह्वलम् ।
 दृष्ट्वा विरज्यते भूयो भवभोगमहार्णवात् ॥ २८ ॥
 ततः संपृच्छते रुद्रांस्तत्रस्थान् ज्ञानपारगान् ।
 तेभ्यः प्राप्य शिवज्ञानं शान्तं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ २९ ॥
 अविरक्तश्च भोगेभ्यः सप्त जन्मानि जायते ।
 पृथिव्यधिपतिः श्रीमानिच्छया वा द्विजोत्तमः ॥ ३० ॥
 सप्तमाज्जन्मनश्चान्ते शिवज्ञानमवाप्नुयात् ।
 ज्ञानाद्विरक्तः संसाराच्छुद्धः खान्यधितिष्ठति ॥ ३१ ॥
 इत्येतदखिलं कार्यं फलमुक्तं समासतः ।
 उत्सवे च पुनर्ब्रूमः प्रत्येकं द्रव्यजं फलम् ॥ ३२ ॥
 सद्गन्धगुटिकामेकां लाक्षां प्राप्यङ्गवर्जिताम् ।
 कर्पासास्थिप्रमाणां च हुत्वाऽग्नौ शृणुयात् फलम् ॥ ३३ ॥
 यावत्सद्गन्धगुटिका शिवाग्नौ संख्यया हुता ।
 तावत्कोट्यस्तु वर्षाणि भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ३४ ॥
 एकाङ्गुलप्रमाणेन हुत्वाऽग्नौ चन्दनाहुतिम् ।
 वर्षकोटिद्वयं भोगैर्दिव्यैः शिवपुरे वसेत् ॥ ३५ ॥
 यावत्केसरसंख्यानं कुसुमस्यानले हुतम् ।
 तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ३६ ॥
 नागकेसरपुष्पं तु कुङ्कुमार्धेन कीर्तितम् ।
 यत्फलं चन्दनस्योक्तमुशीरस्य तदर्धकम् ॥ ३७ ॥
 यत्पुष्पधूपभक्ष्यान्नदधिक्षीरघृतादिभिः ।
 पुण्यलिङ्गार्चने प्रोक्तं तद्धोमस्य दशाधिकम् ॥ ३८ ॥

हुत्वाऽग्नौ समिधस्तिस्रः शिवोमास्कन्दनामभिः ।
 पश्चाद्द्यात्तिलान्नानि होमयेत् यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥
 पलाशाङ्कुरजारिष्टपालाल्यः समिधः शुभाः ।
 पृषदाज्यप्लुता हुत्वा शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥ ४० ॥
 पलाशाङ्कुरसंख्यानां यावदग्नौ हुतं भवेत् ।
 तावत्कल्पान्महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ४१ ॥
 तल्लक्ष्यमध्यसंभूतं हुत्वाग्नौ समिधः शुभाः ।
 कल्पार्थसंमितं कालं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ४२ ॥
 शमीसमित्फलं देयमब्दानपि च लक्षकम् ।
 शम्यर्धफलवच्छेषाः समिधः क्षीरवृक्षजाः ॥ ४३ ॥
 तिलसंख्यान् तिलान् हुत्वा ह्याज्याक्ता यावती भवेत् ।
 तावत्स वर्षलक्षांस्तु भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ४४ ॥
 यावत्सुरौषधीरज्जस्तिलतुल्यफलं स्मृतम् ।
 इतरेभ्यस्तिलेभ्यश्च कृष्णानां द्विगुणं फलम् ॥ ४५ ॥
 लाजाक्षताः सगोधूमा वर्षलक्षफलप्रदाः ।
 दशसाहसिका ज्ञेयाः शेषाः स्युर्बीजजातयः ॥ ४६ ॥
 पलाशेन्धनजे वह्नौ होमस्य द्विगुणं फलम् ।
 क्षीरवृक्षसमृद्धेऽग्नौ फलं सार्धाधिकं भवेत् ॥ ४७ ॥
 असमिद्धे सधूमे च होमकर्म निरर्थकम् ।
 अन्धश्च जायमानः स्याद्धारिद्र्योपहतस्तथा ॥ ४८ ॥
 न च कण्टकिभिर्वृक्षैरग्निं प्रज्वालय होमयेत् ।
 शुष्कैर्नवैः प्रशस्तैश्च काष्ठैरग्निं समिन्धयेत् ॥ ४९ ॥
 एवमाज्याहुतिं हुत्वा शिवलोकमवाप्नुयात् ।
 तत्र कल्पशतं भोगान् भुङ्क्ते दिव्यान् यथेप्सितान् ॥ ५० ॥

सुचैकाहितमात्रेण व्रतस्यापूरितेन च ।
 याहुतिर्दीयते बह्वौ सा पूर्णाहुतिरुच्यते ॥ ५१ ॥
 एकां पूर्णाहुतिं हुत्वा शिवेन शिवभावितः ।
 सर्वकाममवाप्नोति शिवलोके व्यवस्थितः ॥ ५२ ॥
 अशेषकुलजैः सार्धं स भृत्यैः परिवारितः ।
 आभूतसंल्लवं यावद्भोगान् भुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥ ५३ ॥
 ततश्च प्रलये प्राप्ते संप्राप्य ज्ञानमुत्तमम् ।
 प्रसादादीश्वरस्यैव मुच्यते भवसागरात् ॥ ५४ ॥
 शिवपूर्णाहुतिं बह्वौ पतन्ती यः प्रपश्यति ।
 सोऽपि पापैर्नरः सर्वैर्मुक्तः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ५५ ॥
 शिवान्निधूमसंसृष्टा जीवाः सर्वे चराचराः ।
 तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः स्वर्गं यान्ति न संशयः ॥ ५६ ॥
 शिवयज्ञमहावेद्या जायते ये न सन्ति वा ।
 तेऽपि यान्ति शिवस्थानं जीवाः स्थावरजङ्गमाः ॥ ५७ ॥
 पूर्णाहुतिं घृताभावे क्षीरतैलेन कल्पयेत् ।
 होमयेदतसीतैलं तिलतैलं विना नरः ॥ ५८ ॥
 सर्षपेङ्गुदिकाशाम्रकरञ्जमधुकाक्षजम् ।
 प्रियङ्गुबिल्वपैप्पल्यनालिकेरसमुद्भवम् ॥ ५९ ॥
 इत्येवमादिकं तैलमाज्याभावे प्रकल्पयेत् ।
 दुर्बया बिल्वपत्रैर्वा समिधः संप्रकीर्तिताः ॥ ६० ॥
 अन्नार्थं होमयेत् क्षीरं दधि मूलफलानि वा ।
 तिलार्थं तण्डुलैः कुर्याद्भार्थं हरितैस्तृणैः ॥ ६१ ॥
 परिधीनामभावेन शरैर्वैशैश्च कल्पयेत् ।
 इन्धनानामभावेन दीपयेत् तृणगोमयैः ॥ ६२ ॥

गोमयानामभावेन महत्यम्भसि होमयेत् ।
 अपामसंभवे होमं भूमिभागे मनोहरे ॥ ६३ ॥
 विप्रस्य दक्षिणे पाणावश्वत्थे तदभावतः ।
 छागस्य दक्षिणे कर्णे कुशमूले च होमयेत् ॥ ६४ ॥
 स्वात्माग्नौ होमयेत् प्राज्ञः सर्वाग्नीनामसंभवे ।
 अभावे न त्यजेत् कर्म कर्मयोगविधौ स्थितः ॥ ६५ ॥
 आपत्कालेऽपि यः कुर्याच्छिवाग्नेर्मनसार्चनम् ।
 स मोहकञ्चुकं त्यक्त्वा परां शान्तिमवाप्नुयात् ॥ ६६ ॥
 प्राणामिहोत्रं कुर्वन्ति परमं शिवयोगिनः ।
 बाह्यकर्मविनिर्मुक्ता ज्ञानध्यानसमाकुलाः ॥ ६७ ॥

इति शिवोपनिषदि शान्तिगृह्यामिकार्याध्यायश्चतुर्थः

पञ्चमोऽध्यायः

अथाग्नेयं महास्नानमलक्ष्मीमलनाशनम् ।
 सर्वपापहरं दिव्यं तपः श्रीकीर्तिवर्धनम् ॥ १ ॥
 अग्निरूपेण रुद्रेण स्वतेजः परमं बलम् ।
 भूतिरूपं समुद्रीर्णं विशुद्धं दुरितापहम् ॥ २ ॥
 यक्षरक्षःपिशाचानां ध्वंसनं मन्त्रसत्कृतम् ।
 रक्षार्थं बालरूपाणां सूतिकानां गृहेषु च ॥ ३ ॥
 यश्च भुङ्क्ते द्विजः कृत्वान्नस्य वा परिधित्रयम् ।
 अपि शूद्रस्य पङ्क्तिस्थः पङ्क्तिदोषैर्न लिप्यते ॥ ४ ॥

आहारमर्धमुक्तं च कीटकेशादिदूषितम् ।
 तावन्मात्रं समुद्धृत्य भूतिस्पृष्टं विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
 आरण्यं गोमयकृतं करीषं वा प्रशस्यते ।
 शर्करापांसुनिर्मुक्तमभावे काष्ठभस्मना ॥ ६ ॥
 स्वगृहाश्रमवल्लीभ्यः कुलालाल्यभस्मना ।
 गोमयेषु च दग्धेषु हीष्टकानि च येषु च ॥ ७ ॥
 सर्वत्र विद्यते भस्म दुःखापार्जनरक्षणम् ।
 शङ्खकुन्देन्दुवर्णाभमादद्याज्जन्तुवर्जितम् ॥ ८ ॥
 भस्मानीय प्रयत्नेन तद्रक्षेद्यत्नवांस्तथा ।
 माजारमृषिकाद्यैश्च नोपहन्येत तद्यथा ॥ ९ ॥
 पञ्चदोषविनिर्मुक्तं गुणपञ्चकसंयुतम् ।
 शिवैकादशिकाजप्तं शिवभस्म प्रकीर्तितम् ॥ १० ॥
 जातिकारुकवाक्कायस्थानदुष्टं च पञ्चमम् ।
 पापघ्नं शाङ्करं रक्षापवित्रं योगदं गुणाः ॥ ११ ॥
 शिवव्रतस्य शान्तस्य भासकत्वाच्छुभस्य च ।
 भक्षणात् सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्तितम् ॥ १२ ॥
 भस्मस्नानं शिवस्नानं वारुणादधिकं स्मृतम् ।
 जन्तुशैवालनिर्मुक्तमाग्नेयं पङ्कवर्जितम् ॥ १३ ॥
 अपवित्रं भवेत्तोयं निशि पूर्वमनाहृतम् ।
 नदीतडागवापीषु गिरिप्रस्रवणेषु च ॥ १४ ॥
 स्नानं साधारणं प्रोक्तं वारुणं सर्वदेहिनाम् ।
 असाधारणमेवोक्तं भस्मस्नानं द्विजन्मनाम् ॥ १५ ॥
 त्रिकालं वारुणस्नानादनारोग्यं प्रजायते ।
 आग्नेयं रोगशमनमेतस्मात् सार्वकामिकम् ॥ १६ ॥

सन्ध्यात्रयेऽर्घरात्रे च भुक्त्वा चान्नविरेचने ।
 शिवयोग्याचरेत् स्नानमुच्चारादिक्रियासु च ॥ १७ ॥
 भस्मास्तृते महीभागे समे जन्तुविवर्जिते ।
 ध्यायमानः शिवं योगी रजन्यन्तं शयीत च ॥ १८ ॥
 एकरात्रोषितस्यापि या गतिर्भस्मशायिनः ।
 न सा शक्या गृहस्थेन प्राप्तुं यज्ञशतैरपि ॥ १९ ॥
 गृहस्थस्त्रिचायुषोऽङ्गारैः स्नानं कुर्यात् त्रिपुण्ड्रकैः ।
 यतिः सार्वज्ञिकं स्नानमापादतलमस्तकात् ॥ २० ॥
 शिवभक्तस्त्रिधा वेद्यां भस्मस्नानफलं लभेत् ।
 हृदि मूर्ध्नि ललाटे च शूद्रः शिवगृहाश्रमी ॥ २१ ॥
 गणाः प्रव्रजिताः शान्ता भूतिमालभ्य पञ्चधा ।
 शिरोललाटे हृद्वाहोर्भस्मस्नानफलं लभेत् ॥ २२ ॥
 संवत्सरं तदर्धं वा चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
 यः कुर्याद्भस्मना स्नानं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २३ ॥
 शिवभस्मनि यावन्तः समेताः परमाणवः ।
 तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ २४ ॥
 एकविंशकुलोपेतः पत्नीपुत्रादिसंयुतः ।
 मित्रस्वजनभृत्यैश्च समस्तैः परिवारितः ॥ २५ ॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगानिच्छया सार्वकामिकान् ।
 ज्ञानयोगं समासाद्य प्रलये मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥
 भस्म भस्मान्तिकं येन गृहीतं नैष्ठिकव्रतम् ।
 अनेन वै स देहेन रुद्रश्चङ्क्रमते क्षितौ ॥ २७ ॥
 भस्मस्नानरतं शान्तं ये नमन्ति दिने दिने ।
 ते सर्वपापनिर्मुक्ता नरा यान्ति शिवं पुरम् ॥ २८ ॥

इत्येतत्परमं स्नानमाग्नेयं शिवनिर्मितम् ।
 त्रिसन्ध्यमाचरेन्नित्यं जापी योगमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥
 भस्मानीय प्रदद्याद्यः स्नानार्थं शिवयोगिने ।
 कल्पं शिवपुरे भोगान् भुक्त्वान्ते स्याद्विजोत्तमः ॥ ३० ॥
 आग्नेयं वारुणं मान्त्रं वायव्यं त्वैन्द्रपञ्चमम् ।
 मानसं शान्तितोयं च ज्ञानस्नानं तथाष्टमम् ॥ ३१ ॥
 आग्नेयं रुद्रमन्त्रेण भस्मस्नानमनुत्तमम् ।
 अम्भसा वारुणं स्नानं कार्यं वारुणमूर्तिना ॥ ३२ ॥
 मूर्धानं पाणिनाऽऽलभ्य शिवैकादशिकां जपेत् ।
 ध्यायमानः शिवं शान्तं मन्त्रस्नानं परं स्मृतम् ॥ ३३ ॥
 गवां खुरपुटोत्खातपवनोद्धूतरेणुना ।
 कार्यं वायव्यकं स्नानं मन्त्रेण मरुदात्मना ॥ ३४ ॥
 व्यग्नेऽर्के वर्षति स्नानं कुर्यादैन्द्रीं दिशं स्थितः ।
 आकाशमूर्तिमन्त्रेण तदैन्द्रमिति कीर्तितम् ॥ ३५ ॥
 उदकं पाणिना गृह्य सर्वतीर्थानि संस्मरेत् ।
 अभ्युक्षयेच्छिरस्तेन स्नानं मानसमुच्यते ॥ ३६ ॥
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरांस्यायतनानि च ।
 तेषु स्नातस्य मत्पुण्यं तत्पुण्यं क्षान्तिवारिणा ॥ ३७ ॥
 न तथा शुध्यते तीर्थैस्तपोभिर्वा महाध्वरैः ।
 पुरुषः सर्वदानैश्च यथा क्षान्त्या विशुद्ध्यति ॥ ३८ ॥
 आक्रुष्टस्ताडितस्तस्मादधिक्षिप्तस्तिरस्कृतः ।
 क्षमेदक्षममानानां स्वर्गमोक्षजिगीषया ॥ ३९ ॥
 यैव ब्रह्मविदां प्राप्तिर्यैव प्राप्तिस्तपस्विनाम् ।
 यैव योगाभियुक्तानां गतिः सैव क्षमावताम् ॥ ४० ॥

ज्ञानामलाम्भसा स्नातः सर्वदैव मुनिः शुचिः ।
 निर्मलस्सुविशुद्धश्च विज्ञेयः सूर्यरश्मिवत् ॥ ४१ ॥
 मेध्यामेध्यरसं यद्वदपि वत्स विना करैः ।
 नैव लिप्यति तद्दोषैस्तद्वदज्ञानी सुनिर्मलः ॥ ४२ ॥
 एषामेकतमे स्नातः शुद्धभावः शिवं व्रजेत् ।
 अशुद्धभावः स्नातोऽपि पूजयन्नाप्नुयात् फलम् ॥ ४३ ॥
 जलं मन्त्रं दया दानं सत्यमिन्द्रियसंयमः ।
 ज्ञानं भावात्मशुद्धिश्च शौचमष्टविधं श्रुतम् ॥ ४४ ॥
 अङ्गुष्ठतलमूले च ब्राह्मं तीर्थमवस्थितम् ।
 तेनाचम्य भवेच्छुद्धः शिवमन्त्रेण भावितः ॥ ४५ ॥
 यदधः कन्यकायाश्च तत्तीर्थं दैवमुच्यते ।
 तीर्थं प्रदेशिनीमूले पित्र्यं पितृविधोदयम् ॥ ४६ ॥
 मध्यमाङ्गुलिमध्येन तीर्थमारिषमुच्यते ।
 करपुष्करमध्ये तु शिवतीर्थं प्रतिष्ठितम् ॥ ४७ ॥
 वामपाणितले तीर्थमौमं नाम प्रकीर्तितम् ।
 शिवोमातीर्थसंयोगात् कुर्यात् स्नानाभिषेचनम् ॥ ४८ ॥
 देवान् दैवेन तीर्थेन तर्पयेदकृताम्भसा ।
 उद्धृत्य दक्षिणं पाणिमुपवीती सदा बुधः ॥ ४९ ॥
 प्राचीनावीतिना कार्यं पितृणां तिलवारिणा ।
 तर्पणं सर्वभूतानामारिषेण निवीतिना ॥ ५० ॥
 सव्यस्कन्धे यदा सूत्रमुपवीत्युच्यते तदा ।
 प्राचीनावीत्यसव्येन निवीती कण्ठसंस्थिते ॥ ५१ ॥

पितॄणां तर्पणं कृत्वा सूर्यायार्घ्यं प्रकल्पयेत् ।
उपस्थाय ततः सूर्यं यजेच्छिवमनन्तरम् ॥ ५२ ॥

इति शिवोपनिषदि शिवभस्मस्नानाध्यायः पञ्चमः

षष्ठोऽध्यायः

अथ भक्त्या शिवं पूज्य नैवेद्यमुपकल्पयेत् ।
यदन्नमात्मनाऽश्नीयात्तस्याग्रे विनिवेदयेत् ॥ १ ॥
यः कृत्वा भक्ष्यभोज्यानि यत्नेन विनिवेदयेत् ।
शिवाय स शिवे लोके कल्पकोटिं प्रमोदते ॥ २ ॥
यः पक्वं श्रीफलं दद्याच्छिवाय विनिवेदयेत् ।
गुरोर्वा होमयेद्वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३ ॥
श्रीमद्भिः स महायानैर्भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ।
वर्षाणामयुतं साग्रं तदन्ते श्रीपतिर्भवेत् ॥ ४ ॥
कपित्थमेकं यः पक्वमीश्वराय निवेदयेत् ।
वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ५ ॥
एकमात्रफलं पक्वं यः शंभोर्विनिवेदयेत् ।
वर्षाणामयुतं भोगैः क्रीडते स शिवे पुरे ॥ ६ ॥
एकं वटफलं पक्वं यः शिवाय निवेदयेत् ।
वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ७ ॥
यः पक्वं दाडिमं चैकं दद्याद्विकसितं नवम् ।
शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ८ ॥

यावत्तद्बीजसंख्यानं शोभनं परिकीर्तितम् ।
 तावदष्टायुतान्युच्चैः शिवलोके महीयते ॥ ९ ॥
 द्राक्षाफलानि पक्वानि यः शिवाय निवेदयेत् ।
 भक्त्या वा शिवयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १० ॥
 यावत्तत्फलसंख्यानमुभयोर्विनिवेदितम् ।
 तावद्द्व्यगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ११ ॥
 द्राक्षाफलेषु यत्पुण्यं तत्त्वर्जूरफलेषु च ।
 तदेव राजवृक्षेषु पारावतफलेषु च ॥ १२ ॥
 यो नारङ्गफलं पक्वं विनिवेद्य महेश्वरे ।
 अष्टलक्षं महाभोगैः क्रीडते स शिवे पुरे ॥ १३ ॥
 बीजपूरेषु तस्यार्धं तदर्धं लिङ्गेषु च ।
 जम्बूफलेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं तिन्दुकेषु च ॥ १४ ॥
 पनसं नारिकेलं वा शिवाय विनिवेदयेत् ।
 वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ १५ ॥
 पुरुषं च प्रियालं च मधूककुसुमानि च ।
 जम्बूफलानि पक्वानि वैकट्यफलानि च ॥ १६ ॥
 निवेद्य भक्त्या शर्वाय प्रत्येकं तु फले फले ।
 दशवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ १७ ॥
 क्षीरिकायाः फलं पक्वं यः शिवाय निवेदयेत् ।
 वर्षलक्षं महाभोगैर्मोदते स शिवे पुरे ॥ १८ ॥
 वालुकात्रपुसादीनि यः फलानि निवेदयेत् ।
 शिवाय गुरवे वापि पक्वं च करमर्दकम् ॥ १९ ॥
 दशवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
 बदराणि सुपक्वानि तिन्त्रिङ्गीफलानि च ॥ २० ॥

दर्शनीयानि पक्वानि ह्यामलक्याः फलानि च ।
 एवमादीनि चान्यानि शाकमूलफलानि च ॥ २१ ॥
 निवेदयीत शर्वाय शृणु यत्फलमामुयात् ।
 एकैकस्मिन् फले भोगान् प्राप्नुयादनुपूर्वशः ॥ २२ ॥
 पञ्चवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
 गोधूमचणकाद्यानि सुकृतं सक्तुभर्जितम् ॥ २३ ॥
 निवेदयीत शर्वाय तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 यावत्तद्बीजसंख्यानं शुभं अष्टं निवेदयेत् ॥ २४ ॥
 तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
 यः पक्वानीक्षुदण्डानि शिवाय विनिवेदयेत् ॥ २५ ॥
 गुरवे वापि तद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 इक्षुपर्णानि चैकैकं वर्षलोकं प्रमोदते ॥ २६ ॥
 साकं शिवपुरे भोगैः पौण्ड्रं पञ्चगुणं फलम् ।
 निवेद्य परमेशाय शुक्तिमात्ररसस्य तु ॥ २७ ॥
 वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ।
 निवेद्य फाणितं शुद्धं शिवाय गुरवेऽपि वा ॥ २८ ॥
 रसात् सहस्रगुणितं फलं प्राप्नोति मानवः ।
 गुडस्य पलमेकं यः शिवाय विनिवेदयेत् ॥ २९ ॥
 अब्दकोटिं शिवे लोके महाभोगैः प्रमोदते ।
 खण्डस्य पलनैवेद्यं गुडाच्छतगुणं फलम् ॥ ३० ॥
 खण्डात् सहस्रगुणितं शर्कराया निवेदने ।
 मत्संडिकां महाशुद्धां शङ्कराय निवेदयेत् ॥ ३१ ॥
 कल्पकोटिं नरः साग्रं शिवलोके महीयते ।
 परिशुद्धं भृष्टमाज्यं सिद्धं चैव सुसंस्कृतम् ॥ ३२ ॥

मांसं निवेद्य शर्वाय शृणु यत्फलमाप्नुयात् ।
 अशेषफलदानेन यत्पुण्यं परिकीर्तितम् ॥ ३३ ॥
 तत्पुण्यं प्राप्नुयात् सर्वं महादाननिवेदने ।
 पनसानि च दिव्यानि स्वाद्भूनि सुरभीणि च ॥ ३४ ॥
 निवेदयेत्तु शर्वाय तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 कल्पकोटिं नरः साग्रं शिवलोके व्यवस्थितः ॥ ३५ ॥
 पिबन् शिवामृतं दिव्यं महाभोगैः प्रमोदते ।
 दिने दिने च यस्त्वापं वस्त्रपूतं समाचरेत् ॥ ३६ ॥
 सुखाय शिवभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 महासरांसि यः कुर्याद्भवेत् पुण्यं शिवाग्रतः ॥ ३७ ॥
 तत्पुण्यं सकलं प्राप्य शिवलोके महीयते ।
 यदिष्टमात्मनः किञ्चिदन्नपानफलादिकम् ॥ ३८ ॥
 तत्तच्छिवाय देयं स्यादुत्तमं भोगमिच्छता ।
 न शिवः परिपूर्णत्वात् किञ्चिदश्नाति कस्यचित् ॥ ३९ ॥
 किन्त्वीश्वरनिभं कृत्वा सर्वमात्मनि दीयते ।
 न रोहति यथा बीजं स्वस्थमाश्रयवर्जितम् ॥ ४० ॥
 पुण्यबीजं तथा सूक्ष्मं निष्फलं स्यान्निराश्रयम् ।
 सुक्षेत्रेषु यथा बीजमुप्तं भवति सत्फलम् ॥ ४१ ॥
 अल्पमप्यक्षयं तद्वत् पुण्यं शिवसमाश्रयात् ।
 तस्मादीश्वरमुद्दिश्य यद्यदात्मनि रोचते ॥ ४२ ॥
 तत्तदीश्वरभक्तेभ्यः प्रदातव्यं फलार्थिना ।
 यः शिवाय गुरोर्वापि रचयेन्मणिभूमिकम् ॥ ४३ ॥
 नैवेद्यं भोजनार्थं यः पतैः पुष्पैश्च शोभनम् ।
 यावत्तत्पुष्पाणां परिसंख्या विधीयते ॥ ४४ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि सुरलोके महीयते ।

पलाशकदलीपद्मपत्राणि च विशेषतः ॥ ४५ ॥

दत्त्वा शिवाय गुरवे शृणु यत्फलमाप्नुयात् ।

यावत्तत्पत्रसंख्यानमीश्वराय निवेदितम् ॥ ४६ ॥

तावदब्दायुतानां स लोके भोगानवाप्नुयात् ।

यावत्ताम्बूलपत्राणि पूगांश्च विनिवेदयेत् ॥ ४७ ॥

तावन्ति वर्षलक्षाणि शिवलोके महीयते ।

यच्छुद्धं शङ्खचूर्णं वा गुरवे विनिवेदयेत् ॥ ४८ ॥

ताम्बूलयोगसिद्धचर्थं तस्य पुण्यफलं शृणु ।

यावत्ताम्बूलपत्राणि चूर्णमानेन भक्षयेत् ॥ ४९ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।

जातीफलं सकङ्कोलं लताकस्तूरिकोत्पलम् ॥ ५० ॥

इत्येतानि सुगन्धीनि फलानि विनिवेदयेत् ।

फले फले महाभोगैर्वर्षलक्षं तु यन्नतः ॥ ५१ ॥

कामिकेन विमानेन क्रीडते स शिवे पुरे ।

त्रुटिमात्रप्रमाणेन कर्पूरस्य शिवे गुरौ ॥ ५२ ॥

वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ।

पूगताम्बूलपत्राणामाधारं यो निवेदयेत् ॥ ५३ ॥

वर्षकोट्यष्टकं भोगैः शिवलोके महीयते ।

यश्चूर्णाधारसत्पात्रं कस्यापि विनिवेदयेत् ॥ ५४ ॥

मोदते स शिवे लोके वर्षकोटीश्चतुर्दश ।

मृत्काष्ठवंशखण्डानि यः प्रदद्याच्छिवश्रमे ॥ ५५ ॥

प्राप्नुयाद्विपुलान् भोगान् दिव्याञ्छिवपुरे नरः ।

माणिक्यं कलशं पार्त्रीं स्थाल्यादीन् भाण्डसंपुटान् ॥ ५६ ॥

दत्त्वा शिवाग्रजस्त्वेभ्यः शिवलोके महीयते ।

तोयाधारपिधानानि मृद्वस्त्रतरुजानि वा ॥ ५७ ॥

वंशालाबुसमुत्थानि दत्त्वाप्नोति शिवं पुरम् ।

पञ्चसंमार्जनीतोयं गोमयाञ्जनकर्पटान् ॥ ५८ ॥

मृत्कुम्भपीठिकां दद्याद्भोगाच्छिवपुरे लभेत् ।

यः पुष्पधूपगन्धानां दधिक्षीरघृताम्भसाम् ॥ ५९ ॥

दद्यादाधारपात्राणि शिवलोकं स गच्छति ।

वंशतालादिसंभूतं पुष्पाधारकरण्डकम् ॥ ६० ॥

इत्येवमाद्यान् यो दद्याच्छिवलोकमवाप्नुयात् ।

यः सुक्लुवादिपात्राणि होमार्थं विनिवेदयेत् ॥ ६१ ॥

वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ।

यः सर्वधातुसंयुक्तं दद्याल्लवणपर्वतम् ॥ ६२ ॥

शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ।

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ६३ ॥

स गोत्रभृत्यसंयुक्तो वसेच्छिवपुरे नरः ।

विमानयानैः श्रीमद्भिः सर्वकामसमन्वितैः ॥ ६४ ॥

भोगान् भुक्त्वा तु विपुलांस्तदन्ते स महीपतिः ।

मनःशिलां हरीतालं राजपट्टं च हिङ्गुलम् ॥ ६५ ॥

गैरिकं मणिदन्तं च हेमतोयं तथाष्टमम् ।

यश्च तं पर्वतवरं शालितण्डुलकल्पितम् ॥ ६६ ॥

शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ।

कल्पकोटिशतं साग्रं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ६७ ॥

यः सर्वधान्यशिखरैरुपेतं यवपर्वतम् ।

घृततैलनदीयुक्तं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ६८ ॥

कल्पकोटिशतं साग्रं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ।
 समस्तकुलजैः सार्धं तस्यान्ते स महीपतिः ॥ ६९ ॥
 तिलधेनुं प्रदद्याद्यः कृत्वा कृष्णाजिने नरः ।
 कपिलायाः प्रदानस्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ ७० ॥
 घृतधेनुं नरः कृत्वा कांस्यपात्रे सकाञ्चनाम् ।
 निवेद्य गोप्रदानस्य समग्रं फलमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥
 द्वीपिचर्मणि यः स्थाप्य प्रदद्याल्लवणाढकम् ।
 अशेषरसदानस्य यत्पुण्यं तदवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥
 मरिचादेन कुर्वीत मारीचं नाम पर्वतम् ।
 दद्याद्यज्जीरकं पूर्वमाग्नेयं हिङ्गुमुत्तमम् ॥ ७३ ॥
 दक्षिणे गुडशुण्ठीं च नैर्ऋते नागकेसरम् ।
 पिप्पलीं पश्चिमे दद्याद्वायव्ये कृष्णजीरकम् ॥ ७४ ॥
 कौबेर्यामजमोदं च त्वगेलाश्चेशदैवते ।
 कुस्तुम्बर्याः प्रदेयाः स्युर्वहिः प्राकारतः स्थिताः ॥ ७५ ॥
 ककुभामन्तरालेषु समन्तात् सैन्धवं न्यसेत् ।
 सपुष्पाक्षततोयेन शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ७६ ॥
 यावत्तद्दीपसंख्यानं सर्वमेकत्र पर्वते ।
 तावद्दर्शशतादूर्ध्वं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ७७ ॥
 कूश्माण्डं मध्यतः स्थाप्य कालिङ्गं पूर्वतो न्यसेत् ।
 दक्षिणे क्षीरतुम्बीं तु वृन्ताकं पश्चिमे न्यसेत् ॥ ७८ ॥
 पटीसान्युत्तरे स्थाप्य कर्कटीमीशदैवते ।
 न्यसेद्भजपटोलांश्च मधुरान् वह्निदैवते ॥ ७९ ॥
 कारवेलांश्च नैर्ऋत्यां वायव्यां निम्बकं फलम् ।
 उच्चावचानि चान्यानि फलानि स्थापयेद्बहिः ॥ ८० ॥

अभ्यर्च्य पुष्पधूपैश्च समन्तात् फलपर्वतम् ।
 शिवाय गुरवे वापि प्रणिपत्य निवेदयेत् ॥ ८१ ॥
 यावत्तत्फलसंख्यानां तद्दीपानां च मध्यतः ।
 तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ८२ ॥
 मूलकं मध्यतः स्थाप्य तत्पूर्वं वालमूलकम् ।
 आग्नेय्यां वास्तुकं स्थाप्य याम्यायां क्षारवास्तुकम् ॥ ८३ ॥
 पालव्यं नैर्ऋते स्थाप्य सुमुखं पश्चिमे न्यसेत् ।
 कुहद्रकं च वायव्यामुत्तरे वापि तालिकीम् ॥ ८४ ॥
 कुसुम्भशाकमैशान्यां सर्वशाकानि तद्बहिः ।
 पूर्वक्रमेण विन्यस्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ८५ ॥
 यावत्तन्मूलनालानां पत्रसंख्या च कीर्तिता ।
 तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ८६ ॥
 दत्त्वा लभेन्महाभोगान् गुग्गुल्वद्रेः पलद्वयम् ।
 वर्षकोटिद्वयं स्वर्गे द्विगुणं गुडमिश्रितैः ॥ ८७ ॥
 गुडार्द्रकं सलवणमाभ्रमंजरिसंयुतम् ।
 निवेद्य गुरवे भक्त्या सौभाग्यं परमं लभेत् ॥ ८८ ॥
 हस्तारोप्येण वा कृत्वा महारत्नान्वितां महीम् ।
 निवेदयित्वा शर्वाय शिवतुल्यः प्रजायते ॥ ८९ ॥
 वज्रेन्द्रनीलवैद्युर्यपद्मरागं समौक्तिकम् ।
 कीटपक्षं सुवर्णं च महारत्नानि सप्त वै ॥ ९० ॥
 यश्च सिंहासनं दद्यान्महारत्नान्वितं नृपः ।
 क्षुद्ररत्नैश्च विविधैस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९१ ॥
 कुलत्रिंशकसंयुक्तः सान्तःपुरपरिच्छदः ।
 समस्तभृत्यसंयुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ९२ ॥

तत् भुक्त्वा महाभोगान् शिवतुल्यपराक्रमः ।
 आमहाप्रलयं यावत्तदन्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ९३ ॥
 यदि चेद्राज्यमाकाङ्क्षेत्ततः सर्वसमाहितः ।
 सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥ ९४ ॥
 जन्मकोटिसहस्राणि जन्मकोटिशतानि च ।
 राज्यं कृत्वा ततश्चान्ते पुनः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ९५ ॥
 एतदेव फलं ज्ञेयं मकुटाभरणादिषु ।
 रत्नासनप्रदानेन पादुके विनिवेदयेत् ॥ ९६ ॥
 दद्याद्यः केवलं वज्रं शुद्धं गोधूममात्रकम् ।
 शिवाय स शिवे लोके तिष्ठेदाप्रलयं सुखी ॥ ९७ ॥
 इन्द्रनीलप्रदानेन स वैडूर्यप्रदानतः ।
 मोदते विविधैर्भोगैः कल्पकोटिं शिवे पुरे ॥ ९८ ॥
 मसूरमात्रमपि यः पद्मरागं सुशोभनम् ।
 निवेदयित्वा शर्वाय मोदते कालमक्षयम् ॥ ९९ ॥
 निवेद्य मौक्तिकं स्वच्छमेकभागैकमात्रकम् ।
 भोगैः शिवपुरे दिव्यैः कल्पकोटिं प्रमोदते ॥ १०० ॥
 कीटपक्षं महाशुद्धं निवेद्य यवमात्रकम् ।
 शिवायाद्यः शिवे लोके मोदते कालमक्षयम् ॥ १०१ ॥
 हेम्ना कृत्वा च यः पुष्पमपि माषकमात्रकम् ।
 निवेदयित्वा शर्वाय वर्षकोटिं वसेद्विवि ॥ १०२ ॥
 क्षुद्ररत्नानि यो दद्याद्धेम्नि बद्धानि शम्भवे ।
 मोदते स शिवे लोके कल्पकोट्ययुतं नरः ॥ १०३ ॥
 यथा यथा महारत्नं शोभनं च यथा यथा ।
 तथा तथा महत्पुण्यं ज्ञेयं तच्छिवदानतः ॥ १०४ ॥

भूमिभागे सविस्तीर्णे जम्बूद्वीपं प्रकल्पयेत् ।
 अष्टावरणसंयुक्तं नगेन्द्राष्टकभूषितम् ॥ १०५ ॥
 तन्मध्ये कारयेद्विव्यं मेरुप्रासादमुत्तमम् ।
 अनेकशिखराकीर्णमशेषामरसंयुतम् ॥ १०६ ॥
 वह्निः सुवर्णनिचितं सर्वरत्नोपशोभितम् ।
 चतुःप्रग्रीवकोपेतं चक्षुर्लिङ्गसमायुतम् ॥ १०७ ॥
 चतुर्दिक्षु वनोपेतं चतुर्भिः संयुतैः शरैः ।
 चतुर्णां पुरयुक्तेन प्राकारेण च संयुतम् ॥ १०८ ॥
 मेरुप्रासादमित्येवं हेमरत्नविभूषितम् ।
 यः कारयेद्वनोपेतं सोऽनन्तफलमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥
 भूम्यम्भःपरमाणूनां यथा सङ्ख्या न विद्यते ।
 शिवायतनपुण्यस्य तथा सङ्ख्या न विद्यते ॥ ११० ॥
 कुलत्रिशकसंयुक्तः सर्वभृत्यसमन्वितः ।
 कलत्रपुत्रमितैश्च सर्वस्वजनसंयुतः ॥ १११ ॥
 आश्रितोपाश्रितैः सर्वैरशेषगणसंयुतः ।
 यथा शिवस्तथैवायं शर्वलोके स पूज्यते ॥ ११२ ॥
 न च मानुष्यकं लोकमागच्छेत् कृपणं पुनः ।
 सर्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्तः स्वात्मनि तिष्ठति ॥ ११३ ॥
 यः शिवाय वनं कृत्वा मुदाब्दसलिलोत्थितम् ।
 तद्दण्डकोपशोभं च हस्ते कुर्वीत सर्वदा ॥ ११४ ॥
 शोभयेद्भूतनाथं वा चन्द्रशालां क्वचित् क्वचित् ।
 वेदीं वाथाभ्यपद्यन्त प्रोन्नताः स्तम्भपङ्क्तयः ॥ ११५ ॥
 शातकुम्भमयीं वापि सर्वलक्षणसंयुताम् ।
 ईश्वरप्रतिमां सौम्यां कारयेत् पुरुषोच्छ्रिताम् ॥ ११६ ॥

त्रिशूलसव्यहस्तां च वरदाभयदायिकाम् ।

सव्यहस्ताक्षमालां च जटाकुसुमभूषिताम् ॥ ११७ ॥

पद्मसिंहासनासीनां वृषस्थां वा समुच्छ्रिताम् ।

विमानस्थां रथस्थां वा वेदिस्थां वा प्रभान्विताम् ॥ ११८ ॥

सौम्यवक्त्रां करालां वा महाभैरवरूपिणीम् ।

अत्युच्छ्रितां सुविस्तीर्णां नृत्यस्थां योगसंस्थिताम् ॥ ११९ ॥

कुर्यादसंभवे हेमस्तारेण विमलेन च ।

आरकूटमयीं वापि ताम्रमृच्छैलदारुजाम् ॥ १२० ॥

अशेषकैः सरूपैश्च वर्णकैर्वा पटे लिखेत् ।

कुडचे वा फलके वापि भक्त्या वित्तानुसारतः ॥ १२१ ॥

एकां सपरिवारां वा पार्वतीं गणसंयुताम् ।

प्रतीहारसमोपेतां कुर्यादेवाविकल्पतः ॥ १२२ ॥

पीठं वा कारयेद्रौप्यं ताम्रं पित्तलसंभवम् ।

चतुर्मुखैकवक्त्रं वा बहिः काञ्चनसंस्कृतम् ॥ १२३ ॥

पृथक्पृथग्नेकानि कारयित्वा मुखानि तु ।

सौम्यभैरवरूपाणि शिवस्य बहुरूपिणः ॥ १२४ ॥

नानाभरणयुक्तानि हेमरौप्यकृतानि च ।

शिवस्य रथयात्रायां तानि लोकस्य दर्शयेत् ॥ १२५ ॥

उक्तानि यानि पुण्यानि सङ्क्षेपेण पृथक् पृथक् ।

कृत्वैकेन ममैतेषामक्षयं फलमाप्नुयात् ॥ १२६ ॥

मातुः पितुः सहोपायैर्दशभिर्दशभिः कुलैः ।

कलत्रपुत्रमित्राद्यैर्भृत्यैर्युक्तः स बान्धवैः ॥ १२७ ॥

अयुतेन विमानानां सर्वकामयुतेन च ।

मुङ्क्ते स्वयं महाभोगानन्ते मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १२८ ॥

मण्डपस्तम्भपर्यन्ते कीलयेदर्पणान्वितम् ।
अभिषिच्य जना यस्मिन् पूजां कुर्वन्ति बिल्वकैः ॥ १२९ ॥
कालकालाकृतिं कृत्वा कीलयेद्यः शिवाश्रमे ।
सर्वलोकोपकाराय पूजयेच्च दिने दिने ॥ १३० ॥
धूपवेलाप्रमाणार्थं कल्पयेद्यः शिवाश्रमे ।
क्षरन्तीं पूर्यमाणां वा सदाऽऽयामे घटीं नृपः ॥ १३१ ॥
एषामेकतमं पुण्यं कृत्वा पापविवर्जितः ।
शिवलोकं नरः प्राप्य सर्वज्ञः स सुखी भवेत् ॥ १३२ ॥
रथयात्रां प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ।
सर्वलोकोहितार्थाय महाशिल्पिविनिर्मिताम् ॥ १३३ ॥
रथमध्ये समावेश्य यथा यष्टिं तु कीलयेत् ।
यष्टेर्मध्ये स्थितं कार्यं विमानमतिशोभितम् ॥ १३४ ॥
पञ्चभौमं त्रिभौमं वा दृढवंशप्रकल्पितम् ।
वर्मणा सुनिबद्धं च रज्जुभिश्च सुसंयुतम् ॥ १३५ ॥
पञ्चशालाण्डकैर्युक्तं नानाभक्तिसमन्वितम् ।
चित्रवर्णपरिच्छन्नं पटैर्वा वर्णकान्वितैः ॥ १३६ ॥
लम्बकैः सूत्रदाम्ना च घण्टाचामरभूषितम् ।
बुद्बुदैरर्धचन्द्रैश्च दर्पणैश्च समुज्ज्वलम् ॥ १३७ ॥
कदल्यर्धध्वजैर्युक्तं महाच्छत्रं महाध्वजम् ।
पुष्पमालापरिक्षिप्तं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ १३८ ॥
महारथविमानेऽस्मिन् स्थापयेद्गणसंयुतम् ।
ईश्वरप्रतिमां हेम्नि प्रथमे पुरमण्डपे ॥ १३९ ॥
मुखत्रयं च बध्नीयाद्बहिः कुर्यात्तथाश्रितम् ।
पुरे पुरे बहिर्दिक्षु गृहकेषु समाश्रितम् ॥ १४० ॥

चतुष्कं शिववक्त्राणां संस्थाप्य प्रतिपूजयेत् ।
 दिनत्रयं प्रकुर्वीत स्नानमर्चनभोजनम् ॥ १४१ ॥
 नृत्यक्रीडाप्रयोगेण गेयमङ्गलपाठकैः ।
 महावादित्रनिर्घोषैः पौषपूर्णिमपर्वणि ॥ १४२ ॥
 भ्रामयेद्राजमार्गेण चतुर्थेऽहनि तद्रथम् ।
 ततः स्वस्थानमानीय तच्छेषमपि वर्धयेत् ॥ १४३ ॥
 अवधार्य जगद्धार्त्रीं प्रतिमामवतारयेत् ।
 महाविमानयात्रैषा कर्तव्या पट्टकेऽपि वा ॥ १४४ ॥
 वंशैर्नवैः सुपकैश्च कटं कुर्याद्भरक्षमम् ।
 वृत्तं द्विगुणदीर्घं च चतुरश्रमधः समम् ॥ १४५ ॥
 सर्वत्र चर्मणा बद्धं महायष्टिसमाश्रितम् ।
 मुखं बद्धं च कुर्वीत वंशमण्डलिना दृढम् ॥ १४६ ॥
 कटेऽस्मिस्तानि वस्त्राणि स्थाप्य बध्नीत यत्नतः ।
 उपर्युपरि सर्वाणि तन्मध्ये प्रतिमां न्यसेत् ॥ १४७ ॥
 वर्णकैः कुङ्कुमाद्यैश्च चित्रपुष्पैश्च पूजयेत् ।
 नानाभरणपूजाभिर्मुक्ताहारप्रलम्बिभिः ॥ १४८ ॥
 रथस्य महतो मध्ये स्थाप्य पट्टद्वयं दृढम् ।
 अधरोत्तरभागेन मध्ये छिद्रसमन्वितम् ॥ १४९ ॥
 कटियष्टेरधोभागं स्थाप्य छिद्रमयं शुभैः ।
 आबद्ध्य कीलयेद्यन्त्राद्यष्ट्यर्धं च ध्वजाष्टकम् ॥ १५० ॥
 कटस्य पृष्ठं सर्वत्र कारयेत् पटसंवृतम् ।
 तत्पटे च लिखेत् सोमं सगणं सवृषं शिवम् ॥ १५१ ॥
 विचित्रपुष्पस्रग्दाम्ना समन्ताद्भूषयेत् कटम् ।
 रवकैः किङ्किणीजालैर्घण्टाचामरभूषितैः ॥ १५२ ॥

महापूजाविशेषैश्च कौतूहलसमन्वितम् ।

वाद्यारम्भोपचारेण मार्गशोभां प्रकल्पयेत् ॥ १५३ ॥

तद्वथं भ्रामयेद्यन्नाद्राजमार्गेण सर्वतः ।

ततः स्वाश्रमममानीय स्थापयेत्तत्समीपतः ॥ १५४ ॥

महाशब्दं ततः कुर्यात्तालत्रयसमन्वितम् ।

ततस्तूर्ण्णीं स्थिते लोके तच्छान्तिमिह धारयेत् ॥ १५५ ॥

शिवं तु सर्वजगतः शिवं गोब्राह्मणस्य च ।

शिवमस्तु नृपाणां च तद्भक्तानां जनस्य च ॥ १५६ ॥

राजा विजयमाम्नोतु पुत्रपौत्रैश्च वर्धताम् ।

धर्मनिष्ठश्च भवतु प्रजानां च हिते रतः ॥ १५७ ॥

कालवर्षी तु पर्जन्यः सस्यसंपत्तिरुत्तमा ।

सुभिक्षात् क्षेममाम्नोति कार्यसिद्धिश्च जायताम् ॥ १५८ ॥

दोषाः प्रयान्तु नाशं च गुणाः स्थैर्यं भजन्तु वः ।

बहुक्षीरयुता गावो हृष्टपुष्टा भवन्तु वः ॥ १५९ ॥

एवं शिवमहाशान्तिमुच्चार्य जगतः क्रमात् ।

अभिवर्ध्य ततः शेषामैश्वरीं सार्वकामिकीम् ॥ १६० ॥

शिवमालां समादाय सदासीपरिचारिकः ।

फलैर्भक्षैश्च संयुक्तां गृह्य पार्त्वीं निवेशयेत् ॥ १६१ ॥

पार्त्वीं च धारयेन्मूर्ध्ना सोष्णीषां देवपुत्रकः ।

अलङ्कृतः शुक्लवासा धार्मिकः सततं शुचिः ॥ १६२ ॥

ततश्च तां समुत्क्षिप्य पाणिना धारयेद्बुधः ।

प्रब्रूयादपरश्चात्र शिवधर्मस्य भाजकः ॥ १६३ ॥

तोयं यथा घटीसंस्थमजस्रं क्षरते तथा ।

क्षरते सर्वलोकानां तद्वदायुरहर्निशम् ॥ १६४ ॥

यदा सर्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशैर्ध्रुवम् ।

तदा न दीयते कस्मात् पायेयार्थमिदं धनम् ॥ १६५ ॥

कलत्रपुत्रमित्राणि पिता माता च बान्धवाः ।

तिष्ठन्ति न मृतस्यार्थे परलोके धनानि च ॥ १६६ ॥

नास्ति धर्मसमं मित्रं नास्ति धर्मसमः सखा ।

यतः सर्वैः परित्यक्तं नरं धर्मोऽनुगच्छति ॥ १६७ ॥

तस्माद्धर्मं समुद्दिश्य यः शेषामभिवर्धयेत् ।

समस्तपापनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥ १६८ ॥

उपर्युपरि वित्तेन यः शेषामभिवर्धयेत् ।

तस्येयमुत्तमा देया यतश्चान्या न वर्धते ॥ १६९ ॥

इत्येवं मध्यमां शेषां वर्धयेद्वा कनीयसीम् ।

ततस्तेषां प्रदातव्या सर्वशोकस्य शान्तये ॥ १७० ॥

येनोत्तमा गृहीता स्याच्छिवशेषा महीयसी ।

प्रापणीया गृहं तस्य तथैव शिरसा वृता ॥ १७१ ॥

ध्वजच्छत्रविमानाद्यैर्महावादित्रनिस्वनैः ।

गृहद्वारं ततः प्राप्तामर्चयित्वा निवेशयेत् ॥ १७२ ॥

दद्याद्गोत्रकलत्राणां भृत्यानां स्वजनस्य च ।

तर्पयेच्चानतान् भक्त्या वादित्रध्वजवाहकान् ॥ १७३ ॥

एवमादीयते भक्त्या यः शिवस्योत्तमा गृहे ।

शोभया राजमार्गेण तस्य धर्मफलं शृणु ॥ १७४ ॥

समस्तपापनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः ।

शिष्यलोकमवाप्नोति सभृत्यपरिचारकः ॥ १७५ ॥

तत्र दिव्यैर्महाभोगैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।

कल्पानां क्रीडते कोटिमन्ते निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १७६ ॥

रथस्य यात्रां यः कुर्यादित्येवमुपशोभया ।

भक्ष्यभोज्यप्रदानैश्च तत्फलं शृणु यत्नतः ॥ १७७ ॥

अशेषपापनिर्मुक्तः सर्वभृत्यसमन्वितः ।

कुलत्रिंशकमुद्धृत्य सुहृद्भिः स्वजनैः सह ॥ १७८ ॥

सर्वकामयुतैर्दिव्यैः स्वच्छन्दगमनालयैः ।

महाविमानैः श्रीमद्भिर्दिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥ १७९ ॥

इच्छया क्रीडते भोगैः कल्पकोटिं शिवे पुरे ।

ज्ञानयोगं ततः प्राप्य संसारादवमुच्यते ॥ १८० ॥

शिवस्य रथयात्रायामुपवासपरः क्षमी ।

पुरतः पृष्ठतो वापि गच्छंस्तस्य फलं शृणु ॥ १८१ ॥

अशेषपापनिर्मुक्तः शुद्धः शिवपुरं गतः ।

महारथोपमैर्यानैः कल्पाशीतिं प्रमोदते ॥ १८२ ॥

ध्वजच्छलपताकाभिर्दीपदर्पणचामरैः ।

धूपैर्वितानकलशैरुपशोभा सहस्रशः ॥ १८३ ॥

गृहीत्वा याति पुरतः स्वेच्छया वा परेच्छया ।

संपर्कात् कौतुकालाभाच्छिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ १८४ ॥

शिवस्य रथयात्रां तु यः प्रपश्यति भक्तितः ।

प्रसङ्गात् कौतुकाद्वापि तेऽपि यान्ति शिवं पुरम् ॥ १८५ ॥

नानायन्त्रादिशेषान्ते नानाप्रेक्षणकानि च ।

कुर्वीत रथयात्रायां रमते च विभूषिता ॥ १८६ ॥

ते भोगैर्विविधैर्दिव्यैः शिवासन्ना गणेश्वराः ।

क्रीडन्ति रुद्रभवने कल्पानां विंशतीर्नराः ॥ १८७ ॥

महता ज्ञानसङ्घेन तस्माच्छिवरथेन च ।

पृथक्जीवा मृता यान्ति शिवलोकं न संशयः ॥ १८८ ॥

श्रीपर्वते महाकाले वाराणस्यां महालये ।
 जलपेश्वरे कुरुक्षेत्रे केदारो मण्डलेश्वरे ॥ १८९ ॥
 गोकर्णे भद्रकर्णे च शङ्कुकर्णे स्थलेश्वरे ।
 भीमेश्वरे सुवर्णाक्षे कालञ्जरवने तथा ॥ १९० ॥
 एवमादिषु चान्येषु शिवक्षेत्रेषु ये मृताः ।
 जीवाश्चराचराः सर्वे शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ १९१ ॥
 प्रयागं कामिकं तीर्थमविमुक्तं तु नैष्ठिकम् ।
 श्रीपर्वतं च विज्ञेयमिहामुत्र च सिद्धिदम् ॥ १९२ ॥
 प्रसङ्गेनापि यः पश्येदन्यत्र प्रस्थितः कचित् ।
 श्रीपर्वतं महापुण्यं सोऽपि याति शिवं पुरम् ॥ १९३ ॥
 व्रजेद्यः शिवतीर्थानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
 पापयुक्तः शिवज्ञानं प्राप्य निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १९४ ॥
 तीर्थस्थानेषु यः श्राद्धं शिवरात्रे प्रयत्नतः ।
 कल्पयित्वानुसारेण कालस्य विषुवस्य च ॥ १९५ ॥
 तीर्थयात्रागतं शान्तं हाहाभूतमचेतनम् ।
 क्षुत्पिपासातुरं लोके पांसुपादं त्वरान्वितम् ॥ १९६ ॥
 सन्तर्पयित्वा यत्नेन म्लानलक्ष्मीमिवाम्बुभिः ।
 पाद्यासनप्रदानेन कस्तेन पुरुषः समः ॥ १९७ ॥
 अश्नन्ति यावत्तत्पिण्डं तीर्थनिर्धूतकल्मषाः ।
 तावद्वर्षसहस्राणि तदातास्ते शिवे पुरे ॥ १९८ ॥
 दद्याद्यः शिवसत्रार्थं महिषीं सुपयस्विनीम् ।
 मोदते स शिवे लोके युगकोटिशतं नरः ॥ १९९ ॥
 आर्ताय शिवभक्ताय दद्याद्यः सुपयस्विनीम् ।
 अजामेकां सुपुष्टार्ज्जीं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०० ॥

यावत्तद्रोमसंख्यानं तत्प्रसूतिकुलेषु च ।

तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ २०१ ॥

मृदुरोमाञ्चितां कृष्णां निवेद्य गुरवे नरः ।

रोम्णि रोम्णि सुवर्णस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥ २०२ ॥

गजाश्वरथसंयुक्तैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।

सानुगः क्रीडते भोगैः कल्पकोटिं शिवे पुरे ॥ २०३ ॥

निवेद्याश्वतरं पुष्टमदुष्टं गुरवे नरः ।

सङ्गतिं सोपकरणं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २०४ ॥

दिव्याश्वयुक्तैः श्रीमद्भिर्विमानैः सार्वकामिकैः ।

कोटिं कोटिं च कल्पानां तदन्ते स्यान्महीपतिः ॥ २०५ ॥

अपि योजनमात्राय शिविकां परिकल्पयेत् ।

गुरोः शान्तस्य दान्तस्य तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०६ ॥

विमानानां सहस्रेण सर्वकामयुतेन च ।

कल्पकोट्ययुतं साग्रं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २०७ ॥

छागं मेघं मयूरं च कुक्कुटं शारिकां शुक्रम् ।

बालर्काडनकानेतानित्याद्यानपरानपि ॥ २०८ ॥

निवेदयित्वा स्कन्दाय तत्सायुज्यमवाप्नुयात् ।

भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तदन्ते स्याद्विजोत्तमः ॥ २०९ ॥

मुसलोलखलाद्यानि गृहोपकरणानि च ।

दद्याच्छिवगृहस्थेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१० ॥

प्रत्येकं कल्पमेकैकं गृहोपकरणैर्नरः ।

अन्ते दिवि वसेद्भोगैस्तदन्ते च गृही भवेत् ॥ २११ ॥

खर्जूरतालपत्रैर्वा चर्मणा वा सुकल्पितम् ।

दत्त्वा कोट्यासनं वृत्तं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २१२ ॥

प्रातर्नीहारवेलायां हेमन्ते शिवयोगिनाम् ।
 कृत्वा प्रतापनायाम्नि शिवलोके महीयते ॥ २१३ ॥
 सूर्यायुतप्रभादीप्तैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
 कल्पकोटिशतं भोगान् भुक्त्वा स तु महीपतिः ॥ २१४ ॥
 यः प्रान्तरं विदेशं वा गच्छन्तं शिवयोगिनम् ।
 भोजयीत यथाशक्त्या शिवलोके महीयते ॥ २१५ ॥
 यश्छत्रं धारयेद्ग्रीष्मे गच्छते शिवयोगिने ।
 स मृतः पृथिवीं कृत्स्नामेकच्छत्रामवाप्नुयात् ॥ २१६ ॥
 यः समुद्धरते मार्गे मात्रोपकरणासनम् ।
 शिवयोगप्रवृत्तस्य तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१७ ॥
 कल्पायुतं नरः साग्रं भुक्त्वा भोगाञ्छिवे पुरे ।
 तदन्ते प्राप्नुयाद्राज्यं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ २१८ ॥
 अभ्यङ्गोद्वर्तनं स्नानमार्तस्य शिवयोगिनः ।
 कृत्वाऽऽप्नोति महाभोगान् कल्पाञ्छिवपुरे नरः ॥ २१९ ॥
 अपनीय समुच्छिष्टं भक्तिः शिवयोगिनाम् ।
 दशधेनुप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ २२० ॥
 पञ्चगव्यसमं ज्ञेयमुच्छिष्टं शिवयोगिनाम् ।
 तद्भुक्त्वा लभते शुद्धिं महतः पातकादपि ॥ २२१ ॥
 नारी च भुक्त्वा सत्पुत्रं कुलाधारं गुणान्वितम् ।
 राज्ययोग्यं धनाढ्यं च प्राप्नुयाद्धर्मतत्परम् ॥ २२२ ॥
 यश्च यां शिवयज्ञाय गृहस्थः परिकल्पयेत् ।
 शिवभक्तोऽस्य महतः परमं फलमाप्नुयात् ॥ २२३ ॥
 शिवोमां च प्रयत्नेन भक्त्याब्दं योऽनुपालयेत् ।
 गवां लक्षप्रदानस्य संपूर्णं फलमाप्नुयात् ॥ २२४ ॥

प्रातः प्रदद्यात् सच्चृतं सुकृतं बालपिण्डकम् ।
 दूर्वा च बालवत्सानां तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २२५ ॥
 यावत्तद्बालवत्सानां पानाहारं प्रकल्पयेत् ।
 तावदष्टायुतान् पूर्वभोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २२६ ॥
 विधवानाथवृद्धानां प्रदद्याद्यः प्रजीवनम् ।
 आभूतसंश्रवं यावच्छिवलोके महीयते ॥ २२७ ॥
 दद्याद्यः सर्वजन्तूनामाहारमनुयत्नतः ।
 त्रिः पृथ्वीं रत्नसंपूर्णीं यद्वा तत्फलं लभेत् ॥ २२८ ॥
 नियमव्रतदानानि यानि सिद्धानि लोकतः ।
 तानि तेनैव विधिना शिवमन्त्रेण कल्पयेत् ॥ २२९ ॥
 निवेदयीत रुद्राय रुद्राण्याः षण्मुखस्य च ।
 प्राप्नुयाद्विपुलान् भोगान् दिव्याञ्छिवपुरे नरः ॥ २३० ॥
 पुनर्यः कर्तरीं दद्यात् केशक्लेशापनुत्तये ।
 सर्वक्लेशविनिर्मुक्तः शिवलोके सुखी भवेत् ॥ २३१ ॥
 नासिकाशोधनं दद्यात् सन्दंशं शिवयोगिने ।
 वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३२ ॥
 नखच्छेदनकं दत्वा सुकृतं शिवयोगिने ।
 वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३३ ॥
 दत्वाञ्जनशलाकां वा लोहाद्यां शिवयोगिने ।
 भोगाञ्छिवपुरे प्राप्य ज्ञानचक्षुरवाप्नुयात् ॥ २३४ ॥
 कर्णशोधनकं दत्वा लोहाद्यं शिवयोगिने ।
 वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३५ ॥
 दद्याद्यः शिवभक्त्या सूचीं कौपीनशोधनीम् ।
 वर्षलक्षं स लक्षार्धं शिवलोके महीयते ॥ २३६ ॥

निवेद्य शिवयोगिभ्यः सूचिकं सूत्रसंयुतम् ।
 वर्षलक्षं महाभोगैः क्रीडते स शिवे पुरे ॥ २३७ ॥
 दद्याद्यः शिवयोगिभ्यः सुकृतां पत्रवेधनीम् ।
 वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३८ ॥
 दद्याद्यः पुस्तकादीनां सर्वकार्यार्थकर्तृकाम् ।
 पञ्चलक्षं महाभोगैर्मोदते स शिवे पुरे ॥ २३९ ॥
 शमीन्धनतृणादीनां दद्यात्तच्छेदनं च यः ।
 क्रीडते स शिवे लोके वर्षलक्षचतुष्टयम् ॥ २४० ॥
 शिवाश्रमोपभोगाय लोहोपकरणं महत् ।
 यः प्रदद्यात् कुठाराद्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४१ ॥
 यावत्तत्पलसंख्यानं लोहोपकरणे भवेत् ।
 तावन्ति वर्षलक्षाणि शिवलोके महीयते ॥ २४२ ॥
 शिवायतनवित्तानां रक्षार्थं यः प्रयच्छति ।
 धनुःखड्गायुधादीनि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४३ ॥
 एकैकस्मिन् परिज्ञेयमायुधे चापि वै फलम् ।
 वर्षकोट्यष्टकं भोगैः शिवलोके महीयते ॥ २४४ ॥
 यः स्वात्मभोगभृत्यर्थं कुसुमानि निवेदयेत् ।
 शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४५ ॥
 यावदन्योन्यसंबन्धास्तस्यांशाः परिकीर्तिताः ।
 वर्षलक्षं स तावच्च शिवलोके प्रमोदते ॥ २४६ ॥
 नष्टापहृतमन्विष्य पुनर्वित्तं निवेदयेत् ।
 शिवात्मकं शिवायैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४७ ॥
 यावच्छिवाय तद्वित्तं प्राङ्निवेद्य फलं स्मृतम् ।
 नष्टमानीय तद्भूयः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ २४८ ॥

देवद्रव्यं हृतं नष्टमन्वेप्यमपि यत्नतः ।

न प्राप्नोति तदा तस्य प्राप्नुयाद्विगुणं फलम् ॥ २४९ ॥

ताम्रकुम्भकटाहाद्यं यः शिवाय निवेदयेत् ।

शिवात्मकं शिवायैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २५० ॥

यावच्छिवाय तद्वित्तं प्राङ्निवेद्य फलं स्मृतम् ।

नष्टमानीय तद्व्यूः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ २५१ ॥

स्नानसत्रोपभोगाय तस्य पुण्यफलं शृणु ।

यावत्तत्पलसंख्यानं ताम्रोपकरणे स्थितम् ॥ २५२ ॥

पले पले वर्षकोटिं मोदते स शिवे पुरे ।

यः पत्रपुष्पवस्तूनां दद्यादाधारभाजनम् ॥ २५३ ॥

तद्वस्तुदातुर्यत्पुण्यं तत्पुण्यं सकलं भवेत् ।

दत्त्वोपकरणं किञ्चिदपि यो वित्तमर्थिनाम् ॥ २५४ ॥

यद्वस्तु कुरुते तेन तत्प्रदानफलं लभेत् ।

यः शौचपीतवस्त्राणि क्षाराद्यैः शिवयोगिनाम् ॥ २५५ ॥

स पापमलनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात् ।

यः पुष्पपट्टसंयुक्तं पटगर्भं च कम्बलम् ॥ २५६ ॥

प्रदद्याच्छिवयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।

तेषां च वस्त्रतन्तूनां यावत्संख्या विधीयते ॥ २५७ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ।

श्लक्ष्णवस्त्राणि शुक्लानि दद्याद्यः शिवयोगिने ॥ २५८ ॥

चित्रवस्त्राणि तद्वक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।

यावत्तत्सूक्ष्मवस्त्राणां तन्तुसङ्ख्या विधीयते ॥ २५९ ॥

तावद्युगानि संभोगैः शिवलोके महीयते ।

शङ्खपात्रं तु विस्तीर्णं भाण्डं वापि सुशोभनम् ॥ २६० ॥

प्रदद्याच्छिवयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 दिव्यं विमानमारूढः सर्वकामसमन्वितम् ॥ २६१ ॥
 कल्पकोट्ययुतं साग्रं शिवलोके महीयते ।
 शुक्त्यादीनि च पात्राणि शोभनान्यमलानि च ॥ २६२ ॥
 निवेद्य शिवयोगिभ्यः शङ्खार्धेन फलं लभेत् ।
 स्फाटिकानां च पात्राणां शङ्खतुल्यफलं स्मृतम् ॥ २६३ ॥
 शैलजानां तदर्धेन पात्राणां च तदर्धकम् ।
 तालखर्जूरपात्राणां वंशजानां निवेदने ॥ २६४ ॥
 अन्येषामेवमादीनां पुण्यं वाक्ष्यार्धसंमितम् ।
 वंशजार्धसमं पुण्यं फलपात्रनिवेदने ॥ २६५ ॥
 नानापर्णपुटानां च साराणां वा फलार्धकम् ।
 यस्ताम्रकांस्यपात्राणि शोभनान्यमलानि च ॥ २६६ ॥
 स्नानभोजनपानार्थं दद्याद्यः शिवयोगिने ।
 ताम्रां कांसीं त्रिलोहीं वा यः प्रदद्यात् त्रिपादिकाम् ॥ २६७ ॥
 भोजने भोजनाधारां गुरवे तत्फलं शृणु ।
 यावत्तत्फलसंख्यानां त्रिपाद्या भोजनेषु च ॥ २६८ ॥
 तावद्युगसहस्राणि भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ।
 लोहं त्रिपादिकं दत्वा सत्कृत्वा शिवयोगिने ॥ २६९ ॥
 दशकल्पान् महाभोगैर्नरः शिवपुरे वसेत् ।
 यः प्रदद्यात् त्रिविष्टम्भं भिक्षापात्रसमाश्रयम् ॥ २७० ॥
 वंशजं दारुजं वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 दिव्यस्त्रीभोगसंपन्नो विमाने महति स्थितः ॥ २७१ ॥
 चतुर्युगसहस्रं तु भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ।
 भिक्षापात्रमुखाच्छादं वस्त्रपर्णादिकल्पितम् ॥ २७२ ॥

दत्वा शिवपुरे भोगान् कल्पमेकं वसेन्नरः ।
 संश्रयं यः प्रदद्याच्च भिक्षापात्रे कमण्डलौ ॥ २७३ ॥
 कल्पितं वस्त्रसूत्राद्यैस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 तद्वस्त्रपूततन्तूनां संख्या यावद्विधीयते ॥ २७४ ॥
 तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
 सूत्रवल्कलवालैर्वा शिष्यभाण्डसमाश्रयम् ॥ २७५ ॥
 यः कृत्वा दामनीयोक्तं प्रग्रहं रज्जुमेव वा ।
 एवमादीनि चान्यानि वस्तूनि विनिवेदयेत् ॥ २७६ ॥
 शिवगोष्ठोपयोगार्थं तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 यावत्तद्रज्जुसंख्यानं प्रदद्याच्छिवगोकुले ॥ २७७ ॥
 तावच्चतुर्युगं देही शिवलोके महीयते ।
 यथा यथा प्रियं वस्त्रं शोभनं च यथा यथा ॥ २७८ ॥
 तथा तथा महत्पुण्यं तद्दानादुत्तरोत्तरम् ।
 यः पन्थानं दिशेत् पृष्ठं प्रणष्टं च गवादिकम् ॥ २७९ ॥
 स गोदानसमं पुण्यं प्रज्ञासौख्यं च विन्दति ।
 कृत्वोपकारमार्तानां स्वर्गं याति न संशयः ॥ २८० ॥
 अपि कण्टकमुद्धृत्य किमुतान्यं महागुणम् ।
 अन्नपानौषधीनां च यः प्रदातारमुद्दिशेत् ॥ २८१ ॥
 आर्तानां तस्य विज्ञेयं दातुस्तत्सदृशं फलम् ।
 शिवाय तस्य संरुद्धं कर्म तिष्ठति यद्विना ॥ २८२ ॥
 तदल्पमपि यज्ञाङ्गं दत्वा यज्ञफलं लभेत् ।
 अपि काशकुशं सूत्रं गोमयं समिदिन्धनम् ॥ २८३ ॥

शिवयज्ञोपयोगार्थं प्रवक्ष्यामि समासतः ।

सर्वेषां शिवभक्तानां दद्याद्यत्किञ्चिदादरात् ।

दत्त्वा यज्ञफलं विद्यात् किमु तद्वस्तुदानतः ॥ २८४ ॥

इति शिवोपनिषदि फलोपकरणप्रदानाध्यायः षष्ठः

सप्तमोऽध्यायः

अथ स्वर्गापवर्गार्थं प्रवक्ष्यामि समासतः ।

सर्वेषां शिवभक्तानां शिवाचारमनुत्तमम् ॥ १ ॥

शिवः शिवाय भूतानां यस्माद्दानं प्रयच्छति ।

गुरुमूर्तिः स्थितस्तस्मात् पूजयेत् सततं गुरुम् ॥ २ ॥

नालक्षणे यथा लिङ्गे सान्निध्यं कल्पयेच्छिवः ।

अल्पागमे गुरौ तद्वत्सान्निध्यं न प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥

शिवज्ञानार्थतत्त्वज्ञं प्रसन्नमनसं गुरुम् ।

शिवः शिवं समास्थाय ज्ञानं वक्ति न हीतरः ॥ ४ ॥

गुरुं च शिववद्भक्त्या नमस्कारेण पूजयेत् ।

कृताञ्जलिस्त्रिसन्ध्यं च भूमिविन्यस्तमस्तकः ॥ ५ ॥

न विविक्तमनाचान्तं चङ्क्रमन्तं तथाऽऽकुलम् ।

समाधिस्थं व्रजन्तं च नमस्कुर्याद्गुरुं बुधः ॥ ६ ॥

व्याख्याने तत्समाप्तौ च संप्रश्ने स्नानभोजने ।

भुक्त्वा च शयने स्वप्ने नमस्कुर्यात् सदा गुरुम् ॥ ७ ॥

ग्रामान्तरमभिप्रेप्सुर्गुरोः कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
 सार्वार्जिकप्रणामं च पुनः कुर्यात् तदागतः ॥ ८ ॥
 पर्वोत्सवेषु सर्वेषु दद्याद्गन्धपवित्रकम् ।
 शिवज्ञानस्य चारम्भे प्रवासगमनागतौ ॥ ९ ॥
 शिवधर्मव्रतारम्भे तत्समाप्तौ च कल्पयेत् ।
 प्रसादनाय कुपितो विजित्य च रिपुं तथा ॥ १० ॥
 पुण्याहे ग्रहशान्तौ च दीक्षायां च सदक्षिणम् ।
 आचार्य पदसंप्राप्तौ पवित्रे चोपविग्रहे ॥ ११ ॥
 उपानच्छत्रशयनं वस्त्रमासनभूषणम् ।
 पात्रदण्डाक्षसूत्रं वा गुरुसक्तं न धारयेत् ॥ १२ ॥
 हास्यनिष्ठीवनास्फोटमुच्चभाष्यविजृम्भणम् ।
 पादप्रसारणं गीतं न कुर्याद्गुरुसन्निधौ ॥ १३ ॥
 हीनान्नपानवस्त्रः स्यान्नीचशय्यासनो गुरोः ।
 न यथेष्टश्च संतिष्ठेत् कलहं च विवर्जयेत् ॥ १४ ॥
 प्रतिवातेऽनुवाते वा न तिष्ठेद्गुरुणा सह ।
 असंश्रये च सततं न किञ्चित् कीर्तयेद्गुरोः ॥ १५ ॥
 अन्यासक्तो न भुञ्जानो न तिष्ठन्नपराङ्मुखः ।
 न शयानो न चासीनः संभाष्येद्गुरुणा सह ॥ १६ ॥
 दृष्ट्वैव गुरुमायान्तमुत्तिष्ठेद्दूरतस्त्वरम् ।
 अनुज्ञातश्च गुरुणा संविशेच्चानुपृष्टतः ॥ १७ ॥
 न कण्ठं प्रावृतं कुर्यान्न च तत्रावसक्तिकाम् ।
 न पादधावनस्नानं यत्र पश्येद्गुरुः स्थितः ॥ १८ ॥
 न दन्तधावनाभ्यङ्गमायामोद्वर्तनक्रियाः ।
 उत्सर्गपरिधानं च गुरोः कुर्वीत पश्यतः ॥ १९ ॥

गुरुर्यदर्पयेत् किञ्चिद्गृहासनं तदञ्जलौ ।
 पात्रे वा पुरतः शिष्यस्तद्वक्तमभिवीक्ष्यन् ॥ २० ॥
 यदर्पयेद्गुरुः किञ्चित्तन्मग्नः पुरतः स्थितः ।
 पाणिद्वयेन गृहीयात् स्थापयेत्तच्च सुस्थितम् ॥ २१ ॥
 न गुरोः कीर्तयेन्नाम परोक्षमपि केवलम् ।
 समानसंज्ञमन्यं वा नाह्वयीत तदाख्यया ॥ २२ ॥
 स्वगुरुस्तद्गुरुश्चैव यदि स्यातां समं कचित् ।
 गुरोर्गुरुस्तयोः पूज्यः स्वगुरुश्च तदाज्ञया ॥ २३ ॥
 अनिवेद्य न भुञ्जीत भुक्त्वा चास्य निवेदयेत् ।
 नाविज्ञाप्य गुरुं गच्छेद्ब्रह्मिः कार्येण केनचित् ॥ २४ ॥
 गुर्वाज्ञया कर्म कृत्वा तत्समाप्तौ निवेदयेत् ।
 कृत्वा च नैत्यकं सर्वमधीयीताज्ञया गुरोः ॥ २५ ॥
 मृद्भस्मगोमयजलं पत्रपुष्पेन्धनं समित् ।
 पर्याप्तमष्टकं ह्येतद्गुर्वर्थं तु समाहरेत् ॥ २६ ॥
 भैषज्याहारपात्राणि वस्त्रशय्यासनं गुरोः ।
 आनयेत् सर्वयत्नेन प्रार्थयित्वा धनेश्वरान् ॥ २७ ॥
 गुरोर्न खण्डयेदाज्ञामपि प्राणान् परित्यजेत् ।
 कृत्वाज्ञां प्राप्नुयान्मुक्तिं लङ्घ्यन्नरकं व्रजेत् ॥ २८ ॥
 पर्यटेत् पृथिवीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ।
 गुरुभैषज्यसिद्धयर्थमपि गच्छेद्द्रसातलम् ॥ २९ ॥
 यदादिशेद्गुरुः किञ्चित्तत् कुर्यादविचारतः ।
 अमीमांस्याः हि गुरवः सर्वकार्येषु सर्वथा ॥ ३० ॥
 नोत्थापयेत् सुखासीनं शयानं न प्रबोधयेत् ।
 आसीनो गुरुमासीनमभिगच्छेत् प्रतिष्ठितम् ॥ ३१ ॥

पथि प्रयान्तं यान्तं च यत्नाद्विश्रामयेद्गुरुम् ।
 क्षुत्पिपासातुरं स्नातं ज्ञात्वा शक्तं च भोजयेत् ॥ ३२ ॥
 अभ्यङ्गोद्वर्तनं स्नानं भोजनष्ठीवमार्जनम् ।
 गात्रसंवाहनं रात्रौ पादाभ्यङ्गं च यत्नतः ॥ ३३ ॥
 प्रातः प्रसाधनं दत्त्वा कार्यं संमार्जनाञ्जनम् ।
 नानापुष्पप्रकरणं श्रीमद्व्याख्यानमण्डपे ॥ ३४ ॥
 स्थाप्यासनं गुरोः पूज्यं शिवज्ञानस्य पुस्तकम् ।
 तत्र तिष्ठेत् प्रतीक्षंस्तद्गुरोरागमनं कृमात् ॥ ३५ ॥
 गुरोर्निन्दापवादं च श्रुत्वा कर्णौ पिधापयेत् ।
 अन्यत्र चैव सर्पेत्तु निगृह्णीयादुपायतः ॥ ३६ ॥
 न गुरोरप्रियं कुर्यात् पीडितस्तारितोऽपि वा ।
 नोच्चारयेच्च तद्वाक्यमुच्चार्य नरकं व्रजेत् ॥ ३७ ॥
 गुरुरेव पिता माता गुरुरेव परः शिवः ।
 यस्यैव निश्चितो भावस्तस्य मुक्तिर्न दूरतः ॥ ३८ ॥
 आहाराचारधर्माणां यत् कुर्याद्गुरुरीश्वरः ।
 तथैव चानुकुर्वीत नानुयुञ्जीत कारणम् ॥ ३९ ॥
 यज्ञस्तपांसि नियमात्तानि वै विविधानि च ।
 गुरुवाक्ये तु सर्वाणि संपद्यन्ते न संशयः ॥ ४० ॥
 अज्ञानपङ्कनिर्मग्नं यः समुद्धरते जनम् ।
 शिवज्ञानात्महस्तेन कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥ ४१ ॥
 इति यः पूजयेन्नित्यं गुरुमूर्तिस्थमीश्वरम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ४२ ॥
 स्नात्वाम्भसा भस्मना वा शुक्लवस्त्रोपवीतवान् ।
 दूर्वागर्भस्थितं पुष्पं गुरुः शिरसि धारयेत् ॥ ४३ ॥

रोचनालभनं कुर्याद्धूययेदात्मनस्तनुम् ।
 अङ्गुलीयाक्षसूत्रं च कर्णमात्रे च धारयेत् ॥ ४४ ॥
 गुरुरेवंविधः श्रीमान्नित्यं तिष्ठेत् समाहितः ।
 यस्माद्ज्ञानोपदेशार्थं गुरुरास्ते सदाशिवः ॥ ४५ ॥
 धारयेत् पादुके नित्यं मृदुवर्मप्रकल्पिते ।
 प्रगृह्य दण्डं छलं वा पर्यटेदाश्रमाद्बहिः ॥ ४६ ॥
 न भूमौ विन्यसेत् पादमन्तर्धानं विना गुरुः ।
 कुशपादकमाक्रम्य तर्पणार्थं प्रकल्पयेत् ॥ ४७ ॥
 पादस्थानानि पत्राद्यैः कृत्वा देवगृहं विशेत् ।
 पात्रास्तरितपादश्च नित्यं भुञ्जीत वाग्यतः ॥ ४८ ॥
 न पादौ धावयेत् कांस्ये लोहे वा परिकल्पिते ।
 शौचयेत्तृणगर्भायां द्वितीयायां तथाचमेत् ॥ ४९ ॥
 न रक्तमुल्बणं वस्त्रं धारयेत् कुसुमानि च ।
 न बहिर्गन्धमाल्यानि वासांसि मलिनानि च ॥ ५० ॥
 केशास्थीनि कपालानि कार्पासास्थितुषाणि च ।
 अमेध्याङ्गारभस्मानि नाधितिष्ठेद्रजांसि च ॥ ५१ ॥
 न च लोष्टं विमृद्नीयान्न च छिन्द्यान्नखैस्तृणम् ।
 न पत्रपुष्पमूल्यानि वंशमङ्गलकाष्ठिकाम् ॥ ५२ ॥
 एवमादीनि चान्यानि पाणिभ्यां न च मर्दयेत् ।
 न दन्तस्वादनं कुर्याद्रोमाण्युत्पाटयेन्न च ॥ ५३ ॥
 न पद्म्यामुल्लिखेद्भूमिं लोष्टकाष्ठैः करेण वा ।
 न नखांश्च नखैर्विध्यान्न कण्ड्वेयन्नखैस्तनुम् ॥ ५४ ॥
 मुहुर्मुहुः शिरः श्मश्रु न स्पृशेत् करजैर्बुधः ।
 न लिक्षाकर्षणं कुर्यादात्मनो वा परस्य वा ॥ ५५ ॥

सौवर्णरौप्यताम्रैश्च शृङ्गदन्तशलाकया ।
 देहकण्डूयनं कार्यं वंशकाष्ठीकवीरणैः ॥ ५६ ॥
 न विचित्तं प्रकुर्वीत दिशश्चैवावलोकयन् ।
 न शोकार्तश्च संतिष्ठेत् धृत्वा पाणौ कपोलकम् ॥ ५७ ॥
 न पाणिपादवाक्चक्षुःश्रोत्रशिश्मगुदोदरैः ।
 चापलानि न कुर्वीत स सर्वार्थमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
 न कुर्यात् केनचिद्वैरमध्रुवे जीविते सति ।
 लोककौतूहलं पापं सन्ध्यां च परिवर्जयेत् ॥ ५९ ॥
 न कुद्वारेण वेश्मानि नगरं ग्राममाविशेत् ।
 न दिवा प्रावृतशिरा रात्रौ प्रावृत्य पर्यटेत् ॥ ६० ॥
 नातिभ्रमणशीलः स्यान्न विशेषं गृहाद्गृहम् ।
 न चाज्ञानमधीयीत शिवज्ञानं समभ्यसेत् ॥ ६१ ॥
 शिवज्ञानं परं ब्रह्म तदारभ्य न संत्यजेत् ।
 ब्रह्मासाध्यं च यो गच्छेद्ब्रह्महा स प्रकीर्तितः ॥ ६२ ॥
 कृताञ्जलिः स्थितः शिष्यो लघुवस्त्रमुदङ्मुखः ।
 शिवमन्त्रं समुच्चार्य प्राङ्मुखोऽध्यापयेद्गुरुः ॥ ६३ ॥
 नागदन्तादिसंभूतं चतुरश्रं सुशोभनम् ।
 हेमरत्नचितं वापि गुरोरासनमुत्तमम् ॥ ६४ ॥
 न शुश्रूषार्थकामाश्च न च धर्मः प्रदृश्यते ।
 न भक्तिर्न यशः क्रौर्यं न तमध्यापयेद्गुरुः ॥ ६५ ॥
 देवाग्निगुरुगोष्ठीषु व्याख्याध्ययनसंसदि ।
 प्रश्ने वादेऽनृतेऽशौचे दक्षिणं बाहुमुद्धरेत् ॥ ६६ ॥
 वशे सततनम्रः स्यात् संहृत्याङ्गानि कूर्मवत् ।
 तत्संमुखं च निर्गच्छेन्नमस्कारपुरस्सरः ॥ ६७ ॥

देवाग्निगुरुविप्राणां न ब्रजेदन्तरेण तु ।
 नार्पयेन्न च गृहीयात् किञ्चिद्वस्तु तदन्तरा ॥ ६८ ॥
 न मुखेन धमेदग्निं नाधःकुर्यान्न लङ्घयेत् ।
 न क्षिपेदशुचिं वह्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ६९ ॥
 तृणकाष्ठादिगहने जन्तुभिश्च समाकुले ।
 स्थाने न दीपयेदग्निं दीप्तं चापि ततः क्षिपेत् ॥ ७० ॥
 अग्निं युगपदानीय धारयेत् प्रयत्नतः ।
 ज्वलन्तं न प्रदीपं च स्वयं निर्वापयेद्बुधः ॥ ७१ ॥
 शिवव्रतधरं दृष्ट्वा समुत्थाय सदा द्रुतम् ।
 शिवोऽयमिति संकल्प्य हर्षितः प्रणमेत्ततः ॥ ७२ ॥
 भोगान् ददाति विपुलान् लिङ्गे संपूजितः शिवः ।
 अग्नौ च विविधां सिद्धिं गुरौ मुक्तिं प्रयच्छति ॥ ७३ ॥
 मोक्षार्थं पूजयेत्तस्माद्गुरुमूर्तिस्थमीश्वरम् ।
 गुरुभक्त्या लभेद्ज्ञानं ज्ञानान्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ७४ ॥
 सर्वपर्वसु यत्नेन ह्येषु संपूजयेच्छिवम् ।
 कुर्यादायतने शोभां गुरुस्थानेषु सर्वतः ॥ ७५ ॥
 नरद्वयोच्छ्रिते पीठे सर्वशोभासमन्विते ।
 संस्थाप्य मणिजं लिङ्गं स्थाने कुर्याज्जगद्धितम् ॥ ७६ ॥
 अन्नपानविशेषैश्च नैवेद्यमुपकल्पयेत् ।
 भोजयेद्भूतिनश्चात्र स्वगुरुं च विशेषतः ॥ ७७ ॥
 पूजयेच्च शिवज्ञानं वाचयीत च पर्वसु ।
 दर्शयेच्छिवभक्तेभ्यः सत्पूजां परिकल्पिताम् ॥ ७८ ॥
 प्रियं ब्रूयात् सदा तेभ्यः प्रदेयं चापि शक्तितः ।
 एवं कृते विशेषेण प्रसीदति महेश्वरः ॥ ७९ ॥

छिन्नं भिन्नं मृतं नष्टं वर्धते नास्ति केवलम् ।

इत्याद्यान्न वदेच्छब्दान् साक्षाद्ब्रूयात्तु मङ्गलम् ॥ ८० ॥

अधेनुं धेनुमित्येव ब्रूयाद्भद्रमभद्रकम् ।

कपालं च भगालं स्यात्परमं मङ्गलं वदेत् ॥ ८१ ॥

ऐन्द्रं धनुर्मणिधनुर्दाहकाष्ठादि चन्दनम् ।

स्वर्यातं च मृतं ब्रूयाच्छिवीभूतं च योगिनम् ॥ ८२ ॥

द्विधाभूतं वदेच्छिन्नं भिन्नं च बहुधा स्थितम् ।

नष्टमन्वेषणीयं च रिक्तं पूर्णमिवर्धितम् ॥ ८३ ॥

नास्तीति शोभनं सर्वमाद्यमङ्गाभिवर्धनम् ।

सिद्धिमद्ब्रूहि गच्छन्तं सुप्तं ब्रूयात् प्रवर्धितम् ॥ ८४ ॥

न म्लेच्छमूर्खपतितैः क्रूरैः संतापवेदिभिः ।

दुर्जनैरवलितैश्च क्षुद्रैः सह न संवदेत् ॥ ८५ ॥

नाधार्मिकनृपाक्रान्ते न दंशमशकावृते ।

नातिशीतजलाकीर्णे देशे रोगप्रदे वसेत् ॥ ८६ ॥

नासनं शयनं पानं नमस्काराभिवादनम् ।

सोपानत्कः प्रकुर्वीत शिवपुस्तकवाचनम् ॥ ८७ ॥

आचार्यं दैवतं तीर्थमुद्धूतोदं मृदं दधि ।

वटमश्वत्थकपिलां दीक्षितोदधिसङ्गमम् ॥ ८८ ॥

यानि चैषां प्रकाराणि मङ्गलानीह कानिचित् ।

शिवायेति नमस्कृत्वा प्रोक्तमेतत्प्रदक्षिणम् ॥ ८९ ॥

उपानच्छस्त्रवस्त्राणि पवित्रं करकं स्रजम् ।

आसनं शयनं पानं धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥ ९० ॥

पालाशमासनं शय्यां पादुके दन्तधावनम् ।

वर्जयेच्चापि निर्यासं रक्तं न तु समुद्भवम् ॥ ९१ ॥

सन्ध्यामुपास्य कुर्वीत नित्यं देहप्रसाधनम् ।
 स्पृशेद्वन्देच्च कपिलां प्रदद्याच्च गवां हितम् ॥ ९२ ॥
 यः प्रदद्याद्गवां सम्यक् फलानि च विशेषतः ।
 क्षेत्रमुद्दामयेच्चापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९३ ॥
 यावत्तत्पत्रकुसुमकन्दमूलफलानि च ।
 तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ९४ ॥
 कृशरोगार्तवृद्धानां त्यक्तानां निर्जने वने ।
 क्षुत्पिपासातुराणां च गवां विह्वलचेतसाम् ॥ ९५ ॥
 नीत्वा यस्तृणतोयानि वने यन्नात् प्रयच्छति ।
 करोति च परित्वाणं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९६ ॥
 कुलैकविंशकोपेतः पत्नीपुत्रादिसंयुतः ।
 मितभृत्यैरुपेतश्च श्रीमच्छिवपुरं व्रजेत् ॥ ९७ ॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान् विमानैः सार्वकामिकैः ।
 स महाप्रलयं यावत्तदन्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ९८ ॥
 गोब्राह्मणपरित्वाणं सकृत्कृत्वा प्रयत्नतः ।
 मुच्यते पञ्चभिर्घोरैर्महद्भिः पातकैर्द्रुतम् ॥ ९९ ॥
 अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता ।
 अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचं सन्तोषमार्जवम् ॥ १०० ॥
 अहिंसाद्या यमाः पञ्च यतीनां परिकीर्तिताः ।
 अक्रोधाद्याश्च नियमाः सिद्धिवृद्धिकराः स्मृताः ॥ १०१ ॥
 दशलाक्षणिको धर्मः शिवाचारः प्रकीर्तितः ।
 योगीन्द्राणां विशेषेण शिवयोगप्रसिद्धये ॥ १०२ ॥
 न विन्दति नरो योगं पुत्रदारादिसङ्गतः ।
 निबद्धः स्नेहपाशेन मोहस्तम्भबलीयसा ॥ १०३ ॥

मोहात् कुटुम्बसंसक्तस्तृष्णया शृङ्खलीकृतः ।
 बालैर्बद्धस्तु लोकोऽयं मुसलेनाभिहन्यते ॥ १०४ ॥
 इमे बालाः कथं त्याज्या जीविष्यन्ति मया विना ।
 मोहाद्धि चिन्तयत्येवं परमार्थौ न पश्यति ॥ १०५ ॥
 संपर्कादुदरे न्यस्तः शुक्रविन्दुरचेतनः ।
 स पित्रा केन यत्नेन गर्भस्थः परिपालितः ॥ १०६ ॥
 कर्कशाः कठिना भक्षा जीर्यन्ते यत्र भक्षिताः ।
 तस्मिन्नेवोदरे शुक्रं किं न जीर्यति भक्ष्यवत् ॥ १०७ ॥
 येनैतद्योजितं गर्भे येन चैव विवर्द्धितम् ।
 तेनैव निर्गतं भूयः कर्मणा स्वेन पाल्यते ॥ १०८ ॥
 न कश्चित् कस्यचित् पुत्रः पिता माता न कस्यचित् ।
 यत्स्वयं प्राक्तनं कर्म पिता मातेति तत्स्मृतम् ॥ १०९ ॥
 येन यत्र कृतं कर्म स तत्रैव प्रजायते ।
 पितरौ चास्य दासत्वं कुरुतस्तत्प्रचोदितौ ॥ ११० ॥
 न कश्चित् कस्यचिच्छक्तः कर्तुं दुःखं सुखानि च ।
 करोति प्राक्तनं कर्म मोहाल्लोकस्य केवलम् ॥ १११ ॥
 कर्मदायादसंबन्धादुपकारः परस्परम् ।
 दृश्यते नापकारश्च मोहेनात्मनि मन्यते ॥ ११२ ॥
 ईश्वराधिष्ठितं कर्म फलतीह शुभाशुभम् ।
 ग्रामस्वामिप्रसादेन सुकृतं कर्षणं यथा ॥ ११३ ॥
 द्वयं देवत्वमोक्षाय ममेति न ममेति च ।
 ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति विमुच्यते ॥ ११४ ॥
 द्व्यक्षरं च भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।
 ममेति द्व्यक्षरं मृत्युस्त्र्यक्षरं न ममेति च ॥ ११५ ॥

तस्मादात्मन्यहङ्कारमुत्सृज्य प्रविचारतः ।
 विधूयाशेषसङ्गांश्च मोक्षोपायं विचिन्तयेत् ॥ ११६ ॥
 ज्ञानाद्योगपरिक्लेशं कुप्रावरणभोजनम् ।
 कुचर्यां कुनिवासं च मोक्षार्थी न विचिन्तयेत् ॥ ११७ ॥
 न दुःखेन विना सौख्यं दृश्यते सर्वदेहिनाम् ।
 दुःखं तन्मात्रकं ज्ञेयं सुखमानन्त्यमुत्तमम् ॥ ११८ ॥
 सेवायां पाशुपाल्ये च वाणिज्ये कृषिकर्मणि ।
 तुल्ये सति परिक्लेशे वरं क्लेशो विमुक्तये ॥ ११९ ॥
 स्वर्गापवर्गयोरेकं यः शीघ्रं न प्रसाधयेत् ।
 याति तेनैव देहेन स मृतस्तप्यते चिरम् ॥ १२० ॥
 यदवश्यं परार्थिनैस्त्यजनीयं शरीरकम् ।
 कस्मात्तेन विमूढात्मा न साधयति शाश्वतम् ॥ १२१ ॥
 यौवनस्था गृहस्थाश्च प्रासादस्थाश्च ये नृपाः ।
 सर्वे एव विशीर्यन्ते शुष्कस्निग्धान्नभोजनाः ॥ १२२ ॥
 अनेकदोषदुष्टस्य देहस्यैको महान् गुणः ।
 यां यामवस्थामामोति तां तामेवानुवर्तते ॥ १२३ ॥
 मन्दं परिहरन् कर्म स्वदेहमनुपालयेत् ।
 वर्षासु जीर्णकटवत्तिष्ठन्नप्यवसीदति ॥ १२४ ॥
 न तेऽत्र देहिनः सन्ति ये तिष्ठन्ति सुनिश्चलाः ।
 सर्वे कुर्वन्ति कर्माणि विकृशाः पूर्वकर्मभिः ॥ १२५ ॥
 तुल्ये सत्यपि कर्तव्ये वरं कर्म कृतं परम् ।
 यः कृत्वा न पुनः कुर्यान्नानाकर्म शुभाशुभम् ॥ १२६ ॥
 तस्मादन्तर्बहिश्चिन्तामनेकाकारसंस्थिताम् ।
 संत्यज्यात्महितार्थाय स्वाध्यायध्यानमभ्यसेत् ॥ १२७ ॥

विविक्ते विजने रम्ये पुष्पाश्रमविभूषिते ।
 स्थानं कृत्वा शिवस्थाने ध्यायेच्छान्तं परं शिवम् ॥ १२८ ॥
 येऽतिरम्याण्यरण्यानि सुजलानि शिवानि तु ।
 विहायाभिरता ग्रामे प्रायस्ते दैवमोहिताः ॥ १२९ ॥
 विवेकिनः प्रशान्तस्य यत्सुखं ध्यायतः शिवम् ।
 न तत्सुखं महेन्द्रस्य ब्रह्मणः केशवस्य वा ॥ १३० ॥
 इति नामामृतं दिव्यं महाकालादवाप्तवान् ।
 विस्तरेणानुपूर्व्याच्च ऋष्यात्रेयः सुनिश्चितम् ॥ १३१ ॥
 प्रज्ञामथा विनिर्मथ्य शिवज्ञानमहोदधिम् ।
 ऋष्यात्रेयः समुद्धृत्य प्राहेदमणुमात्रकम् ॥ १३२ ॥
 शिवधर्मं महाशास्त्रे शिवधर्मस्य चोत्तरे ।
 यदनुक्तं भवेत् किञ्चित्तदत्र परिकीर्तितम् ॥ १३३ ॥
 त्रिदैवत्यमिदं शास्त्रं मुनीन्द्रात्रेयभाषितम् ।
 तिर्यङ्मनुजदेवानां सर्वेषां च विमुक्तिदम् ॥ १३४ ॥
 नन्दिस्कन्दमहाकालास्त्रयो देवाः प्रकीर्तिताः ।
 चन्द्रात्रेयस्तथाऽत्रिश्च ऋष्यात्रेयो मुनित्रयम् ॥ १३५ ॥
 एतैर्महात्मभिः प्रोक्ताः शिवधर्माः समासतः ।
 सर्वलोकोपकारार्थं नमस्तेभ्यः सदा नमः ॥ १३६ ॥
 तेषां शिष्यप्रशिष्यैश्च शिवधर्मप्रवक्तृभिः ।
 व्याप्तं ज्ञानसरः शार्वं विकचैरिव पङ्कजैः ॥ १३७ ॥
 ये श्रावयन्ति सततं शिवधर्मं शिवार्थिनाम् ।
 ते रुद्रास्ते मुनीन्द्राश्च ते नमस्याः स्वभक्तितः ॥ १३८ ॥
 ये समुत्थाय शृण्वन्ति शिवधर्मं दिने दिने ।
 ते रुद्रा रुद्रलोकेशा न ते प्रकृतिमानुषाः ॥ १३९ ॥

शिवोपनिषदं ह्येतदध्यायैः सप्तभिः स्मृतम् ।

ऋष्यात्रेयसगोत्रेण मुनिना हितकाम्यया ॥ १४० ॥

इति शिवोपनिषदि शिवाचाराध्यायः सप्तमः

इति शिवोपनिषत् समाप्ता

सदानन्दोपनिषत्

तच्छंयोराट्टणीमहे—इति शान्तिः

अथैनं सदानन्दः संवर्तो जैगीषव्यश्च नीललोहितं रुद्रमुवाच ।
भगवन् किमपवर्गं साधयतीति । स एतेभ्यो भगवान् नीललोहितः प्रोवाच ।

अन्तर्बहिर्धारितं परंब्रह्माभिधेयं शाम्भवं लिङ्गम्,

आधारे दहरेऽव्यक्ते स्वर्णस्फाटिकवैद्रुमम् ।

निरन्तरानुसन्धानात् तदन्तर्धारणे विदुः ॥

चतुर्दलं द्वादशारं द्व्यश्रमव्यक्तकं शिवम् ।

दहरेऽङ्गुष्ठमात्रं तमुमाकान्तमहर्निशम् ।

अनिराकारमात्मानं धृत्वा यान्ति परं पदम् ॥

परात् परतरो ब्रह्मा तत्परात् परतो हरिः ।

तत्परात् परतोऽधीशस्तस्मात् स्यादुत्तरः शिवः ॥

जातवेदसमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं परं सदा ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः

तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

अन्तर्धारणशक्तेन ह्यशक्तेन द्विजोत्तमाः ।
 सैस्कृत्य गुरुणा दत्तं शैवं लिङ्गमुरःस्थले ।
 धार्यं विप्रेण मुक्त्यर्थे शिवतत्त्वविदो विदुः ॥
 येनाचिरात्सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं पुरुषमुपैति विद्वान् ।

अस्य मात्रा अकारो ब्रह्मरूप उकारो विष्णुरूपो मकारः कालकालः
 अर्धमात्रा परमशिवः ओङ्कारो लिङ्गम् ।

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यते ह्यज ईश्वरः ।
 तस्मात्तद्धारणादेतलिङ्गदेहमलौकिकम् ।
 मृतेऽपि तन्न दृष्टेयं बिले चैतद्विनिक्षिपेत् ॥
 न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः ॥
 यो वा स्वहस्तार्चितलिङ्गमेकं परात्परं धारयते नरो वा ।
 तस्यैव लभ्यः परमेश्वरोऽसौ निरञ्जनं साम्यमुपैति दिव्यम् ॥
 शिवलिङ्गधरं विप्रं विपन्नं तु न दाहयेत् ।
 यदि वा दाहयेत्तस्य ब्रह्महत्या तदा भवेत् ॥

यदिदं लिङ्गं सकलं सकलनिष्कलं निष्कलं च स्थूलं सूक्ष्मं च
 तत्परं स्थूले स्थूलं सूक्ष्मे सूक्ष्मं कारणे तत्परं च ।

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
 ध्याननिर्मथनादेव पाशं दहति मानवः ।
 अन्तर्बहिश्च तलिङ्गं विधत्ते यस्तु शाश्वतम् ॥

अविद्याऽऽवरणं भित्त्वा ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामामोति । तदिदं
 लिङ्गं ब्रह्म । तदिदं ॐ सत्यम् । यो विद्वान् ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो यतिर्वा
 सदानन्दोपनिषदं पठति सोऽग्निपूतो भवति । स सत्यपूतो भवति ।

स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति । ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति । स सकलभोगभुक्
देहं त्यक्त्वा शिवसायुज्यमेति । इत्युपनिषत् ॥

इति सदानन्दोपनिषत् समाप्ता

सिद्धान्तशिखोपनिषत्

ॐ अथ भारद्वाजः कुमारं पप्रच्छ । कोऽयं भवादृशानां परमशिव-
भक्तानां सिद्धान्तः । कुतः सर्वे न विदन्तीति । तद्ब्रुह्यमुवाच स्कन्दः ।
भारद्वाज शृणु नाम कचिद्वदन्ति साम्बं सर्वदेवप्रकृष्टं शिवं वरेण्यं पक्वचित्ताः
शिवस्य प्रसादतो ज्ञानमात्राद्विदन्ति ।

विश्वाधिकं शङ्करं ये प्रमूढा हीनं विष्णोर्ब्रह्मणो वा वदन्ति ।
न संसारात् प्रमुच्यन्ते कदाचिच्छतैः कल्पैः कोटिभिर्वाऽथ दोषैः ॥

यथा राज्ञे कुर्वन्नमात्यबुद्धिं

देही विन्देद्बाधमस्माद्विनष्टम् ।

सत्यादिरूपं शिवमेवं विदानो

विष्ण्वादिबुद्ध्या हीयतेऽज्ञानसङ्गात् ॥

महानग्निः काष्ठमार्द्रं च शुष्कं कृत्वा दहेदीश्वरोत्कृष्टबुद्धिः ।

दहेत् पापान्याशु विज्ञानदात्री न संसारे मज्जते वा कदाचित् ॥

महादेवे त्रिपुण्ड्रस्य धारणे भस्मकुण्ठने ।

पुण्यलेशविहीनस्य श्रद्धा नैव प्रजायते ॥

पापपूर्णस्य मर्त्यस्य त्रिपुण्ड्रोद्धूलने शिवे ।

रुद्राक्षधारणे द्वेषः स्वत एव प्रजायते ॥

जन्मान्यनन्तानि विस्तीर्य भूयः शिवप्रसादाद्धृतपुण्यलेशः ।

शिवे भक्तिं प्राप्य तद्भक्तसङ्गान्न संसृतौ घोरदुःखात् प्रमज्जेत् ॥

योऽज्ञानाद्वा शिवशब्दं गृणानः पापैर्घोरैर्मुच्यते वा कदाचित् ।

को वा वेत्ता महिमानं शिवस्य परात् परस्य ज्ञानगुह्यस्य गुह्यम् ॥

सद्योजाताद्वाङ्मणाः संवभूवुर्वाग्मिदेवात् क्षत्रिया वै विशश्च ।

अघोराच्छूद्रास्तत्पुरुषाच्छिवस्य पञ्चात्मकस्य गणा ईशतोऽस्य ॥

आत्माश्रमित्वाद्गणवंशजाता लिङ्गाङ्गसङ्गस्तत्र जन्मान्तदीक्षा ।

यथा गङ्गा शिवसङ्गात्तथैव न सूतकं वा नाप्यशुचित्वमेषाम् ॥

गच्छंस्तिष्ठन्निमिषन्नुन्मिषन् वा स्वपञ्चाग्रालिङ्गधारी शुचिः स्यात् ।

भुञ्जन् भूत्राद्युत्सृजन् वा कदाचिन्न तत्रोच्छिष्टं भजते शुद्धदेही ॥

शीर्षे कण्ठे वक्षसि कक्षदेशे नाभौ हस्ते सर्वदा प्राणलिङ्गम् ।

धार्यं यथासम्प्रदायं पुरस्ताद्गुरोर्विदित्वा हृदये मुख्यमुक्तम् ॥

स्नानं कृत्वा शिवतीर्थे च देहं सर्वं भस्मोद्धूलनात् पावयित्वा ।

त्रिपुण्ड्रं धार्यं भर्त्सनात् पातकौघगिरेर्भस्म प्राहुरत्यर्थमेतत् ॥

स्नानं त्रिपुण्ड्रस्य शिरोललाटवक्षःस्कन्धमणिबन्धेषु कूर्पे ।

नाभिप्रदेशे पार्श्वयोर्गण्डदेशे गुदप्रदेशे गुल्फयोश्च क्रमात् स्यात् ॥

वह्नित्रयं तच्च जगत्त्रयं यद्गुणत्रयं तच्च शक्तित्रयं स्यात् ।

धृतं त्रिपुण्ड्रं यदि कोपि दैवात् तद्दृष्ट्वान्यः पातकौघाद्विमुक्तः ॥

निमीलिताक्षस्य पुरत्रयाणि

दग्धाः शंभोर्नयनेभ्योऽथ ये तु ।

जाता रुद्राक्षा जलबिन्दवोऽस्य

सद्योजातादीन् पञ्च वक्त्राणि विन्द्यात् ॥

द्वात्रिंशद्रुद्राक्षाः कण्ठमालाप्रयुक्ताः

शिखायामेको द्विचत्वारिंशदुक्ताः ।

शिरोधार्याः कर्णयोर्द्वादशाऽथ

शतत्रयं तूपवीतं च बाह्वोः ॥

द्वात्रिंशदुक्ता मणिबन्धयोश्च चतुर्विंशाः शतमष्टौ जपार्थम् ।

पुरा लीनाः सृष्टिकालाच्छिवस्य पञ्चाक्षरे मन्त्रवर्ये समस्ताः ।

भूतानि पञ्च वेदा आगमाश्च शिवाल्लब्धोऽभून्मन्त्रवर्यो विधाता ॥

देहिनो देहमायान्ति न यावन्मन्त्रनायकः ।

तावत्पापानि गर्जन्ति सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥

योऽयं नकारः सोऽयमकारः स सद्योजातो भूर्ऋग्वेदः संपुटमुच्यते ।

योऽयं मकारः सोऽयमुकारः स वामदेव आपो यजुर्वेदो वक्त्रमुच्यते ।

योऽयं शिकारः सोऽयं मकारः स धोरः स वायुः सामवेदो गुण उच्यते ।

योऽयं वकारः सोऽयं नादः स तत्पुरुषः स तेजोऽथर्ववेदोऽधोरमुच्यते ।

योऽयं यकारः तदिदं समस्तमोमिति निर्विशेषप्रणवः स सर्वोत्तम ईशान

आकाश आगमो लिङ्गमुच्यते । इत्येतत्तत्त्वं यो विजानाति स नित्यं शुद्ध-

बुद्धपरमानन्दपरमशिवस्वरूपः ।

पुरा देवाः पशुपाशाद्विमुक्ताः शिवं पूज्यैव हरिपद्मादयोऽपि ।

ऐन्द्रनीलं पूजितं विष्णुनासीलिङ्गं वैदूर्यं विधिना पद्मरागम् ॥

शक्रेण हैमं यक्षराजेन विश्वेदेवै रौप्यं वसुभिः कांस्यकं च ।

यदारुकूटं वायुना पार्थिवं तदश्विभ्यामासीत् स्फाटिकं पाशिनाथ ॥

आदित्यैस्ताम्रं मौक्तिकं देवतैस्तैरनन्ताद्यैः फणिभिश्च प्रवालम् ।

दैत्यैर्जालं राक्षसैश्च त्रिलोहं गणैः शैलं सैकतं मातृकाभिः ॥

दारूद्धवं निर्ऋतिना यमेन सुपूज्यमासीन्मारकतं च रुद्रैः ।
 सुभस्मरूपं सूक्ष्मरूपं च लक्ष्म्या शैलान्येव मुनयो भेजिरेऽथ ॥
 सरस्वती स्वरूपं च दुर्गा हैमं लिङ्गं पूजयामास भक्त्या ।
 जलैरुष्णैः शीतलैर्वा कदाचिदज्ञानाद्वा पतितैः पत्रपुष्पैः ।
 तुष्टो यच्छेद्वाञ्छितार्थं महेशः किं दुर्लभं शिवभक्तस्य लोके ॥
 अत्यल्पमपि नैवेद्यं फलं वा जलमेव वा ।
 तदेव प्राशयित्वाथ ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
 किमन्यैर्धार्मैर्भस्मनि शुद्धपुण्ड्रे स्थिते किमन्यैर्मन्त्रवयैः स्थितैः ।
 शिवे स्थिते सर्वदेवाधिराजे भारद्वाज निर्जरैः किं तथाऽन्यैः ॥
 सिद्धान्तोऽयं निश्चितोऽस्माभिरेष भारद्वाज गुह्यमेतन्न वाच्यम् ।
 सदा प्रशान्ताय न नास्तिकाय परीक्ष्याथ ब्रूहि सर्वार्थवेत्त्रे ॥

इत्याह भगवान् स्कन्दः । तामेनां सिद्धान्तशिखां प्रातर-
 धीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायमधीयानोऽह्निकृतं पापं नाशयति ।
 सार्वकालं प्रयुञ्जानः पापैरपापो भवतीति विज्ञायते । इति वेदवचनं
 भवति । इति वेदवचनं भवति । ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥

इति सिद्धान्तशिखोपनिषत् समाप्ता

सिद्धान्तसारोपनिषत्

भद्रं कर्णेभिः—इति शान्तिः

प्रथमावरणम्

अथ भारद्वाजः कुमारं पप्रच्छ । भगवन् मे ब्रूहि परमतत्त्वकैलास-
 रहस्यम् । तद्रुक्मवाच स्कन्दः । साधु पृष्ठं सर्वं निवेदयामि यथाज्ञातं

मया । हे भारद्वाज शृणु वाक्यमेतत् । परमकैवल्यः स एव कैलासः । ईश्वरकृपया परमपरिपक्वचित्ता जानन्ति । नान्ये जानन्ति गुह्यमिदम-
निर्वाच्यममितबोधसागरममितानन्दसमुद्रमखण्डानन्दरूपन्निरवयवं निराधारं
निर्विकारं निरञ्जनमनन्तं ब्रह्मानन्दसमष्टिकन्दं तैरानन्दपुरुषैश्चिद्रूपैरधिष्ठितं
ब्रह्मानन्दमयानन्तनिरतिशयानन्दसागराकारमात्मसमानानन्दविभूतिपुरुषान -
न्तानन्दमण्डितं नित्यमङ्गलमनन्तविभवम् । ब्रह्मानन्दमयानन्तप्राकारप्रासाद-
तोरणविमानोपवनावलीभिर्ज्वलच्छिखरैरुपलक्षितो निरुपमनित्यनिरवधनिरति-
शयनिरवधिकब्रह्मानन्दाचलो विराजते । तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्द-
दिव्यतेजोराशिः । तदभ्यन्तरसंस्थाने शुद्धबोधानन्दलक्षणं विभाति ।
तदन्तराले चिन्मयवेदिकाऽऽनन्दवेदिकाऽऽनन्दवनविभूषिता । तत्र वेद-
कल्पतरुवनं यज्ञकल्पतरुवनं योगकल्पतरुवनम् । तदभ्यन्तरे अमिततेजोरा-
शिस्वात्मज्योतिर्ज्वलति । तत्र परममङ्गलासनं विराजते । तस्योपरि
समासीनानन्तपरिपालकनन्धादिगणपाः सन्ति । अनन्तोत्कटजलदमण्डलं
निरतिशयदिव्यतेजोमण्डलवृन्दाकारपरमानन्दशुद्धबोधस्वरूपमनन्तानन्दसौदा-
मिनीपरमविलासं निरतिशयानन्तपरमानन्दपारावारजालम् ॥

इति प्रथमावरणम्

द्वितीयावरणम्

तन्मध्ये कल्याणाचलो विभाति । अनन्तानन्दपर्वतशिखरैरभिव्याप्तम-
नन्तबोधानन्दव्यूहैरभितस्ततं ब्रह्मविद्याप्रवाहैरानन्दरसनिर्भरैः क्रीडानन्द-
पर्वतैरनन्तैरभिव्याप्तं ब्रह्मविद्यामयैरनन्तप्राकारैरानन्दामृतमयैर्दिव्यगन्धैः स्व-

भावचिन्मयैरनन्तब्रह्मवनैरतिशोभितमपरब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदैवतमनन्तमोक्ष -
साम्राज्याद्वितीयमेकं परमकल्याणमनन्तविभवममितबोधानन्दाचलोपरिस्थितं
शुद्धबोधमयानन्तप्रासादैः संवृतमानन्दमयानन्तविमानावलीभिर्विराजितमत्या-
श्चर्यानन्तविभूतिसममनन्तशुद्धानन्दपरिधैः समावृतमनन्तदिव्यतेजोज्वाला-
जालैरभितोऽनिशं प्रज्वलन्तमत्याश्चर्यानन्तविभूतिसमष्ट्याकारमानन्दरसप्रवा-
हैरलङ्कृतममितविज्ञानतरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं ब्रह्मतेजोविशेषाकारैर-
नन्तब्रह्मवनैरभितस्ततं ब्रह्मविद्याकल्पतरुवनैः सुशोभितं बोधकल्पतरुवनैः
परिवेष्टितमनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तं तदभ्यन्तरेऽनन्तदिव्यमङ्गलासनं विराजते ।
तदुपरि नित्यज्ञानानन्दरूपा अद्वैतशिवपूजकास्तिष्ठन्ति ॥

इति द्वितीयावरणम्

तृतीयावरणम्

तन्मध्ये चिदानन्दाचलो विभाति । तदुपरि ब्रह्मतेजोमयानन्तशिखराः
सन्ति । तत्र ब्रह्मविद्यामयानन्तपरिधाः सन्ति । वाचामगोचरानन्तचिन्मया-
नन्दवनैः परिवेष्टितं ब्रह्मकल्पतरुवनैः समावृतं अमृतकल्पतरुवनैरुपशोभितं
ब्रह्मतेजोमयानन्दरसप्रवाहैरतिशोभितं ब्रह्मविद्यातरङ्गिण्याः प्रवाहैः सुमङ्गलं
निरतिशयानन्तदिव्यानन्दतेजोज्वालाराशिमण्डलं ज्वलति । परमानन्दमया-
नन्तविमानावलिभिः संकुलमनन्तचिन्मयप्रासादजालसंकुलमनन्तब्रह्मानन्दानु-
भवपताकाध्वजतोरणैरलङ्कृतमनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तं तदभ्यन्तरसंस्थानेऽन-
न्तचिन्मयासनं विराजते । तस्योपरि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तशिवैक्यभक्तास्तिष्ठन्ति ॥

इति तृतीयावरणम्

चतुर्थावरणम्

तन्मध्येऽमितबोधानन्दाचलो विभाति । तदुपरि परमकैवल्यानन्द-
 रूपानन्तशिखराः सन्ति । तत्र परमानन्दामृतमयैर्दिव्यानन्तप्राकारो
 ज्वलति । दिव्यगन्धैः स्वभावचिन्मयैरनन्तब्रह्मवनैरतिशोभितमानन्दकल्पतरु-
 नैरावृतं मुक्तिकल्पतरुवनैः सुशोभितं पारावारानन्दरसनिर्भरैरतिशोभितं स्वा-
 त्मानन्दानुभवतरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं परमकल्याणमनन्तविभवममितते-
 जोराश्याकारमनन्तब्रह्मतेजोराशिसमष्ट्याकारमनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरभि-
 तोऽनिशं प्रज्वलितमनन्तदिव्यापारब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदैवतममोघनिजमन्द-
 कटाक्षचिदानन्दमयानेकप्रासादविशेषैः परिवेष्टितं ब्रह्मविद्यामयैरनन्तप्रकारा-
 नन्दामृतदिव्यमङ्गलविमानैः सुशोभितं चिद्रूपविलासनिभचिन्मयासनं विरा-
 जते । अधितिष्ठन्ति तेजोराशिं तदन्तर्गतदिव्यतेजोविशेषमखिलपवित्राणां
 परमं पवित्रं चिद्रूपपरानन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तं सच्चिदानन्दरूपाः शिवा-
 त्मैक्योपासकाः ॥

इति चतुर्थावरणम्

पञ्चमावरणम्

अनन्तानन्दपर्वतैः परमकौतुकमाभाति । तदुपरि ज्वलति निरति-
 शयानन्ददिव्यतेजोराशिमण्डलम् । चिदानन्दमयानन्तप्राकारविशेषैः परिवेष्टि-
 तम् । तच्च परमकल्याणविलासविशेषम् । तदखण्डदिव्यतेजोमण्डलाकारं
 परमानन्दसौदामिनीचयोज्ज्वलम् । तच्चामितपरमतेजःपरमविहारसंस्थानविशेषं
 परमतेजोमण्डलविशेषं परमानन्दामृतब्रह्मविद्यामयानन्तसमुद्रं चिदानन्दतरङ्गा-

कारम् । तन्मध्ये अनन्तदिव्यतेजःपर्वतसमष्ट्याकारमपरिच्छिन्नानन्तशुद्ध-
बोधानन्दमण्डलं वाचामगोचरानन्दब्रह्मतेजोराश्याकारमनन्तशिखरोज्ज्वलम-
खण्डतेजोमण्डलविशेषं नित्यानन्दमूर्तिमद्भिः परममङ्गलैः परिधीकृतम-
परिच्छिन्नानन्दसागराकारं ब्रह्मानन्दरसक्रीडावनैः सुशोभितमनन्तसहस्रान-
न्दप्राकारैः समुज्ज्वलितं मुक्तिकल्पतरुवनैः परिवेष्टितं विभूतिकल्प-
तरुवनैरभितस्ततमनन्तानन्दविमानजालसंकुलमनन्तबोधसौधविशेषैरभितोऽनिशं
प्रज्वलितं क्रीडानन्तमण्डपविशेषैर्विशेषितं बोधानन्दमयानन्तपरमललध्वज-
चामरवितानतोरणैरलङ्कृतं शुद्धानन्दविशेषसमष्टिमण्डलविशेषानन्तप्रासादोन्न-
तोज्ज्वलमखण्डचिद्ब्रह्मानन्दविशेषं परमानन्दव्यूहैर्नित्यमुत्तैरभितस्ततमनन्त-
दिव्यतेजःपर्वतसमष्ट्याकारमपरिच्छिन्नानन्तशुद्धबोधानन्दमण्डलं परमानन्द-
लहरीवनशोभितमसङ्ख्याकानन्दसमुद्रमनन्तज्वालाजालैरलङ्कृतं चिदानन्द-
तरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं स्वात्मानन्दानुभवामृतकलोलरसप्रवाहैरलङ्कृतं स्व-
प्रकाशानन्तानन्दतेजोज्वालाजालैरावृतम् । तदभ्यन्तरे चिन्मयानन्दासन-
मुज्ज्वलम् । तदुपरि विभात्यखण्डानन्दतेजोमण्डलम् । तदभ्यन्तरसमासीनाः
आनन्दसागरनित्यतृप्ताः शिवाद्वैतोपासकाः स्वात्मलिङ्गार्चकास्तिष्ठन्ति ।
निरतिशयदिव्यतेजोमण्डलाकारा आनन्दधनसागराः परमकैवल्यस्वरूपानन्त-
गणाः परिसेवन्ते ॥

इति पञ्चमावरणम्

षष्ठावरणम्

परमचिद्विलाससमष्ट्याकारं निर्मलं निरवधं निराश्रयमतिनिर्मल-
नन्तकोटिरविप्रकाशैकोज्ज्वलमनन्तोपनिषदर्थस्वरूपमखिलप्रमाणातीतं मनो-

वाचामगोचरं नित्यमुक्तस्वरूपं कैवल्यानन्दरूपं परमानन्दलक्षणापरि-
 च्छिन्नानन्तज्योतिः शाश्वतं शश्वद्विभाति । तदभ्यन्तरसंस्थानेऽमितानन्द-
 चिद्रूपाचलमखण्डपरमानन्दविशेषं बोधानन्दमहोज्ज्वलमनन्तचित्सागरकलो-
 लजालशिखराकारं नित्यमङ्गलमन्दिरमनन्तानन्दबोधसौधविशेषैरभितोऽनिशं
 प्रज्वलितं चिदानन्दानन्तचित्सागरैः परिधीकृतं ब्रह्मसाक्षात्कारानु-
 भवविशेषबोधसारतरानन्तप्राकारैः समुज्ज्वलितमनन्तसहस्रकैवल्यानन्दवनोप-
 वनैः सुशोभितमनन्तानन्दविभूतिदिव्यतेजःपर्वतसमष्ट्याकारं स्वात्मानन्दानु-
 भवविज्ञानघनरुद्राक्षकल्पतरुवनैरतिमङ्गलमनन्तानन्दचित्सागरमथनोद्भूतरसप्र-
 वाहैरलङ्कृतमद्वितीयं स्वयंप्रकाशमनिशं ब्रह्मानन्दामृतरसाम्भोनिधितर-
 ङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं निरुपमनिरवद्यनित्यशुद्धबुद्धनिरतिशयतेजोराशि-
 विशेषानन्तानन्दविमानजालावलिभिः समाकुलं क्रीडानन्तमण्डपविशेषैर्विशे-
 षितं बोधानन्दमयानन्तदिव्यतेजोराशिविशेषचैतन्यप्रासादैः परिवेष्टितमनन्त-
 परमानन्तामृतरसाब्धिकलोलतरङ्गावलिभिर्दिव्यतेजोमयलत्रचामरध्वजपताका-
 वितानतोरणादिभिरलङ्कृतं परमानन्दव्यूहैर्नित्यमुक्तैरभितस्ततं तच्चानन्तब्रह्म-
 तेजोमयविल्वकल्पतरुवनैराकुलं वेदान्तसारभूतसिद्धान्तानन्तस्कन्धैर्विराजितं
 महावाक्यार्थस्वरूपानन्तशाखासमन्वितं सच्चिदानन्दस्वरूपानन्तानन्दपत्रैस्सु-
 मङ्गलमद्वितीयात्मचैतन्यवृत्तैः सुसंलग्नं विज्ञानघनमानन्तामृतकलोलानन्त-
 पुष्पैरलङ्कृतमखण्डानन्दाह्लादानन्तप्रवाहैर्दिव्यसुगन्धैः समाकुलं निरतिशया-
 नन्तामृतसारसागरानन्तमकरन्दाकारं निश्शङ्कानन्दमोक्षसाम्राज्यचिन्तामणि-
 फलानन्तैर्विराजितं वाचामगोचरमनोन्मनानन्दाम्बुधिदिव्यतेजोमयज्वालाजाल-
 दीपितात्यन्तोन्नतानन्तशिखराकारं शिवालयं शिवानन्दमयदिव्यनानालीला-
 विग्रहविलासविलसितानन्दाविर्भावचरित्रचित्रीकृतचित्रैरलङ्कृतं मूर्तिमद्भिः
 शिबधर्मानन्तोन्नतगोपुरद्वाराकारैरसंख्यैरावृतं शिवधर्मानन्दमूर्तिवृषभावलिभिः

सुमङ्गलं शिवविज्ञानानन्दसागरतीर्थाकारं पुरतःस्थितानन्तदिव्यतीर्थानां
 निजमन्दिरं विज्ञानानन्दधनस्वरूपानन्तसोपानमण्डलमालयमध्यगतं स्वात्म-
 ज्योतिर्मयचिद्रूपवेदिकास्थानविशेषं तदुपरि चैतन्यशक्त्यालङ्कृतस्वात्मचैतन्य-
 कैलासेश्वरलिङ्गाकारं सुपूजितं तत्सन्निधौ शिवविज्ञानानन्दधनशैवधर्ममूर्तिमा-
 साद्य वृषभाकृतिविराजितं शिवानन्दनन्दिसेनबाणरावणाद्यनन्तनानामयानन्ता-
 नन्दमूर्तिमासाद्य गणेशकुमारनन्दिभृङ्गिचण्डिरिटिकीर्तिमुखवीरभद्रभैरवमहा-
 कालशोभनन्दिमुनन्दनन्दिसेनबाणरावणाद्यनन्तनागणपरूपमासाद्यानन्तग-
 णसेवितशिवालयस्य समन्तात् स्वस्वस्थाने सुशोभितं बोधानन्दमयैरनन्त-
 नित्यमुक्तैः परिसेवितं शुद्धबोधपरमानन्दाकारवनं सन्ततामृतपुष्पवृष्टिभिः
 परिवेष्टितं परमानन्दप्रवाहैरभिव्याप्तं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैः परमकौतुका-
 परिच्छिन्नानन्दसागराकारं क्रीडानन्दपर्वतैरभिषोभितं वाचामगोचरानन्द-
 ब्रह्मतेजोराशिमण्डलमखण्डतेजोमण्डलविशेषं दिव्यनानामङ्गलवाद्यैरलङ्कृतं
 प्रणवात्मकध्वन्याकारं विज्ञानधनस्वरूपमनन्तचिदादित्यसमष्ट्याकारं शिवा-
 द्वैतोपासका भजन्ते ॥

इति षष्ठावरणम्

इति सिद्धान्तसारोपनिषत् समाप्ता

हेरम्बोपनिषत्

सह नावतु इति—शान्तिः

अथातो हेरम्बोपनिषदं व्याख्यास्यामः । गौरी सा सर्वमङ्गला सर्वज्ञं परिसमेत्योवाच ।

अधीहि भगवन्नात्मविद्यां प्रशस्तां यया जन्तुर्मुच्यते मायया च ।
यतो दुःखाद्विमुक्तो याति लोकं परं शुभ्रं केवलं सात्त्विकं च ॥
तां वै स होवाच महानुकम्पासिन्धुर्वन्धुर्भुवनस्य गोप्ता ।
श्रद्धस्वैतद्गौरि सर्वात्मना त्वं मा ते भूयः संशयोऽस्मिन् कदाचित् ॥
हेरम्बतत्त्वे परमात्मसारे नो वै योगान्नैव तपोबलेन ।
नैवायुधप्रभावतो महेशि दग्धं पुरा त्रिपुरं दैवयोगात् ॥ ३ ॥
तस्यापि हेरम्बगुरोः प्रसादाद्यथा विरिञ्चिर्गरुडो मुकुन्दः ।
देवस्य यस्यैव बलेन भूयः स्वं स्वं हितं प्राप्य सुखेन सर्वम् ॥
मोदन्ते स्वे स्वे पदे पुण्यलब्धे सर्वैर्देवैः पूजनीयो गणेशः ।
प्रभुः प्रभूणामपि विघ्नराजः सिन्दूरवर्णः पुरुषः पुराणः ॥ ५ ॥
लक्ष्मीसहायोऽद्वयकुञ्जराकृतिश्चतुर्भुजश्चन्द्रकलाकलापः ।
मायाशरीरो मधुरस्वभावस्तस्य ध्यानात् पूजनात्तत्त्वभावाः ॥
संसारपारं मुनयोऽपि यान्ति स वा ब्रह्मा स प्रजेशो हरिः सः ।
इन्द्रः स चन्द्रः परमः परात्मा स एव सर्वो भुवनस्य साक्षी ॥
स सर्वलोकस्य शुभाशुभस्य तं वै ज्ञात्वा मृत्युमत्येति जन्तुः ।
नान्यः पन्था दुःखविमुक्तिहेतुः सर्वेषु भूतेषु गणेशमेकम् ॥ ८ ॥

विज्ञाय तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते स एवमास्थाय शरीरमेकम् ।
 मायामयं मोहयतीव सर्वं स प्रत्यहं कुरुते कर्मकाले ॥ ९ ॥
 स एव कर्माणि करोति देवो ह्येको गणेशो बहुधा निविष्टः ।
 स पूजितः सन् सुमुखोऽभिभूत्वा दन्तीमुखोऽभीष्टमनन्तशक्तिः ॥
 स वै बलं बलिनामग्रगण्यः पुण्यः शरण्यः सकलस्य जन्तोः ।
 तमेकदन्तं गजवक्त्रमीशं विज्ञाय दुःखान्तमुपैति सद्यः ॥ ११ ॥
 लम्बोदरोऽहं पुरुषोत्तमोऽहं विघ्नान्तकोऽहं विजयात्मकोऽहम् ।
 नागाननोऽहं नमतां सुसिद्धः स्कन्दाग्रगण्यो निखिलोऽहमस्मि ॥
 न मेऽन्तरायो न च कर्मलोपो न पुण्यपापे मम तन्मयस्य ।
 एवं विदित्वा गणनाथतत्त्वं निरन्तरायं निजबोधबीजम् ॥ १३ ॥
 श्वेदङ्करं सन्ततसौख्यहेतुं प्रयान्ति शुद्धं गणनाथतत्त्वम् ।
 विद्यामिमां प्राप्य गौरी महेशादभीष्टसिद्धिं समवाप सद्यः ।
 पूज्या परा सा च जजाप मन्त्रं शम्भुं पतिं प्राप्य मुदं ह्यवाप ॥

य इमां हेरम्बोपनिषदमधीते स सर्वान् कामान् लभते । स
 सर्वपापैर्मुक्तो भवति । स सर्वैर्वेदैर्ज्ञातो भवति । स सर्वैर्देवैः पूजितो भवति ।
 स सर्ववेदपारायणफलं लभते । स गणेशसायुज्यमवाप्नोति य एवं वेद ।
 इत्युपनिषत् ॥

इति हेरम्बोपनिषत् समाप्ता

५. शाक्त-उपनिषदः

अल्ला-उपनिषत्

दिव्यानि धत्ते धत्ते दिव्यानि दिव्यानि धत्ते । धत्त इलल इलले
धत्ते धत्त इलले । धत्त इति धत्ते । इलले वरुणो वरुण इलल इलले वरुणः ।
इलल इति इलले । वरुणो राजा राजा वरुणो वरुणो राजा । राजा पुनर्दुः
पुनर्दू राजा राजा पुनर्दुः । पुनर्दुरिति पुनः दुः । ह्वयामि मित्रो मित्रो
ह्वयामि ह्वयामि मित्रः । मित्र इलामिलां मित्रो मित्र इलाम् । इलामिलल इलल
इलामिलामिलले । इलल इलामिलामिलल इलल इलाम् । इलां वरुणो वरुण
इलामिलां वरुणः । वरुणो मिलो मिलो वरुणो वरुणो मित्रः । मित्रस्तेज-
स्कामस्तेजस्कामो मित्रो मित्रस्तेजस्कामः । तेजस्काम इति तेजः कामः ॥१॥
अयामिलामिलामयामयामिलाम् । इलां त्वं त्वमिलामिलां त्वम् । त्वमर्यम-
मर्यमं त्वं त्वमर्यमम् । अर्यमं वरुणो वरुणोऽर्यममर्यमं वरुणः । वरुणो
दध्म दध्म वरुणो वरुणो दध्म । दध्म दीर्घायुर्दीर्घायुर्दध्म दध्म
दीर्घायुः । दीर्घायुर्वहते वहते दीर्घायुर्दीर्घायुर्वहते । दीर्घायुरिति दीर्घ
आयुः । वहते सुयः सुयो वहते वहते सुयः । सुय इति सुयः ।
होतारमिन्द्र इन्द्रो होतारं होतारमिन्द्रः । इन्द्रो होतारं होतारमिन्द्र इन्द्रो

होतारम् । इन्द्रो महासुरेन्द्रो महासुरेन्द्र इन्द्र इन्द्रो महासुरेन्द्रः ।
महासुरेन्द्रः सप्तऋषयः सप्तऋषयो महासुरेन्द्रो महासुरेन्द्रः सप्तऋषयः ।
सप्तऋषयः सं सं सप्तऋषयः सप्तऋषयः सम् । सप्तऋषय इति सप्त
ऋषयः । सं तुष्ट तुष्ट सं सं तुष्ट । तुष्ट देवा देवास्तुष्ट तुष्ट देवाः । देवा
इति देवाः ॥ २ ॥

इलामिलामिलामिलामिलाम् । इलेलाकवर्होऽकवर्ह इलेलाकवर्होऽकवर्ह
इलेलाकवर्होऽकवर्ह इलेलाकवर्होऽकवर्ह इलेलाकवर्होऽकवर्हः । अकवर्होऽस्म्यक-
वर्होऽस्म्यकवर्होऽस्म्यकवर्होऽस्म्यकवर्होऽस्मि ॥ ३ ॥

इति आद्या-उपनिषत् समाप्ता

आथर्वणद्वितीयोपनिषत्

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमासिद्धिश्चादिदशकं तस्यै वै
नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो
नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती लघिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ।
ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती महिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
या वै शिवा भगवती ईशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
शिवा भगवती वशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
भगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
भुक्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती इच्छा-
सिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्राप्तिरसिद्धिस्त-
स्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्रकामसिद्धिस्तस्यै वै नमो

नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ब्राह्मचष्टकं तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती आं ब्राह्मीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ईं माहेश्वरीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं
 श्रीं या वै शिवा भगवती ऊं कौमारीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती ऋं वैष्णवीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती ॠं वाराहीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती ऐं इन्द्राणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 ओं चामुण्डाशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 महालक्ष्मीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 मुद्रादशकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्रां
 सर्वसंक्षोभिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्रीं
 दाविणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्लीं
 सर्वाकर्षिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ब्लं
 सर्ववशङ्करीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सः
 उन्मादिनीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों
 महाङ्कुशमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रस्वर्षे
 खेचरीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रसौं
 बीजमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं सर्वयोनि-
 मुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रसौं त्रिखण्ड-
 मुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्रथमचक्रेश्वरी
 त्रिपुरा देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमादि-
 सिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिणीमुद्रा
 तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कामाकर्षिण्यादिषोडशकं

तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कामाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती बुद्ध्याकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अहङ्काराकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शब्दाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती स्पर्शाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती रूपाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या शिवा भगवती रसाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती गन्धाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती चित्ताकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती धैर्याकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती स्मृत्याकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती नामाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती बीजाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती आत्माकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अमृताकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शरीराकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्वितीय-चक्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं ह्रीं सौः त्रिपुरेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अनङ्गकुसुमाष्टकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कं खं गं घं ङं अनङ्गकुसुमा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती चं छं जं झं ञं अनङ्गमेखला तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती टं ठं ढं णं अनङ्गमदना तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती तं थं दं धं नं अनङ्गमदनानुरा तस्यै वै नमो नमः ।

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती पं फं वं भं मं अनङ्गरेखा तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती यं रं लं वं अनङ्गवेगा तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शं षं सं हं अनङ्गाङ्कुशा तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती लं क्षं अनङ्गमालिनी तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं क्लीं सौः तृतीयचक्रेश्वरी त्रिपुर-
 सुन्दरी देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्लीं
 सर्वाकर्षिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वसंक्षोभिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वविद्राविणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वाकर्षिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वाह्लादिनीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंमो-
 दिनीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वस्तंभिनी-
 शक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वजृम्भिणीशक्ति-
 स्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वरञ्जनी तस्यै वै
 नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्ववशङ्करी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वोन्मादिनी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती सर्वार्थसाधकी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती सर्वसंपत्तिपूरणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वमन्त्रमयी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 ऐं क्लीं सौः त्रिपुरवासिनी देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती ईशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती

ॠत् सर्ववशङ्करीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वसिद्धिप्रदादिदशकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वसिद्धिप्रदा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्व-
 संपत्प्रदा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वप्रियङ्करी
 तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वमङ्गलकारिणी तस्यै
 वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वकामप्रदा तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वदुःखविमोचनी तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वमृत्युप्रशमनी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वविघ्ननिवारणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती सर्वाङ्गसुन्दरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती सर्वसौभाग्यदायिनी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती ह्रसै ह्रसूली ह्रसौः पञ्चमचक्रेश्वरी त्रिपुराश्रीस्तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या
 वै शिवा भगवती उन्मादिनीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वज्ञादिदशकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वज्ञशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वशक्तिदेवी
 तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वैश्वर्यप्रदायिनी तस्यै
 वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वज्ञानमयी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वव्याधिविनाशिनी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं
 श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वाधारस्वरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती सर्वपापहरा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती सर्वानन्दमयी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वरक्षास्वरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती

सर्वेप्सितफलप्रदा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं
 क्लीं ब्लें त्रिपुरामालिनी नित्या तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों
 महाङ्कुशमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वशिन्याद्य-
 ष्टकं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अं आं ईं ईं उं उं
 ऋं ॠं लं लूं एं ऐं ओं औं अं अः वशिनी चाग्वादिनी देवता तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कं खं गं घं ङं कलह्रीं कामेश्वरी
 वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती चं छं जं झं
 ञं क्लीं मोदिनी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती टं
 ठं डं ढं णं ह्रूं विमला वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती तं थं दं धं नं अरुणा वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती पं फं बं भं मं हसलव्यूं जयिनी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती यं रं लं वं ह्रस्व्यो सर्वेश्वरी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शं षं सं हं क्ष्वी कौलिनी तस्यै वै नमो नमः ।
 ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं श्रीं सौः सप्तमचक्रेश्वरी तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती त्रिपुरा सिद्धा नित्या तस्यै वै नमो
 नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती मुक्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं
 श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रस्व्क्लें खेचरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं
 या वै शिवा भगवती यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः बाणस्तस्यै
 वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती धं थं सं मोहनकोदण्ड-
 रूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती आं ह्रीं
 पाशरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों
 अङ्कुशरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रसैं

हसूर्ला हसौः त्रिपुरजननी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती इच्छासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 हसौं बीजमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 कामेश्वर्यादिदेवतात्रयं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 वाग्भवकूटे कामेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 कामराजकूटे वज्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 शक्तिकूटे भगमालिनी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 हसकलरडैं हसकलरडां हसकलरडैं तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै
 शिवा भगवती प्राप्तिरसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा
 भगवती ऐं योनिमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 ओङ्कारपीठदेवता तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वात्मकेन सर्वेश्वरी देवी तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती
 सर्वकामसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती त्रिपुर-
 सुन्दरी त्रिपुरवासिनी त्रिपुराश्रीस्त्रिपुरमालिनी त्रिपुरासिद्धिस्त्रिपुरजननी
 त्रिपुरभैरवी ताभ्यो वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वकाम-
 सिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती हसौं त्रिखण्डमुद्रा
 तस्यै वै नमो नमः ।

ब्रह्मब्रह्मविदित्येतैर्मन्त्रैर्भगवतीं यजेत् ।

इत्याह भगवान् । ततो देवी स्वात्मानं दर्शयति । तस्माद्य
 एतैर्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति । स सर्वं पश्यति । सोऽमृतत्वं च
 गच्छति । य एवं वेद । इति महोपनिषत् ॥

इत्याथर्वणद्वितीयोपनिषत् समाप्ता

कामराजकीलितोद्धारोपनिषत्

अथोवाच कामराजम् । तदुपासनात् कुशलं लभेत् । श्रियं लभेत् ।
 गुर्वी वार्णी लभेत् । सर्वयुवतीनां प्रियो भवेत् । प्रथमं कामस्ततः
 शक्तिस्तदनु तुरीयं द्वावेतौ परैतानि पञ्चाक्षराणि भवन्ति । ततः शून्यं च
 द्वौ दिवाकरहरौ । तदनु गोत्रभृन्माया । एतानि षडक्षराणि भवन्ति ।
 ततश्चन्द्रः प्रजापतिशक्रौ । ततो माया । एतानि चतुरक्षराणि भवन्ति । आद्यं
 बाग्भवं द्वितीयं कामराजं तृतीयं शक्तिबीजं शुक्लं तरुणदिवाकराभं शशिकान्तं
 क्रमेण स्मरेत् । कफारादित्वात्कीलिता । कोटिजपात् सिद्धिर्न जायते । यदा
 मन्मथकलादिर्भवति तदा निष्कीलिता भवेत् । सिद्धिदा भवेत् । सा
 वीर्यवती भवेत् । त्रैलोक्यं वशमानयेत् । पूजनाद्दौर्भाग्यनाशो भवेत् । जपात्
 सिद्धीश्वरो भवेत् । इति शिवम् ।

अथाद्यं शाम्भवं द्वितीयं शाक्तं चेति गुरुमुखात् ज्ञातव्यम् । अन्यथा
 शापमाप्नुयात् । उपासना द्विविधा । शाम्भवं शाक्तं चेति । एवं लोप-
 नाल्लोपा । प्रथमं शंभुचन्द्रौ । तदनु दिवाकरेन्द्रौ । ततः पराबीजं बाग्भवम् ।
 ततः कामराजं शिवचन्द्रकामशम्भुहरयः । पराबीजं शक्तिः । कामपरामध्ये
 देवराजमेतच्छक्तिकूटम् । एतेन पञ्चदशाक्षराणि भवन्ति । शम्भुप्रधानत्वाच्छा-
 म्भवम् । पूर्णोऽहं शिवोऽहमद्वैतरूपोऽहं नित्यानन्दरूपोऽहं इति स्मरेत् ।
 नापि पूजायां व्रतनियमः । सर्वदा जपं चरेत् । विनोदतः कामिनीमध्ये कामि-
 नीर्दृष्ट्वा च सदानन्दरूपो भवेत् । दिव्याङ्गरागैर्देहं भूषयेत् सुगन्धमाल्याम्ब-
 रालङ्काराद्यैः । मांसाद्यैः शुद्धैः सुमधुरैर्भोजयेत् । मपञ्चकेन पूजा कार्या ।
 सदा कौलिको भवेत् । कुलाचारात् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । एकाकी शक्ति-
 युक्तो भवेत् । मादनं भुक्त्वा शक्तिभुग्भवेत् । शक्तिचक्रं पूजयेत् ।

भोगेन मोक्षमाप्नुयात् । शक्तिहर्षोत्पादनाच्छक्तिः प्रीता भवति । इति शिवम् ॥ २ ॥

अथ वकुलैरर्चयेत् । रक्तपुष्पैरर्चयेत् । तदभावे जलैस्तदभावे मानसीं भक्तिमाचरेत् । इति शिवम् ॥ ३ ॥

इत्याथर्वणशाखायां कामराजकीलितोद्धारोपनिषत् समाप्ता

कालिकोपनिषत्

ॐ अथ हैनं ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरूपिणीमाप्नोति । सुभगां त्रिगुणितां मुक्तासुभगां कामरेफेन्द्रिरासमस्तरूपिणीमेतानि त्रिगुणितानि तदनु कूर्च-
बीजं व्योमषष्ठस्वरां बिन्दुमेलनरूपां तद्वयं मायाद्वयं दक्षिणे कालिके चेत्य-
भिमुखगतां तदनु बीजसप्तकमुच्चार्य बृहद्भानुजायामुच्चरेत् । स तु शिवमयो
भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । गतिस्तस्यास्तीति । नान्यस्य गतिरस्तीति ।
स तु वागीश्वरः । स तु नारीश्वरः । स तु देवेश्वरः । स तु सर्वेश्वरः ।
अभिनवजलदसङ्काशा घनस्तनी कुटिलदंष्ट्रा शवासना कालिका ध्येया । त्रिकोणं
पञ्चकोणं नवकोणं पद्मम् । तस्मिन् देवीं सर्वाङ्गेऽभ्यर्च्य तदिदं सर्वाङ्गं ओं
काली कपालिनी कुला कुरुकुला विरोधिनी विप्रचित्ता उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता
नीला घना बलाका मात्रा मुद्राऽमिता चैव पञ्चदशकोणगाः । ब्राह्मी नारायणी
माहेश्वरी कौमारी अपराजिता वाराही नारसिंहिका चेत्यष्टपत्रगाः । षोडशस्व-
भेदेन प्रथमेन मन्त्रविभागः । तन्मूलेनाववाहनं तेनैव पूजनम् । य एवं मन्त्रराजं
नियमेन वा लक्ष्मामर्तयति स पाप्मानं हन्ति । स ब्रह्मत्वं भजति । सः

अमृतत्वं भजति । स आयुरारोग्यमैश्वर्यं भजति । सदा पञ्चमकारेण पूजयेत् । सदा गुरुभक्तो भवेत् । सदा देवभक्तो भवेत् । धर्मिष्ठतां पुष्टिमहतवाचं विप्रा लभन्ते । मन्त्रजापिनो ह्यात्मा विद्याप्रपूरितो भवति । स जीवन्मुक्तो भवति । स सर्वशास्त्रं जानाति । स सर्वपुण्यकारी भवति । स सर्वयज्ञयाजी भवति । राजानो दासतां यान्ति । जप्त्वा स सर्वमेतं मन्तराजं स्वयं शिव एवाहमित्यणिमादिविभूतीनामीश्वरः कालिकां लभेत् ।

आवयोः पात्रभूतः सन् सुकृती त्यक्तकल्मषः ।

जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो यस्मै लब्धा हि दक्षिणा ॥

दशांशं होमयेत्तदनु तर्पयत् । अथ हैके यज्ञान्कामानद्वैतज्ञानादीन-
निरुद्धसरस्वतीति । अथ हैषः कालिकामनुजापी यः सदा शुद्धात्मा
ज्ञानवैराग्ययुक्तः शाम्भवीदीक्षासु रक्तः शाक्तासु । यदि वा ब्रह्मचारी रात्रौ
नमः सर्वदा मधुनाऽऽशक्तो मनसा जपपूजादिनियमवान् । योषित्प्रियकरो
भगोदकेन तर्पणं तेनैव पूजनं कुर्यात् । सर्वदा कालिकारूपमात्मानं विभावयेत् ।
स सर्वदा योषिदासक्तो भवेत् । स सर्वहत्यां तरति तेन मधुदानेन । अथ
पञ्चमकारेण सर्वमायादिविद्यां पशुधनधान्यं सर्वेशत्वं च कवित्वं च । नान्यः
परमः पन्था विद्यते मोक्षाय ज्ञानाय धर्माधर्माय । तत्सर्वं भूतं भव्यं
यत्किञ्चिद्दृश्यमानं स्थावरजङ्गमं तत्सर्वं कालिकातन्त्रे ओतं प्रोतं वेद । य
एवं मनुजापी स पाप्मानं तरति । स भ्रूणहत्यां तरति । सोऽगम्यागमनं
तरति । स सर्वसुखमाप्नोति । स सर्वं जानाति । स सर्वसंन्यासी भवति । स
विरक्तो भवति । स सर्ववेदाध्यायी भवति । स सर्वमन्त्रजापी भवति । स
सर्वशास्त्रवेत्ता भवति । स सर्वज्ञानकारी भवति । स आवयोर्मित्रभूतो
भवति । इत्याह भगवान् शिवः । निर्विकल्पेन मनसा स बन्धो भवति ।

अथ हैनां.

मूलाधारे स्मरेद्विव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम् ।
 शिखा आनीय तस्याग्रेरथ तूर्ध्व व्यवस्थिता ॥
 नीलतोयेदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा ।
 नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ॥
 तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।
 स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट् ॥
 स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ।
 इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

महापातकेभ्यः पूतो भूत्वा सर्वमन्त्रसिद्धिं कृत्वा भैरवो भवेत् । महा-
 कालभैरवोऽस्य ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः (उष्णिक् छन्दः) कालिका देवता ।
 ह्रीं बीजं हूं शक्तिः क्रीं कीलकं अनिरुद्धसरस्वती देवता । कवित्वे पाण्डित्यार्थे
 (धर्मार्थकाममोक्षार्थे) जपे विनियोगः । इत्येवमृषिच्छन्दोदैवतं ज्ञात्वा मन्त्र-
 साफल्यमश्नुते । अथर्वविद्यां प्रथममेकं द्वयं त्रयं वा नामद्वयसंपुटितं कृत्वा
 योजयेत् । गतिस्तस्यास्तीति । नान्यस्य गतिरस्तीति । ॐ सत्यम् ।
 ॐ तत्सत् ।

अथ हैनं गुरुं परितोष्यैनं मन्त्रराजं गृह्णीयात् । मन्त्रराजं गुरुस्तमपि
 शिष्याय सत्कुलीनाय विद्याभक्ताय सुवेषां स्त्रियं स्पृष्ट्वा स्वयं निशायां
 निरुपद्रवः परिपूज्य एकाकी शिवगेहे लक्षं तदर्धं वा जपित्वा दद्यात् । ॐ
 ॐ ॐ सत्यं सत्यं सत्यम् । नान्यप्रकारेण सिद्धिर्भवति । अथाह वै कालि-
 कामनोस्तारामनोस्त्रिपुरामनोः सर्वदुर्गामनोर्वा स्वरूपसिद्धिरेवमिति शिवम् ॥

इत्याद्यवर्णे सौभाग्यकाण्डे कालिकोपनिषत् समाप्ता

कालीमेधादीक्षितोपनिषत्

अथाह वै देवानां पर्त्नी भजते । तस्योपासकोऽन्यां गच्छन् ॐ
 अथैनां मेधादीक्षितरूपिणीं भावयेत् । स शिवो भवेत् । स कालीरूपो
 भवेत् । सोऽयं मेधास्पर्शमणिकालीं दीक्षयेत् । ततश्चिन्तामणिकालीं
 दीक्षयेत् । ततः सिद्धकाल्यधिकारी भवेत् । ततो विद्याराज्ञीं जपेत् ।
 ततः कामकलाकालीं परारूपिणीं जपेत् । ततश्चरणदीक्षारूपिणीं हंसकालीं
 यजेत् । रक्तशुक्लमिश्रनिर्वाणरूपिणीं यजेत् । सर्वनिर्वाणदीक्षितो भवेत् ।
 ततः शाम्भवीदीक्षितो भवेत् । गुह्यकाल्यधिष्ठितो भवेत् । शिवो भवेत् ।
 स परारूपो भवेत् । परात् पररूपो भवेत् । परात् परातीतरूपो भवेत् ।
 चित्परारूपो भवेत् । चित्परात् परारूपो भवेत् । चित्परात् परातीतरूपो
 भवेत् । ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवमहाकालचित्पराम्भारूपो भवेत् । स ब्रह्मत्वं
 गच्छति । मेधादीक्षां लभेत् । मेधादीक्षातः परा दीक्षा न विद्यत इत्याह
 भगवान् शिवः । स्पर्शविद्यया देहशुद्धिर्भवेत् । ततश्चिन्तामणिविद्याधिकारी
 विद्याराज्ञीं लभेत् । विद्याराज्यधिकारी तु षोढां जपेत् । तुर्याषोढाधिकारी
 कामकलां जपेत् । कामकलाधिकारी चरणरूपिणीं जपेत् । हंसदीक्षितो
 भवेत् । चरणाधिकारी षट्कलाम्भवसंपन्नो भवेत् । गुह्यकाल्यधिष्ठितो भवेत् ।
 ततो मेधां चरेत् । जीवको हि भृङ्गत्वं गच्छति । भृङ्गीभूत्वा षट्
 चक्राणि निर्भिन्धात् । ततः परागभुग्भवेत् । परकायप्रवेशवान् वयस्स्थैर्यं
 चरेत् । कामरूपत्वं गच्छति । षष्टिसिद्धीश्वरो भवेदिति शिवप्रोक्तं वेद ॥

इत्याधर्वणे सौभाग्यकाण्डे कालीमेधादीक्षितोपनिषत् समाप्ता

गायत्रीरहस्योपनिषत्

ॐ स्वस्ति सिद्धम् । ॐ नमो ब्रह्मणे । ॐ नमस्कृत्य याज्ञवल्क्यः
ऋषिः स्वयंभुवं परिपृच्छति । हे ब्रह्मन् गायत्र्या उत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि ।
अथातो वसिष्ठः स्वयंभुवं परिपृच्छति । यो ब्रह्मा स ब्रह्मोवाच ।
ब्रह्मज्ञानोत्पत्तेः प्रकृतिं व्याख्यास्यामः । को नाम स्वयंभूः पुरुष इति ।
तेनाङ्गुलीमथ्यमानात् सलिलमभवत् । सलिलात् फेनमभवत् । फेनाद्बुद्बुदम-
भवत् । बुद्बुदादण्डमभवत् । अण्डाद्ब्रह्मभवत् । ब्रह्मणो वायुरभवत् ।
वायोरग्निरभवत् । अग्नेरोङ्कारोऽभवत् । ओङ्काराद्वाहतिरभवत् । व्याहृत्याः
गायत्र्यभवत् । गायत्र्याः सावित्र्यभवत् । सावित्र्याः सरस्वत्यभवत् ।
सरस्वत्याः सर्वे वेदा अभवन् । सर्वेभ्यो वेदेभ्यः सर्वे लोका अभवन् ।
सर्वेभ्यो लोकेभ्यः सर्वे प्राणिनोऽभवन् ।

अथातो गायत्री व्याहृतयश्च प्रवर्तन्ते । का च गायत्री काश्च
व्याहृतयः । किं भूः किं भुवः किं सुवः किं महः किं जनः किं तपः किं
सत्यं किं तत् किं सवितुः किं वरेण्यं किं भर्गः किं देवस्य किं धीमहि
किं धियः किं यः किं नः किं प्रचोदयात् । ॐ भूरिति भुवो लोकः ।
भुव इत्यन्तरिक्षलोकः । स्वरिति स्वर्गलोकः । मह इति महर्लोकः ।
जन इति जनोलोकः । तप इति तपोलोकः । सत्यमिति सत्यलोकः । तदिति
तदसौ तेजोमयं तेजोऽग्निदेवता । सवितुरिति सविता सावित्रमादित्यो वै ।
वरेण्यमित्यत्र प्रजापतिः । भर्ग इत्यापो वै भर्गः । देवस्य इतीन्द्रो
देवो द्योतत इति स इन्द्रस्तस्मात् सर्वपुरुषो नाम रुद्रः । धीमहीत्यन्त-
रात्मा । धिय इत्यन्तरात्मा परः । य इति सदाशिवपुरुषः । नो इत्यस्माकं
स्वधर्मे । प्रचोदयादिति प्रचोदितकाम इमान् लोकान् प्रत्याश्रयते यः परो

धर्म इत्येषा गायत्री । सा च किंगोत्रा कत्यक्षरा कतिपादा । कति कुक्षयः ।
 कानि शीर्षाणि । सांख्यायनगोत्रा सा चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री त्रिपादा
 चतुष्पादा । पुनस्तस्याश्चत्वारः पादाः षट् कुक्षिकाः पञ्च शीर्षाणि भवन्ति ।
 के च पादाः काश्च कुक्षयः कानि शीर्षाणि । ऋग्वेदोऽस्याः प्रथमः पादो
 भवति । यजुर्वेदो द्वितीयः पादः । सामवेदस्तृतीयः पादः । अथर्ववेदश्चतुर्थः
 पादः । पूर्वा दिक् प्रथमा कुक्षिर्भवति । दक्षिणा द्वितीया कुक्षिर्भवति ।
 पश्चिमा तृतीया कुक्षिर्भवति । उत्तरा चतुर्थी कुक्षिर्भवति । ऊर्ध्वं पञ्चमी
 कुक्षिर्भवति । अधः षष्ठी कुक्षिर्भवति । व्याकरणोऽस्याः प्रथमः शीर्षो भवति ।
 शिक्षा द्वितीयः । कल्पस्तृतीयः । निरुक्तश्चतुर्थः । ज्योतिषामयनमिति
 पञ्चमः । का दिक् को वर्णः किमायतनं कः स्वरः किं लक्षणं कान्यक्षर-
 दैवतानि क ऋषयः कानि छन्दांसि काः शक्तयः कानि तत्त्वानि के
 चावयवाः । पूर्वायां भवतु गायत्री । मध्यमायां भवतु सावित्री । पश्चिमायां
 भवतु सरस्वती । रक्ता गायत्री । श्वेता सावित्री । कृष्णा सरस्वती ।
 पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौरायतनानि । अकारोकारमकाररूपोदात्तादिस्वरात्मिका ।
 पूर्वा सन्ध्या हंसवाहिनी ब्राह्मी । मध्यमा वृषभवाहिनी माहेश्वरी । पश्चिमा
 गरुडवाहिनी वैष्णवी । पूर्वाह्नकालिका सन्ध्या गायत्री कुमारी रक्ता
 रक्ताङ्गी रक्तवासिनी रक्तगन्धमाल्यानुलेपनी पाशाङ्कुशाक्षमालाकमण्डलुवर-
 हस्ता हंसारूढा ब्रह्मदैवत्या ऋग्वेदसहिता आदित्यपथगामिनी भूमण्डल-
 वासिनी । मध्याह्नकालिका सन्ध्या सावित्री युवती श्वेताङ्गी श्वेतवासिनी
 श्वेतगन्धमाल्यानुलेपनी त्रिशूलडमरुहस्ता वृषभारूढा रुद्रदैवत्या यजुर्वेद-
 सहिता आदित्यपथगामिनी भुवलोके व्यवस्थिता । सायं सन्ध्या सरस्वती
 वृद्धा कृष्णाङ्गी कृष्णवासिनी कृष्णगन्धमाल्यानुलेपना शङ्खचक्रगदाभयहस्ता
 गरुडारूढा विष्णुदैवत्या सामवेदसहिता आदित्यपथगामिनी स्वर्गलोकेव्यव-

स्थिता । अग्निवायुसूर्यरूपाऽऽहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निरूपा ऋग्यजुःसाम-
रूपा भूर्भुवःस्वरिति व्याहृतिरूपा प्रातर्मध्याह्नतृतीयसवनात्मिका सत्त्व-
रजस्तमोगुणात्मिका जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तरूपा वसुरुद्रादित्यरूपा गायत्री-
लिष्टुब्जगतीरूपा ब्रह्मशङ्करविष्णुरूपेच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपा स्वराद्विराड्व-
षट्ब्रह्मरूपेति । प्रथममाग्नेयं द्वितीयं प्राजापत्यं तृतीयं सौम्यं चतुर्थमीशानं
पञ्चममादित्यं षष्ठं गार्हपत्यं सप्तमं मैत्रमष्टमं भगदैवतं नवममार्यमणं
दशमं सावित्रमेकादशं त्वाष्ट्रं द्वादशं पौष्णं त्रयोदशमैन्द्राग्रं चतुर्दशं वायव्यं
पञ्चदशं वामदेवं षोडशं मैत्रावरुणं सप्तदशं भ्रातृव्यमष्टादशं वैष्णवमेको-
नविंशं वामनं विंशं वैश्वदेवमेकविंशं रौद्रं द्वाविंशं कौबेरं त्रयोविंशमाश्विनं
चतुर्विंशं ब्राह्ममिति प्रत्यक्षरदैवतानि । प्रथमं वासिष्ठं द्वितीयं भारद्वाजं
तृतीयं गार्ग्यं चतुर्थमौपमन्यवं पञ्चमं भार्गवं षष्ठं शाण्डिल्यं सप्तमं लौहितम-
ष्टमं वैष्णवं नवमं शातातपं दशमं सनत्कुमारमेकादशं वेदव्यासं द्वादशं
शुकं त्रयोदशं पाराशर्यं चतुर्दशं पौण्ड्रं पञ्चदशं क्रतुं षोडशं दाक्षं सप्त-
दशं काश्यपमष्टादशमात्रेयमेकोनविंशमगस्त्यं विंशमौद्दालकमेकविंशमाङ्गिरसं
द्वाविंशं नामिकेतुं त्रयोविंशं मौद्गल्यं चतुर्विंशमाङ्गिरसं वैश्वामित्रमिति
प्रत्यक्षराणामृषयो भवन्ति । गायत्रीलिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्तिर्वृहत्युष्णिगादिति-
रिति त्रिरावृत्तेन छन्दांसि प्रतिपाद्यन्ते । प्रह्लादिनी प्रज्ञा विश्वभद्रा
विलासिनी प्रभा शान्ता मा कान्तिः स्पर्शा दुर्गा सरस्वती विरूपा
विशालाक्षी शालिनी व्यापिनी विमला तमोऽपहारिणी सूक्ष्मावयवा पद्मालया
विरजा विश्वरूपा भद्रा कृपा सर्वतोमुखीति चतुर्विंशतिशक्तयो निगद्यन्ते ।
पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशगन्धरसरूपस्पर्शशब्दवाक्यानि पादपायूपस्थत्वक्चक्षुः-
श्रोत्रजिह्वाघ्राणमनोबुद्धयहङ्कारचित्तज्ञानानीति प्रत्यक्षराणां तत्त्वानि प्रतीयन्ते ।
चम्पकातसीकुङ्कुमपिङ्गलेन्द्रनीलाम्ब्रिप्रभोद्यत्सूर्यविद्युत्तारकसरोजगौरमरकतशुक्ल -

कुन्देन्दुशङ्खपाण्डुनेत्रनीलोत्पलचन्दनागुरुकस्तूरीगोरोचनघनसारसन्निभं प्रत्यक्षरमनुस्मृत्य समस्तपातकोपपातकमहापातकागम्यागमनगोहत्याब्रह्महत्याभ्रूणहत्यावीरहत्यापुरुषहत्याऽऽजन्मकृतहत्यास्त्रीहत्यागुरुहत्यापितृहत्याप्राणहत्याचराचरहत्याऽभक्ष्यभक्षणप्रतिग्रहस्वकर्मविच्छेदनस्वाभ्यार्तिहीनकर्मकरणपरधनापहरणशूद्रान्नभोजनशत्रुमारणचण्डालीगमनादिसमस्तपापहरणार्थं संस्मरेत् ।

मूर्धा ब्रह्मा शिखान्तो विष्णुर्ललाटं रुद्रश्चक्षुषी चन्द्रादित्यौ कर्णौ शुक्रवृहस्पती नासापुटे अश्विनौ दन्तोष्ठावुभे सन्ध्ये मुखं मरुतः स्तनौ वस्वादयो हृदयं पर्जन्य उदरमाकाशो नाभिरग्निः कटिरिन्द्राग्नी जघनं प्राजापत्यमूर्ख कैलासमूलं जानुनी विश्वेदेवौ जङ्घे शिशिरः गुल्फानि पृथिवीवनस्पत्यादीनि नखानि महती अस्थीनि नवग्रहा असृक्केतुर्मासमृतुसन्धयः कालद्वयास्फालनं संवत्सरो निमेषोऽहोरात्रमिति वाग्देवी गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ।

य इदं गायत्रीरहस्यमधीते तेन क्रतुसहस्रमिष्टं भवति । य इदं गायत्रीरहस्यमधीते दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातर्मध्याह्नयोः षण्मासकृतानि पापानि नाशयति । सायं प्रातरधीयानो जन्मकृतं पापं नाशयति । य इदं गायत्रीरहस्यं ब्राह्मणः पठेत् तेन गायत्र्याः षष्टिसहस्रलक्षाणि जप्तानि भवन्ति । सर्वान् वेदानधीतो भवति । सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । अपेयपानात् पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । वृषलीगमनात् पूतो भवति । अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति । पङ्क्तिषु सहस्रपानात् पूतो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति । इत्याह भगवान् ब्रह्मा ॥

इति गायत्रीरहस्योपनिषत् समाप्ता

गायत्र्युपनिषत्

ॐ भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराणि । अष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हास्या एतत्स यावदेतेषु लोकेषु तावद्ध जयति । योऽस्या एतदेवं पदं वेद ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति । योऽस्या एतदेवं पदं वेद प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हास्या एतत्स यावदिदं प्राणिति तावद्ध जयति । योऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्या एतदेव तुरीयं दर्शितं पदं परोरजाय एष तपतीति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शितं पदमिति ददर्श इव ह्येष परोरजा इति सर्वमु ह्येष रज उपर्युपरि तपत्येवं ह वा एष श्रिया यशसा तपति । योऽस्या एतदेवं पदं वेद सैषा गायत्री एतस्मिंस्तुरीयं दर्शिते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद्वै सत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातां अहमद्राक्षमहमश्रौषमिति । य एव ब्रूयादहमद्राक्षमिति तस्या एव श्रद्धाया य एतद्वै तत् सत्यं बले प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलं सत्यादौ ज्ञेयं एवं वैषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गायंस्तते प्राणा वै गायस्तान् प्राणांस्तते उद्यद्गायंस्तते तस्माद्गायत्री नाम स यामेवामूं मत्वा हैषैवमास यस्मा इत्याह तस्य प्रमाणं त्रायते तां हैके सावित्री-मनुष्टुभमन्वाहुरनुष्टुभैतद्वाचमनुब्रूम इति न तथा कुर्याद्गायत्रीमेवानु-ब्रूयाद्यदि ह वापि बह्विव प्रतिगृह्णाति । इहैव तद्गायत्र्या एकंचन पदं प्रति य इमांस्त्रीन् लोकान् पूर्णान् प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयात् अथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत् प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्या एतद्वितीयमाप्नुयात् । अथ यावदिदं प्राणिति यस्तावत् प्रतिगृह्णीयात् ।

तस्या उपस्थाना गायत्र्यैकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदा सा न हि पद्यते ।
 यस्ते तुरीयाय पदाय दर्शिताय परोरजसे सावदोमिति समधीयीत वा
 न हैवासमै सकामः समृद्धयते । यस्मा एवमुपतिष्ठते ह मदः प्रापमिति वा
 एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो वुरिलमाश्रितराश्विमुवाच । यत्तु होतर्गायत्रीं
 कथं हलीभूतो वहसीति । मुखं ह्यस्याः ससंभ्रमं विदांचकारेति होवाच ।
 तस्या अग्निरेव मुखं यदिह वापि वह्निमानन्नावभ्यादधाति सर्वमेतत्सन्द-
 हत्येवंविद्यद्यपवह्नीव पापं करोति सर्वमेवैतत्सम्यग्विशुद्धो यतोऽजरोऽमृत-
 स भवतीति ॥

इति गायत्र्युपनिषत् समाप्ता

गुह्यकाल्युपनिषत्

अथर्ववेदमध्ये तु शाखा मुख्यतमा हि षट् ।

स्वयंभुवा याः कथिताः पुत्रायार्थर्वणे पुरा ॥ १ ॥

तासु गुह्योपनिषदस्तिष्ठन्ति वरवर्णिनि ।

नामानि शृणु शाखानां तत्राद्या वारतन्तवी ॥ २ ॥

मौञ्जायनी द्वितीया तु तृतीया तार्णवैन्दवी ।

चतुर्थी शौनकी प्रोक्ता पञ्चमी पैप्पलादिका ॥ ३ ॥

षष्ठी सौमन्तवी ज्ञेया सारात् सारतमा इमाः ।

गुह्योपनिषदो गूढाः सन्ति शाखासु षट्स्वपि ॥ ४ ॥

ता एकीकृत्य सर्वास्तु मयाऽस्यां विनिवेशिताः ।

संहितायां साधकानामुद्धाराय वरानने ॥ ५ ॥

तास्ते वदामि यत् प्रोक्तं ध्यानं कुर्वन्ति देवताः ।
 विराट्ध्यानं हि तज्ज्ञेयं महापातकनाशनम् ॥ ६ ॥
 ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वं हि महत्तत्त्वमहङ्कृतिः ।
 रूपाणि पञ्च तन्मात्राः पुरुषः प्रकृतिर्नव ॥ ७ ॥
 महापातालपादान्तलम्बा तस्या जयं स्मरेत् ।
 ब्रह्माण्डार्धं कपालं हि शिरस्तस्या विभावयेत् ॥ ८ ॥
 देवलोको ललाटं च षट्तिशलक्षयोजनम् ।
 मेरुः सीमन्तदण्डोऽस्या ग्रहरत्नसमाकुलः ॥ ९ ॥
 अन्तर्वीथी नागवीथी भ्रुवावस्याः प्रकीर्तिते ।
 शिवलोकश्च वैकुण्ठलोकः कर्णावुभौ मतौ ॥ १० ॥
 लोहितं तिलकं ध्यायेन्नासा मन्दाकिनी तथा ।
 चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ च पक्ष्माणि किरणास्तथा ॥ ११ ॥
 गण्डौ स्यातां तपोलोकसत्यलोकौ यथाक्रमम् ।
 जनोलोकमहर्लोकौ कपोलौ परिकीर्तितौ ॥ १२ ॥
 स्यातां हिमाद्रिकैलासौ तस्या देव्यास्तु कुण्डले ।
 स्वर्लोकश्च भुवर्लोकौ देव्या ओष्ठाधरौ मतौ ॥ १३ ॥
 दिक्पतीनां ग्रहाणां च लोकाश्चाथ रदावली ।
 गन्धर्वसिद्धसाध्यानां पितृकिन्नररक्षसाम् ॥ १४ ॥
 पिशाचयक्षाप्सरसां मरीचीयायिनां तथा ।
 विद्याधराणामाज्योष्मपाणां सोमैकपायिनाम् ॥ १५ ॥
 सप्तर्षीणां ध्रुवस्यापि लोका ऊर्ध्वरदावली ।
 मुखं च रोदसी ज्ञेयं द्यौर्लोकश्चिबुकं तथा ॥ १६ ॥
 ब्रह्मलोको गलः प्रोक्तो वायवः प्राणरूपिणः ।
 वनस्पतय ओषध्यो लोमानि परिचक्षते ॥ १७ ॥

विद्युद्दृष्टिहोरातं निमेषोन्मेषसंज्ञकम् ।
 विश्वं तु हृदयं प्रोक्तं पृथिवी पाद उच्यते ॥ १८ ॥
 तलं तलातलं चैव पातालं सुतलं तथा ।
 रसातलं नागलोकाः पादाङ्गुल्यः प्रकीर्तिताः ॥ १९ ॥
 वेदा वाचः स्यन्दमाना नदा नद्योऽमिता मताः ।
 कलाः काष्ठा मुहूर्ताश्च ऋतवोऽयनमेव च ॥ २० ॥
 पक्षा मासास्तथा चाब्दाश्चत्वारोऽपि युगाः प्रिये ।
 कफोणिर्मणिबन्धश्च तदूरुकटिबन्धनाः ॥ २१ ॥
 प्रपदाश्च स्फिचश्चैव सर्वाङ्गानि प्रचक्षते ।
 वैश्वानरः कालमृत्युर्जिह्वात्रयमिदं स्मृतम् ॥ २२ ॥
 आत्रहस्तम्बपर्यन्तं तनुमस्याः प्रचक्षते ।
 प्रलयो भोजने कालस्तृप्तिस्तेन च नासिका ॥ २३ ॥
 ज्ञेयः पार्श्वपरीवर्तो महाकल्पान्तरोद्भवः ।
 विराड्रूपस्य ते ध्यानमिति संक्षेपतोऽर्पितम् ॥ २४ ॥
 तस्याः स्वरूपविज्ञानं सपर्यां परिकीर्तिता ।
 तदेव हि श्रुतिप्रोक्तमवधारय पार्वति ॥ २५ ॥
 यथोर्णनाभिः सूत्राणि सृजत्यपि गिलत्यपि ।
 यथा पृथिव्यामोषध्यः संभवन्ति गिलन्त्यपि ॥ २६ ॥
 पुरुषात् केशलोमानि जायन्ते च क्षरन्त्यपि ।
 उत्पद्यन्ते विलीयन्ते तथा तस्यां जगत्यपि ॥ २७ ॥
 ज्वलतः पावकाद्यद्वत् स्फुलिङ्गाः कोटिकोटिशः ।
 निर्गत्य च विनश्यन्ति विश्वं तस्यास्तथा प्रिये ॥ २८ ॥
 ऋचो यजूंषि सामानि दीक्षा यज्ञाः सदक्षिणाः ।
 अध्वर्युर्यजमानश्च भुवनानि चतुर्दश ॥ २९ ॥

ब्रह्मविष्ण्वादिका देवा मनुष्याः पशवो यतः ।
 प्राणापानौ ब्रीहयश्च सत्यं श्रद्धा विधिस्तपः ॥ ३० ॥
 समुद्रा गिरयो नद्यः सर्वे स्थावरजङ्गमाः ।
 विसृज्यमानि सर्गादौ त्वं प्रकाशयसे ततः ॥ ३१ ॥
 जङ्गमानि विधायान्वे विशत्यप्रतिभूतकम् ।
 नवद्वारं पुरं कृत्वा गवाक्षाणीन्द्रियाण्यपि ॥ ३२ ॥
 सा पश्यत्यत्ति वहति स्पृशति क्रीडतीच्छति ।
 शृणोति जिघ्रति तथा रमते विरमत्यपि ॥ ३३ ॥
 तथा मुक्तं पुरं तद्धि मृतमित्यभिधीयते ॥ ३४ ॥
 ये तपः क्षीणदोषास्ते नैव पश्यन्ति भाविताम् ।
 ज्योतिर्मयीं शरीरिज्न्तर्ध्यायमानां महात्मभिः ॥ ३५ ॥
 बृहच्च तद्विव्यमचिन्त्यरूपं
 सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति ।
 दूरात् सुदूरे तदिहास्ति किञ्चित्
 पश्येत्त्वहैतन्निहितं गुहायाम् ॥ ३६ ॥
 न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
 नान्यैर्योगैर्न हि सा कर्मणा वा ।
 ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः
 ततस्तु तां पश्यति निष्कलां च ॥ ३७ ॥
 यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
 गच्छन्त्यस्तं नामरूपे विहाय ।
 तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः
 परात् परां जगदम्बामुपैति ॥ ३८ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥ ३९ ॥

सैवैतत् ॥

एषैवालम्बनं श्रेष्ठं सैषैवालम्बनं परम् ।

एषैवालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४० ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था ह्यर्थेभ्यश्च परं मनः ।

मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ ४१ ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।

पुरुषात्तु परा देवी सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ४२ ॥

यथोदकं गिरौ सृष्टं समुद्रेषु विधावति ।

एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तामेवानुविधावति ॥ ४३ ॥

एका गुह्या सर्वभूतान्तरात्मा

एकं रूपं बहुधा या करोति ।

तामात्मस्थां येऽनुपश्यन्ति धीराः

तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ ४४ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।

तामेव भान्तीमनुभाति सर्वं

तस्या भासा सर्वमिदं विभाति ॥ ४५ ॥

यस्याः परं नापरमस्ति किञ्चित्

यस्या नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ।

वृक्ष इव स्तब्धा दिवि तिष्ठत्येका

यदन्तः पूर्णामवगत्य पूर्णः ॥ ४६ ॥

सर्वाननशिरोग्रीवा सर्वभूतगुहाशया ।
 सर्वत्रस्था भगवती तस्मात् सर्वगता शिवा ॥ ४७ ॥
 सर्वतः पाणिपादान्ता सर्वतोऽक्षिशिरोमुखा ।
 सर्वतः श्रुतिमत्येषा सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ४८ ॥
 सर्वेन्द्रियगुणाभासा सर्वेन्द्रियविवर्जिता ।
 सर्वेषां प्रभुरीशानी सर्वेषां शरणं सुहृत् ॥ ४९ ॥
 नवद्वारे पुरे देवी हंसी लीलायतां बहिः ।
 ध्येया सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ ५० ॥
 अपाणिपादा जननी ग्रहीत्री

पश्यत्यचक्षुः सा शृणोत्यकर्णा ।
 सा वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्तु वेत्ता
 तामाहुरर्घ्यां महतीं महीयसीम् ॥ ५१ ॥
 सा चैवाग्निः सा च सूर्यः सा वायुः सा च चन्द्रमाः ।
 सा चैव शुक्रः सा ब्रह्म सा चापः सा प्रजापतिः ।
 सा चैव स्त्री सा च पुमान् सा कुमारः कुमारिका ॥ ५२ ॥
 ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्

यस्यां देवा अधिरुद्रा निषेदुः ।
 यस्तां न वेद किमृचा करिष्यति
 ये तां विदुस्त इमे समासते ॥ ५३ ॥
 छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि
 भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।

सर्वं देवी सृजते विश्वमेतत्
 तस्याश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥ ५४ ॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् प्रभुं तस्या महेश्वरीम् ।
 अस्या अवयवैः सूक्ष्मैर्व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ ५५ ॥
 या देवानां प्रभवा चोद्भवा च
 विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा ।
 हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
 सा नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ५६ ॥
 सूक्ष्मातिसूक्ष्मं सलिलस्य मध्ये
 विश्वस्य स्रष्टीमनेकाननाख्याम् ।
 विश्वस्य चैकां परिवेष्टयित्रीं
 ज्ञात्वा गुह्यां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ५७ ॥
 सा ह्येव काले भुवनस्य गोप्त्री
 विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा ।
 यस्यां मुक्ता ब्रह्मर्षयोऽपि देवाः
 ज्ञात्वा तां मृत्युपाशाञ्छिनत्ति ॥ ५८ ॥
 घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
 ज्ञात्वा कार्त्तिकं सर्वभूतेषु गूढाम् ।
 कल्पान्ते वै सर्वसंहारकर्त्री
 ज्ञात्वा गुह्यां मुच्यते सर्वपापैः ॥ ५९ ॥
 एषा देवी विश्वयोनिर्महात्मा
 सदा जनानां हृदि सन्निविष्टा ।
 हृदा मनीषा मनसाभिवल्लप्ता
 ये तां विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ६० ॥

यदा तमस्तत्र दिवा न रात्रिः

न सन्न चासद्भगवत्येव गुह्या ।

तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं

प्रज्ञा च तस्याः प्रसृता परा सा ॥ ६१ ॥

नैनामूर्ध्वं न तिर्यक् च न मध्यं परिजग्रभत् ।

न तस्याः प्रतिमाभिश्च तस्या नाम महद्यशः ॥ ६२ ॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्याः

न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनाम् ।

हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तां

य एनां विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ६३ ॥

भूयश्च सृष्ट्वा त्रिदशानथेशी

सर्वाधिपत्यं कुरुते भवानी ।

सर्वा दिशश्चोर्ध्वमधश्च तिर्यक्

प्रकाशयन्ती भ्राजते गुह्यकाली ॥ ६४ ॥

नैव स्त्री न पुमानेषा नैव चेयं नपुंसका ।

यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेनैव युज्यते ॥ ६५ ॥

धर्मावहां पापनुदां भगोर्शी

ज्ञात्वात्मस्थाममृतां विश्वमातरम् ।

तामीश्वराणां परमां महेश्वरीं

तां देवतानां परदेवतां च ।

पतिं पतीनां परमां पुरस्तात्

विद्यावतां गुह्यकालीं मनीषाम् ॥ ६६ ॥

तस्या न कार्यं करणं च विद्यते
 न तत्समा चाप्यधिका च दृश्यते ।
 परास्याः शक्तिर्विविधैव श्रूयते
 स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ ६७ ॥
 कश्चिन्न तस्याः पतिरस्ति लोके
 न चेशिता नैव तस्याश्च लिङ्गम् ।
 सा कारणं कारणकारणाधिपा
 नास्याश्च कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ ६८ ॥
 एका देवी सर्वभूतेषु गूढा
 व्याप्नोत्येतत् सर्वभूतान्तरस्था ।
 कर्माध्यक्षा सर्वभूताधिवासा
 साक्षिण्येषा केवला निर्गुणा च ॥ ६९ ॥
 वशिन्येका निष्क्रियाणां बहूनां
 एकं बीजं बहुधा या करोति ।
 नानारूपा दशवक्त्रं विधत्ते
 नानारूपान् या च बाहून् विभर्ति ॥ ७० ॥
 नित्या नित्यानां चेतना चेतनानां
 एका बहूनां विदधाति कामान् ।
 तत्कारणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यं
 ज्ञात्वा देवीं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ७१ ॥
 या वै विष्णुं पालने संनियुङ्क्ते
 रुद्रं देवं संहृतौ चापि गुह्या ।
 तां वै देवीमात्मबुद्धिप्रकाशां
 मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ ७२ ॥

निष्कलां निष्क्रियां शान्तां निरवद्यां निरञ्जनाम् ।

बह्वाननकरां देवीं गुह्यामेकां समाश्रये ॥ ७३ ॥

इयं हि गुह्योपनिषत् सुगूढा

यस्या ब्रह्मा देवता विश्वयोनिः ।

एतां जपंश्चान्वहं भक्तियुक्तः

सत्यं सत्यं ह्यमृतः संवभूव ॥ ७४ ॥

वेदवेदान्तयोर्गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् ।

नाप्रशान्ताय दातव्यं नाशिष्याय च वै पुनः ॥ ७५ ॥

यस्य देव्यां परा भक्तिर्यथा देव्यां तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ ७६ ॥

महाकाल उवाच —

गुह्योपनिषदित्येषा गोप्यात् गोप्यतरा सदा ।

चतुर्भ्यश्चापि वेदेभ्य एकीकृत्यात्र योजिता ॥ ७७ ॥

उपदिष्टा च सर्गादौ सर्वानिव दिवौकसः ।

एवंविधं च यद्वचनमेवंरूपं च कीर्तितम् ॥ ७८ ॥

सा सपर्यां परिज्ञेया विधानमधुना शृणु ।

सोऽहमस्मीति प्रथमं सोऽहमस्मि द्वितीयकम् ॥ ७९ ॥

तदस्म्यहं तृतीयं च महावाक्यत्रयं भवेत् ।

आद्यान्येतानि वाक्यानि छन्दांसि परिचक्षते ॥ ८० ॥

देवता गुह्यकाली च रजःसत्त्वतमोगुणाः ।

सर्वेषां प्रणवो बीजं हंसः शक्तिः प्रकीर्तिता ॥ ८१ ॥

मकारश्चाप्यकारश्च ह्युकारश्चेति कीलकम् ।

एभिर्वाक्यत्रयैः सर्वं कर्म प्रोतं विधानतः ॥ ८२ ॥

अनुक्षणं जपश्चैव निश्चयः परिकीर्तितः ।
 द्वितीयोपासकानां हि परिपाटीयमीरिता ॥ ८३ ॥
 एवं चाप्यातुरो यस्तु मनुष्यो भक्तिभावितः ।
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यः कैवल्यायोपकल्पते ।
 सर्वाभिः सिद्धिभिस्तस्य किं कार्यं कमलानने ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाकालसंहितायां गुह्यकाल्युपनिषत् समाप्ता

गुह्यषोढान्यासोपनिषत्

अथ गुह्यां न्यसेत् । शिवो भवेत् । शक्तिरूपो भवेत् । विद्याराज्ञीन्या-
 समेवं चरेत् । न जपो न पूजा न साधनं न कालनियमो न दिवा न रात्रिः ।
 सर्वकालं न्यसेत् । शक्तियुक्तो भवेत् । यथाधिकारवान् न्यसेत् । पूर्णदीक्षां
 लभेत् । षोढारूपो भवेत् । चिन्तामणिर्भवेत् । क्रीं मातृस्थाने न्यसेत् ।
 परात् परतरो भवेत् । शिवो भवेदित्येकः । अथ ताराद्वयपुटितां मातृकां
 मातृकापुटितां तां मातृकास्थाने न्यसेत् । परातीतारूपो भवेदिति द्वितीयः ।
 अथ शक्तिकाद्वयपुटितां मातृकां मातृकापुटितां तां न्यसेत् । तुर्यारूपो
 भवेत् । तृतीयकलारूपो भवेत् । कालसंकलनात् काली । सहेलं सलीलं वा
 स्मरणाद्वरदानेषु चतुरा । तेनेयं दक्षिणा । संबोधनद्वयपुटितां मातृकां
 मातृकापुटितं नामद्वयं लिपिस्थाने न्यसेत् । तुर्यात् परारूपो भवेत् । चतुर्थी-
 कलारूपो भवेत् । लोकपालसंवादिनी चतुर्थी । अथ पञ्चमीं कलां न्यसेत् ।
 पञ्चमीकलारूपो भवेत् । सुभगात्रयं कूर्चवह्निललनां वहेल्लिकोणदैवतस्य

लालनाच्छ्रीकण्ठरूपस्तुर्या परातीता । एतत्पुटितमातृकापुटितमेतन्मन्त्रं मातृ-
कास्थाने न्यसेदिति पञ्चमी । शिवत्वं गच्छति । स सर्वरूपो भवेत् ।
अथ षष्ठी कलां न्यसेत् । पूर्णा विद्याराज्ञी लिपिस्थाने न्यसेद्व्यापयेत् ।
स शिवो भवेत् । स सर्वज्ञत्वं गच्छति । स कविर्भवेत् । स सन्न्यासी
भवेत् । देवो ह वै भवेत् । विश्वरूपो भवेत् । अयुतं न्यसेत् । ऋषिच्छन्दादि
पूर्ववद्भवेत् । ब्रह्माण्डगोलकेऽपि या जगतीतले तां सर्वां भुनक्ति । यस्याः
स्मरणात् सिद्धो निदेशवर्ती च भवेत् तां न्यसेत् । न्यसनं न्यासः । सम्यक्
न्यासः संन्यासः । न तु मुण्डितमुण्डः । तस्य देवादयो नमस्यन्तीति प्रोतं
वेद । ॐ शिवम् ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे गुह्यषोडान्यासोपनिषत् समाप्ता

पीताम्बरोपनिषत्

ॐ अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे सुभगां ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणीमाप्नोति । ब्रह्मास्त्रां
महाविद्यां शाम्भवीं सर्वस्तम्भकरीं सिद्धां चतुर्भुजां दक्षाभ्यां कराभ्यां
मुद्गरपाशौ वामाभ्यां शत्रुजिह्वावज्रे दधानां पीतवाससं पीतालङ्कारसंपन्नां
दृढीभूतपीनोन्नतपयोधरयुग्माब्द्यां तप्तकार्तस्वरकुण्डलद्वयविराजितमुखाम्भोजां
ललाटपट्टोल्लसत्पीतचन्द्रार्धमनुविभ्रतीमुद्यद्दिवाकरोद्योतां स्वर्णसिंहासनमध्य-
कमलसंस्थां धिया संचिन्त्य तदुपरि त्रिकोणषट्कोणवसुपत्रवृत्तान्तः षोडश-
दलकमलोपरि भूविम्बत्रयमनुसंधाय तत्राद्योन्यन्तरे देवीमाहूय ध्यायेत् ।
योनिं जगद्योनिं समायमुच्चार्य शिवान्ते भूमाग्रबिन्दुमिन्दुखण्डमग्निबीजं
ततो वरुणाङ्गुणार्णमत्रियुतं स्थिरामुखि इति सम्बोध्य सर्वदुष्टानामिदं

चाभाष्य वाचमिति मुखमिति पदमिति स्तम्भयेति बोच्चार्य जिह्वां
 वैशारदीं कीलयेति बुद्धिं विनाशयेति प्रोच्चार्य भूमायां वेदाद्यं ततो
 यज्ञभूगुहायां योजयेत् । स महास्तम्भेश्वरः सर्वेश्वरः । स सेनास्तम्भं
 करोति । किं बहुना विवस्वद्धृतिस्तम्भकर्ता सर्ववातस्तम्भकर्तेति । किं
 दिवाकर्षयति । स सर्वविद्येश्वरः सर्वमन्त्रेश्वरो भूत्वा पूजाया आवर्तनं
 त्रैलोक्यस्तम्भिन्याः कुर्यात् । अङ्गमाद्यं द्वारतो गणेशं वटुकं योगिनीं क्षेत्राधीशं
 च पूर्वादिकमभ्यर्च्य गुरुपङ्क्तिमीशासुरान्तमन्तः प्राच्यादौ क्रमानुगता
 बगला स्तम्भिनी जृम्भिणी मोहिनी वश्या अचला चला दुर्धरा अकल्मषा
 आधारा कल्पना कालकर्षिणी भ्रमरिका मदगमना भोगा योगिका एता ब्रह्म-
 दलानुगताः पूज्याः । ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंही
 चामुण्डा महालक्ष्मीश्च । षड्योनिगर्भाता डाकिनी राकिनी लाकिनी काकिनी
 शाकिनी हाकिनी वेद्याद्यस्थिरमायाद्याः समभ्यर्च्य शक्राग्रियमनिर्ऋतिवरुण-
 वायव्यधनदेशानप्रजापतिनागेशाः परिवाराभिमताः स्थिरादिवेदाद्याः सवाहनाः
 सदस्त्रका बाह्यतोऽभ्यर्च्य तां योनिं रतिप्रीतिमनोभवा एताः सर्वाः
 समाः पीतांशुका ध्येयाः । तदन्तमूलायां बलादिषोडशानुगताः पूज्याः
 नीराजनैः । स हैश्वर्ययुक्तो भवति । य एनां ध्यायति स वाग्मी भवति ।
 सोऽमृतमश्नुते । सर्वसिद्धिकर्ता भवति । सृष्टिस्थितिसंहारकर्ता भवति ।
 स सर्वेश्वरो भवति । स तु ऋद्धीश्वरो भवति । स शाक्तः स वैष्णवः
 स गणपः स शैवः । स जीवन्मुक्तो भवति । स संन्यासी भवति । न्यसनं
 न्यासः । सम्यङ्न्यासः संन्यासः । न तु मुण्डितमुण्डः । षट्त्रिंशदस्त्रेश्वरो
 भवेत् सौभाग्यार्चनेनेति प्रोतं वेद । ॐ शिवम् ॥

इति पीताम्बरोपनिषत् समाप्ता

राजश्यामलारहस्योपनिषत्

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ रत्नसानुशिखरेष्वासीनं श्रीराजश्यामलारहस्योपनिषद्वेत्तारं मतङ्ग-
ऋषिं गुरुं कूचिमारः प्रोवाच । मतङ्ग भगवन् गुरो राजश्यामलारहस्योपनिषदं
मेऽनुब्रूहि । मतङ्गभगवान् कूचिमारं स होवाच । ते राजश्यामलारहस्यो-
पनिषदमुपदिशामि ।

अथातः श्रीराजश्यामलारहस्योपनिषदं व्याख्यास्यामः । मन्त्रजपाधि-
करणन्यासाधिकरणस्तोत्राधिकरणपूजाधिकरणमैथुनाधिकरणैः पञ्चभिर्ब्राह्मणो
भोगमोक्षमाप्नोति । गुरोरनुज्ञया श्रीराजश्यामलामन्त्रं नित्यं सहस्रसङ्ख्यया
त्रिशतेन वाऽष्टाविंशदुत्तरशतेन वा जप्त्वा मन्त्रसिद्धिर्भवति । शुक्रवारे
भार्याजगन्मोहनचक्रे त्रिशतं मन्त्रजपेन मन्त्रसिद्धिः । पुरश्चरणसिद्धिर्भवति ।
नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवताशरीरी भवति । नवाशीतिन्यासानां
न्यसनेन सर्वदेवैर्नमस्कृतो भवति । नवाशीतिन्यासानां शरीरे न्यसनेन
गन्धर्वकन्याभिः पूजितो भवति । नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवस्त्री-
भोगमाप्नोति । रम्भासंभोगमाप्नोति । नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवता-
रूपमाप्नोति । देवताशरीरी भूत्वा विमानवान् भवति । विमानमारुह्य
स्वर्गं गच्छति । स्वर्गं प्राप्य तद्भोगमाप्नोति । जगन्मोहनचक्रे पाटलकुसुमैः
सहस्रसङ्ख्यया पूजिता श्रीराजश्यामला कामितार्थप्रदा मङ्गलप्रदा भवति ।
वर्षर्तौ श्रावणे मासि सर्वरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचक्रे चम्पककुसुमैः सहस्र-
सङ्ख्यया पूजिता श्रीराजश्यामलाऽऽरोग्यप्रदा भवति । तत्र शुक्रवारे पूजिता

महालक्ष्मीप्रदा भवति । शुक्रवारयुतायां पौर्णमास्यां भार्याजगन्मोहनचक्रे शतसङ्ख्यया श्रीराजश्यामलाम्बां पूजयन् देहान्तरे रम्भासंभोगमश्नुते । भाद्रपदे मासि महालक्ष्मीव्रतदिनेषु भार्याजगन्मोहनचक्रे श्रीराजश्यामलाम्बां जाजीकुसुमैः पूजयन् मानवो महदैश्वर्यमाप्नोति । शरत्काले सर्वरात्रिषु भार्या-जगन्मोहनचक्रे नीलोत्पलैः सहस्रसङ्ख्यया श्यामलां पूजयन् महाभोगमश्नुते । शुक्रवारयुतायां पौर्णमास्यां भार्याजगन्मोहनचक्रे श्रीराजश्यामलां पूजयन् कल्हारैः शचीभोगमश्नुते । हेमन्तकाले सर्वरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचक्रे जवन्तीकुसुमैः सहस्रसङ्ख्यया पूजयन् वरुणदेवेन कनकच्छत्री भवति । मार्गशीर्षे पौर्णमास्यां भार्याजगन्मोहनचक्रे कुसुम्भपुष्पैः पूजयन् मानवो देवेन्द्रैश्वर्यमाप्नोति । माघ्यां शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचक्रे द्वन्द्वमल्लिकाकुङ्कुमैः सहस्रसङ्ख्यया पूजयन् मानवो राजस्त्रीसंभोगमाप्नोति । सर्वदा पुष्पिण्यां भार्यायां जगन्मोहनचक्रे वसन्तपुष्पैः पूजयन् मानवो देवतात्वमश्नुते । चतुर्थ्यां शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचक्रे देवतां श्यामलां जपन् परशिवत्वमाप्नोति । श्रीराजश्यामलाम्बायाः पञ्चदशस्तोत्राणां पारायणेन देवतासन्तुष्टिर्भवति । मङ्गलप्रदा राजवशंकरी च भवति । देवता-सान्निध्यमाप्नोति । सन्निधानेन सर्वनिवृत्तिर्भवति । सर्वमङ्गलमाप्नोति । सर्वदेवनमस्कृतो भवति । सर्वे राजानो वश्या भवन्ति । रम्भादिभिः पूजितो भवति । स्वर्गभोगमाप्नोति । गुरोरनुज्ञया शुक्रवारे दिवा रात्रौ च चम्पकतैलाद्यैः कृतस्नातां सर्वालङ्कारभूषितां शुभ्रवस्त्रधरां श्रीचन्दनविलिप्ताङ्गीं कस्तूरीतिलकोपेतां कुङ्कुमलिसकुचभारां पुष्पदामयुक्तधम्मिल्लां ताम्बूलपूरितमुखीं स्वेदविन्दूलसन्मुखीं बिम्बोष्ठीं कुन्दरदनां कम्बुकण्ठीं मञ्जुहासां यौवनोन्मत्तां कञ्जलोचनां पृथुनितम्बां राजरम्भोरं संपूर्णचन्द्रवदनां संभोगेच्छां शुक्रवार्णीं सङ्गीतरसिकां कुरवकरसाञ्चितपाणिपादां वशवर्तिनीं भार्यां पुष्पशय्या-

यामुत्तानशायिनीं कृत्वा दर्पणवत्तिर्मलं जगन्मोहनचक्रं गन्धद्रव्येण धूपदीपैश्च
परिमलीकृतं कुङ्कुममिलितैर्मल्लिकाकुङ्कुमलैः शरसङ्ख्यया पूजयन् ब्राह्मणो
देवभोगमाप्नोति । वसन्तनवरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचक्रे मल्लिकाकुङ्कुमलैः
सहस्रनामभिः रहस्यनामभिश्च पूजिता राजश्यामला राजवशङ्करी भवति ।
शुक्रवासरयुक्तायां सप्तम्यां रात्रौ भार्याया जगन्मोहनचक्रे प्रथमयामे कल्हार-
पुष्पैः सहस्रनामभिर्देवतां पूजयन् देवतासालोक्यमाप्नोति । तस्यामेव
द्वितीययामे भार्याजगन्मोहनचक्रे पारिजातपुष्पैः सहस्रनामभिः पूजयन्
देवतासामीप्यमाप्नोति । तस्यामेव तृतीययामे भार्याजगन्मोहनचक्रे
मन्दारपुष्पैः सहस्रनामभिः पूजयन् देवतासारूप्यमाप्नोति । तस्यामेव
चतुर्थयामे जगन्मोहनचक्रे चम्पकपुष्पैः सहस्रनामभिः पूजयन् देवता-
सायुज्यमाप्नोति । सर्वरात्रिषु जगन्मोहनचक्रे मल्लिकाकुङ्कुमलैः पूजिता श्यामला
कामितार्थप्रदा भवति । ग्रीष्मकाले सर्वरात्रिषु श्रीचन्द्रनविलिप्तभार्याजगन्मो-
हनचक्रं पूजयन् सर्वसिद्धिमाप्नोति । दूर्वाभिः पूजयन् महदायुष्यमश्नुते ।
अष्टम्यां शुक्रवासरयुक्तायां रात्रौ जगन्मोहनचक्रे राजश्यामलाम्बां
श्रीचन्दनेन पूजयन् मानवो गन्धलिप्तो जगन्मोहको भवति । महानवम्यां
शुक्रवासरयुक्तायां रात्रौ जगन्मोहनचक्रे कुङ्कुमाक्षतैर्देवतां पूजयित्वा पूजि-
ताक्षतान् राज्ञे निवेदयेत् । राजा दासभावमाप्नोति । त्रयोदश्यां शुक्रवास-
रयुक्तायां रात्रौ भार्याजगन्मोहनचक्रं पूजयन् मानवः कामसुन्दरो भवति ।
चन्द्रदर्शनयुक्तायां द्वितीयायां शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचक्रे राजश्या-
मलाम्बां श्वेतगन्धाक्षतैः श्वेतपुष्पैश्च पूजयन् साधको देहान्ते राजा भवति ।
सर्वभोगप्रदा सर्वसौभाग्यप्रदा दीर्घायुष्यप्रदा महायोगप्रदा महामङ्गलप्रदा
काम्यप्रदा श्रीराजश्यामला देवेन्द्रभोगप्रदा भवति । सर्वकाम्यरहस्यपूजान्ते
मैथुनं देवताप्रीतिकरं भवति । मोक्षप्रदं भवति । स एव भोगापवर्गः ।

मुर्वनुज्ञया गुप्तः क्षपणको मुक्तो भवति । एवं कान्तायाः पूजिता स्वर्णचक्रे
श्यामला मङ्गलप्रदा भवति । द्रोहिणां नोपदेशः । क्षपणकानां पञ्चाधि-
कश्यैः परो मोक्षो नान्यथेति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति राजश्यामलारहस्योपनिषत् समाप्ता

वनदुर्गोपनिषत्

ॐ अस्य श्रीवनदुर्गामहामन्त्रस्य किरातरूपधर ईश्वर ऋषिः ।
अनुष्टुप् छन्दः । अन्तर्यामी नारायण ईश्वरो वनदुर्गा गायत्री देवता ।
दुं बीजम् । स्वाहा शक्तिः । क्लीं कीलकम् । मम वनदुर्गाप्रसादसिद्धयर्थे
धर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः । मूलेन व्यापकत्रयं कुर्यात् । ह्रीं इति
व्यापकत्रयम् । ॐ हंसिनी हां अङ्गुष्ठाभ्यां हृदि । ॐ शिखिनी ह्रीं
तर्जनीभ्यां शिरसि । ॐ चक्रिणी हूं मध्यमाभ्यां शिखायाम् । ॐ त्रिशूल-
धारिणी ह्रौं अनामिकाभ्यां कवचम् । ॐ पद्मिनी ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां
नेत्रयोः । ॐ गदिनी हः करतलकरपृष्ठाभ्यामस्त्रम् । ॐ भूर्भुवः स्वरोमिति
दिश्वन्धः । अथ ध्यानम्—

अरिशङ्खकृपाणखेटबाणान् सधनुश्शूलकतर्जनीर्दधानाम् ।

भज तां महिषोत्तमाङ्गसंस्थां नवदूर्वासदृशीं श्रियेऽस्तु दुर्गा ॥१॥

हेमप्रख्यामिन्दुखण्डान्तमौलिं शङ्खारिष्ठाभीतिहस्तां त्रिनेत्राम् ।

हेमाब्जस्थां पीतवस्त्रां प्रसन्नां देवीं दुर्गां दिव्यरूपां नमामि ॥२॥

उद्यद्वास्वत्समाभां विधृतनवजपामिन्दुखण्डावबद्धां

ज्योतिर्मौलिं त्रिनेत्रां विविधमणिलसत्कुण्डलां पद्मकाञ्चीम् ।

हारग्रैवेयभूषां मणिगुणवलयार्धैर्विचित्राम्बराढ्यां

अम्बां पाशाङ्कुशाढ्यामभयवरकरां मञ्जुकान्तां नमामि ॥

सिद्धलक्ष्मी राजलक्ष्मीर्जयलक्ष्मीः सरस्वती ।

श्रीलक्ष्मीर्वरलक्ष्मीश्च प्रसन्ना मम सर्वदा ॥ ४ ॥

मायाकुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी

मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।

शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिणयना वाग्वादिनी भैरवी

ह्रीङ्कारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥ ५ ॥

सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिणयनां सौदामिनीसन्निभां

शङ्खं चक्रवराभयानि दधतीमिन्दोः कलां विभ्रतीम् ।

ग्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरामाखण्डलाद्यैः स्तुतां

ध्यायेद्विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीं पार्श्वस्थपञ्चाननाम् ॥

सिंहारूढां श्यामकान्तिं शङ्खचक्रधरां हृदा ।

दुर्गां देवीं तथा ध्यायेच्छरचापौ च विभ्रतीम् ॥ ७ ॥

मनुः—हास्वा यमश यमश तिवगभ न्मेत वा क्यंशमक्यश दिय

तंस्थिपमुस मे यंभ षिपिस्व किं पिरुपु छत्तिउ ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ ॥

ॐ ह्रीं महाभीषणे करालवदने विन्ध्यवासिनि ह्रां ह्रीं हूं हैं हौं हः ॥

नादयक्षयोगिनीपरिवृते दुष्टग्रहनाशिनि हुं फट् स्वाहा । जम्भिनि मोहिनि

स्तम्भिनि पूर्वद्वारं बन्धय बन्धय । दं अशुं अग्निद्वारं बन्धय बन्धय । द द द

ओं यमद्वारं बन्धय बन्धय । खं ध्यं निर्ऋतिद्वारं बन्धय बन्धय । लं ल्लो

वरुणद्वारं बन्धय बन्धय । यं श्लीं वायुद्वारं बन्धय बन्धय । क्लीं ग्लो

कुबेरद्वारं बन्धय बन्धय । ओं हं ई ईशानद्वारं बन्धय बन्धय । ॐ हं कं
 खं ऊर्ध्वद्वारं बन्धय बन्धय । ग्लौं प्रौ पातालद्वारं बन्धय बन्धय । ई ई
 अधोद्वारं बन्धय बन्धय । सर्वग्रहान् बन्धय बन्धय । सर्पराजचोरदुष्ट-
 मृगादिसकलभयं बन्धय बन्धय । परप्रयोगभूतप्रेतपिशाचभैरवदुर्गाहनुम-
 द्गणेश्वरादिसकलकिल्बिषं बन्धय बन्धय । भञ्जय भञ्जय । अमुकं मेह-
 स्तम्भनं वाकायसर्वाङ्गं बन्धय बन्धय । सर्वक्षुद्रोपद्रवं छिन्धि छिन्धि ।
 रे रे घे घे हुं फट् स्वाहा । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं सौः ॐ नमो भगवति
 माहेश्वरि अन्नपूर्णेश्वरि मां पालय पालय स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः ।
 पूर्वदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं
 क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । आग्नेयदिशं
 चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं
 सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । याम्यदिशं चोराञ्छ-
 त्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार
 हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । निर्ऋतिदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय
 बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट्
 स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । वरुणदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय ।
 ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा ।
 सं सहस्रबाहवे नमः । वायव्यदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों
 त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे
 नमः । कुबेरदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं
 ह्रीं क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः ।
 ईशानदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं
 क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । आकाश-

दिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं
क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । पाताल-
दिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं
क्रों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । अवान्त-
रदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लं आं ह्रीं श्रीं हुं
सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं गग
गल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं
क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क
ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों
सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं यदन्ति यच्च दूरके भयं
विन्दति मामिह । पवमान वितज्जहि । यदुत्थितं भगवति तत्सर्वं शमय
शमय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं
ह स क ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं
ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क
ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों
सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क
ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों
सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिताऽत्यग्निः ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गं ग ग ग ल ह्रीं ऐं क ए ई ल ह्रीं क्लीं ह स क
ह ल ह्रीं सौः स क ल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों
सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । ॐ नमो भस्माङ्गरागाय उग्रतेजसे हन हन
दह दह पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय हल हल भञ्जय भञ्जय शूलिनि
जय जय तेजसा पूर्वा सिद्धिं कुरु कुरु समुद्रं पूर्वादिष्टं शोषय
शोषय स्तम्भय स्तम्भय परमन्त्रपरयन्त्रपरतन्त्रपरभूतप्रकटिनि छिन्धि छिन्धि
ह्रीं फट् स्वाहा ।

हेतुकं पूर्वपीठे तु ह्याग्नेय्यां त्रिपुरान्तकम् ।

दक्षिणे चाग्निवेतालं नैर्ऋत्यां यमजिह्वकम् ॥

कालाख्यं वारुणे पीठे वायव्यां च करालिनम् ।

उत्तरे ह्येकपादं च त्वीशान्यां भीमरूपिणम् ॥

आकाशे तु निरालम्बं पाताले बडबानलम् ।

यश्चा ग्रामे यथा क्षेत्रे रक्षेन्मां वटुकस्तथा ॥

ॐ ह्रीं वटुकाय आपदुद्धरणाय कुरु कुरु वटुकाय ह्रीं ॐ वटुकाय

स्वाहा ।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

ॐ ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै नमः । ॐ ह्रीं प्रयोगविषये ब्रह्माण्यै नमः ।

ॐ ह्रीं वारुणि खल्विनि माहेश्वर्यै नमः । ॐ ह्रीं कुल्यवासिन्यै कुमार्यै नमः ।

ॐ जयन्तपुरवाहिनि वाराह्यै नमः । ॐ अष्टमहाकालि रुद्राण्यै नमः । ॐ

चित्रकूट इन्द्राण्यै नमः । ॐ एकवृक्षशुम्भिन्यै महालक्ष्म्यै नमः । ॐ

त्रिपुरहरब्रह्माण्डनायिकायै नमः । ॐ त्रिपुरहरब्रह्मचारिण्यै नमः । एतानि

क्षं क्षं क्षं त्रैलोक्यवशङ्करीबीजाक्षराणि । ॐ ह्रीं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ

हां ह्रीं हूं जय जय चामुण्डे चण्डिके त्रिदशमुकुटकोटिरत्नसङ्घटितचरणार-

विन्दे गायत्रि सावित्रि सरस्वति माहेश्वरि ब्रह्माण्डभाण्डोदररूपधारिणि

प्रकटितदंष्ट्रोग्ररूपवदने घोरघोरानने नयनोज्ज्वलज्वालासहस्रपरिवृते महाद्व-

हासधवलीकृतदिगन्तरे कोटिदिवाकरसमप्रभे कामरूपिणि महाविद्यासञ्चय-

प्रभाभासितसकलदिगन्तरे सर्वायुधपरिपूर्णं कपालहस्ते गजाननोत्तरीये

भूतवेतालपरिवृते प्रकटितवसुन्धरे मधुकैटभमहिषासुरधूम्रलोचनचण्डमुण्ड-

प्रचण्डरक्तबीजशुम्भनिशुम्भदैत्यनिकृन्तके कालरात्रि महामाये शिवदूति

इन्द्राणि शाङ्करि आग्नेयि यामि नैर्ऋति वारुणि वायवि कौबेरि ईशानि

ब्रह्माणि विष्णुवक्षःस्थिते त्रिभुवनधराधरे ज्येष्ठे रौद्रे चाम्बिके ब्राह्मि

माहेश्वरि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि शाङ्करि चण्डिके शूलिनि महोग्र-

विषोग्रभक्षितदंष्ट्रिणि हरितहयबद्धबहुकठोरोत्तमाङ्गनवरत्ननिधिकोशे तत्र बहु-

जिह्वापाणिपादशब्दस्पर्शरूपरसगन्धचक्षुष्मति महाविन्ध्यस्थिते महाज्वाला-

मणिमहिषोपरि स्थिते गन्धर्वविद्याधरस्तुते ऐंकारिर्ह्रींकारिर्श्रींकारिर्क्रींकारि-

हस्ते आं ह्रीं क्रों यज्ञपात्रं प्रवेशय प्रवेशय । द्रां प्रवेशय प्रवेशय । श्रीं

कुसुमापय कुसुमापय । श्रीं सर्वं प्रवेशय प्रवेशय । त्रैलोक्यान्तर्वर्तिन्ये-

काग्रचित्तवशीकृते ॐ हां हीं हूं हैं हौं हः फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रैं फ्रौं फ्रः हुं हुं
 हीं हीं फट् फट् । एता महाशक्तयः । एताभिररिष्टकारिभूतप्रेतपिशाचान्
 विध्वंसय विध्वंसय । अष्टादशबीजयन्तनामानि । ॐ नमो भगवति
 महाविद्ये मदनराज्ये क्लीं उपनिद ॐ हीं शिवं कुरु स्वाहा । ॐ ऐं हीं
 सकलनरमुखभ्रमरि ॐ क्लीं हीं श्रीं सकलराजमुखभ्रमरि ॐ क्रौं सौं हीं
 सकलदेवतामुखभ्रमरि ॐ हीं क्लीं सकलकामिनीमुखभ्रमरि मनोभञ्जनि ॐ
 ग्लौं सकललोकमुखभ्रमरि ॐ ईं सौं सकलदेवतामुखभ्रमरि ॐ हीं क्लीं
 सकलकामिनीमुखभ्रमरि मनोभञ्जनि ॐ ग्लौं सकललोकमुखभ्रमरि ॐ इं
 सौं सकलदेशमुखभ्रमरि ह्रस्वफ्रें त्रैलोक्यचित्तभ्रमरि ॐ क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं
 क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः दिग्भवाद्युग्रभैरवादिभूतप्रेतपिशाचचित्तभ्रमरि
 दुष्टग्रहमन्त्रयन्ततन्त्रभ्रमरि ह्रस्वह्रस्वौं त्रैलोक्यान्तरभ्रमरि ॐ हुं क्षूं हुं क्लीं
 राजमन्त्रयन्ततन्त्रभ्रमरि ॐ हुं क्षूं हुं क्लीं परमन्त्रयन्ततन्त्रभ्रमरि ॐ हुं क्षूं
 हुं क्लीं सिद्धमन्त्रयन्ततन्त्रभ्रमरि ॐ ऐं ईं सौं सकलसुरासुरसर्वमन्त्रयन्त-
 तन्त्रभ्रमरि सर्वक्षोभिणि सर्वक्लेदिनि सकलमनोन्मादिनि भक्तत्राणपरायणि
 ॐ हीं रक्तचामुण्डि अमुकमाकर्षयाकर्षय । आं हीं क्रौं परमयोगिनि
 परमकल्याणि पवित्रि ईश्वरि स्वाहा । गायत्रि हुं फट् स्वाहा ।

अक्षिस्पन्दं च दुःस्वप्नं भुजस्पन्दं च दुर्मतिम् ।

दुश्चित्तं दुर्गतिं रोगं सदा नाशय शाङ्करि ॥

महाविद्यां प्रवक्ष्यामि महादेवेन निर्मिताम् ।

चिन्तितां च किरातेन मातृणां चित्तनन्दिनीम् ॥

उत्तमां सर्वविद्यानां सर्वभूतवशङ्करीम् ।

सर्वपापक्षयकरीं सर्वशत्रुनिवारणीम् ॥

कुलगोत्रकरीं विद्याधनधान्ययशस्करीम् ।
 जृम्भिणीं स्तम्भिनीं देवीमुत्साहबलवर्धनीम् ॥
 सर्वज्वरोच्चाटनीं च सर्वमन्त्रप्रभञ्जनीम् ।
 सनातनीं मोहिनीं च सर्वविद्याप्रभेदिनीम् ॥
 विश्वयोनिं महाशक्तिमायुःप्रज्ञाविवर्धनीम् ।
 मातङ्गीं मदिरामोदां वन्दे तां जगदीश्वरीम् ॥
 मोहिनीं सर्वलोकानां तां विद्यां शाम्बरीत्रयाम् ।
 अभीष्टफलदां देवीं वन्दे तां जगदीश्वरीम् ॥

परकृताभिचारभस्मनां यन्त्रीकृतदुष्टत्रिकोणयन्त्रमध्ये पदन्यासारिष्टं
 जिम्नं छिन्धि छिन्धि । अरिष्टकारिणं हन हन । कृष्णपक्षरिक्तसन्ध्यामरिष्ट-
 युक्तप्रकृतिकाले योगिनीकालाशनिकृतारिष्टं कृतदृष्टिं जिम्नं छिन्धि छिन्धि ।
 अरिष्टकारिणीविभाविनीपरकृतदुष्टग्रहमन्त्रयन्त्रतन्त्रोच्चाटनीप्रेरितब्रह्मराक्षसशा-
 किनीडाकिनीछायावासिनीकङ्कालीहिरण्याक्षसन्धिग्रहमुक्तकेश्यादिपिशाचेभ्यो
 महाभयं छिन्धि छिन्धि । अरिष्टकारिणीछेदिनीपरकृतसर्वोपद्रवेभ्यः सर्पो-
 ल्लककाककङ्ककपोतादिवृश्चिकाग्निज्वालामण्डलाग्नेण नवकारश्मशानभस्मना
 परवश्ययन्त्रतन्त्रादिदुष्टवाक्स्तम्भनं च समाजयं ब्रह्मं फट् फट् ॐ नमो
 महाविद्यायै स्वाहा । ऐकाहिकं द्वायाहिकं त्रयाहिकं चातुर्थिकं पञ्चाहिकं
 षष्ठाहिकं सप्ताहिकमष्टाहिकं नवाहिकं दशाहिकमेकादशाहिकं द्वादशाहिकं
 त्रयोदशाहिकमर्धमासिकं मासिकं द्विमासिकं त्रिमासिकं षाण्मासिकं सां-
 वत्सरिकं वातिकं पैत्तिकमापस्मारिकं ब्राह्मीकं श्लैष्मिकं सान्निपातिकं
 संततज्वरं शीतज्वरमुष्णज्वरं विषमज्वरं गण्डपित्ततालुकविस्फोटकादित्व-
 भ्रोगादिसर्वरोगान् सर्वविषं जहि जहि ।

आद्यन्तशून्याः कवयः पुराणाः सूक्ष्मा बृहन्तो ह्यनुशासितारः ।

सर्वान् ज्वरान् भन्तु ममानिरुद्धप्रद्युम्नसङ्कर्षणवासुदेवाः ।

आद्यानिरुद्धाखिलविश्वरूप त्वं पाहि नः सर्वभयादजस्रम् ॥

त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिरा रक्तलोचनः ।

स मे प्रीतः सुखं दद्यात् सर्वामयपतिज्वरः ॥

भस्मायुधाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो ज्वरः
प्रचोदयात् । शिरश्शूलक्षिशूलकर्णशूलनासिकाशूलगण्डशूलकपोलशूलतालशूलौ-
ष्ठशूलजिह्वाशूलमुखशूलकण्ठशूलकूर्परशूलावरगलशूलस्कन्धशूलबाहुशूलकक्षशूल-
प्रकोष्ठशूलमणिबन्धशूलकरशूलकरपृष्ठशूलकराङ्गुलीशूलहृदयशूलमनःशूलस्तन-
शूलपार्श्वशूलकुक्षिशूलनाभिशूलकटिशूलगुदशूलगुह्यशूलमूलशूलोरुशूलजानुशूल-
जङ्घाशूलगुल्फशूलपादशूलपादाङ्गुलीशूलविस्फोटकप्रमेदिनि ह्रीं ॐ नमो
भगवति परच्छेदमंत्रायत्ते भो भो भो दृष्टिशूलमुष्टिशूलमुष्टिपृष्ठशूल-
मुष्टिपार्श्वशूलसर्वशूलपारावारङ्गमनायै स्वाहा । ॐ नमो भगवते नायकाय
छिन्धि छिन्धि आवेशयावेशय परमेश्वराय अघोररूपाय ह्रीं ज्वल ज्वल
मुलूट्मुलूट् ह्रीं फट् फट् स्वाहा । आत्मरक्षापररक्षाप्रत्यक्षरक्षाऽग्निरक्षावायु-
रक्षोदकरक्षामहान्धकारोल्काविधुदग्न्यनिलचोरशस्त्रास्त्रेभ्यो भयान्मां रक्ष रक्ष ।
पथगतांश्चोरान् शत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं क्लीं ब्लूं आं ह्रीं क्रों
श्रीं हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुनाय महाभुजपरिवारित-
सप्तद्वीपाय । अस्मद्वसुविल्प्यकान् चोरसमूहान् सहस्रभुजैर्दशदिक्षु बन्धय
बन्धय । चोरान् ध ध ध ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा । महादेवस्य तेजसा
भयङ्करादिष्टदेवतां बन्धयामि । महागणेन पञ्चशीर्षेण पाणिना ॐ ब्लूं ग्लों
हं गं ग्लों हरिद्रागणपतये वरवरदाय सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा ।
कलहलपिङ्गलकण्ठमयीं रुद्राङ्गीं रुद्रजटीं महावृक्षनिवासिनीं महामत्तमातङ्गीं

स्वरवीजैर्बन्धयामि । ॐ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ नम उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि
 सर्वजनवशङ्करि क्लीं स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ॐ नमो
 भगवति मातङ्गि सर्वजनमनोहारिणि सर्वदुःखरञ्जनि क्लीं ह्रीं श्रीं सर्वराजव-
 शङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वलोकव-
 शङ्करि अमुकं वशमानय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं मातङ्गि ॐ ऐं
 ह्रीं श्रीं इं ई मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं उं ऊं मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऋं ॠं
 मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लं लूं मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं एं ऐं मातङ्गि
 ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ओं औं मातङ्गि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं अः मातङ्गि ॐ स्वर
 स्वर । ब्रह्मदण्ड विस्फुर विस्फुर विष्णुदण्ड विस्फोटय विस्फोटय । रुद्रदण्ड
 प्रज्वल प्रज्वल । वायुदण्ड प्रहर प्रहर । इन्द्रदण्ड भक्षय भक्षय । निर्ऋतिदण्ड
 हिलि हिलि । यमदण्ड रक्ष रक्ष । कुबेरदण्ड प्रज्वल प्रज्वल । अग्निदण्ड
 शमय शमय । वरुणदण्ड एबोहि । नित्यानन्दिनि हंसिनि चक्रिणि शङ्खिनि
 गदिनि पद्मिनि त्रिशूलधारिणि हुं फट् । क्लीं क्लीं क्लीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ।

आयुः प्रज्ञां च सौभाग्यं धान्यं च धनमेव च ।

सदा शिवं पुत्रवृद्धिं देहि मे चण्डिके शुभे ॥

अथातो मन्त्रपदानि भवन्ति । ॐ छां छायायै स्वाहा । ॐ चं
 चतुरायै स्वाहा । ॐ कुं कुलि स्वाहा । ॐ खुं खुलि स्वाहा । ॐ हिं
 हिलि स्वाहा । ॐ जं जलि स्वाहा । ॐ झं झलि स्वाहा । ओं ऐं
 पिलि स्वाहा । ओं ऐं पिलि पिलि स्वाहा । ॐ हरं स्वाहा । ॐ हरहरं
 स्वाहा । ओं गं गन्धर्वाय स्वाहा । ॐ यं यक्षाय स्वाहा । ॐ यं यक्षाधि-
 पतये स्वाहा । ॐ रं रक्षसे स्वाहा । ॐ रं रक्षोऽधिपतये स्वाहा । ॐ
 भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा । ॐ उल्कामुखि स्वाहा ।
 ॐ रं रुद्रजटि स्वाहा । ॐ अं ऊं मं ब्रह्मविष्णुरुद्रतेजसे स्वाहा । ॐ ह्रीं

श्रीं क्लीं नमश्चण्डिकायै महासिद्धलक्ष्म्यै ममेष्टार्थसिद्धये धीमहि । तन्नः शक्तिः
 प्रचोदयात् । ॐ ऐं वद वद वाग्वादिनि क्लीं सौं महाक्षेमं कुरु कुरु ज्वाला-
 मालिनि वह्निवासिनि विद्याया नामौ हुं फट् स्वाहा । वर्णात्मिकायै
 ब्रह्माण्यै नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं ॡं एं ऐं
 ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं
 नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमः स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं
 श्रीं ङं जं णं नं मं स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गायत्रि सावित्रि सरस्वति
 हुं फट् स्वाहा । ये भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसनवग्रहभूतवेतालशाकिनीडाकिनी-
 कूश्माण्डवासवाश्चत्वरराजपुरुषकलहपुरुषाः कुसुमाम्भोवासिनस्तेषां बाधकं
 कण्टकं बध्नामि । हस्तौ बध्नामि । चक्षुषी बध्नामि । श्रोत्रे बध्नामि ।
 मुखं बध्नामि । घ्राणं बध्नामि । जिह्वां बध्नामि । गतिं बध्नामि । मतिं
 बध्नामि । बुद्धिं बध्नामि । आकाशं बध्नामि । पातालं बध्नामि । अन्तरिक्षं
 बध्नामि । पार्श्वौ बध्नामि । सर्वाङ्गं बध्नामि । ॐ क्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां
 वाचं मुखं पदं स्तम्भय । जिह्वां कीलय । बुद्धिं विनाशय । ह्रीं ॐ
 स्वाहा । ॐ नमो भगवति पुण्यपवित्रि महाविद्यासर्वार्थसाधिनि सिद्धलक्ष्मि
 वागीश्वरि परमसुन्दरि मां रक्ष रक्ष । ॐ ह्रीं फट् स्वाहा । ॐ हुं ह्रीं
 श्रीं क्लीं सौं ऐं ह्रीं ॐ नमो भगवति महामाये कालि कङ्कालि
 महाकालि शाङ्करि परमकल्याणि पवित्रि शाम्भवि परंज्योतिःपरमात्मिके
 आदिभवान्यानन्दयोगिन्यादियोगिन्यादिपतियोगिनि रेणुकायोगिन्येकाक्षरि
 परब्रह्मणि महाकालि सिद्धिकारिणि शिवरूपिणि सरस्वति मत्तकालि
 मन्मथमनोन्मादिन्यादिभवान्यखिलाण्डकोटिब्रह्माण्डनायकि ब्रं ब्रं ब्रह्माण्ड-
 निलये मां मां माहेश्वरि महामाये वैं वैं वैष्णवि वरमुनिदेवि वां वां
 वाराह्यादिभेदिनि वं वं वन्दुर्गे वरत्रिवेदि स्थं स्थं स्थलदुर्गे स्थलत्रिवेदि

जं जं जलदुर्गे जलत्रिवेदि अं अं अग्निदुर्गे आनन्दवेदि चं चं चण्डदुर्गे
चण्डकपालिनि सां सां सकलदुरितनिवारणि हं हं हं सरूपिण्यदृहासिनि
ऊं ऊं उत्तिष्ठ पुरुषि दुं दुं ह्रीं ह्रीं क्रों क्रों मां मां महाविद्ये दुं ह्रीं
दुर्गायै नमः । नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः । द्विषन्तं मे नाशय । तं
मृत्यो मृत्यवे नय । इष्टं रक्ष रक्ष । अरिष्टं मे भञ्जय भञ्जय स्वाहा ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् । ॐ सूर्याय स्वाहा ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृण्यम् । भवा वाजस्य
सङ्गथे । ॐ सोमाय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः
पृथिव्या अयम् । अपां रतांसि जिन्वति । ॐ अङ्गारकाय स्वाहा । ॐ ऐं
ह्रीं श्रीं उदबुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिकामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः । ॐ बुधाय
स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं बृहस्पते अति यदयो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवसर्तप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । ॐ बृहस्पतये स्वाहा ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शुक्रः शुशुक्लौ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः कृत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् । ॐ शुक्राय स्वाहा ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वात्वरपा
अप सिधः । ॐ शनैश्चराय स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कया नश्चित्र आ
भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता । ॐ राहवे स्वाहा ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्विरजा-
यथाः । ॐ केतवे स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं
लृं लृं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं
णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमः स्वाहा ।

ॐ अश्विन्यै स्वाहा । ॐ भरण्यै स्वाहा । ॐ कृत्तिकायै स्वाहा ।
 ॐ रोहिण्यै स्वाहा । ॐ मृगशीर्षाय स्वाहा । ॐ आर्द्रायै स्वाहा । ॐ
 पुनर्वसवे स्वाहा । ॐ पुष्याय स्वाहा । ॐ आश्लेषायै स्वाहा । ॐ मघाय
 स्वाहा । ॐ पूर्वफल्गुन्यै स्वाहा । ॐ उत्तरफल्गुन्यै स्वाहा । ॐ हस्ताय
 स्वाहा । ॐ चित्रायै स्वाहा । ॐ अभिजित्यै स्वाहा । ॐ विशाखायै
 स्वाहा । ॐ अनूराधाय स्वाहा । ॐ ज्येष्ठायै स्वाहा । ॐ मूलाय स्वाहा ।
 ॐ पूर्वाषाढायै स्वाहा । ॐ उत्तराषाढायै स्वाहा । ॐ श्रोणायै स्वाहा ।
 ॐ श्रविष्ठायै स्वाहा । ॐ शतभिषजे स्वाहा । ॐ पूर्वप्रोष्ठपदाय स्वाहा ।
 ॐ उत्तरप्रोष्ठपदाय स्वाहा । ॐ रेवत्यै स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय
 नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । यममुखेन पञ्चयोजनविस्तीर्णेन रुद्रो
 बध्नातु रुद्रमण्डलम् । रुद्र सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं रुद्रमण्डलं
 मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचल-
 मचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं
 नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लूं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट्
 स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
 बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु
 यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्तु । वर्षन्तु ते विभावरी
 दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
 भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशीन्द्रो देवता । ऐरावतारूढो
 हेमवर्णो वज्राङ्कुशहस्त इन्द्रो बध्नात्विन्द्रमण्डलम् । इन्द्र सपरिवार देवता-
 प्रत्यधिदेवतासहितमिन्द्रमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।

सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः
राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं
क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इन्द्रं वो
विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरि
दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । आग्नेय्यां दिश्यभिर्देवता । मेषारूढो
रक्तवर्णो ज्वालाहस्तोऽग्निर्बध्नात्वग्निमण्डलम् । अग्ने सपरिवार देवताप्रत्यधि-
देवतासहितमग्निमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो
मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोर-
सर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं
फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । अग्निं दूतं वृणीमहे
होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् । वर्षन्तु ते विभावरि
दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । याम्यां दिशि यमो देवता । महिषारूढो
नीलवर्णः कालदण्डो यमो बध्नातु यममण्डलम् । यम सपरिवार देवता-
प्रत्यधिदेवतासहितं यममण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राज-
चोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं
फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । नैर्ऋत्यां दिशि निर्ऋतिर्देवता । नरारूढो नीलवर्णः खड्गहस्तो निर्ऋतिर्वघ्नातु निर्ऋतिमण्डलम् । निर्ऋते सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं निर्ऋतिमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्ण्या सह । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वारुण्यां दिशि वरुणो देवता । मकरारूढः श्वेतवर्णः पाशहस्तो वरुणो वघ्नातु वरुणमण्डलम् । वरुण सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं वरुणमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस

मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वायव्यां दिशि वायुर्देवता । मृगारूढो
धूम्रवर्णो ध्वजहस्तो वायुर्बध्नातु वायुमण्डलम् । वायो सपरिवार देवता-
प्रत्यधिदेवतासहितं वायुमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राज-
चोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं
फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामा-
तरद्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय
नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । कौबेर्यां दिशि कुबेरो देवता । अश्वारूढः
पीतवर्णो गदाङ्कुशहस्तः कुबेरो बध्नातु कुबेरमण्डलम् । कुबेर
सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं कुबेरमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं
बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्र-
कवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं
हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विदथ्यं
समेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशीशानो देवता । वृषभारूढः
 श्वेतवर्णस्त्रिशूलहस्त ईशानो बध्नात्वीशानमण्डलम् । ईशान सपरिवार
 देवताप्रत्यधिदेवतासहितमीशानमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय
 बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः
 राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ ह्रां ह्रीं हूं श्रीं
 क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
 पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं
 जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे ह्रमहे वयम् । पूषा नो यथा
 वेदसामसदृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो
 अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
 रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्ध्वायां दिशि ब्रह्मा देवता । हंसारूढो
 रक्तवर्णः कमण्डलुहस्तो ब्रह्मा बध्नातु ब्रह्ममण्डलम् । ब्रह्मन् सपरिवार देवता-
 प्रत्यधिदेवतासहितं ब्रह्ममण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।
 सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राज-
 चोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ ह्रां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं
 ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
 पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ब्रह्मा देवानां
 पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्व-
 नानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अग्रस्य विद्युतः ।
 रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्तादिशि वासुकिर्देवता । कूर्मारूढो
 नीलवर्णः पद्महस्तो वासुकिर्बध्नातु वासुकिमण्डलम् । वासुके सपरिवार देवता-

प्रत्यधिदेवतासहितं वासुकिमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय ।
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोर-
सर्पसिंहव्याघ्राभ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्रूं फ्रों
आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । नमो अस्तु सपेंभ्यो ये के
च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सपेंभ्यो नमः । वर्षन्तु ते
विभावरि दिवो अग्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अवान्तरस्थां दिशि विष्णुर्देवता ।
गरुडारूढः श्यामवर्णः शङ्खचक्राङ्कितहस्तो विष्णुर्वध्नातु विष्णुमण्डलम् ।
विष्णो सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं विष्णुमण्डलं मम सपरिवारकस्य
प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य
महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राभ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां
ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्रूं फ्रों आं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं
विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे । वर्षन्तु ते विभावरि
दिवो अग्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । स्त्रिक् च स्त्रीहितिश्च स्त्रिहितिश्च ।
उष्णा च शीता च । उग्रा च भीमा च । सदास्त्री सेदिरनिरा ।
एतास्ते अग्ने घोरास्तनुवः । ताभिरसुं गच्छ स्वाहा ।

अष्टापिधाना नकुली दन्तैः परिवृता पविः ।

सर्वस्यै वाच ईशाना चारु मामिह वादयेत् ॥

ऐं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशीन्द्रः सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्विष्णु त्रिशूलको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूत-प्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी-वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्तैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रा-भ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों हूं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । लं इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । आग्नेय्यां दिश्यग्निः सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्विष्णु मारीचको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूत-प्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी-वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रा-भ्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों मां हूं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । याम्यां दिशि यमः सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्विष्ण्वेकपिङ्गलको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटि-

भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनी -
लाकिनीवेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो
मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राज-
चोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्रीं
क्लीं ब्लं फ्रों आं हीं क्रों यां हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्नि-
दृतो अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । नैर्ऋत्यां दिशि निर्ऋतिः
सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्दिक्षु सत्यको नाम राक्षसः ।
तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनी -
याकिनीराकिनीलाकिनीवेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य ।
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोर-
सर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों
आं हीं क्रों सां हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धानान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दु-
र्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वारुण्यां दिशि वरुणः सपरि-
वारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्दिक्षु यत्खलो नाम राक्षसः ।
तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनी -
याकिनीराकिनीलाकिनीवेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य ।

सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः
 राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ ह्रां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं
 ब्रूं फ्रों आं ह्रीं क्रों वां हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
 पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इमं मे वरुण
 श्रुषी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा
 शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः
 प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव
 ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वायव्यां दिशि वायुः सपरिवारो देवता
 प्रत्यधिदेवता । तदिक्षु प्रलम्बको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेत-
 पिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी -
 वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
 अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याद्युपद्रवं
 नाशय नाशय । ॐ ह्रां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्रूं फ्रों आं ह्रीं क्रों वां हुं
 फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
 बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत ।
 अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु
 सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । कौबेर्यो दिशि कुबेरः सपरिवारो देवता
 प्रत्यधिदेवता । तदिक्ष्वश्वालको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाच-
 ब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनीवेताल -
 कामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
 अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याद्युपद्रवं

नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों सां हुं फट्
स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्ध-
नान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं
कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विदथ्यं समेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु
ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशीशानः सपरिवारो देवता
प्रत्यधिदेवता । तद्दिक्षून्मत्तको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाच-
ब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनीवेताल -
कामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याद्यु-
पद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों ॐ हुं
फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं
जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसदृषे रक्षिता पायुरदब्धः
स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव
ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्ध्वायां दिशि ब्रह्मा सपरिवारो देवता
प्रत्यधिदेवता । तद्दिक्षाकाशवासी नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेत-
पिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी -
वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष ।
अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्रान्याद्यु-
पद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों ॐ हुं

फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । श्वेनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्तादिशि वासुकिः सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्विष्णु पातालवासी नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेत-पिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनीयाकिनीराकिनीलाकिनी - वेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्यु-पद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों लां हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । नमो अस्तु सपेंभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सपेंभ्यो नमः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अवान्तरस्यां दिशि विष्णुः सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता । तद्विष्णु भीमको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीकाकिनीहाकिनी - याकिनीराकिनीलाकिनीवेतालकामिनीग्रहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोर-सर्पसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां ह्रीं हूं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं ह्रीं क्रों ॐ हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ कालि हुं कालि मं कालि पुलकिते पुलकिते उच्चाटन्युच्चाटनि ॐ कालि भवानि राजपुरुषस्त्रीपुरुषवशङ्करी स्वाहा । ॐ नमो भगवति इन्द्राक्षि मम शत्रुप्राणिनां रक्तपायिनि हां अस्रस । गृह्ण गृह्ण । दुष्टग्रहज्वालामालिनि मोहिनि स्तम्भय स्तम्भय । सर्वदुष्टप्रदुष्टान् शोषय शोषय । मारय मारय । मम शत्रूणां शिरोलुण्ठनं कुरु कुरु । ठः ठः ठः स्वाहा । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । उत्त्वा मदन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्म द्विषो जहि । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशि ॐ नमो भगवति इन्द्राणि वज्रहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां अस्रस अस्रस । गृह्ण गृह्ण । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इन्द्रो वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । आग्नेय्यां दिशि ॐ नमो भगवति आग्नेयि ज्वालाहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो

मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह गृह । हुं श्रुति स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् । वर्षन्तु
ते विभावरि दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो
जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । याम्यां दिशि ॐ नमो भगवति यामि
कालदण्डहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां
रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह गृह । हुं श्रुति स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । यमाय
सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ।
वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो
जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । नैऋत्यां दिशि ॐ नमो भगवति
निर्ऋति खड्गहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो
मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह गृह । हुं श्रुति स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्ण्या सह । वर्षन्तु ते
विभावरि दिवो अन्नस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वारुण्यां दिशि ॐ नमो भगवति
वारुणि पाशहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो
मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह गृह । हुं श्रुति स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि
ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह
बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वायव्यां दिशि ॐ नमो भगवति वायवि
ध्वजहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष
रक्ष । हां अस्र अस्र । गृह्ण गृह्ण । हुं शटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव
वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभावरि
दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । कौबेर्यां दिशि ॐ नमो भगवति कौबेरी
गदाङ्कुशहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां
रक्ष रक्ष । हां अस्र अस्र । गृह्ण गृह्ण । हुं शटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । सोमो
धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विदथ्यं समेयं
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः ।
रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशि ॐ नमो भगवति ईशानि
त्रिशूलहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां
रक्ष रक्ष । हां अस्र अस्र । गृह्ण गृह्ण । हुं शटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं

जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसाम-
सद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्ध्वायां दिशि ॐ नमो भगवति
ब्रह्माणि सुक्लृवकमण्डल्वक्षसूत्रहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय
बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह्ण गृह्ण । हुं शटि स्वाहा ।
त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय
मामृतात् । ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् । वर्षन्तु ते
विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्तादिशि ॐ नमो भगवति पाताल-
वासिनि विषगलहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो
मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह्ण गृह्ण । हुं शटि स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः
सर्पेभ्यो नमः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु
सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अवान्तरस्यां दिशि ॐ नमो
भगवति महालक्ष्मि पद्मारूढे पद्महस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं
बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां अस अस । गृह्ण गृह्ण । हुं
शटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव

बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पांसुरे । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु
सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति कौमारि शक्तिहस्तेन
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि
पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इन्द्रं वो विश्वत-
स्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो
अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति वाराहि
असिहस्तेन सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । अग्निं
वृत्तं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् । वर्षन्तु ते
विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि ।
ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति सिद्धचामुण्डेश्वरि
शङ्खचक्रहस्ताभ्यां सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो
अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु
सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति गणेश्वरि परशुहस्तेन
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि

पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । मोषुणः परापरा
निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो
अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति क्षेत्रपालिनि विषज्वाला-
हस्ताभ्यां सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि
ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह
बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो अग्रस्य
विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय
नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति नारसिंहि
दशननखाग्रैः सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव
वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभावरी
दिवो अग्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति बगळामुखि
ब्रह्मास्त्रेण सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं
यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृ-
तात् । सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदश्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभावरी

दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवत्यन्नपूर्णेश्वरि कनकदर्वि-
हस्तेन सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं
पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं
जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जित्स्वमवसे ह्रमहे वयम् । पूषा नो यथा
वेदसामसदृष्टे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरी दिवो
अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो
भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय ।

भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतौघात्

सुतदुहितृकलत्रोपद्रवैर्व्याप्यमानम् ।

विलसदमृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तं

सकलभुवनमातस्त्राहि मां त्वं नमस्ते ॥

ॐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै नमः । ॐ नमो भगवति पद्मारूढे पद्महस्ताभ्यां
सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा ।

लक्ष्मी क्षीरसमुद्रराजतनयां श्रीरङ्गधामेश्वरीं

दासीभूतसमस्तदेवनितां लोकैकदीपाङ्कुराम् ।

श्रीमत्कामकटाक्षलब्धविभवब्रह्मेन्द्रगङ्गाधरां

तां त्रैलोक्यकुटुम्बिनीं सरसिजां वन्दे मुकुन्दप्रियाम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रीं सिद्धलक्ष्म्यै स्वाहा । सुवर्णं धर्मं परिवेद
वेनम् । इन्द्रस्यात्मानं दशधा चरन्तं स्वाहा । ॐ नमो भगवत्यै सर्वतो
भूर्भुवः स्वरोमिति दिम्बन्धः । ॐ ह्रीं दुर्गे स्वाहा ।

वन्दे रुद्रप्रियां नित्यमुत्पन्नां कामरूपिणीम् ।

उल्कामुखीं रुद्रजटीं नागपुष्पशिरोरुहाम् ॥

मं महिषमर्दिनि स्वाहा । ॐ ह्रीं दुं हुं फट् स्वाहा । प्रयोग-
बीजानि । ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं ग्लौं ॐ ह्रीं क्रौं गं ॐ नमो भगवते
महागणपतये स्मरणमात्रसन्तुष्टाय सर्वविद्याप्रकाशकाय सर्वकामप्रदाय
भवबन्धविमोचनाय ह्रीं सर्वभूतबन्धनाय क्रौं साध्याकर्षणाय क्लीं जगत्त्रय-
वशीकरणाय सौः सर्वमनःक्षोभणाय श्रीं महासंपत्प्रदाय ग्लौं भूमण्डलाधिपत्य-
प्रदाय महाज्ञानप्रदाय चिदानन्दात्मने गौरीनन्दनाय महायोगिने शिवप्रियाय
सर्वानन्दवर्धनाय सर्वविद्याप्रकाशनप्रदाय द्रां चिरंजीविने ब्रह्मं संमोहनाय
ॐ मोक्षप्रदाय । फट् वशीकुरु वशीकुरु । वौषडाकर्षणाय हुं विद्वेषणाय
विद्वेषय विद्वेषय । फट् उच्चाटयोच्चाटय । ठः ठः स्तम्भय स्तम्भय । खें खें
मारय मारय । शोषय शोषय । परमन्त्रयन्त्रतन्त्राणि छेदय छेदय । दुष्ट-
ग्रहान्निवारय निवारय । दुःखं हर हर । व्याधिं नाशय नाशय । नमः संप-
न्नाय संपन्नाय स्वाहा । सर्वपल्लवस्वरूपाय महाविधाय गं गणपतये स्वाहा ।

यन्मन्त्रेक्षितलाञ्छिताममनघं मृत्युश्च वज्राशिषो

भूतप्रेतपिशाचकाः प्रति हता निर्घातपातादिव ।

उत्पन्नं च समस्तदुःखदुरितं ह्युच्चाटनोत्पादकं

वन्देऽभीष्टगणाधिपं भयहरं विघ्नौघनाशं परम् ॥

ॐ गं गणपतये नमः । ॐ ह्रीं ऐं ईं स्वाहा ।

ईकारप्रथमाक्षरश्च वदने द्रां द्रीं कुचावेष्टिते

क्लीं नाभिस्थमनङ्गराजसदने ब्रह्मकारमूरुद्वये ।

सः पादेऽपि च पञ्चबाणसदने बन्धूकपुष्पद्युतिं

ध्यायेन्नमनिवर्तितेन पुलको गङ्गाप्रवाहो द्रवः ॥

ॐ नमो भगवते कामदेवाय द्रां द्रां द्रावणबाणाय द्रीं द्रीं सन्दी-
पनबाणाय क्लीं क्लीं संमोहनबाणाय ब्रूं ब्रूं सन्तापनबाणाय सः सः
वशीकरणबाणाय ह्रीं ह्रीं मदनावेशबाणाय सकलजनचिन्तितं द्रावय द्रावय ।
कम्पय कम्पय । हुं फट् स्वाहा । ॐ क्लीं नमो भगवते कामदेवाय श्रीं
सर्वजनप्रियाय सर्वसंमोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हन हन वद वद
तप तप संमोहय संमोहय सर्वजनं मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ ह्रीं
श्रीं क्ष्मीं क्ष्मैं ह्र्मैं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो विष्णवे । ॐ
नमो नारायणाय । ॐ नमो जय जय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।
सहस्रारज्वालावर्त क्ष्मीं हन हन हुं फट् स्वाहा । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ श्रीनारायणस्य चरणौ
शरणं प्रपद्ये । श्रीमते नारायणाय नमः ।

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हुं हुं फट् कनकवज्रवैद्यमुक्तालङ्कृतभूषणे एबेहि
आगच्छागच्छ मम कर्णे प्रविश्य प्रविश्य भूतभविष्यद्वर्तमानकालज्ञानदूर-
दृष्टिदूरस्थश्रवणं ब्रूहि ब्रूहि । अग्निस्तम्भनं शत्रुमुखस्तम्भनं शत्रुबुद्धिस्तम्भनं
शत्रुगतिस्तम्भनं परेषां गतिमतिवाग्जिह्वास्तम्भनं कुरु कुरु । शत्रुकार्यं हन
हन । मम कार्यं साधय साधय । शत्रूणामुद्योगविध्वंसनं कुरु कुरु ।
वीरचामुण्डि असिकण्टकधारिणि नगरपुरीपट्टनराजधानीसंमोहिनि असाध्य-
साधनि ॐ ह्रीं श्रीं देवि हन हन हुं फट् स्वाहा । ॐ अमरदुर्गे
ॐ आं हां सौं ऐं क्लीं हुं सौः ग्लौं श्रीं क्रौं एबेहि अमराम्ब सकल-
जगन्मोहिनि सकलाण्डजपिण्डजान् आमय आमय । राजप्रजावशङ्करि
संमोहय संमोहय । महामाये अष्टादशपीठरूपिणि अमलवस्युं स्फुर स्फुर ।

प्रस्फुर प्रस्फुर । कोटिसूर्यप्रभाभासुरे चन्द्रजटे मां रक्ष रक्ष । मम शत्रून्
भस्मीकुरु भस्मीकुरु । विश्वमोहिनि हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते
रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय ।

शिरो रक्षतु वाराही चैन्द्री रक्षेद्भुजद्वयम् ।

चामुण्डा हृदयं रक्षेत् कुक्षिं रक्षतु वारुणी ॥

वैष्णवी पादमाश्रित्य पृष्ठदेशे धनुर्धरा ।

यथा ग्रामे तथा क्षेत्रे रक्षेन्मां च पदे पदे ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

ब्राह्मि माहेश्वरि कौमारि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि चामुण्डे
सिद्धिचामुण्डे क्षेत्रपालिके नारसिंहि महालक्ष्मि सर्वतो दुर्गे हुं फट् स्वाहा ।

भगवन् सर्वविजय सहस्रारापराजित ।

शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि श्रीकरं श्रीसुदर्शनम् ॥

अरुणी वारुणी रक्षेत् सर्वग्रहनिवारणी ।

सर्वदारिद्र्यचशमनी सर्वराजवशङ्करी ॥

सर्वकर्मकारिणि ॐ भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः
स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । ॐ आं ह्रीं क्रों ।

फट् फट् जहि महाकृत्ये विधूमाग्निसमप्रभे ।

हन शत्रूंस्त्रिशूलेन क्रुद्धास्ये पिब शोणितम् ॥

देवि देवि महादेवि ह्रीं मम शत्रून् विनाशय विनाशय । अहं
न जाने न च पार्वतीशः । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ततो महाविद्या
सिध्यति । अशिक्षिताय नोपयच्छेत् ।

एकविंशतिवाराणि परिजप्य शुचिर्भवेत् ।
 पुत्रं पुष्पं फलं दद्यात् स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
 अवश्यं वशमित्याहुरात्मना च परेण वा ॥
 महाविद्यावतां पुंसां मनःक्षोभं करोति यः ।
 सप्तरात्रौ व्यतीतायां स च शत्रुर्विनश्यति ॥
 कुबेरं ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दमावह ।
 ज्वरं मृत्युभयं घोरं द्विषं नाशय नाशय ॥

ॐ नमो भगवतेऽमृतवर्षाय रुद्राय हृदयेऽमृताभिवर्षणाय । मम
 ज्वरदाहशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ हौं जूं सः मां पालय पालय सः
 जूं हौं ॐ । ॐ नमो भगवते । भो भोः सुदर्शनं दुष्टं दारय दारय । दुरितं
 हन हन । पापं मथ मथ । आरोग्यं कुरु कुरु । द्विषन्तं हन हन । ठः ठः
 सहस्रारं हुं फट् । भस्मायुधाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो
 ज्वरः प्रचोदयात् ।

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।
 चातुर्थिकं ज्वरं हन्ति लिखित्वा यस्तु पश्यति ॥

यस्ते मन्योरिति च चतुर्दशर्चस्य सूक्तस्य रुद्रो दुर्वासास्तपनपुत्रो
 मन्युर्देवता । अपनिलयन्तामिति बीजम् । संसृष्टमिति शक्तिः । शत्रुं
 क्षपयेति कीलकम् । मम शत्रुक्षयार्थे जपे विनियोगः । अथ ध्यानम्—

दंष्ट्राकरालवदनं ज्वालामालाशिरोरुहम् ।
 कपालकर्तिकाहस्तं रुद्रं मन्युं नमाम्यहम् ॥
 यस्ते मन्योऽविध्वद्भ्रज सायक सह ओजः पुण्यति विश्वमानुषक् ।
 साङ्ग्राम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १ ॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
 मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥
 अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
 अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ ३ ॥
 त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
 विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनांसु धेहि ॥ ४ ॥
 अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
 तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥ ५ ॥
 अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
 मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूनुत बोध्यापेः ॥ ६ ॥
 अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽथा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
 जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७ ॥
 त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
 तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥
 अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
 हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥
 सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
 उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥ १० ॥
 एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशं विशं युधये सं शिशाधि ।
 अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृष्महे ॥ ११ ॥
 विजेषकृदिन्द्र इवानवव्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
 प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्वा तमुत्सं यत आ बभूव ॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो विमर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
 क्रत्वा नो मन्यो सह मेघेधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥ १३ ॥
 संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
 भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अपनिलयन्ताम् ॥

हुं फट् ।

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।
 स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिताऽत्यग्निः ॥
 तामग्निवर्णो तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
 दुर्गो देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥ २ ॥
 अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
 पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥ ३ ॥
 विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदस्सिन्धुं न नावा दुरिताऽतिपर्षि ।
 अग्ने अत्रिवन्मनसा गृणानोऽस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥ ४ ॥
 पृतनाजितं सहमानमग्निमुग्रं हुवेव परमात् सधस्थात् ।
 स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामदेवो अति दुरिताऽत्यग्निः ॥
 प्रब्रूषि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
 स्वां चाग्ने तनुवं पिप्रियस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥ ६ ॥
 गोभिर्जुष्टमयुजो निषिक्तं तवेन्द्र विष्णोरनु सं चरेम ।
 नाकस्य पृष्ठमभि सं वसानो वैष्णवीं लोक इह मादयन्ताम् ॥

भास्कराय विद्महे महाधुतिकराय धीमहि । तन्नो आदित्यः प्रचोद-
 यात् । घृणिः सूर्य आदित्यो न प्रभावात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् ।
 सत्यं वै तद्रसमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ।

श्रीं श्रीं सोऽहमर्कमहमहं ज्योतिरहं शिवः ।
 आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसोऽहमोम् ॥
 आदित्यं भास्करं भानुं रविं सूर्यं दिवाकरम् ।
 नामषट्कं स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

कात्यायनाय विद्महे कन्यकुमारि धीमहि । तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात् ।
 ॐ नमो भगवति माहेश्वरि ह्रीं श्रीं क्लीं कल्पलते ममाभीष्टफलं देहि ।
 प्रतिकूलं मे नश्यतु । अनुकूलं मे अस्तु । महादेव्यै च विद्महे विष्णु-
 पत्न्यै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् । ॐ व्हूं ह्रीं श्रीं क्लीं
 ब्रह्मेशानि मां रक्ष रक्ष ।

पञ्चम्यां च नवम्यां च पञ्चदश्यां विशेषतः ।
 पठित्वा तु महाविद्यां श्रीकामः सर्वदा पठेत् ॥
 गन्धद्वारां दुराधर्षा नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
 ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥
 श्रीर्मे भजतु । अलक्ष्मीर्मे नश्यतु ।
 यां कल्पयन्ति नोऽरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव ।
 तां ब्रह्मणे च निर्णुमः प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु ॥
 यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह । पवमान वि तज्जहि ॥
 क्षिप्रं कृत्ये निवर्तस्व कर्तुरेव गृहान् प्रति ।
 नाशयास्य पशूंश्चैव वीरांश्चास्य निवर्हय ॥

ॐ स्वाहा । यदुदितं भगवति तत्सर्वं शमय शमय स्वाहा । ॐ
 गायत्र्यै स्वाहा । ॐ सावित्र्यै स्वाहा । ॐ सरस्वत्यै स्वाहा । ॐ
 अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु
 रुद्ररूपेभ्यः । तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्तिः

प्रचोदयात् । तत्पुरुषाय विद्महे महासेनाय धीमहि । तन्नः षण्मुखः
 प्रचोदयात् । तत्पुरुषाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ।
 वेदात्मनाय विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि । तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ।
 नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।
 वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात् ।
 भास्कराय विद्महे महाद्युतिकराय धीमहि । तन्नो आदित्यः प्रचोदयात् ।
 वैश्वानराय विद्महे लालीलाय धीमहि । तन्नो अग्निः प्रचोदयात् ।
 कात्यायनाय विद्महे कन्यकुमारि धीमहि । तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात् ।
 सदाशिवाय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि । तन्नः साम्बः प्रचोदयात् ।
 क्षेत्रपालाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो भैरवः प्रचोदयात् ।
 रघुवंश्याय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि । तन्नो रामः प्रचोदयात् ।
 कुलकुमार्यै विद्महे कौलदेवाय धीमहि । तन्नः कौलः प्रचोदयात् ।
 कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि । तन्नोऽघोरः प्रचोदयात् । ॐ ऐं
 ह्रीं श्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै च धीमहि । तन्नो अर्धनारीश्वरः
 प्रचोदयात् । ऐं वागीश्वर्यै च विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै च धीमहि । तन्नः क्लीं
 प्रचोदयात् । ऐं त्रिपुरादेव्यै च विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै च धीमहि । सौः
 तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् । हंसहंसाय विद्महे सोऽहं हंसाय धीमहि । तन्नो
 हंसः प्रचोदयात् । यन्तराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि । तन्नो
 यन्त्रः प्रचोदयात् । तन्त्रराजाय विद्महे महातन्त्राय धीमहि । तन्नस्तन्त्रः
 प्रचोदयात् । मन्त्रराजाय विद्महे महामन्त्राय धीमहि । तन्नो मन्त्रः
 प्रचोदयात् ।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

मधवञ्छन्धि तव तन्न ऊतये विद्विषो विमृषो जहि ॥

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृतहा विमृधो वशी ।
 वृषेन्द्रः पुर एतु नः स्वस्तिदा अभयंकरः ॥
 सहस्रपरमा देवी शतमूला शताङ्कुरा ।
 सर्वं हरतु मे पापं दूर्वा दुःस्वप्ननाशिनी ॥
 काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषः परि ।
 एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥
 या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि ।
 तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥
 अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरा ।
 शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदे पदे ॥
 ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
 ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः ॥

ॐ ह्रीं फट् स्वाहा । खण्फण्प्रसि । ब्रह्मणा त्वा शपामि । ब्रह्मणस्त्वा
 शपथेन शपामि । घोरेण त्वा भृगूणां चक्षुषा प्रेक्षे । रौद्रेण त्वाङ्गिरसां मनसा
 ध्यायामि । अधस्य त्वा धारया विध्यामि । अधरो मत्पद्मस्वासौ । उत्तुद
 शिमिजावरि । तल्पेजे तल्प उत्तुद । गिरीं रनु प्रवेशय । मरीचीरुप संनुद ।
 यावदितः पुरस्तादुदयाति सूर्यः । तावदितोऽमुं नाशय । योऽस्मान् द्वेष्टि ।
 यं च वयं द्विष्मः । खट् फट् जहि । छिन्धी भिन्धी हन्धी कट् । इति
 वाचः क्रूराणि । नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः । द्विषन्तं मेऽभिराय । तं
 मृत्यो मृत्यवे नय । संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
 भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अपनिलयन्तां हुं फट् । ॐ ह्रीं
 कृष्णवाससे नारसिंहवदने महामैरवि विद्युज्ज्वालाजिह्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे
 क्ष्मीं क्ष्मीं ज्वल ज्वल । ॐ नमो नारायणाय । घृणिः सूर्य आदित्यौ सहस्रार

हुं फट् । इष्टं रक्ष रक्ष । अरिष्टं भञ्जय भञ्जय स्वाहा । ब्रह्मा नारदाय नारदो
बृहत्सेनाय बृहत्सेनो बृहस्पतये बृहस्पतिरिन्द्रायेन्द्रो भारद्वाजाय भारद्वाजो
जीवितुकामेभ्यः शिष्येभ्यः प्रायच्छत् क्षीं स्वाहा । नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये
नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः । नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे बृहते
करोमि । ॐ नमो भगवते श्रीं श्रीमन्महागरुडायामृतकलशोद्भवाय वज्रनखाय
वज्रतुण्डवज्रपक्षालङ्कृताय एबोहि महागरुड हुं फट् स्वाहा । ॐ ह्रीं
दुं सपोल्लककाकपोतवृश्चिकदंष्ट्रामिविषं नो भयं भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षस-
सकलकिल्बिषादिमहारोगविषं निर्विषं कुरु कुरु स्वाहा । विन्ध्यस्योत्तरे
तीरे मारीचो नाम राक्षसः । तत्र मूत्रपुरीषाभ्यां हुताशनं शमय शमय
स्वाहा । ॐ आं ह्रीं क्रों एबोहि दत्तात्रेयाय स्वाहा । महाविद्यां ज्ञातवतो
योऽस्मान् द्वेष्टि योऽरिः स्मरति यावदेकविंशतिं कृत्वा तावदधिकं नाशय ।

ब्रह्मविद्यामिमां दिव्यां नित्यं सेवेत यः सुधीः ।

ऐहिकामुष्मिकं सौख्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥

अनवद्यां महाविद्यां यो दूषयति मानवः ।

सोऽवश्यं नाशमाप्नोति षण्मासाभ्यन्तरेण वै ॥

अग्रतः पृष्ठतः पार्श्व ऊर्ध्वतो रक्ष सर्वतः ।

चन्द्रघण्टाविरूपाक्षि त्वां भजे जगदीश्वरीम् ॥

एवं विद्यां महाविद्यां त्रिसन्ध्यं स्तौति मानवः ।

दृष्ट्वा दुष्टजनाः सर्वे तस्य मोहवशं गताः ॥

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।

दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥

मातर्मे मधुकैटभन्नि महिषप्राणापहारोद्यमे

हेलानिर्मितधूम्रलोचनवधे हे चण्डमुण्डार्दिनि ।

निश्शेषीकृतरक्तबीजदनुजे नित्ये निशुम्भापहे
 शुम्भध्वंसिनि कालि सर्वदुरितं दुर्गे नमस्ते हर ॥
 कालदण्डां करालास्यां रक्तलोचनभीषणाम् ।
 कालदण्डपरं मृत्युं विजयां बन्धयाम्यहम् ॥
 पञ्चयोजनविस्तीर्णं मृत्योश्च मुखमण्डलम् ।
 तस्माद्रक्ष महाविद्ये भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥

अव ब्रह्म द्विषो जहि ।

वारिजलोचनसहाये वारिगतिं वारयासुकरनिकरैः ।
 पीडितमत्र भ्रान्तं मामनिशं पालय त्वमनवद्ये ॥

अव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धलक्ष्मि स्वाहा । ॐ
 क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ आवहन्ती वितन्वाना । कुर्वाणा चीरमात्मनः । वासांसि
 मम गावश्च । अन्नपाने च सर्वदा । ततो मे श्रियमावह । लोमशां पशुभिः
 सह स्वाहा ।

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
 श्रियं वसाना अमृतत्वमायन् भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्रूं फ्रूं आं ह्रीं क्रूं हुं फट् स्वाहा । सह
 नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा
 विद्विषावहै ।

देहमध्यगतो वह्निर्वह्निमध्यगता द्युतिः ।

द्युतिमध्यगता दीप्तिर्दीप्तिमध्यगतः शशी ॥

शशिमध्यगतं देव्याश्चक्रं परमशोभनम् ।

तन्मध्ये च गतो बिन्दुर्विन्दुमध्यगतं मनः ॥

मनोमध्यगतो नादो नादमध्यगताः कलाः ।
कलामध्यगतो जीवो जीवमध्यगता परा ।
जीवः परः परो जीवः सर्वं ब्रह्मेति भावयेत् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इत्याथर्वणरहस्ये वनदुर्गोपनिषत् समाप्ता

श्यामोपनिषत्

ॐ क्रीं अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मस्वरूपिणीमाप्नोति सुभगां शुभघातु-
कामरेफेन्दिरासमष्टिरूपिणीमेतत्त्रिगुणमादौ तदनु कूर्चबीजद्वयं व्योम-
षष्ठस्वरबिन्दुमेलनरूपं तदनु भुवनेशीद्वयं भवतु व्योमज्वलनेन्दिराशून्य-
मेलनरूपं ततो दक्षिणे कालिके चेत्यपि ततो मुखबीजसप्तकमुच्चार्य बृहद्भानु-
जायामुच्चरेत् । अयं स मन्त्रोत्तमः । य इमां सकृज्जपन् स तु देवेश्वरः ।
स तु विश्वेश्वरः । स तु नारीश्वरः । स तु सर्वगुरुः । स तु सर्वनमस्यः ।
स तु सर्ववेदैरधीतो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स स्वयं सदा-
शिवः । त्रिकोणं त्रिकोणं त्रिकोणं त्रिकोणं पुनश्चैव त्रिकोणं साष्टपत्रं सकेसरं
भूपुरैकेण संयुतं तस्मिन्देवीं हृल्लेखामङ्गे विन्यस्य ध्यायेत् । अभिनवजलद-
नीला कुटिलदंष्ट्रावराभयखड्गमुण्डसहितहस्ता कालिका ध्येया । काली
कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी विप्रचित्तेति बहिः षट्कोणगाः ।
उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता नीला घना बलाका मात्रा मुद्रा अमितेति नवकोणगाः ।
ब्राह्मी नारायणी माहेश्वरी चामुण्डा वाराही नारसिंही कौमारी चापरा-

जितेत्यष्टपत्रगाः । चतुष्कोणेषु चत्वारो माधवरुद्रविनायकसौराः । दिक्षु
दिक्पालाः । देवीं सर्वाङ्गेणादौ संपूज्य भगोदकेन तर्पणं पञ्चमकारेण
पूजनमेतस्याः । एवं द्वित्रिक्रमेण कुर्वाणा मुनयो भवन्ति । नारिमित्रादि-
लक्षणमस्यवर्तते । अमुष्या मन्त्रपाठकस्य गतिरस्ति । नान्यस्येह गतिरस्ति ।
एतस्यास्तारामनोर्दुर्गामनोस्सुन्दरीमनोर्वा सिद्धिरिदानीम् । सर्वाः सुप्ता
भूताः । असिताङ्गी जागर्ति । इमामसिताङ्गचुपनिषदं योऽधीते अपुत्री पुत्री
भवति । योऽन्यस्य वरदो दृष्ट्वा जगन्मोहयेत् । गङ्गादितीर्थक्षेत्राणामभिष्टो-
मादियज्ञानां फलभागीयते ।

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे श्यामोपनिषत् समाप्ता

श्रीचक्रोपनिषत्

ॐ अथाह वै श्रीचक्रे नित्याक्रान्ते ।

गौरीर्मियाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।

अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥

इति प्रत्यहं ससङ्गति सहस्रं कलशान् स्थाप्य शतं वा नव वा
सर्वाभावे पूर्णाभिषेकं चरेत् । अष्टाष्टकं चरेत् । पञ्चपञ्चकं वा चरेत् । सर्वाभावे
शतं पूजयेत् । अमृतत्वं गच्छति । श्रीचक्रन्यासं चरेत् । स व्यापकत्वं गच्छति ।
मूलाधाराद्विलान्तं क्रमेण न्यसेत् । स्वराट्चक्रं विराट्चक्रं सम्राट्चक्रं
विराज्यचक्रं विश्वरूपचक्रं शत्रुजिच्चक्रं क्रमेण सप्तकलामयं न्यसेत् । स
शिवो भवेत् । स कविर्भवेत् । स सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । स नवनाथाधिष्ठितो

भवेत् । स भुवनाराधितो भवेत् । निर्विकल्पेन मनसा यश्चरेच्छक्तिदेहे स कालीरूपो भवेत् । विना शक्तिं न मोक्षो न ज्ञानं न सत्यं न धर्मो न तपो न हरिर्न हरो न विरिञ्चिः । सर्वं शक्तियुक्तं भवेत् । तत्संयोगात् सिद्धीश्वरो भवेत् । इति शिवम् ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे श्रीचक्रोपनिषत् समाप्ता

श्रीविद्यातारकोपनिषत्

शं नो मित्रः शं वरुणः—इति शान्तिः

प्रथमः पादः

अथैनमगस्त्यः पप्रच्छ हयग्रीवं किं तारकं किं तरति । स होवाच हयग्रीवः । तारदीर्घानुलम्बिपूर्वकं प्रथमं खण्डं ततो द्वितीयं खण्डं ततस्तृतीयं खण्डं ततश्चतुर्थं खण्डं ब्रह्मात्मसच्चिदानन्दात्मकमन्त्रमित्युपासितव्यम् । अकारः प्रथमकूटाक्षरो भवति । उकारो द्वितीयकूटाक्षरो भवति । मकारस्तृतीयकूटाक्षरो भवति । अर्धमातृका चतुर्थकूटाक्षरो भवति । बिन्दुः पञ्चमकूटाक्षरो भवति । नादः षष्ठकूटाक्षरो भवति । तारकत्वाच्चारको भवति । तदेव मन्त्रतारकं भवति । तदेव मन्त्रतारकब्रह्म त्वं विद्धि । तदेवोपासितव्यम् । गर्भजन्ममरणसंसारमहद्भयात्तं तारयति । तारकमित्येतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यं महीयते । स पाप्मानं तरति । स मृत्युं तरति । स ब्रह्महत्यां तरति । स भ्रूणहत्यां तरति । स वीरहत्यां तरति । स सर्वं तरति । स संसारं तरति । सोऽविमुक्तमाश्रितो भवति ।

अकाराक्षरसंभूता वाग्भवा विश्वभाविता ।
 उकाराक्षरसंभूता तेजसः कामराजका ॥
 प्राज्ञो मकारसंभूता तार्तीया च तृतीयका ।
 अर्धमात्रा षोडशी च ब्रह्मानन्दैकविग्रहा ॥
 तस्याः सान्निध्यवशतो जगदानन्ददायिनी ।
 उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥
 त्रिकूटा भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसङ्गता ।
 प्रकृतिः प्रणवत्वाच्च सा त्रिकूटत्रयात्मिका ॥

एवं यच्चान्यत् त्रिकालातीतम् । चतुष्कूटात्मिकैव सर्वकूटात्मिका
 ब्रह्ममयी । तुर्यात्मब्रह्मा सोऽयमात्मा चतुष्पाज्जगतः स्थानं न बहिःप्रज्ञं
 नोभयतःप्रज्ञं सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः । स्थूलभुग्वैश्वानरात्मिकां काम-
 पीठालयां मित्रेशनाथात्मिकां जाग्रद्दशाधिष्ठायिनीमिच्छाशक्त्यात्मिकां कामे-
 श्वरीं प्रथमकूटां मन्यन्ते ।

इति प्रथमः पादः

द्वितीयः पादः

स्वप्नस्थानेऽनन्तः संज्ञासप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविभक्तोऽभूत् ।
 तैजसात्मिकां जालन्धरपीठालयां षष्ठीशनाथात्मिकां वज्रेश्वरीं विष्ण्वात्मिकां
 किर्यारूपां स्वप्नावस्थानस्थितिरूपामिच्छाशक्तिस्वरूपिणीं द्वितीयकूटां मन्यन्ते ।

इति द्वितीयः पादः

तृतीयः पादः

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते तत्सुषुप्तम् । पश्यन्ति यत् सुषु-
सिस्थान एकीभूतप्रज्ञानघन एवानन्देऽभूत् । इच्छाशक्तिरूपां स्वप्नावस्थान-
सुषुप्तिदशाधिष्ठायिनीं सानन्दकलां तृतीयकूटां मन्यन्ते ।

इति तृतीयः पादः

चतुर्थः पादः

एषा सर्वेश्वर्येषा सर्वोत्तमैषान्तर्याम्येषा योनिः सर्वेषां प्रभवाप्ययौ हि
भूतानाम् । नोभयतः प्रज्ञां प्रज्ञानघनां न प्रज्ञां नाप्रज्ञामदृष्टामव्यवहार्याम-
ग्राह्यामलक्षणामचिन्त्यामव्यपदेश्यामेकात्मप्रत्ययसारां प्रपञ्चोपशमनीं शान्तां
शिवामद्वैतां षोडशाक्षरीं स्फुरत्तादृशाधिष्ठायिनीं चतुर्थखण्डात्मिकां मन्यन्ते ।
सात्मा विज्ञेया । सदोज्ज्वलाविद्या । तत्कार्यहीना स्वात्मबन्धहरा सर्वदा-
द्वैतानन्दरूपा सर्वाधिष्ठानसन्मात्रा निरस्ताविद्यातमोमोहाहमेवेति संभाव्या-
हर्मा तत्सद्यत् परंब्रह्म चतुष्कूटा परंज्योतिस्साहमोमित्यात्मानमादाय मनसा
चतुष्कूटामेककार्या तदा चतुष्कूटाहमिति तत्पराः प्रवदन्ति । येन ते
संसारिण आत्मना विरागा एव । न संसारिणः । य एवं वेद स मुक्तो
भवति स मुक्तो भवति इत्यगस्त्यः । इत्युपनिषत् ।

इति चतुर्थः पादः

इति श्रीविद्यातारकोपनिषत् समाप्ता

षोढोपनिषत्

अथाह वै श्म शवः शानं शयनं शवानां शयनं श्मशानं तदधिष्ठानो
महाकालस्तत्पर्यङ्कसमासीनां विश्वव्यापकरूपिणीं कार्लीं कालादिसंत्रासात्
कार्लीं चतुर्युगाधिष्ठात्रीं स्वस्मिन् भाव्य षोढां न्यसेत् । स्थानशुद्धिन्यासं
विधाय षोढां न्यसेत् । अथ षोढान्यासी षट्कालित्वं गच्छति । सेयं षट्कला
परा परात्परा परात्परातीता चित्परा चित्परात्परा चित्परात्परातीता । षण्णां
योगे षोढा भवेत् । वैष्णवकलायुक्तां मातृकायुक्तां वैष्णवीं न्यसेदिति
प्रथमः । स परारूपो भवेत् । स भूर्मिं जयति । स शक्तिरूपो भवेत् ।
अथ वै कामकलापुटितां श्रीकलां श्रीकलापुटितां कामकलां लिपिस्थाने
न्यसेत् । द्वितीयारूपो भवेत् । सोऽमृतत्वं गच्छति । स जलं तरतीति
वै यज्ञे गीर्णं भवति । आदिकलापुटितां श्रीकलां श्रीकलापुटितामादिकलां
मातृस्थाने न्यसेत् । स सिद्धीश्वरो भवेत् । स वह्निं जयति । दिवारात्रि-
व्यापी भवेत् । कूर्चं चन्द्रं कूर्चं चन्द्रमन्तर्दृष्टिमहीपनमन्त्रं राज्ञीपुटितमेतेन
पुटितां राज्ञीं न्यसेत् । स खेचरो भवेत् । स वायुपुरगामी भवेत् ।
स कलावान् भवेत् । चतुर्थीरूपो भवेत् । अनुलोमविलोमेन मूलमन्त्रं
केवलं न्यसेत् । विद्यान्यासरूपो भवेत् । सर्वं जयति । स पञ्चमीरूपो
भवेत् । स चाकाशं जयति । अष्टोत्तरशतानुलोमविलोमाकृतिक्रमेण देवतां
व्यापयेत् । स ध्वनिरूपो भवेत् । सर्वं जयति । सर्वं जरति । महापात-
कोपपातकानि तरति । वयःस्थैर्यकरो भवेत् । अष्टसिद्धिदाता भवेत् ।
तद्दर्शनेन देवत्वं भवेत् । षष्ठीकलावान् भवेत् । विश्वरूपो भवेत् । यं
पश्यति तं शिवं कुरुते । नमस्कारान्मूर्तिस्फोटो भवेत् । स गारूपनाशको
भवेत् । स महेन्द्रजालदर्शको भवेत् । तद्दर्शनात् सिद्धीश्वरो भवेत् । पुटिति

छिन्नाकल्पामुग्रायामङ्गषोढां न्यसेत् । तत्स्पर्शादष्टलोहस्पर्शो भवेत् ।
शक्तिकुण्डे जिह्वां नार्द्धी वा न्यस्य यो जपेत् स कालीरूपो भवेत् ।
इति शिवम् ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे षोडोपनिषत् समाप्ता

सुमुख्युपनिषत्

अथैनामावाहयाम्यनवद्यां शवाधिरूढां रक्तवस्त्रालङ्कारयुक्तां रक्त-
पीठोपविष्टां गुञ्जाहारविभूषितहृदयां षोडशसमासमाकारां युवतीं पीनोन्नत-
घनस्तर्नीं स्वहृदये चिन्तयित्वोच्छिष्टपदमाभाष्य चण्डालिनीमभिमतं
सुमुखीं तदन्ते देवीं चोक्त्वा महापिशाचिनीं तस्माद्धरामग्निमायां बिन्दु-
मौलिनीं समुच्चार्य ठान्तत्रयं सविसर्गं समुद्धृत्य देवीं हृदये विभाव्य ईङ्कार-
स्वरूपं सविन्दुमुखं युग्मस्तनपदान्तं भावयित्वा यन्त्रं योनिं तदुपरि
शिववक्त्रयोनिमष्टपत्रं षोडशाब्जकं वृत्तमेकं चतुरश्रं यन्त्रराजं विचिन्त्यादौ
देवीमावाह्य बिन्दौ गन्धाक्षतपुष्पधूपदीपान् संस्कृतान्नं नानाविधं निवेद्याद्यं
फलं मीनाद्यन्नं मूलेन मूलां सन्तर्प्य संस्कृतां पुरस्कृतां योनिं देवतायै निवेद-
येत् । सुकृती चतुरश्रान् देवानिन्द्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशानान्
वामावर्तेन संपूज्य षोडशाब्जके कलावती कपालिनी कल्याणी नित्या कमला
क्रिया कृपा आकुला कुलीना कुमारी कुण्डला आकरा किशोरी कोमला कल्पा
कुमुदा एताः पूजयेत् । अष्टाब्जे ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही
इन्द्राणी चामुण्डा महालक्ष्मीः । ततो योनिपञ्चके चन्द्रा चन्द्रानना चारुमुखी
चामीकरप्रभा चतुरा । ततो योनौ वामा ज्येष्ठा रौद्री । तदन्ते रतिप्रीति-

मनोभवाः पूज्याः । प्रान्ते पूजां सन्तर्प्य पुनर्नैवेद्यं बहुगुणं निवेद्यारात्रिकं निवेद्य परां पूजयन् महाछत्रचामरादिसर्वदेवैर्ममस्कृतामाद्यशक्तिमष्ट-जातीयां स्वयं भैरवो भूत्वा कुलाकुलामृतैर्देवीं सन्तर्प्य स्वहृदये तां परां विसृज्य सुखेनैव शिवशक्त्यात्मको भावयन् विहरेत् । स सिद्धीश्वरो भवेत् । स सर्वेश्वरो भवेत् । स लोकाध्यक्षो भवेत् । भवो भूत्वा विभावयति ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे सुमुख्युपनिषत् समाप्ता

हंसषोढोपनिषत्

अथाह वै हंसषोढान्यासी शिवो भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । एतत्फलं वक्तुं सदाशिवोऽपि न समर्थः । षोढान्यासस्य विरूपाक्षमहाकाल ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । काली देवता । कालीदेहार्थे विनियोगः । हंसेनाङ्ग-षट्कम् । स निर्वाणरूपो भवेत् । हंसः कं खं गं घं ङं महामुण्डमालाधारिणि महाकालप्रिये मां रक्ष रक्ष । षट्चक्रवासिनि वागीश्वरि जिह्वाग्रे वस । हं नमः शिरसि प्रोतं वेद शिवो भवेत् । हंसः चं छं जं झं जं महात्रि-पुरभैरवि पुस्तकाक्षमालाधारिणि शत्रुमुखस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहेति महा-पद्मे । हंसः टं ठं डं ढं णं डां डीं डं डाकिनि मां रक्ष रक्ष स्वाहेत्य-नाहते न्यसेत् । तृतीयारूपो भवेत् । हंसः तं थं दं धं नं महामारि मार-हारिणि हुं हुं दारिद्र्यं हर हर स्वाहा । गुं न्यसेत् । स ब्रह्मकालीत्वं गच्छति । चतुर्थत्वं गच्छति । हंसः पं फं बं भं मं मार्जारि-वीरावलि ममालस्यं नाशय नाशय । हंसः यं रं लं वं शं षं सं हं लम्बोदरि मातर्महामङ्गलप्रिये

मम जाड्यं छेदय छेदय । अंश अंश । भगवति मां रक्ष रक्ष । भुवन-
धारिणि मां धारय धारय । स्वाहापदद्वयं न्यस्य शिवो भवेत् ।
अथ वै षष्ठीं न्यसेत् । हंसः लं क्षं महालक्ष्मि राजराजेश्वरि महा-
कालप्रिये कालखण्डिनि खण्डिनि खण्डय खण्डय खां खीं खूं खैं खों खौं
खः खनित्रि समे स्वाहेति सर्वाङ्गे न्यसेत् । हंसः पञ्चाशत् व्यापकं कुर्यात् ।
इति षष्ठी । स शिवो भवेत् । स सोमयाजी भवेत् । स विरक्तो भवेत् ।
स सर्वदीक्षितो भवेत् । सोऽमृतत्वं गच्छति । स सर्वकाल्वं गच्छति । स
सर्वन्यासकारी भवेत् । अनधीतगतिर्विधां लभेत् । कर्तव्याकरणादिकर्ता
भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । कालीरूपो भवेत् । सोऽहं हंस इत्याह
भगवान् सदाशिव इति प्रोतं वेद ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे हंसषोढोपनिषत् समाप्ता

ग्रन्थसूची

[यत्र पुटसङ्ख्यानन्तरं तिर्यग्रेखायाः परं सङ्ख्या वर्तते तत्र तावती पदावृत्तिर्बोध्या]

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|---------------------------|------------|------------------------|------------|
| अहिर्बुध्न्यम् . . . | १०९ | नारायणः . . . | २०३, २०४ |
| आनुशासनिकम् . . . | १९८ | निरुक्तम् . . . | १९६ |
| आरण्यकम् . . . | १३०, १३६ | नृसिंहतापनीयोपनिषत् | १३३, १९८ |
| ईश्वरसंहिता . . . | ९६ | नृसिंहपुराणम् . . . | १२१ |
| उत्तररामायणम् . . . | १४३, १७५ | पराशरः . . . | १०७ |
| ऋग्वेदः . . . | १७८ | पाद्मम् १२३, १६१, १७१, | |
| ऋग्वेदब्राह्मणम् . . . | १४१ | | १७९, १७८ |
| कठवल्ली . . . | ९८, १३९ | पुरन्दरः . . . | २०९ |
| कौषीतकिब्राह्मणम् . . . | ११६ | पुराणसङ्ग्रहः . . . | ९६ |
| गारुडम् . . . | १०४, १२३ | पुराणानि . . . | १३६ |
| गीता ८९, १०६, ११५-२, | | पुरुषसंहिता . . . | १६०, १७६ |
| | १२१, १४० | ब्रह्मकैवर्तम् . . . | १०४ |
| छान्दोग्यम् १४७, १७९, १८० | | ब्रह्माण्डम् . . . | १९९ |
| जाबालोपनिषत् . . . | २०१ | भगवच्छास्त्रम् . . . | १७९ |
| नारसिंहम् . . . | १७६ | भगवन्मन्त्राः . . . | १३८ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-------------------------|---------------|-----------------------------|------------|
| भागवतम् . . . | १०६, १४२ | विष्णुपुराणम् ९०-२, १०१, | |
| भारतम् ८९, १२९, १३०, | | १०२, ११९, १७३, | |
| १३६, १४९, १५९, | | १७५, १७८, १८५, १९६, २०२ | |
| १७७, १८०, १९१ | | वेङ्कटगिरिमाहात्म्यम् . . . | १९७ |
| भृगुः . . . | १६३, १६७, १८३ | वेङ्कटाचलमाहात्म्यम् . . . | १७७ |
| मनुस्मृतिः . . . | २०५ | वेदान्तसूत्रम् . . . | १४७ |
| मात्स्यम् . . . | ९४ | वैखानससूत्रम् . . . | ११३, १८७ |
| मानसोल्लासः . . . | १०० | व्यासः . . . | १८७ |
| मार्कण्डेयपुराणम् . . . | १९४ | शान्तिपर्व . . . | १५२, १६५ |
| मुण्डकोपनिषत् . . . | १३८ | श्रीसूक्तम् . . . | १७८ |
| मैत्रायणीश्रुतिः . . . | १७९ | श्वेताश्वतरम् ८७-२, १२७, | |
| यजुः . . . | १३७, १७९ | १३७, १९४ | |
| योगयाज्ञवल्क्यम् . . . | १७९ | षड्विंशब्राह्मणम् . . . | ११९ |
| योगरत्नम् . . . | १५० | साङ्ख्यपुराणम् . . . | १४२ |
| रामायणम् . . . | ९२, १०५-२ | संवर्तस्मरणम् . . . | २०५ |
| लक्ष्मीतन्त्रम् . . . | १९२ | स्कान्दम् . . . | १७५ |
| वाराहम् . . . | ९५ | हरिवंशम् . . . | १७५ |
| विष्णुधर्मः . . . | ९५-२ | | |

नामधेयपदसूची

[यत्र पुटसङ्ख्यानन्तरं तिर्यग्रेखायाः परं सङ्ख्या वर्तते तत्र तावती पदावृत्तिर्बोध्या]

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|---|------------|----------------------------|------------|
| अकल्मषा . . . | ४२२ | अतिरसदानाभिज्ञा . . . | २८४ |
| अगस्त्यः . . . | ४६९ | अतिसन्धिज्ञा . . . | २६३ |
| अगाधजला . . . | २६९ | अत्रिः . . . | ३७७ |
| अग्निः २७२, ३१३, ४०३, ४०८, ४३९, ४४४, ४६३ | | अथर्ववेदः . . . | ३८२, ४०६ |
| अघोरः . . . | ७३, ४६३ | अनङ्गकुसुमा . . . | ३९५ |
| अङ्गयोग्यभेदाभिज्ञा . . . | २६३ | अनङ्गचपला . . . | २३८ |
| अङ्गरसभेदगुणज्ञा . . . | २६३ | अनङ्गभदना . . . | ३९५ |
| अङ्गसंवलिता . . . | २३४ | अनङ्गभदनातुरा . . . | ३९५ |
| अचला . . . | ४२२ | अनङ्गभालिनी . . . | ३९६ |
| अच्छोदम् . . . | २८६ | अनङ्गमेखला . . . | ३९५ |
| अञ्जनादिः . . . | १७२ | अनङ्गरेखा . . . | ३९६ |
| अञ्जनासूनुः . . . | २१३ | अनङ्गवेगा . . . | ३९६ |
| अणिमासिद्धिः . . . | ३९३ | अनङ्गाङ्कुशा . . . | ३९६ |
| अतिरतिज्ञा . . . | २६८ | अनन्तचिन्मयासनम् . . . | ३८५ |
| अतिरतिभोक्त्री . . . | २६३ | अनन्तदिव्यमङ्गलासनम् . . . | ३८५ |
| | | अनिरुद्धसरस्वती . . . | ४०२ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|------------------------|------------|--|------------|
| अनूराधा . . . | २६२, २६८ | आत्रेयः . . . | २३ |
| अन्तरिक्षलोकः . . . | ४०५ | आदित्यः . . . | ४६१, ४६३ |
| अन्नपूर्णाद्याः . . . | २७० | आदिवराहः . . . | ४९ |
| अन्नपूर्णेश्वरी . . . | ४५५ | आधारा . . . | ४२२ |
| अपराजिता . . . | ४०१, ४६८ | आनन्दाद्रिः . . . | १७२ |
| अप्सरःपुष्करिणी . . . | २८६ | आपस्तम्बादयः . . . | १०४ |
| अमला . . . | २८३ | आसनमेदामिज्ञा . . . | २८४ |
| अमितबोधानन्दाचलः . . . | ३८६ | इच्छासिद्धिः . . . | ३९३, ३९९ |
| अमिता . . . | ४०१, ४६७ | इन्द्रः ९, ३७, ४१, ५१-३, ५२-२, ५३-४, २७२, ३१३, ३९०, ३९२-६, ३९३-३, ४३८, ४४४, ४६५ | |
| अमृताकर्षिणी . . . | ३९५ | इन्द्राग्नी . . . | ४०८ |
| अमृतोदम् . . . | २८१ | इन्द्राणी . . . | ४७३ |
| अरुणा . . . | ३९८ | इन्द्राणीशक्तिः . . . | ३९४ |
| अर्धनारीश्वरः . . . | ४६३ | ईशानः ७३, १२९, ४४२, ४४७ | |
| अलकनन्दातीर्थम् . . . | ४८ | ईशित्वसिद्धिः . . . | ३९३, ३९६ |
| अलजा . . . | २६८ | ईश्वराचार्यः . . . | ४९ |
| अश्वालकः . . . | ४४६ | उग्रप्रभा . . . | ४०१, ४६७ |
| अश्विनौ . . . | ४०८ | उग्रा . . . | ४०१, ४६७ |
| असिताङ्गी . . . | ४६८ | उत्कण्ठावती . . . | २३४ |
| अहङ्काराकर्षिणी . . . | ३९५ | उत्साहवती . . . | २३४ |
| अहिर्बुध्न्यः . . . | २२ | उन्मत्तकः . . . | ४४७ |
| आकरा . . . | ४७३ | उन्मादिनीमुद्रा . . . | ३९४ |
| आकाशवासी . . . | ४४७ | उपश्लोकः . . . | १४२ |
| आकुला . . . | ४७३ | | |
| आग्नेयी . . . | ४४९ | | |
| आत्माकर्षिणी . . . | ३९५ | | |

नामधेयपदसूची

४८१

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|--------------------------|---|----------------------------|------------|
| उमा | ७४, १८८, १९८ | कामदा | २२३ |
| उषा | २०९ | कामदुघा २७४, २७६, २७७, २७८ | |
| ऋग्वेदः | ३८२, ४०६ | कामदृष्टिः | २६३ |
| ऋग्यात्रेयः | ३२४, ३७७-३ | कामदेवः | २२४ |
| एकपिङ्गलकः | ४४४ | कामपूरा | २६२ |
| ऐन्द्री | ४९८ | कामप्रदा | २२३ |
| ओङ्कारपीठदेवता | ३९९ | कामभाविता | २८२ |
| कटाक्षगुणवती | २८२ | कामवनम् | २६०, २८६ |
| कण्वः | १९८ | कामवर्धिनी | २६३ |
| कनकाद्रिः | १७२ | कामसुखा | २८४ |
| कपालिनी | ४०१, ४६७, ४७३ | कामार्कषिणी | ३९९ |
| कमला | ४७३ | कामाक्षी | ४९, २६३ |
| करुणाकुशला | २०९ | कामातुरा | २८४ |
| कलाकोविदा | २८२ | कामेश्वरी | ३९८, ३९९ |
| कलावती | २२३, २३४, २३८, २६३, २६८, २७२, २८२, २८४-२, ४७३ | काम्यवनम् | २२१ |
| कल्पना | ४२२ | कालर्कषिणी | ४२२ |
| कल्पा | ४७३ | कालञ्जरवनम् | ३९८ |
| कल्याणाचलः | ३८४ | कालिका | ४०१, ४०३ |
| कल्याणी | ४७३ | काली १९३, ४०१, ४६७, ४७४ | |
| कश्यपः | ९४ | काश्यपः | १८-२ |
| काकिनी | ४२२ | किङ्किण्यादि | २०९ |
| कात्यायनः | ६४ | किशोरी | ४७३ |
| कामकलाकोविदा | २६३ | किशोरीवल्लभा | २०९ |
| | | कुञ्जवती | २६८ |
| | | कुण्डला | ४७३ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|---------------------------|--------------|--------------------------------|---------------|
| कुबेरपुरी . . . | २१२ | कौमारीशक्तिः . . . | ३९४ |
| कुमारः . . . | ३८० | कौमोदकी . . . | १९९ |
| कुमारी . . . | ४७३ | कौलिनी . . . | ३९८ |
| कुमुदः . . . | २४९, २८५ | क्षेत्रपालिनी . . . | ४५४ |
| कुमुदवनम् . . . | २२१ | खाद्यपेयचोष्यलेह्यरसास्वादज्ञा | २६३ |
| कुमुदा . . . | ४७३ | खेचरी . . . | ३९८ |
| कुरुकुला . . . | ४०१, ४६७ | खेचरीमुद्रा . . . | ३९४ |
| कुरुक्षेत्रम् . . . | २४, ३५८ | गङ्गा . . . | १०४ |
| कुलीना . . . | ४७३ | गङ्गागोमतीतीर्थम् . . . | ४८ |
| कुलुम्भाः . . . | ८ | गणेशपुरी . . . | २१२ |
| कुला . . . | ४०१, ४६७ | गतत्रपा . . . | २२३ |
| कूचिमारः . . . | ४२३ | गन्धाकर्षिणी . . . | ३९५ |
| कूर्मः . . . | ७७, १७४ | गरुडः १९९, २८५, ३९०, ४६३ | |
| कृपा . . . | ४७३ | गानवती २२९-२, २३४, | |
| कृष्णः . . . | ७७, २०८, २१२ | २३७, २६८-२, २६९, २८४ | |
| कृष्णचन्द्रः . . . | २११ | गायत्री . . . | ४०६-३, ४०८ |
| कृष्णप्रिया . . . | २०९ | गार्हपत्यकुण्डः . . . | २४३ |
| केकाभिज्ञा . . . | २६३ | गीतज्ञा . . . | २६३ |
| केलिदा . . . | २२३ | गीतरसभेदज्ञा . . . | २६३ |
| केशवः . . . | ८८ | गुणज्ञा . . . | २२३, २३४, २८२ |
| कैलासक्षेत्रम् . . . | ४९ | गुणवती २२९-२, २३४, | |
| कैलासमूलम् . . . | ४०८ | २३८, २४२, २६८, २७२ | |
| कैशोरकृष्णः . . . | २११ | गुणाढ्या . . . | २७२ |
| कोमला . . . | ४७३ | गोकर्णः . . . | ३५८ |
| कौमारी ४०१, ४२२, ४६७, ४७३ | | गोकुलम् . . . | २१२, २६० |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|------------------------|--------------------|-----------------------------|----------------|
| गोपीपुष्करिणी . . . | २४३ | चामुण्डा ४२२, ४५८, ४६७, ४७३ | |
| गोवर्धनमठः . . . | ४८ | चामुण्डाशक्तिः . . . | ३९४ |
| गोवर्धनाद्रिः . . . | २६० | चारुमुखी . . . | ४७३ |
| गोविन्दकुण्डम् . . . | २७६ | चित्ताकर्षिणी . . . | ३९५ |
| गोविन्दपुष्करिणी . . . | २७६ | चित्परा . . . | ४७२ |
| गौतमः . . . | ८, ५७-२ | चित्परात्परा . . . | ४७२ |
| गौरी . . . | ३८९, ३९१ | चित्परात्परातीता . . . | ४७२ |
| घना . . . | ४०१, ४६७ | चित्रकरा . . . | २०९ |
| घोरः . . . | ३८२ | चित्ररेखा . . . | २०९ |
| चतुरा . . . | ४७३ | चिदानन्दाञ्चलः . . . | ३८५ |
| चन्द्रकला . . . | २२३, २४२, २६२ | चिन्मयासनम् . . . | ३८६ |
| चन्द्रभागा . . . | २३९ | छागलेयः . . . | २५ |
| चन्द्रमाः . . . | ४०३ | जगन्नाथः . . . | ४८ |
| चन्द्रमुखी . . . | २६८ | जनकः . . . | ४१० |
| चन्द्ररेखा . . . | २६८-२ | जनार्दनः . . . | ८७-२, १०२, १९६ |
| चन्द्रसूर्यौ . . . | ४११ | जनोलोकमहल्लोकौ . . . | ४११ |
| चन्द्रा . . . | २०९, ४७३ | जमदग्निः . . . | ७, ७७ |
| चन्द्रात्रेयः . . . | ३७७ | जम्बूद्वीपः . . . | ४९ |
| चन्द्रादित्यौ . . . | ४०८ | जयन्तः . . . | २४९, २८५, |
| चन्द्रानना . . . | २४२, ४७३ | जयिनी . . . | ३९८ |
| चन्द्रावती . . . | २०९ | जलकल्लोला . . . | २६९ |
| चन्द्रावली . . . | २११, २३९, २४०, २४२ | जलाम्बिजा . . . | २६९ |
| चला . . . | ४२२ | जलपेश्वरः . . . | ३५८ |
| चामीकरप्रभा . . . | ४७३ | जाम्बवती . . . | २११ |
| | | जितकामा . . . | २६३ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|--------------------------------|------------|----------------------------|------------|
| जीवन्मुक्तः | ४०२ | त्रिपुरा | ३९४ |
| जृम्भिणी | ४२२ | त्रिपुरामालिनी | ३९८ |
| ज्ञानादिः | १७१ | त्रिपुराश्रीः | ३९९ |
| ज्येष्ठा | ४७३ | त्रिपुरासिद्धिः | ३९९ |
| ज्योतिर्मठः | ४८ | त्रिपुरेश्वरी | ३९५ |
| डाकिनी | ४२२ | त्रिवक्ता | १४२ |
| तत्पुरुषः | ७३, ३८२ | त्रिशूलकः | ४४४ |
| तन्तूत्पादरागभेदज्ञा | २६३ | त्रोटकाचार्यः | ४८ |
| तपोलोकसत्यलोकौ | ४११ | दधिग्रामः | २६० |
| तरङ्गिणी | २६९ | दधिवनम् | २२१ |
| तार्षण्यैन्दवी | ४१० | दन्तिः | ४६२ |
| तालवनम् | २२१, २६० | दर्दराः | ८ |
| तालाभिज्ञा | २६३ | दीप्ता | ४०१ |
| तीर्थादिः | १७१ | दुर्गा | ३८३ |
| तुङ्गभद्रातीर्थम् | ४९ | दुर्गिः | ४६३ |
| तुलसी | ७१ | दुर्धरा | ४२२ |
| तृतीयचक्रेश्वरी | ३९६ | दुर्वासाः | ४५९ |
| त्रिकुटीतीर्थम् | ४९ | दृष्टवती | २७२ |
| त्रिखण्डमुद्रा | ३९४ | दृष्टिमोहना | २६३ |
| त्रिदैवत्यम् | ३७७ | देवकन्या | २०९ |
| त्रिपुरजननी | ३९९-२ | देवलक्ष्मीः | ७४ |
| त्रिपुरभैरवी | ३९९ | देवलोकः | ४११ |
| त्रिपुरमालिनी | ३९९ | द्राविणीमुद्रा | ३९४ |
| त्रिपुरवासिनी | ३९६, ३९९ | द्वारका | २१२ |
| त्रिपुरसुन्दरी | ३९९ | द्वारकाक्षेत्रम् | ४८ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------------|------------|--------------------------------|---------------|
| द्वितीयचक्रेश्वरी . . . | ३९५ | नारायणी . . . | ४०१, ४६७ |
| द्विविदः . . . | ४५९ | निकुञ्जदेवी . . . | २३२, २७१, २७९ |
| धनाध्यक्षः . . . | १८८ | निकुञ्जश्रेणिमार्गज्ञा . . . | २६३ |
| धैर्याकर्षिणी . . . | ३९५ | निकुञ्जा . . . | २८३ |
| नकुली . . . | ४४३ | नित्या . . . | ४७३ |
| नन्दकः . . . | १९९ | निद्राजागरिता . . . | २८२ |
| मन्दसुतः . . . | १७९ | निद्रालसा . . . | २६९ |
| नन्दिस्कन्दमहाकालाः . . . | ३७७ | निद्रासंवलिता . . . | २३४ |
| नरनारायणपुरी . . . | २१२ | निर्ऋतिः . . . | ४४०, ४४५ |
| नरसूकरः . . . | १६३ | निर्मला . . . | २८३ |
| नागवीथी . . . | ४११ | निर्लज्जा . . . | २६३, २८२, २८४ |
| नानासुगन्धरसभेदज्ञा . . . | २६३ | निशङ्करतिदा . . . | २२३ |
| नाभिकुण्डलीक्षेत्रम् . . . | ४९ | निशङ्का २३४, २६३, २८२, २८४ | |
| नामाकर्षिणी . . . | ३९५ | नीलगिरिः . . . | १७२ |
| नारदः ६५, ७०, १६०, | | नीलप्रीवः . . . | २९६-२, ३०१ |
| २०९, २३०-३, २३२, ४६५ | | नीलपर्वतगोवर्धनसिंहासनम् . . . | २१२ |
| नारसिंहिका . . . | ४०१ | नीललोहितः . . . | ३७८-२ |
| नारसिंही . . . | ४२२, ४६७ | नीला . . . | ४०१, ४६७ |
| नारायणः २०, २७, ४८, | | नृत्यकलाभिज्ञा . . . | २४२ |
| ७१, ७७, ७८-१५, | | नृत्यकवती . . . | २३७ |
| ८१-२०, ८२-१६, | | नृत्यपरा . . . | २३४ |
| ८३-१०, ८७, १०३, | | नृसिंहपुरी . . . | २१२ |
| १०५, १३२, १३८, १६९, | | नैमिशारण्यम् . . . | १६४ |
| १७२, २१८, २२०, २५७, | | नौकावती . . . | २६९ |
| २७४, २७५, २८०, २८९, ४२६ | | पक्षिभाषाभिज्ञा . . . | २६३ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|---------------------------|---------------|---------------------------|---------------|
| पक्षिसंबन्धामिज्ञा . . . | २६३ | पूर्णगिरीदेवी . . . | ४८ |
| पञ्चजनः . . . | १९८ | पृथ्वीधराचार्यः . . . | ४९ |
| पञ्चमचक्रेश्वरी . . . | ३९७ | पैप्पलादिका . . . | ४१० |
| पद्मा . . . | २०९ | प्रजापतिः . . . | १८०, १८८ |
| परमेश्वरी . . . | ७४ | प्रलम्बकः . . . | ४४६ |
| परा . . . | ४७२ | प्राकाम्यसिद्धिः . . . | ३९३, ३९८ |
| परात्परा . . . | ४७२ | प्राप्तिसिद्धिः . . . | ३९९ |
| परात्परातीता . . . | ४७२ | प्राभाकराः . . . | २०६ |
| परानन्दा . . . | २०९ | प्रेङ्खितवती . . . | २६९ |
| पर्जन्यः . . . | ४०८ | प्रेमप्रेक्षणा . . . | २८२ |
| पशुपतिः . . . | १८८ | प्रेमवती . . . | २३४, २६२, २६८ |
| पाञ्चजन्यः . . . | १९९, २०७, २९३ | प्रेमवल्यादयः . . . | २७० |
| पातालवासी . . . | ४४८ | प्रेमसंवल्लिता . . . | २७२ |
| पार्वती . . . | ७४ | प्रेमानन्दा . . . | २०९ |
| पितामहः . . . | ९६ | प्रेमोत्कण्ठा . . . | २२६ |
| पुण्ड्राः . . . | ८ | बगळा . . . | ४२२ |
| पुन्नामा . . . | १७९ | बगळामुखी . . . | ४५४ |
| पुरन्दरः . . . | २०५ | बदरिकाश्रमक्षेत्रम् . . . | ४८ |
| पुरुषशब्दः . . . | १७९ | बर्बराः . . . | ८ |
| पुरुषोत्तमक्षेत्रम् . . . | ४८ | बलभद्ररूपी . . . | १६३ |
| पुरोगः . . . | १८-२ | बलाका . . . | ४०१, ४६७ |
| पुष्कराद्रिः . . . | १७२ | बीजमुद्रा . . . | ३९४, ३९९ |
| पुष्पगन्धा . . . | २४२ | बीजाकर्षिणी . . . | ३९५ |
| पुष्पवती . . . | २३८, २६९, २८२ | बुद्धावतारः . . . | ७७ |
| पुष्पवल्यादयः . . . | २७० | बुद्धयाकर्षिणी . . . | ३९५ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-------------------------------|------------|----------------------------|------------|
| वृन्दा . २०९, २२३, २६३ | | भण्डी . . . १९३ | |
| वृन्दावनम् . २१०, २२१, | | भद्रकर्णः . . . ३९८ | |
| २३३, २५९-५, २६० | | भद्रकाली . . . १९३ | |
| वृन्दावनेश्वरी . २५२, २६४ | | भद्रपद्मपादाचार्यः . . ४८ | |
| वृहत्सेनः . . . ४६५ | | भद्रा . . . १९३, २०९ | |
| वृहद्भानुः . . . १७९ | | भरद्वाजः . . . ७, १८-२ | |
| वृहद्वनम् . . . २२१, २६० | | भवानी . . . ४१७ | |
| वृहस्पतिः . . . ८८, ४६५ | | भाण्डीरवनम् . . . २२१ | |
| ब्रह्मरात्रिः . . . २४१ | | भानुः . . . ५५ | |
| ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः . . ३२७ | | भारद्वाजः . ३८०, ३८३, ४६५ | |
| ब्रह्मस्वरूपाचार्यः . . ४८ | | भार्गवी . . . २१२ | |
| ब्रह्मा २९, ३२, ६०, ७५, | | भावशुद्धा . . . २३४ | |
| ८२, ९४, १०३, १२७, | | भावोत्साहा . . . २८२ | |
| १३१, २४३, ३१३, | | भास्करः . . . १७९ | |
| ३९०, ४०३, ४०८-२, | | भीमकः . . . ४४८ | |
| ४४२, ४४७, ४६५ | | भीमेश्वरः . . . ३५८ | |
| ब्रह्माणी . . . ४५२ | | भुक्तिसिद्धिः . . ३९३, ३९८ | |
| ब्रह्माण्डार्धम् . . . ४११ | | भुवर्लोकः . . . ४११ | |
| ब्रह्मादित्यः . . . १८ | | भूषणज्ञा . . . २६३ | |
| ब्राह्मी ४०१, ४०६, ४२२, | | भूषावत्यादयः . . . २७० | |
| ४६७, ४७३ | | भृगुः . . . १०४, १६३, १६७ | |
| ब्राह्मीशक्तिः . . . ३९४ | | भैरवः . . . ४०३, ४६३, ४७४ | |
| भक्तिसुन्दरी . . . २२० | | भोगज्ञा . . . २२३ | |
| भगमालिनी . . . ३९९ | | भोगपरा . . . २८४ | |
| भण्डिका . . . १९३ | | भोगप्रदा . . . २२३ | |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------------|--|--------------------------------|---------------|
| भोगवती | २२६, २३४, २३८, २४२, २६२, २६८, २६९, २८४ | मलिना | २८२ |
| भोगवत्यादयः | २७० | महाकालभैरवः | ४०३ |
| भोगस्थानम् | २२५ | महाङ्कुशमुद्रा | ३९४, ३९८ |
| भोगा | ४२२ | महादेवः | २१८, ३२४ |
| भोगाभिज्ञा | २८४ | महालक्ष्मीशक्तिः | ३९४ |
| भ्रमरिका | ४२२ | महालयः | ३५८ |
| भ्राजमाना | २८३ | महावनम् | २२१, २६० |
| मजनवती | २६९ | महाविष्णुः | २९१ |
| मणिपरीक्षाकोविदा | २६३ | महाशृङ्गाररसः | २८७ |
| मण्डलेश्वरः | ३५८ | महाश्रीः | १९३ |
| मत्तङ्गभगवान् | ४२३ | महिमासिद्धिः | ३९३ |
| मत्स्यावतारः | ७७ | महेशः | ३८३ |
| मथुरा | २१२ | महेश्वरः | १९८, ३१६, ३७२ |
| मदगमना | ४२२ | महोदधितृथम् | ४८ |
| मदनसुन्दरी | २०९ | मात्रा | ४०१, ४६७ |
| मधुसूदनः | १२६ | माथुरमण्डलम् | २०८ |
| मनुः | ६८ | माधवरुद्रविनायकसौराः | ४६८ |
| मनोज्ञा | २३८ | माधवी | २४२ |
| मनोरमा | २२३, २२५, २२९-२, २३४, २४२ | मानवती | २२५, २४२ |
| मनोहरा | २०९ | मानससरोवरम् | ४९ |
| मन्दराकिनी | ४११ | मानस्थानम् | २२५ |
| मरीचिः | १०४ | मायादासी | २२० |
| | | मायादेवी | ४९ |
| | | मारीचकः | ४४४ |
| | | मालावती | २८२ |

नामधेयपदसूची

४८९

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|--------------------------|------------|------------------------|------------|
| माहेश्वरी . ४०१, ४०६, | | योगिका . . . | ४२२ |
| ४२२, ४६७, ४७३ | | योनिमुद्रा . . . | ३९९ |
| माहेश्वरीशक्तिः . . . | ३९४ | रक्तवर्णविष्णुः . . . | २०९ |
| मित्रः . . . | ३९२-१२ | रङ्गवती . २२५, २२६, | |
| मुकुन्दः . . . | ३९० | २२९-२, २६२, २६५, | |
| मुद्रा . . . | ४०१, ४६७ | २६६, २६८ | |
| मेघातिथिः . . . | ३७ | रङ्गवत्यादयः . . . | २७० |
| मेरुः . . . | ४११ | रतिकलाभिज्ञा . . . | २८४ |
| मैत्रेयः . . . | ९१, १७९ | रतिकल्लोला . . . | २८४ |
| मोक्षलक्ष्मीः . . . | ७४ | रतिदात्री . . . | २६३ |
| मोदिनी . . . | ३९८ | रतिप्रीतिमनोभवाः . . . | ४७३ |
| मोहिनी . . . | २२३, ४२२ | रतिमती . . . | २६२, २८४ |
| मौञ्जायनी . . . | ४१० | रतिवती . . . | २३८ |
| यजुर्वेदः . . . | ३८२, ४०६ | रतिसुखसंपत्प्रदा . . . | २६३ |
| यज्ञकल्पतरुवनम् . . . | ३८४ | रत्नकूटम् . . . | १६९ |
| यज्ञवराहः . . . | १६३ | रमणानन्दज्ञा . . . | २६८ |
| यत्खलः . . . | ४४५ | रमणानन्दः . . . | २८१ |
| यमपुरी . . . | २१२ | रविः . . . | १४९, १८८ |
| यमुना २१२, २२१, २५८, २६० | | रसकलाभिज्ञा . . . | २३८ |
| यशोदा . . . | २५२ | रसदा . . . | २८४ |
| याज्ञवल्क्यः . . . | ४०५ | रसदातृभोगाभिज्ञा . . . | २८४ |
| योगकल्पतरुवनम् . . . | ३८४ | रसभावज्ञा . . . | २३८ |
| योगनन्दा . . . | २०९ | रसवती . . . | २६८ |
| योगमाया . . . | २२३ | रसाकर्षिणी . . . | ३९५ |
| योगलक्ष्मीः . . . | ७४ | रसागमसोत्साहा . . . | २६३ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|--------------------------|------------|-------------------------|------------|
| रसिकानन्दः | २२४-२, | रामपुरी . . . | २१२ |
| २२५-३, २२६-४, | | रामलक्ष्मणौ . . . | २१३ |
| २२७-३, २२८, २२९, | | रामानुजः . . . | २१९ |
| २३१, २३६-३, २४६- | | रामेश्वरक्षेत्रम् . . . | ४९ |
| ३, २५०, २६५, २६८- | | रावणः . . . | १०५ |
| ३, २६९, २७१-३, | | रासमण्डलम् . . . | २२३ |
| २७२, २७३-४, २७४, | | रासलीला . . . | २६३ |
| २७५, २७६-३, २७७, | | रुद्रलोकः . . . | २०८ |
| २७८, २८३, २८५-२, | | रुद्राणी . . . | ७४ |
| २८६, २८८, २८९, २९१ | | रूपशालिनी . . . | २४३ |
| राकिनी . . . | ४२२ | रूपकर्षिणी . . . | ३९५ |
| रागाज्ञा . . . | २३४ | रोहिणी . . . | १६३, २४२ |
| राघवः . . . | ८६ | रौद्री . . . | ४७३ |
| राजश्यामला. ४२३-२, ४२५-२ | | लक्ष्मीकान्तः . . . | २७५ |
| राज्यलक्ष्मीः . . . | ७४ | लक्ष्मीनारायणः . . . | ७४ |
| राधा . . . | २२० | लघिमासिद्धिः . . . | ३९३ |
| राधाकुण्डम् . . . | २०९ | लज्जागतत्रपा . . . | २३४ |
| राधाकृष्णपुष्करिणी . . . | २२६ | लज्जावती . . . | २७२ |
| राधारसिकानन्दौ . . . | २६० | लतापरीक्षाकोविदा . . . | २६३ |
| राधिका २०८, २११, २२४- | | लतावती . . . | २८३ |
| २, २२५-२, २२६- | | लतावृक्षज्ञा . . . | २६३ |
| ४, २२७-३, २२९-४, | | लम्बोदरः . . . | ३९० |
| २३६-३, २५६, २६८, | | ललिता २०८, २२३, २४०, | |
| २६९, २७०-३, २८३ | | २६२, २६७, २६८ | |
| रामचन्द्रः . . . | ७७ | ललितादिः . . . | २११ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------------|------------|--------------------------------|------------|
| ललिताविशाखादयः . . . | २७० | वामा . . . | ४७३ |
| लवङ्गादि . . . | २०९ | वायुः १८८, ३१३, ४४१, ४४६ | |
| लाकिनी . . . | ४२२ | वारतन्तवी . . . | ४१० |
| लोहवनम् . . . | २२१, २६० | वाराणसी . . . | ३९८ |
| वकुलवनम् . . . | २२१ | वाराही . ४०१, ४२२, | |
| वचनसुखदायिनी . . . | २६३ | ४९८, ४६७, ४७३ | |
| वज्रेश्वरी . . . | ३९९ | वाराहीशक्तिः . . . | ३९४ |
| वटुकेश्वरः . ३१५-२, ३१६-२ | | वारुणी . . . | ४९८ |
| वनदुर्गा . . . | ४२६ | वासवः . . . | १८८ |
| वनस्थानज्ञा . . . | २६३ | वासुकिः . . . | ४४२, ४४८ |
| वराहादिः . . . | १७२ | वासुदेवः . . . | ६५ |
| वरुणः ३९२-१८, ४४०, ४४५ | | विखनाः . . . | १०५-२ |
| वशकामा . . . | २६३ | विघ्नराजः . . . | ३९० |
| वशित्वसिद्धिः . ३९३, ३९७ | | विजयः . . . | २४९, २८५ |
| वशिनी . . . | ३९८ | विद्रुमलता . . . | २८३ |
| वश्या . . . | ४२२ | विपरीतसुरतनृत्यकलाकोविदा . २३८ | |
| वषट्कारः . . . | १८८ | विप्रचित्ता . . . | ४०१, ४६७ |
| वसन्तः . . . | २२९ | विमला . . . | २११, ३९८ |
| वसिष्ठः . . . | ९, ४०५ | विमलातीर्थम् . . . | ४९ |
| वस्त्रसुगन्धभेदज्ञा . . . | २६३ | विमलादेवी . . . | ४८ |
| वह्निः . . . | १८८ | विराज्यचक्रम् . . . | ४६८ |
| वाग्भवम् . . . | ४०० | विराट्चक्रम् . . . | ४६८ |
| वाग्वादिनी . . . | ३९८ | विरिञ्चिः . . . | ३९० |
| वामदेवः . ७१, ७३, ३०३, ३८२ | | विरूपाक्षमहाकालः . . . | ४७४ |
| वामनः . . . | ७७ | विरोधिनी . . . | ४०१, ४६७ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------------|------------|---------------------------|-------------|
| विलाससुरतरङ्गवत्यादयः . | २७० | व्यासः | २०६ |
| विलासिनी | २२३ | ब्रजेश्वरी २७४-२, २७५, | |
| विशदा | २८४ | २७६-२, २८३, २८५, | |
| विशाखा . २२३, २४०, | | २८६, २८८, २९१ | |
| २६२-२, २६७, २६८ | | शक्तिबीजम् | ४०० |
| विशाला | २०८ | शक्रपुरी | २१२ |
| विश्वरूपचक्रम् | ४६८ | शङ्खकुर्णः | ३५८ |
| विश्वामित्रः | ७ | शतकुबेरः | ६ |
| विश्वेदेवाः | १८८ | शतसहस्रकुञ्जा | २८३ |
| विष्णुलोकः | २०८ | शत्रुजिच्चक्रम् | ४६८ |
| वीरभद्रः | २१६ | शब्दाकर्षिणी | ३९५ |
| वृषभानुः | २५२ | शय्योत्पाता | २६३ |
| वृषादर्विः | १०, १८ | शय्योपकरणा | २८२ |
| वृषाद्रिः | १७२ | शरभः | ८८-३ |
| वेङ्कटाचलः | १७३ | शरीराकर्षिणी | ३९५ |
| वेङ्कटाद्रिः | १७२ | शशिरेखा | २०९ |
| वेदकल्पतरुवनम् | ३८४ | शाकिनी | ४२२ |
| वेदव्यासः | ७१ | शारदामठः | ४८ |
| वैकुण्ठपुरी | २१२ | शास्त्रगीतज्ञा | २२३ |
| वैकुण्ठलोकः | ४११ | शिरिम्बिटः | १७१ |
| वैकुण्ठाद्रिः | १७२ | शिवः | ३०८, ४०३ |
| वैजयन्ती | २०० | शिवलोकः | ४११ |
| वैष्णवी ४०६, ४२२, ४५८, ४७३ | | शिववैकुण्ठः | २०८ |
| वैष्णवीशक्तिः | ३९४ | शिवा | ३९३-११, ४१५ |
| व्यक्तमुक्तालता | २८३ | शुकः | ७१ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|---------------------------------|------------|--------------------------------|------------|
| शुक्रवृहस्पती . . . | ४०८ | सङ्केतस्थानज्ञा . . . | २६३ |
| शृङ्गारयथायोग्यकालाभिज्ञा . . . | २६३ | सङ्गीतज्ञा . . . | २३४ |
| शृङ्गाररसा . . . | २८२ | सत्यकः . . . | ४४५ |
| शृङ्गारवती . २२५, २३४, | | सत्यलोकः . . . | ४०५ |
| २४०, २६३, २६८, २६९ | | सत्यानन्दा . . . | २०९ |
| शृङ्गारवत्यादयः . . . | २७० | सदागतिः . . . | १७९ |
| शृङ्गारस्थानम् . . . | २२५ | सदानन्दा . . . | २८४ |
| शृङ्गेरीमठः . . . | ४९ | सदारासक्रीडाप्रकटगुणगानकोविदा | |
| शेषदेवः . . . | २०८ | | २६३ |
| शौनकी . . . | ४१० | सदाशिवः . . . | ४७५ |
| श्यामला . २०८, ४२५, ४२६ | | सद्योजातः . . . | ७३, ३८२ |
| श्यामा . . . | २६८ | सनकादयः . . . | २१९ |
| श्रद्धा . . . | २०९ | सनत्कुमारः ५४, ५६, ६३, ७३, १६० | |
| श्रान्ता . . . | २६३ | सप्तमचक्रेश्वरी . . . | ३९८ |
| श्रीनिवासगिरिः . . . | १७२ | सम्पत्तिसुखज्ञा . . . | २६३ |
| श्रीपर्वतः . . . | ३५८ | सम्भावितरसज्ञा . . . | २६३ |
| श्रीमती . . . | २०८ | सम्भोगवती . . . | २३४ |
| श्रीमदा . . . | २०९ | सम्भोगसुखदा . . . | २२३ |
| श्रीराधिका . . . | २२३ | सम्मीलिता . . . | २६९ |
| श्रीशैलः . . . | १७३ | सम्राट्चक्रम् . . . | ४६८ |
| श्वेतपुरी . . . | २१२ | सरससुखा . . . | २८२ |
| षण्मुखः . . . | ४६३ | सरस्वती ७४, २११, २८५, | |
| सङ्कर्षणः . . . | २१८ | | ३८३, ४०६-३ |
| सङ्केतज्ञा . . . | २६३ | सर्वकामप्रदा . . . | ३९७ |
| सङ्केतरसज्ञा . . . | २६३ | सर्वकामसिद्धिः . . . | ३९९-२ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-------------------------|------------|-------------------------|------------|
| सर्वजृम्भिणीशक्तिः . | ३९६ | सर्वसङ्क्षोभिणीशक्तिः . | ३९६ |
| सर्वज्ञशक्तिः . | ३९७ | सर्वसम्मोहिनीशक्तिः . | ३९६ |
| सर्वज्ञानमयी . | ३९७ | सर्वस्तम्भिनीशक्तिः . | ३९६ |
| सर्वदुःखविमोचनी . | ३९७ | सर्वाकर्षिणीमुद्रा . | ३९४, ३९६ |
| सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी . | ३९६ | सर्वाकर्षिणीशक्तिः . | ३९६ |
| सर्वपापहरा . | ३९७ | सर्वाङ्गकामा . | २६३ |
| सर्वप्रियङ्करी . | ३९७ | सर्वाङ्गसुन्दरी . | ३९७ |
| सर्वमङ्गलकारिणी . | ३९७ | सर्वाधारस्वरूपिणी . | ३९७ |
| सर्वमन्त्रमयी . | ३९६ | सर्वानन्दमयी . | ३९७ |
| सर्वमृत्युप्रशमनी . | ३९७ | सर्वार्थसाधकी . | ३९६ |
| सर्वयोनिमुद्रा . | ३९४ | सर्वाह्लादिनीशक्तिः . | ३९६ |
| सर्वरक्षास्वरूपिणी . | ३९७ | सर्वेप्सितफलप्रदा . | ३९८ |
| सर्वरञ्जनी . | ३९६ | सर्वेश्वरी . | ३९८, ३९९ |
| सर्ववशङ्करी . | ३९६ | सर्वैश्वर्यप्रदायिनी . | ३९७ |
| सर्ववशङ्करीमुद्रा . | ३९४ | सर्वोन्मादिनी . | ३९६ |
| सर्वविघ्ननिवारणी . | ३९७ | सलज्जा . | २६३ |
| सर्वविद्राविणीमुद्रा . | ३९५ | सलिलाधिपः . | १८८ |
| सर्वविद्राविणीशक्तिः . | ३९६ | सात्त्वतः . | १४१ |
| सर्वव्याधिविनाशिनी . | ३९७ | सामवेदः . | ३८२, ४०६ |
| सर्वशक्तिदेवी . | ३९७ | साम्बः . | ४६३ |
| सर्वसम्पत्तिपूरणी . | ३९६ | सावित्री . | ४०६-३ |
| सर्वसम्पत्प्रदा . | ३९७ | सिद्धलक्ष्मीः . | ७४ |
| सर्वसिद्धिप्रदा . | ३९७ | सिंहाचलः . | १७२ |
| सर्वसौभाग्यदायिनी . | ३९७ | सुकामा . | २६८ |
| सर्वसङ्क्षोभिणीमुद्रा . | ३९४ | सुखदा . | २३८ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-------------------------------|------------|------------------------|---------------|
| सुखश्रमा . . . | २८२ | सुरतसुखा . . . | २८४ |
| सुखसंवलिता . . . | २३४ | सुरतागमज्ञा . . . | २६३ |
| सुगन्धकलावती . . . | २३४ | सुरतानन्दा २२६, २३४, | |
| सुगन्धज्ञा . . . | २६३ | २३८, २६८, २८२, २८४ | |
| सुगन्धनृत्यभेदज्ञा . . . | २६३ | सुरतान्तनिद्रिता . . . | २२३ |
| सुगन्धरसिका . . . | २३७ | सुरतोत्कण्ठा . . . | २८२ |
| सुगन्धवत्यादयः . . . | २७० | सुरतोत्साहा . . . | २८४ |
| सुगन्धशिला . . . | २८६ | सुरतोद्गमा . . . | २६८, २८४ |
| सुगन्धा . . . | २८४ | सुरतोपदेशा . . . | २६८ |
| सुगन्धाङ्गी . . . | २६२ | सुलजा . . . | २६९ |
| सुदर्शनचक्रम् . . . | २०८ | सुलहरी . . . | २६९ |
| सुदामादि . . . | २०९ | सुवर्णवर्णा . . . | २८३ |
| सुनादाः . . . | २२३ | सुवर्णाक्षः . . . | ३५८ |
| सुप्लवनवती . . . | २६९ | सुविहारवती . . . | २४२ |
| सुभगा २२३, २३४, २३९, २६२ | | सुश्रोणी . . . | २३९, २६८ |
| सुभोज्या . . . | २२५ | सुसुखा . . . | २६९ |
| सुमुखी . . . | २६२ | सुस्नेहा . . . | २८२ |
| सुमेरुमठः . . . | ४९ | सुह्याः . . . | ८ |
| सुमेरुहिमाद्रिमलयाद्याः . . . | २२४ | सूर्यः २२, ५५, ६०, | |
| सुरचिता . . . | २८४ | २७२, ३१३ | |
| सुरतकलाकोविदा २२३, २४२, २६८ | | सृष्टिः . . . | २२० |
| सुरतकलावती . . . | २४२ | सेव्यमाना . . . | २६९ |
| सुरतकेलिकोविदा . . . | २३८ | सोत्कण्ठा . . . | २८२ |
| सुरतमग्ना . . . | २८४ | सोत्साहा . . . | २६३, २७२, २८२ |
| सुरतरसकोविदा . . . | २२६ | सोमकः . . . | १६४ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|---------------------------|---------------|--------------------------|------------|
| सौमन्तवी | ४१० | हयग्रीवः | ४६९ |
| सौमित्रिः | २१८ | हरिणाक्षी | २६३ |
| संसिद्धः | २८९ | हरिप्रिया | २०८ |
| स्कन्दः | ३२७, ३८०, ३८३ | हस्तपल्लवा | २६९ |
| स्तम्भिनी | ४२२ | हाकिनी | ४२२ |
| स्थलेश्वरः | ३५८ | हास्यवती | २८२ |
| स्नेहवती | २३४ | हिमाद्रिकैलासौ | ४११ |
| स्पर्शाकर्षिणी | ३९५ | हिरण्यकशिपुः | ८८, १६७ |
| स्मृत्याकर्षिणी | ३९५ | हिरण्यगर्भः | २१ |
| स्वराट्चक्रम् | ४६८ | हिरण्याक्षः | १६३ |
| स्वर्गलोकः | ४०५ | हृषीकेशः | १५६ |
| स्वर्लोकः | ४११ | हंसः | ४६३ |
| स्वामिपुष्करिणी | १७१ | हंसगमना | २४२, २६३ |

विशेषपदसूची

[यत्र पुटसङ्ख्यानन्तरं तिर्यग्रेखायाः परं सङ्ख्या वर्तते तत्र तावती पदावृत्तिर्बोध्यः]

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|--------------------------------|------------|-----------------------------|------------|
| अक्षताः | ६ | अतप्ततनूः | २९३ |
| अखण्डितब्रह्म | ४ | अथर्ववेदः | ६, २० |
| अग्निकुमाराः | २४०, २४३ | अद्वैतपुरुषः | ४ |
| अग्नितीर्थम् | ६ | अद्वैतशिवपूजकाः | ३८५ |
| अग्निदलम् | ५० | अधश्शक्तिः | ३ |
| अङ्गन्यासाः | ७६ | अनग्निकः | १३ |
| अङ्गषट्कम् | ४७४ | अनङ्गकुसुमाष्टकम् | ३९५ |
| अङ्गषोढा | ४७३ | अनन्तः | ३१५ |
| अचिन्त्यात्मा | १५६ | अनन्तत्वम् | ९० |
| अजः | १८४ | अनुभूमिः | १३९ |
| अजा | ३५८ | अन्तःकरणम् | ३२६ |
| अज्ञानम् | ३२५ | अन्तरात्मा | ४०५ |
| अञ्जनशलाका | ३६१ | अन्तर्वीथी | ४११ |
| अणिमा | १०० | अन्नम् | ३४२ |
| अणिमासिद्ध्यादिदशकम् | ३९३ | अपस्नेहः | ३२ |
| अण्डजाः | ७८ | अरिणिः | १४८ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------------------|------------|--|------------|
| अर्घ्यम् | ६ | अष्टादशविद्याः | ७९ |
| अर्चात्मकः | १६० | अष्टाष्टकम् | ४६८ |
| अर्चावतारः | १५८ | असुराः | २९० |
| अर्चिरादिमार्गाः | १४५ | असुरान्तकचक्रम् | ८४ |
| अर्थनाशकाः | ३३३ | असंसिद्धः | २९१ |
| अर्धचन्यासः | ५८ | अस्तेयम् | ३२६ |
| अर्बुदः | २८ | अहङ्कारः | ९१ |
| अवः | ४२, ४३ | अहिंसा | ३२६ |
| अवताराः | १५७ | अहोरात्रम् | ४१२ |
| अवस्थात्रयम् | ४ | आकाशः | ९१ |
| अवस्युः | ४३ | आगमः | ३८२ |
| अवियोगात्मा | १०० | आग्नेयम् | ३३७, ३३८ |
| अव्ययम् | ३५ | आचक्रम् | ८४ |
| अश्वः | २०० | आचमनीयम् | ६ |
| अश्वतरम् | ३५९ | आचार्यः | २७-२ |
| अष्टकम् | ३६८ | आततानः | ४३ |
| अष्टदलाः | ७९ | आत्मनिक्षेपणम् | १०८ |
| अष्टपत्रगाः | ४०१, ४६८ | आत्मसमर्पणम् | २२० |
| अष्टमश्रेणिः | २७० | आत्मा ८५, १०३, १२६, १४६, १९०, ३२१, ४७१ | |
| अष्टमूर्तिः | ७३ | आत्माधारः | ६ |
| अष्टवर्जनम् | १४ | आत्माम्नायः | ४९ |
| अष्टशक्तयः | १८३ | आधारपात्राणि | ३४३ |
| अष्टाक्षरम् | ७३, ४०८-३ | आधारभाजनम् | ३६७ |
| अष्टाक्षरमन्त्रः | ७४ | | |
| अष्टादशवीजयन्त्रनामानि | ४३२ | | |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|------------------------|------------|---------------------------|------------|
| आधिदैविकम् . . . | २२४ | इतिहासः . . . | १०, ११ |
| आधिदैविकी . . . | २४५ | इन्द्रपराजयमहोत्सवः . . . | २५६ |
| आनन्दः . . . | १५४ | ईशानः . . . | २०, ३१६ |
| आनन्दमयः २२१, २८९, २९२ | | ईशानदलम् . . . | ५० |
| आनन्दमयलोकः . . . | २५४ | ईशित्वम् . . . | १०१ |
| आनन्दरसः . . . | २९० | ईश्वरप्रतिमा . . . | ३५१ |
| आपिः . . . | ४४ | उकारः . . . | ३१ |
| आमलकीफलानि . . . | ३४४ | उग्रम् . . . | १३३ |
| आमोदः . . . | १५४ | उच्छिष्टम् . . . | ३६० |
| आमोदप्राप्तिः . . . | १४७ | उत्तरदलम् . . . | ५० |
| आम्रफलम् . . . | ३४२ | उत्तराम्नायः . . . | ४८ |
| आयतनम् . . . | ३२७ | उत्पत्तिप्रणवः . . . | २६ |
| आरन्दः . . . | १४८ | उदावः . . . | २०६ |
| आरूकः . . . | १३६ | उद्भिजाः . . . | ७८ |
| आर्षिकतीर्थम् . . . | ५ | उपवीती . . . | ३४१ |
| आवरणज्योतिः . . . | २८१ | उपासनाविधिः . . . | ७६ |
| आवायः . . . | ४० | उपांशुजपः . . . | १०७ |
| आवारन्दः . . . | १४८ | ऊर्ध्वपुण्ड्रम् . . . | ६५, २९३ |
| आवाहनम् . . . | ६ | ऊर्ध्वरदावली . . . | ४११ |
| आशिरम् . . . | ४२ | ऊर्ध्वशक्तिः . . . | ३ |
| आसनम् . . . | १, ६ | ऊर्ध्वाम्नायः . . . | ४९ |
| आसुरम् . . . | १६ | ऊर्मयः . . . | १८३ |
| आसुराः . . . | २२०, २५० | ऋग्वेदः . . . | ६, २० |
| इक्षुदण्डानि . . . | ३४४ | ऋतम् . . . | २०३ |
| इडा . . . | २ | ऋतीयमानः . . . | ४७ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|--------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| एकः | ३१६ | कला | १८८, ४६७ |
| एकादशश्रेणी | २७० | कलिः | २१० |
| एकान्तिनः | १०१ | कव्यवाहनः | १५ |
| ऐन्द्रम् | ३४० | कामः | १२४ |
| ऐन्द्रनीलम् | ३८२ | कामकलाधिकारी | ४०४ |
| ऐशानम् | ३४ | कामराजका | ४७० |
| ऐश्वर्यम् | ९०, १०१ | कामरूपम् | १ |
| ऐहिकामुष्मिकम् | ४६५ | कामाकर्षिण्यादिषोडशकम् | ३९४ |
| ओङ्कारः ३१, ३४-६, २१० | | कामेश्वर्यादिदेवतात्रयम् | ३९९ |
| ३१५-२, ३२६, ४०५ | | कांस्यकम् | ३८२ |
| कण्ठचक्रम् | २ | कालः | २६, ३१७ |
| कनीयः | ३२८ | कालिका | ४६७ |
| कन्या | १६ | कालीरूपः | ४७३ |
| कपालम् | ९५ | कीटपक्षम् | ३५० |
| कपिच्छुकम् | ३३१ | कीलिता | ४०० |
| कपित्थम् | ३४२ | कुतपः | १५ |
| कम्बलम् | ३६३ | कुसुमानि | ३६२ |
| कर्णशोधनकम् | ३६१ | कृष्णा | ३५९ |
| कर्तरी | ३६१ | केवलात्मा | १०० |
| कर्तृत्वम् | ९० | कैवल्यमुक्तिः | २१२ |
| कर्मकाण्डरतः | २९० | कोट्यासनम् | ३५९ |
| कर्मजडाः | २९० | कोष्ठागारम् | ३२९ |
| कर्मयोगः | २८२ | कौलिकः | ४०० |
| कर्मयोगिनः | १०८, ३२६ | क्षत्रियाः | ३८१ |
| कललम् | २८ | क्षपणकः | ४२६ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-------------------------------|------------|-------------------------|------------|
| क्षुद्रहानि . . . | ३५० | गोधूमचणकानि . . . | ३४४ |
| क्रोधः . . . | १२४ | गोपी . . . | ६७ |
| क्रोधदैवतम् . . . | ८४ | गोपीचन्दनम् . . . | ६६, ६७, ६८ |
| खेचरः . . . | ४७२ | गोमयाञ्जनकर्पटाः . . . | ३४७ |
| खेटकम् . . . | १९९ | गौरी . . . | १६ |
| गकारार्थः . . . | ९० | घटी . . . | ३५३ |
| गङ्गा . . . | ९६ | घण्टिकास्थानम् . . . | २ |
| गणाः . . . | ३८१ | घृतधेनुः . . . | ३४८ |
| गणेश्वराः . . . | ३५७ | चक्रम् . . . | २९४, ४६६ |
| गन्धः . . . | ६ | चक्रस्वरूपम् . . . | २०० |
| गरिमा . . . | १०० | चण्डेशः . . . | ३२९ |
| गर्भः . . . | ३२७ | चतुरश्रदेवताः . . . | ८० |
| गान्धर्ववेदः . . . | २८२ | चतुर्थकूटाक्षरः . . . | ४६९ |
| गायत्री ३५, ७५, ४०५-२, ४०६ | | चतुर्थत्वम् . . . | ४७४ |
| गायत्रीरहस्यम् . . . | ४०८-३ | चतुर्थश्रेणी . . . | २७० |
| गारूपनाशकः . . . | ४७२ | चतुर्थावरणम् . . . | २८३ |
| गुणः . . . | ३८२ | चतुर्थीकलारूपः . . . | ४२० |
| गुणत्रयम् . . . | ३८१ | चतुर्थीकुक्षिः . . . | ४०६ |
| गुरुः . . . २७, १८१, ३७०-२ | | चतुर्थीरूपः . . . | ४७२ |
| गुहा . . . | १२-८ | चतुर्मूर्तिः . . . | १५७ |
| गुह्यकाल्यधिष्ठितः . . . | ४०४ | चतुर्विंशतिदलाः . . . | ८० |
| गुह्योपनिषदः . . . | ४१० | चतुर्विंशतिवनानि . . . | २११ |
| गृहार्चा . . . | १६० | चतुर्विंशतिशक्तयः . . . | ४०७ |
| गृहोपकरणानि . . . | ३५९ | चतुष्कूटा . . . | ४७१ |
| | | चन्दनम् . . . | ६७ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-----------------------------|------------|--------------------------|---------------|
| चरणाधिकारी . . . | ४०४ | जीवः ९१, १८२, २२०, | |
| चाकशानः . . . | ४२, ४३ | २८९, २९१, ४६७ | |
| चिदंशः . . . | २८९ | जीवन्मुक्तः . . . | ४२२ |
| चिन्तामणिः . . . | ४२० | जीवसङ्घः २९०-३, २९१, २९२ | |
| चिन्तामणिविद्याधिकारी . . . | ४०४ | जेनातिः . . . | १४३, १५२, २०४ |
| चित्रवस्त्राणि . . . | ३६३ | ज्ञानम् . . . | ९० |
| चूर्णाधारसत्पात्रम् . . . | ३४६ | ज्ञानत्वम् . . . | ९० |
| छत्रम् . . . | ३६० | ज्ञानप्रबोधः . . . | ४ |
| छन्दांसि . . . | ४०७ | ज्ञानयोगः . . . | २८२ |
| छिन्नम् . . . | ३७३ | ज्ञानिनः . . . | ३२५ |
| जगती . . . | ३२८, ३३२-२ | ज्ञानी . . . | १०६, २९० |
| जगत्त्रयम् . . . | ३८१ | ज्यायान् . . . | १०९ |
| जगत्पतिः . . . | १५५ | ज्येष्ठः . . . | ३२८ |
| जगन्मोहकः . . . | ४२५ | ज्योतिरात्मा . . . | ८५ |
| जगन्मोहनचक्रम् . . . | ४२५ | तत्त्वकुण्डलिनी . . . | १ |
| जङ्घा . . . | ३२८ | तत्त्वज्ञानम् . . . | ४ |
| जन्मान्तदीक्षा . . . | ३८१ | तन्त्रम् . . . | १४२ |
| जम्बूद्वीपम् . . . | ३५१ | तन्मात्राणि . . . | ९१ |
| जम्बूफलानि . . . | ३४३ | तपः . . . | १६८, ३१८ |
| जरायुजाः . . . | ७८ | तप्ततनूः . . . | २९४ |
| जातीफलम् . . . | ३४६ | तमनम् . . . | ४० |
| जालम् . . . | ३८२ | तमनः . . . | ४७ |
| जालन्धरम् . . . | २ | तान्त्रिकाः . . . | ८७, १०७ |
| जिह्वा . . . | २९ | ताम्बूलपत्राणि . . . | ३४६ |
| जिह्वात्रयम् . . . | ४१२ | ताम्रम् . . . | ३८२ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|---------------------------|------------|-------------------------------|------------|
| ताम्रकांस्यपात्राणि . . . | ३६४ | त्रिविष्टम्भम् . . . | ३६४ |
| तारम् . . . | ३१६ | त्रेतात्मकम् . . . | १५२ |
| तारकम् . . . | ४६९ | त्रैलोक्यवशङ्करीबीजाक्षराणि . | ४३१ |
| तारकः . . . | ४६९ | दक्षिणदलम् . . . | ५० |
| तार्तीया . . . | ४७० | दक्षिणा . . . | ४२० |
| तालुकाचक्रम् . . . | २ | दक्षिणाम्नायः . . . | ४९ |
| तिन्तिडीकफलानि . . . | ३४३ | दण्डद्वयम् . . . | ३ |
| तिलधेनुः . . . | ३४८ | दशकलाः . . . | ७७ |
| तुकाः . . . | ४४ | दशाक्षरमन्त्रः . . . | ७७ |
| तृचन्यासः . . . | ५८ | दाडिमम् . . . | ३४२ |
| तृतीयकुक्षिः . . . | ४०६ | दामनीयोक्त्रम् . . . | ३६५ |
| तृतीयकूटा . . . | ४७१ | दारुकूटम् . . . | ३८४ |
| तृतीयकूटाक्षरः . . . | ४६९ | दारुलोहशिलामयः . . . | १५९ |
| तृतीयश्रेणी . . . | २७० | दारुद्रवम् . . . | ३८३ |
| तृतीयारूपः . . . | ४७४ | दावा . . . | ४२ |
| तेजः . . . | १६६ | दाशुषः . . . | ४३, ४५ |
| तैजसम् . . . | ९० | दाश्वान् . . . | ४६ |
| तोयाधारपिधानानि . . . | ३४७ | दिक्पालाः . . . | ४६८ |
| त्रिकूटा . . . | ४७० | दियुतानः . . . | ४५ |
| त्रिगुणम् . . . | १५२ | दीपः . . . | ६ |
| त्रिपुण्ड्रम् . . . | ३८१ | दुर्बाक्षणः . . . | १६ |
| त्रिपुण्ड्रधारणम् . . . | ३१२ | दूर्वा . . . | ४६४ |
| त्रिमात्रशब्दः . . . | १०१ | देवकामः . . . | १५९ |
| त्रिमूर्तिः . . . | १०२ | देवताः . . . | १५३ |
| त्रिलोहम् . . . | ३८२ | देवताशरीरी . . . | ४२३ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|------------------------|---------------|-------------------------|---------------|
| देवतासामीप्यम् . . . | ४२५ | ध्यानम् . . . | १ |
| देवतासायुज्यम् . . . | ४२५ | ध्यानमयम् . . . | २३६ |
| देवतासालोक्यम् . . . | ४२५ | ध्वनिरूपः . . . | ४७२ |
| देवतीर्थम् . . . | ५ | नखच्छेदनकम् . . . | ३६१ |
| देवपुत्रकः . . . | ३५५ | नपुंसकः . . . | २८ |
| देवयानः . . . | १४४, १४६ | नमः १०९-२, ११०-३, ११२ | |
| देवी . . . | ३२७, ४१६, ४१८ | नमनम् . . . | १११ |
| देहः . . . | २०० | नमस्कारः . . . | ६ |
| देही . . . | १८५ | नवकोणगाः . . . | ४६७ |
| दैवम् . . . | १६-२ | नवनाथाधिष्ठितः . . . | ४६८ |
| द्युतचक्रम् . . . | ८४ | नवमश्रेणी . . . | २७० |
| द्राक्षाफलानि . . . | ३४३ | नादः . . . | ३८२ |
| द्वन्द्वम् . . . | २९ | नाभिचक्रम् . . . | २ |
| द्वात्रिंशदलाः . . . | ८० | नामषट्कम् . . . | ४६२ |
| द्वादशम् . . . | ७५ | नारङ्गफलम् . . . | ३४३ |
| द्वादशदलाः . . . | ८० | नारसिंहचक्रम् . . . | ८४ |
| द्वादशश्रेणी . . . | २७० | नारायणः . . . | ११४, १५५, १६० |
| द्वारम् . . . | ३३२ | नारायणमन्त्रः . . . | ७५ |
| द्वितीयकुक्षिः . . . | ४०६ | नारायणाष्टाक्षरम् . . . | ७३ |
| द्वितीयकूटा . . . | ४७० | नारिकेलम् . . . | ३४३ |
| द्वितीयकूटाक्षरः . . . | ४६९ | निकुञ्जाः . . . | २८१ |
| द्वितीयश्रेणी . . . | २७० | नित्या . . . | १९३ |
| द्वितीयारूपः . . . | ४७२ | नियमाः . . . | ३७४ |
| द्वेषः . . . | ३८१ | निरयाः . . . | १८० |
| धर्मः . . . | १२४ | निर्गुणप्रणवः . . . | २६ |

विशेषपदसूची

५०५

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-------------------------|------------|--------------------------|------------|
| निर्गुणावस्था . . . | ५ | पञ्चमीकुक्षिः . . . | ४०६ |
| निर्वाणरूपः . . . | ४७४ | पञ्चमीरूपः . . . | ४७२ |
| निर्विशेषप्रणवः . . . | ३८२ | पञ्चसंमार्जनीतोयम् . . . | ३४७ |
| निर्वीती . . . | ३४१ | पञ्चाक्षरम् . . . | ७५ |
| निश्चितम् . . . | ७९ | पञ्चात्मा . . . | १५७ |
| निष्कर्ममार्गीयः . . . | २९० | पञ्चावस्थास्वरूपम् . . . | २९४ |
| निष्कलीलिता . . . | ४०० | पत्रवेधनी . . . | ३६२ |
| नृचक्षाः . . . | ४१ | पदम् . . . | ९८ |
| नृसिंहः . . . | १३४ | पद्मरागम् . . . | ३८२ |
| नैर्ऋतदलम् . . . | ५० | पनसम् . . . | ३४३ |
| नैवेद्यम् . . . | ६, ३७२ | परत्वम् . . . | १५५ |
| न्यासः . . . | ४२१ | परमकैवल्य . . . | ३८४ |
| न्यासविद्या . . . | १५० | परमपदप्राप्तिः . . . | १४७ |
| न्यासविद्याफलम् . . . | ९८ | परमात्मा . . . | २१, ८१ |
| पञ्चतत्त्वानि . . . | ५ | परवस्तु . . . | ८२ |
| पञ्चदशकोणगाः . . . | ४०१ | परा . . . | ४६७ |
| पञ्चदशाक्षराणि . . . | ४०० | परातीता . . . | ४२१ |
| पञ्चपञ्चकम् . . . | ४६८ | परात्परा . . . | १९३ |
| पञ्चप्रकारः . . . | १५८ | परात्मयोगिनः . . . | १०८ |
| पञ्चब्रह्ममन्त्रः . . . | ३११ | परारूपः . . . | ४२० |
| पञ्चमकूटाक्षरः . . . | ४६९ | परोक्षप्रियाः . . . | १७१ |
| पञ्चमश्रेणी . . . | २७० | पर्जन्यः . . . | १२४ |
| पञ्चमावरणम् . . . | २८३ | पर्यारणः . . . | ४७ |
| पञ्चमी . . . | ४२१ | पवित्राणि . . . | १५-२ |
| पञ्चमीकलारूपः . . . | ४२० | पश्चिमदलम् . . . | ५० |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------------|------------|---------------------------|--------------|
| पश्चिमान्नायः . . . | ४८ | पूर्वान्नायः . . . | ४८ |
| पाञ्चरात्रम् . . . | १४२ | पूर्वाह्नकालिका . . . | ४०६ |
| पाञ्चरात्रिकाः . . . | १५७ | पृष्ठा . . . | ४४ |
| पाञ्चालचण्डः . . . | ३५ | पेशी . . . | २८ |
| पादन्यासः . . . | ५८ | पैतृकतीर्थम् . . . | ६ |
| पादाङ्गुल्यः . . . | ४१२ | प्रकृतिः १९३, ३२५, | |
| पाद्यम् . . . | ६ | ४०५, ४७० | |
| पार्थिवम् . . . | ३८४ | प्रजीवनम् . . . | ३६१ |
| पार्थिवलिङ्गम् . . . | ३३१ | प्रज्ञानम् . . . | ४८ |
| पाशाः . . . | ३२५ | प्रणताः . . . | १०९ |
| पिङ्गला . . . | २ | प्रणवः ८४, ९८, | |
| पितृतर्पणवेदिका . . . | ३३३ | १०१-२, ३१५-२ | |
| पिड्यम् . . . | ३४१ | प्रणवलक्षणम् . . . | ९९, १५० |
| पुण्यबीजम् . . . | ३४५ | प्रतिहरः . . . | १४३ |
| पुपुष्यान् . . . | ४५ | प्रतीवाहः . . . | ३३ |
| पुमान् . . . | २८ | प्रत्यक्षरतत्त्वानि . . . | ४०७ |
| पुरश्चरणसिद्धिः . . . | ४२३ | प्रत्यक्षरदैवतानि . . . | ४०७ |
| पुरुषः ८, १७९, १८६, | | प्रत्यक्षरर्षयः . . . | ४०७ |
| २०३, ३२५, ४०५ | | प्रत्याहारः . . . | ३२६ |
| पुरुषोत्तमाधिष्ठानम् . . . | २२१ | प्रथमकूटा . . . | ४७० |
| पुष्पम् . . . | ६ | प्रथमकूटाक्षरः . . . | ४६९ |
| पुष्पारामम् . . . | ३२९ | प्रथमश्रेणी . . . | २७० |
| पूर्णाभिषेकम् . . . | ४६८ | प्रदक्षिणम् . . . | ६, ३७३ |
| पूर्णाहुतिः . . . | ३३६ | प्रद्युम्नः . . . | १४५ |
| पूर्वदलम् . . . | ५० | प्रपत्तिः . . . | ८९, १०७, १४१ |

विशेषपदसूची

५०७

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-------------------------|------------|--------------------------|------------|
| प्रमोदः . . . | १५४ | फाणितम् . . . | ३४४ |
| प्रमोदप्राप्तिः . . . | १४७ | बदराणि . . . | ३४३ |
| प्रयोगबीजानि . . . | ४५६ | बलम् . . . | ९० |
| प्रवङ्क्षणाः . . . | ४३ | बिन्दुः . . . | ४६६ |
| प्रवर्ग्यः . . . | १३६ | बिन्दुस्थानम् . . . | २ |
| प्रवर्धितम् . . . | ३७३ | बिल्वम् . . . | ३०६ |
| प्रवालम् . . . | ३८२ | बीजन्यासः . . . | ५८ |
| प्रसत्त्वान् . . . | ४७ | बुद्बुदः . . . | २८ |
| प्रसासहिः . . . | ४१ | बृन्दावनम् . . . | २२१ |
| प्राकाम्यम् . . . | १०१ | ब्रह्म ४-३, ७, ८, | |
| प्राचीनावीती . . . | ३४१ | ३२, ३३, ४१, | |
| प्राजापत्यम् . . . | १०१ | ६९, ९१, १००, | |
| प्राज्ञः . . . | ४७० | १०२, ११७, १४५, | |
| प्राणलिङ्गम् . . . | ३८१ | २११, २५८, २८९, | |
| प्राणलिङ्गी . . . | ३०८ | ३७९, ४६७ | |
| प्राणसंरोधः . . . | १ | ब्रह्मगन्धः . . . | ११७ |
| प्राणाग्निहोत्रम् . . . | ३३७ | ब्रह्मचक्रम् . . . | १ |
| प्राणायामसमुद्भवः . . . | ३२६ | ब्रह्मतीर्थम् . . . | ६ |
| प्राप्तिः . . . | १०० | ब्रह्मतेजः . . . | ११७ |
| प्रासादः . . . | १९६ | ब्रह्मप्रणवस्तुतिः . . . | २० |
| प्रियात्मा . . . | ८५ | ब्रह्मप्राप्तिः . . . | १४७ |
| प्रियालम् . . . | ३४३ | ब्रह्ममयः . . . | ११८ |
| प्रीतिः . . . | २०५ | ब्रह्ममयी . . . | ४७० |
| प्रेगीवकम् . . . | ३३२ | ब्रह्मयशः . . . | ११७ |
| फलपर्वतः . . . | ३४९ | ब्रह्मरन्ध्रम् . . . | २ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|------------------------------|--------------------|------------------------|------------|
| ब्रह्मलिङ्गम् . . . | ३११ | भूताः . . . | ४६८ |
| ब्रह्मविदः . . . | १२९ | भृङ्गत्वम् . . . | ४०४ |
| ब्रह्मा . . . | २०, ८० | भेरी . . . | १९९ |
| ब्रह्मानन्दः . . . | २८९ | भेषजम् . . . | २०५ |
| ब्राह्मणाः . . . | ३८१ | भौमम् . . . | ३४१ |
| ब्राह्मम् . . . | १०१ | भ्रमरः . . . | २२६ |
| ब्राह्म्यष्टकम् . . . | ३९४ | भूचक्रम् . . . | २ |
| भकारार्थः . . . | ९० | भकारः . . . | ३१ |
| भक्तिः . . . | २९४ | भकारश्रुतिः . . . | ३३ |
| भक्तिमार्गीयाः . . . | २२० | मणिधनुः . . . | ३७३ |
| भक्तियोगः . . . | २८२ | मणिभूमिकम् . . . | ३४५ |
| भगः . . . | ९१ | मञ्जरी . . . | ६२८ |
| भगवान् . . . | ११९, १५६, ३१६ | मत्सिण्डिका . . . | ३४४ |
| भगालम् . . . | ३७३ | मदः . . . | १२४ |
| भण्डीरवटः . . . | २५५ | मध्यदलम् . . . | ५० |
| भद्रम् . . . | १३५ | मध्यशक्तिः . . . | ३ |
| भस्म . . . | ३३८, ३८१ | मध्याह्नकालिका . . . | ४०६ |
| भस्मस्नानम् . . . | ३३८, ३३९, ३४० | मनसिजाः . . . | ७८ |
| माण्डसंपुटाः . . . | ३४६ | मन्त्रः . . . | ९९, ४६३ |
| भावापन्नः . . . | २७५, २७६, २७८, २९२ | मन्त्रतारकम् . . . | ४६९ |
| भिक्षापात्रमुखाच्छादम् . . . | ३६४ | मन्त्रतारकब्रह्म . . . | ४६९ |
| भिन्नम् . . . | ३७३ | मन्त्रनायकः . . . | ३८२ |
| भीषणम् . . . | १३४ | मन्त्रपदानि . . . | ४३५ |
| भूतप्रायः . . . | ३७ | मन्त्रयोगः . . . | १-२ |
| | | मन्त्रसिद्धिः . . . | ४२३ |

विशेषपदसूची

५०९

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-----------------------|-------------|---------------------------|------------|
| मन्त्रस्नानम् . . . | ३४० | मायारूपम् . . . | २९० |
| मन्त्रोत्तमः . . . | ४६७ | मारकतम् . . . | ३८३ |
| मपञ्चकम् . . . | ४०० | मारन्दः . . . | १४९ |
| मर्माणि . . . | २९ | मारिषम् . . . | ३४१ |
| मलाः . . . | १८३ | मारीचम् . . . | ३४८ |
| महर्षिः . . . | ९३ | मालामन्त्रः . . . | ७५ |
| महाचक्रम् . . . | ८४ | माहालक्ष्म्यम् . . . | ८४ |
| महानसम् . . . | ३२८ | माहिषिकः . . . | १६ |
| महारत्नम् . . . | ३५० | मांसम् . . . | ३४५ |
| महालयम् . . . | १९ | मुक्ताः . . . | १५० |
| महालिङ्गम् . . . | ३३१ | मुक्तिभाजनाः . . . | ३२७ |
| महालीला . . . | २४० | मुद्रादशकम् . . . | ३९४ |
| महावाक्यत्रयम् . . . | ४१९ | मूर्तिस्फोटः . . . | ४७२ |
| महाविमानयात्रा . . . | ३५४ | मूर्तीश्वराः . . . | ३२९ |
| महाविष्णुः . . . | १३३ | मूलकन्दाख्यम् . . . | १ |
| महाशक्त्यः . . . | ४३२ | मूलप्रकृतिः . . . | ७४, ७८, ९१ |
| महास्तम्भेश्वरः . . . | ४२२ | मूलमन्त्रः . . . | २७६ |
| महिमा . . . | १०० | मृत्काष्ठवंशखण्डानि . . . | ३४६ |
| महिषी . . . | ३५८ | मृत्कुम्भपीठिका . . . | ३४७ |
| मात्राः . . . | ११५, ३७९ | मृत्तिका . . . | २२७ |
| मानसजपः . . . | १०७ | मृत्युमृत्युः . . . | १३५ |
| मानसस्नानम् . . . | ३४० | मेघादीक्षा . . . | ४०४ |
| माया . . . | ५, १२१, २९२ | मेरुप्रासादम् . . . | ३५१-२ |
| मायाजगत्त्रयम् . . . | ४ | मोदप्राप्तिः . . . | १४७ |
| मायात्मा . . . | ८५ | मोहः . . . | १२४ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|--------------------------|------------|----------------------|------------|
| मौक्तिकम् . . . | ३८२ | राधामन्त्रः . . . | २४४ |
| मौनम् . . . | ६ | रासः . . . | २३९, २८३ |
| यजुर्वेदः . . . | ६, २० | रिषा . . . | ४१ |
| यज्ञफलम् . . . | ३६६ | रुद्रः . . . | १३७, ३१६ |
| यज्ञोपवीतकम् . . . | १३१ | रुद्रदेवी . . . | ३३३ |
| यतयः . . . | १०४ | रुद्राक्षाः . . . | ३८१ |
| यन्त्रम् . . . | ५९-२, ७९ | रोहिणी . . . | १६ |
| यमाः . . . | ३७४ | रौप्यम् . . . | ३८२ |
| यवपर्वतम् . . . | ३४७ | लघिमा . . . | १०० |
| युक्तप्रावा . . . | १५९ | लयः . . . | १-२ |
| योगात्मा . . . | ८५ | लवणपर्वतम् . . . | ३४७ |
| योगिनः . . . | १०७ | लिङ्गदेहम् . . . | ३७९ |
| योगीन्द्रावसथम् . . . | ३२८ | लिङ्गधारणम् . . . | ३१०, ३११-२ |
| रजस्वला . . . | १६ | लिङ्गधारी . . . | ३८१ |
| रत्नरूपम् . . . | ३८३ | लिङ्गप्रतिष्ठा . . . | ३२९ |
| रत्नानि . . . | १८ | लिङ्गमानम् . . . | ३२८ |
| रथयात्रा . . . | ३५३ | लिङ्गशरीरम् . . . | २९१ |
| रसलीला . . . | २३६ | लिङ्गस्वरूपम् . . . | ३१०-२ |
| रसाः . . . | १५२ | लीलः . . . | १९ |
| राक्षसम् . . . | १६ | लोकपालसंवादिनी . . . | ४२० |
| राजदन्तम् . . . | २ | लोभः . . . | १२४ |
| राजयोगः . . . | १ | लोमानि . . . | ४११ |
| राजवशङ्करी . . . | ४२४, ४२५ | लोहोपकरणम् . . . | ३६२ |
| राजश्यामलामन्त्रम् . . . | ४२३ | वकारमात्रा . . . | ३३ |
| राज्ञी . . . | १९३ | वकारार्थः . . . | ९१ |

विशेषपदसूची

१११

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|------------------------|------------|-------------------------|------------|
| वक्त्रम् . . . | ३८२ | विद्यान्यासरूपः . . . | ४७२ |
| वटफलम् . . . | ३४२ | विद्याराज्यधिकारी . . . | ४०४ |
| वटुकम् . . . | ३१७ | विद्यालिङ्गम् . . . | ३११-२ |
| वटुकः . . . | ३१७-२ | विनद्धिः . . . | ४७ |
| वनविहारलीला . . . | २३६ | विमलात्मा . . . | १०० |
| वरुणालयम् . . . | ३२९ | विरश्पी . . . | ४२ |
| वशित्वम् . . . | १०१ | विराट्प्रणवः . . . | २६ |
| वशिन्याद्यष्टकम् . . . | ३९८ | विराड्ध्यानम् . . . | ४११ |
| वसवः . . . | ९४ | विरोधः . . . | ११० |
| वसीयान् . . . | ८ | विशः . . . | ३८१ |
| वसुरङ्गमन्त्रः . . . | १५० | विशुद्धधर्मा . . . | १००-२ |
| वह्निकुण्डम् . . . | १ | विशुद्धसत्त्वः . . . | ४१३ |
| वह्नित्रयम् . . . | ३८१ | विश्वरूपम् . . . | १९२ |
| वाग्भवा . . . | ४७० | विष्णुवृक्षफलम् . . . | ५ |
| वाचः . . . | ७९ | विष्णुशक्तयः . . . | १९१ |
| वाचिकजपः . . . | १०७ | विसर्जनम् . . . | ६ |
| वायव्यकस्नानम् . . . | ३४० | वीतरागाः . . . | २९४ |
| वायुदलम् . . . | ५० | वीतीकारः . . . | २९७ |
| वायुपुरगामी . . . | ४७२ | वीरः . . . | १५८ |
| वारुणस्नानम् . . . | ३४० | वीर्यम् . . . | ९० |
| वार्धुषिकः . . . | १७ | वृषली . . . | १६ |
| वासनाबद्धः . . . | २९१ | वृषस्थानम् . . . | ३२८, ३३३ |
| वाहनमण्टपम् . . . | ३३२ | वेदऋचः . . . | २४० |
| विदानः . . . | ४० | वेदवचनम् . . . | २११, २१३ |
| विद्या . . . | ४७१ | वेदाः . . . | ४०५ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------|------------|---------------------|------------|
| वैकङ्कतफलानि . . . | ३४३ | शक्तित्रयम् . . . | ३८१ |
| वैकुण्ठम् . . . | १५४ | शक्तियुक्तम् . . . | ४६९ |
| वैखरी . . . | ७९ | शक्तिरूपा . . . | १९३ |
| वैखानसम् . . . | १४२ | शङ्खचूर्णम् . . . | ३४६ |
| वैखानसाः . . . | १०४ १५७ | शङ्खपात्रम् . . . | ३६३ |
| वैडूर्यम् . . . | ३८२ | शरणागतिः . . . | १४१-२ |
| वैदिकमन्त्राः . . . | १०७ | शरभः . . . | १२२-५ |
| वैद्युतम् . . . | ३१६-२ | शरीरभेदाः . . . | २९१ |
| वैराग्यम् . . . | ३२६ | शाकमूलफलानि . . . | ३४४ |
| वैष्णवपदम् . . . | ३४, ११८ | शाक्तम् . . . | ४०० |
| वैष्णवसंस्कारः . . . | १४२ | शान्ता . . . | १९३ |
| वंशीवटः . . . | २५५ | शान्तिगृहम् . . . | ३३३ |
| व्यायः . . . | ४० | शान्तिमण्डपम् . . . | ३३१ |
| व्यापकः . . . | ३१७ | शाम्भवम् . . . | ४०० |
| व्यापकत्रयम् . . . | ४२६ | शिविका . . . | ३५९ |
| व्यापकमन्त्राः . . . | ८७ | शिविकुलम् . . . | १० |
| व्याहृतयः . . . | ३६ | शिरः . . . | २९ |
| व्यूहः . . . | १५६ | शिवज्ञानम् . . . | ३७२-२ |
| व्योमचक्रम् . . . | २ | शिवतीर्थम् . . . | ३४१ |
| व्योमपदम् . . . | ९१ | शिवदेवगृहम् . . . | ३३० |
| ब्रजपरिणाहः . . . | २७८ | शिवपुरम् . . . | ३७४ |
| ब्रजलीला . . . | २२१ | शिवभस्म . . . | ३३८ |
| शक्तयः . . . | १९१ | शिवमयः . . . | ४०१ |
| शक्तिकूटम् . . . | ४०० | शिवमहाशान्तिः . . . | ३५५ |
| शक्तिचक्रम् . . . | ४०० | शिवयोगिनः . . . | ३०९ |

विशेषपदसूची

५१३

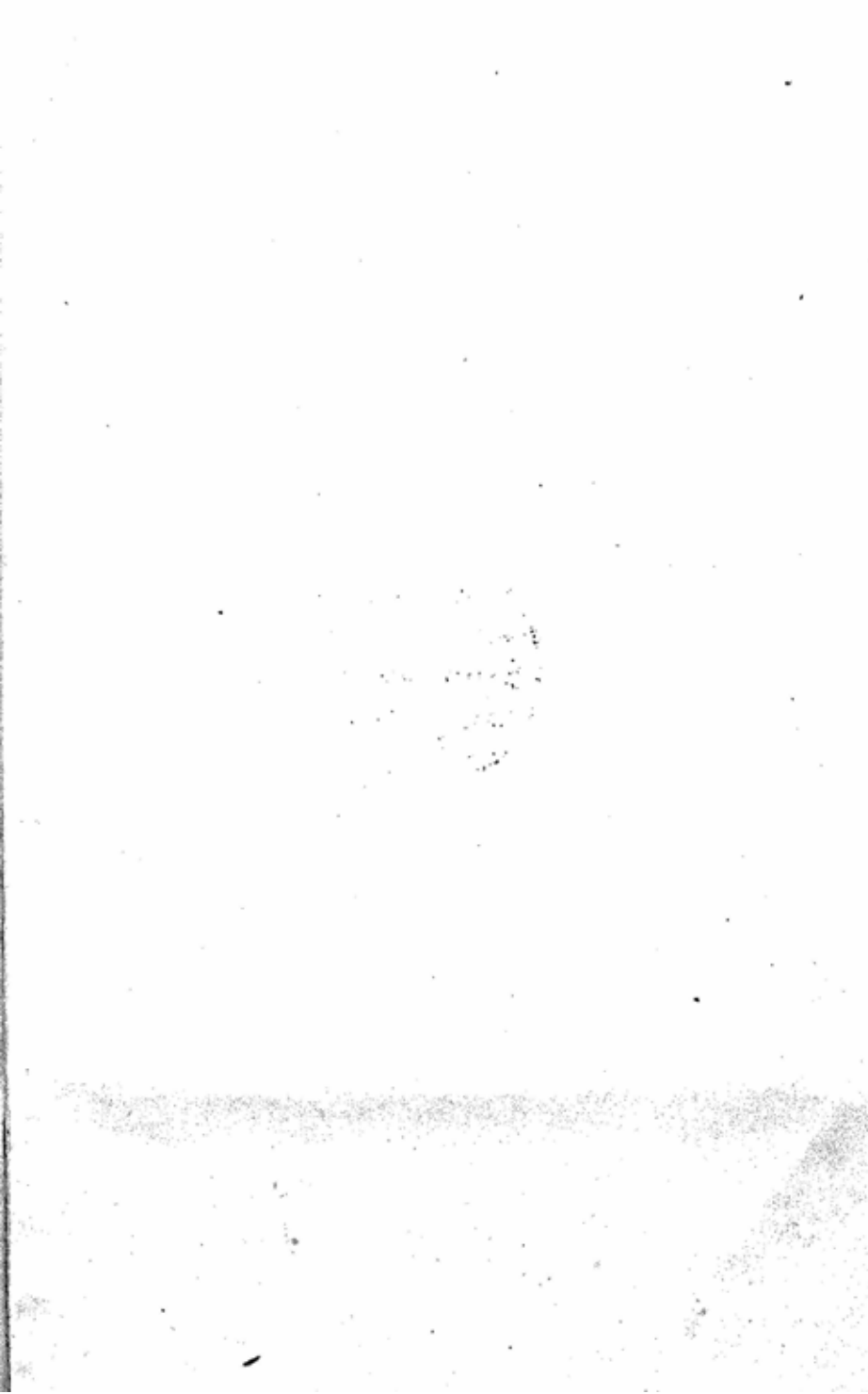
| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------------------|------------|----------------------------|------------|
| शिवशेषा | ३५६ | श्रीगुरुचैतन्यम् | ४८ |
| शिवसङ्कल्पम् | ३१८-४, | श्रीचक्रन्यासः | ४६८ |
| ३१९-९, ३२०-१०, | | श्रीफलम् | ३४२ |
| ३२१-९, ३२२-६, | | श्रीविद्या | ३११ |
| ३२३-५ | | श्रीविष्णुमानसः | ८६ |
| शिवस्थण्डिलम् | ३३० | श्रीवैष्णवाः | २९४ |
| शिवाग्निहोत्रकुण्डम् | ३३२ | श्रौतम् | ३१० |
| शिवाग्र्यायतनम् | ३३२ | षट्कालित्वम् | ४७२ |
| शिवाचारः | ३६६ | षट्कोणगाः | ४६७ |
| शिवात्मैक्योपासकाः | ३८६ | षट्कोणशक्तयः | ७९ |
| शिवाद्वैतोपासकाः | ३८७ | षट्कोशाः | १९४ |
| शुकः | २२६ | षट्चक्राणि | ४०४ |
| शुक्लम् | ३१६-२ | षट्छाम्भवसंपन्नः | ४०४ |
| शुचिकर्मा | १०० | षडक्षराणि | ४०० |
| शूकम् | ४२ | षड्दर्मयः | १९५ |
| शूद्राः | ३८१ | षड्दस्तः | ३२८ |
| शेषाः | ११० | षड्द्रव्याणि | १५८ |
| शेषी | ११० | षड्भावविकाराः | १९४ |
| शैलम् | ३८२ | षष्टिसिद्धीश्वरः | ४०४ |
| शोभनाः | ३३३ | षष्ठकूटाक्षरः | ४६९ |
| शौचम् | ३४१ | षष्ठश्रेणी | २७० |
| श्मशानम् | ४७२ | षष्ठावरणम् | २८४ |
| श्रद्धा | ३८० | षष्ठी | ४७५ |
| श्राद्धकर्ता | १४-२ | षष्ठीकुक्षिः | ४०६ |
| श्राद्धकर्मबहिष्क्रताः | १७ | षोडशदलाः | ८० |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|-------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| षोडशमात्रात्मकः . . . | २६ | समर्पणम् . . . | १४९ |
| षोडशाक्षरी . . . | ७५ | समाधिकः . . . | १ |
| षोडशी . . . | ४७० | समानगुणाः . . . | २९१ |
| षोढा . . . | ४७२ | सम्पुटम् . . . | ३८२ |
| षोढान्यासी . . . | ४७२ | सम्भोजनी . . . | १२ |
| षोढारूपः . . . | ४२० | सम्मार्जनम् . . . | ३२६ |
| सकललोकरक्षणचक्रम् . . . | ८४ | सम्मोदः . . . | १५४ |
| सच्चिदानन्दः . . . | २८९ | सर्वज्ञादिदशकम् . . . | ३९७ |
| सत्यत्वम् . . . | ९० | सर्वतोमुखम् . . . | १३४ |
| सत्यात्मा . . . | ८५ | सर्वन्यासकारी . . . | ४७५ |
| सत्रमण्टपः . . . | ३२८ | सर्वभूतान्तरात्मा . . . | १३८ |
| सदानन्दरूपः . . . | ४०० | सर्वव्यापी . . . | ३१५-२ |
| सदाशिवपुरुषः . . . | ४०५ | सर्वसिद्धिप्रदादिदशकम् . . . | ३९७ |
| सद्गतिः . . . | ३१६ | सर्वसिद्धीश्वरः . . . | ४०१, ४७५ |
| सन्तोषः . . . | ३२६ | सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशकम् . . . | ३९६ |
| सन्दंशः . . . | ३६१ | सर्वाङ्गसंपूर्णः . . . | २८ |
| सन्धुः . . . | १३९ | सर्वाङ्गानि . . . | ४१२ |
| सन्न्यासः . . . | ४२१, ४२२ | साङ्ख्यायनगोत्रा . . . | ४०६ |
| सन्न्यासिनः . . . | २९१ | सात्वतम् . . . | १४१ |
| सन्न्यासी . . . | २९० | साधनरूपाः . . . | २९२-२ |
| सपर्या . . . | ४१२ | साधनसिद्धा २२२, २३८, २५२, २७५ | |
| सप्तकलामयम् . . . | ४६८ | साधारः . . . | १५४ |
| सप्तमश्रेणी . . . | २७० | साधिष्ठानः . . . | १५४ |
| सप्तमावरणम् . . . | २८४ | साध्योपायः . . . | १०८ |
| सप्ताक्षरमन्त्रः . . . | ७४ | | |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|------------------------------|---------------|--------------------------------|------------|
| सामगाः | २९२ | सोमयांजी | ४७५ |
| सामवेदः | ६, २० | सोमोत्पत्तिः | १८९ |
| सामीप्यम् | १४७ | संवित् | ३ |
| सायुज्यम् | १४७ | संश्रयम् | ३६५ |
| सायंसन्ध्या | ४०६ | संसारमण्डलम् | ११ |
| सारस्वतम् | ८४ | संसिद्धाः २२२, २३८, २४०, | |
| सार्वाङ्गिकप्रणामः | ३६७ | २७४, २७५ | |
| सालोक्यम् | १४७ | संस्कारः | १७९ |
| सावित्ररूपम् | १८० | संहारप्रणवः | २६ |
| सिद्धकाल्यधिकारी | ४०४ | स्थानशुद्धिन्यासः | ४७२ |
| सिद्धीश्वरः | ४६९, ४७२, ४७४ | स्थापकः | ३२६ |
| सुचक्रम् | ८४ | स्नानम् | ६ |
| सुदुर्ज्ञानतरः | १६० | स्फाटिकम् | ३३१ |
| सुबुद्धिमान् | १०० | सुक्स्तुवादिपात्राणि | ३४७ |
| सुभगा | १७३ | स्वतन्त्रः | १०० |
| सुभस्मरूपम् | ३८३ | स्वमात्रा | ३२-३ |
| सुषुप्तम् | ४७१ | स्वात्मलिङ्गार्चकाः | ३८७ |
| सुषुम्ना | २ | स्वाधिष्ठानम् | २ |
| सूक्ष्मम् | ३१६-२ | स्वाध्यायध्यानम् | ३७६ |
| सूचिकम् | ३६२ | स्वानुभवः | १४७ |
| सूरयः | १०७ | स्वेदजाः | ७८ |
| सृमरः | ४६ | हठः | १ |
| सृष्टिः | २६० | हयग्रीवमन्त्रः | १२६ |
| सैकृतम् | ३८२ | हरिः | १२४ |
| सोपानत्कः | ३७३ | हिरण्यकशिपुः | १२१ |

| पदम् | पुटसङ्ख्या | पदम् | पुटसङ्ख्या |
|----------------------|------------|---------------------|------------|
| हृत्पद्मम् . . . | ३२६ | होमकर्म . . . | ३३९ |
| हृदयचक्रम् . . . | २ | हंसदीक्षितः . . . | ४०४ |
| हेरम्बतत्त्वम् . . . | ३९० | हंसन्यासः . . . | ९८ |
| हैमम् . . . | ३८२, ३८३ | हंसषोढान्यासी . . . | ४७४ |





1855

Sherry

D.G.A. 80.

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
NEW DELHI
Issue record.

Call No.—SazVu/A.L/Kun-8048

Author—Adyar library pandits &
Kunhan Raja, C. Eds.

Title—Un-published Upanishads.

| Borrower's Name | Date of Issue | Date of Return |
|-----------------|---------------|----------------|
| Sri Bhagwat | 4-5-74 | 7-5-74 |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |

P.T.O.

Upanishads
✓ *Upanishads*
Saz